इन्दौर पंचांग शोधन कमेटी

रिपोर्ट

भाग १ और २

लेखक

वि. भू. दीनानाथ शास्त्री चुलैट.

The Panchang Committee's
Report.

Embodying mathematical research and the deliberations of the Committee's sittings including tables to guide accurate preparation of Panchang.

Higher astronomical formulae made easy and corrected up-to-date.

शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इन्दौर की
सम्पूर्ण रिपोर्ट.

Initial

शास्त्र शुद्ध पंचांगोपयोगी शास्त्रार्थ व ग्रहलाघव को चालन देकर, दृक्प्रत्यय युक्त सूक्ष्म गणित से

पंचांग बनाने की पद्धति और कोष्टक

अर्थात्

सूक्ष्म पञ्चाङ्ग गणित का यथार्थ तत्व

सम्पादकः कमेटी के अध्यक्ष

ज्योतिषाचार्य और वेदार्थ-तत्व-प्रतिष्ठापनाचार्य

विद्याभूषण

पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट

:0:

प्रकाशक

माननीय श्रीमन्त हुलकर गव्हर्नमेन्ट की आज्ञा से

मुद्रक

होलकर गव्हर्नमेन्ट प्रेस, इन्दौर.

000

[मूल्य २ रुपये]

कश्चिन्न वेद गणितं यदि वेत्ति शुल्बं ।
शुल्बं न वेद यदि वेत्य परोक्ष क्ल्टाप्तिम् ॥
विद्वान्द्वयं न विविधागम पण्डितोऽन्य ।
स्तज्ज्ञानवानपि सुपर्णचितौ पटुः कः ॥ १ ॥

कुंडराम-वाजपेय

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरंश्चरैवचरैव ॥

ऐतरेय ब्राह्मण ३३.३.

स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यम् । अनुमानश्चतुष्टयम् ॥
एतैरादित्य मण्डलम् । सर्वैरेव विधास्यते ॥ १ ॥

तैतिरीय आरण्यक १.२.१.

पंचांग शोधन कमेटी की रिपोर्ट में प्रेक्षणीय विषय.

इन्दौर पंचांग प्रवर्तक कमेटी की संपूर्ण

रिपोर्ट.

शुद्ध पंचांगोपयोगी शास्त्रार्थ सहित ग्रहलाघव को चालन देकर उसी के गणित से शास्त्रशुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने की पद्धति व कोष्टक.

भूमिका.

लेखक—विद्याभूषण दिनानाथ शास्त्री चुलेट.

ज्योतिष का उद्भव और वेद काल में ज्योतिष का धार्मिक स्वरूप.

१ बहुत प्राचीन वैदिक कालसे मंत्र द्रष्टा ऋषियोंने ज्योतिःशास्त्र के मूलतत्वों का शोध लगा लिया था; यज्ञ प्रयोग उस समय की वेध क्रिया थी और सुपर्ण चिति आदि के चित्र में दैवत चिन्हांकित इष्टकाएं (इंटे) रखकर उसका लेखन किया जाता था। जिसके द्वारा आज वर्तमान के पंचांगों के माफक उस समय में (और आज) भी तिथि, नक्षत्र, करण, दिन प्रमाण, रात्रि प्रमाण, मास, पक्ष, अयन (विषुव दिन), तोयन (पर्जन्यारंभ नक्षत्र), ऋतु, संवत्सर और युगों का परिमाण आदि यथार्थ रीतिसे मालूम होते थे। उसके द्वारा अधिक मास का भी पता लग जाता था। इसी कारण वैदिक मंत्रों में उपासना के रूपमें ज्योतिर्गोल का ही वर्णन है। क्योंकि उस समय **ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्र का एक ही रूप था।**

वेदांग काल के इधर ज्योतिष का स्वतंत्र स्वरूप

२ आगे जब वेदांग काल में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त और छंदग्रंथों का अलग अलग निर्माण होने लगा तब ज्योतिष का भी **वेदांग** ज्योतिष नामक ग्रंथों द्वारा अलग निर्माण हुआ; और धर्म शास्त्र के स्मारक स्मृतिग्रंथ भी अलग अलग बनते गये। अब तक तंत्र (ग्रहगणित) संहिता व जातक भेद से ज्योतिष के १८ ग्रंथ और मानवादि स्मृति (**धर्मशास्त्र**) के २६ ग्रंथ बने इनके द्वारा और भी कई उपांगरूप ग्रंथों की रचना हुई।

ज्योतिःशास्त्र और धर्म शास्त्र का परस्पर संबंध.

३ इनका परस्पर में अंगांगी भाव का संबंध होने से ज्योतिःशास्त्र में स्मृति ग्रंथोक्त युग पद्धति आदि बातों का और धर्म शास्त्र में व्यवहारोपयोगी ज्योतिष की बातों का समावेश किया गया। इसी कारण **हमारे ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्र परस्पर में एक दूसरे के समर्थक हैं।**

४ इसीलिये हमारे-व्रत, उपवास देवपूजा व श्राद्ध संकल्पादि **धर्मशास्त्रोक्त** संपूर्ण **कार्य** तथा मुहूर्त जन्मपत्र वर्ष फल, प्रश्नफल, आदि **फल ज्योतिष के कार्य** और कृषि, व्यापार, इतिहास (प्राचीन वस्तु संशोधन), व गणित शास्त्रीय आदि व्यावहारिक कार्य; **धर्म शास्त्रानुसार** (श्रुतिसम्मत) प्रणाली**से बने हुए दृक्प्रत्यय युक्त, शुद्ध व सूक्ष्म गणित के पंचांग से ही किये जाते हैं**। और यही शास्त्रशुद्ध पंचांग कहलाता है।

शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वरूप और उपयोग.

५. आकाशस्थ ज्योतियों की यथार्थ स्थितिको बतलानेवाला पंचांग है। वह स्थिति प्रत्यक्ष वेध लेनेसेही निश्चित हो सकती है। इसलिये जिन ग्रंथों के आधार पर पंचांग बनते आए वे उस कालमें उपलब्ध वेधक्रियाके साधनो से बने हुए होने से **तत्कालीन दृकप्रत्यय युक्त**ही रहते थे। किंतु कुछ वर्षों के बाद जब जब उसके गणित में अंतर पडने लगता था तब तत्कालीन ज्योतिर्विद लोग उसमें बीज **संस्कार** [चालन] देकर करणग्रंथ तथा नये सिद्धान्त ग्रंथ बनाकर शास्त्रानुसार उसे शुद्ध कर दिया करते थे। तभी आज ज्योतिष के अनेक सिद्धान्त और करण ग्रंथ उपलब्ध हैं।

वेधद्वारा पंचांगको शोधन करनेकी प्रणाली.

६. भिन्न भिन्न कालमें उक्त ग्रंथोंका निर्माण हुआ है इसलिये उनमें कुछ भिन्नता दिखती है। किंतु यही भिन्नता मानवीय ज्ञानोन्नतिके साथ साथ ज्योतिःशास्त्रकी नई नई खोजोंके कारण, वेधक्रिया और ज्योतिःशास्त्रके प्रागतिक रूपको दर्शाती है। यदि हम उच्च और संपात के सम्मिश्र गतिप्रमाणों को सायन व केंद्रीय वास्तविक रूप के बनाकर अलग अलग कर दें तो आजतक के बने हुए **सभी सिध्दान्त ग्रंथोंकी आपस मे एक वाक्यता** हो जाती है। अर्थात् सभी के भगणपरिमाण सूक्ष्म गणित के परिमाणों में एक रूप होकर मिल जाते हैं। यह (हमारे ग्रंथों के शुद्धताकी) हमारे लिये कितने गौरव की बात है।

वेधक्रिया प्रचलित रहने से विभिन्न ग्रंथोंकी एक वाक्यता.

७. इस प्रकार **स्वतंत्र** वेध लेने की **प्रणाली** [परंपरा] ग्रहलाघव **करण** ग्रंथके निर्माण काल शाके १४४२ तक प्रचलित थी। किंतु उसके बाद भारतकी वेध प्रक्रिया लुप्त हो जानेसे प्राचीन ग्रंथों के वेध-सिद्ध परिमाणों की तत्वान्वेषणताभी लुप्तप्राय होगई। इसी कारण नया सिद्धान्त ग्रंथ या करण ग्रंथ बनाने की प्रतिभाशक्तिका ह्रास होगया। और ऐसे ग्रंथों के निर्माण के बदले (१) **आर्ष अनार्ष वाद,** (२) **सायण निरयण बाद,** (और शुद्ध निरयण मान में) (३) **आरंभ स्थान वाद तथा** [४] **अयनांश वाद** खडे होगये हैं। **इतना**ही नहीं तो वर्तमान कालिक पंचांगों के निर्माण में भी तीन पक्ष पैदा होगये हैं जो **इस प्रकार है**।

वेधक्रिया के लोप से पंचांग वादकी उत्पत्ति.

८ ग्रहों की गति स्थितिमें दृग्गणितैक्यताके लिये दिये जानेवाले कालान्तर जन्य संस्कार और स्मृति ग्रंथोक्त युग परिमाण का उपयोग छोडकर

ग्रहलाघवीय (अ) पक्ष.

प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के केवल नाम धारी (शके ४२१) के पश्चात् जिनकी रचना की गई है ऐसे) सिद्धान्त ग्रंथों को आर्षग्रंथ मानकर उनके आधारपर बने हुए मकरंद, करण प्रकाश, करण कुतूहल, रामविनोद और ग्रहलाघव तिथिचिंतामणि आदि से पंचांग बनाने वाला पहिला **ग्रहलाघवीय पक्ष** है।

९ ग्रहलाघव पक्ष के सिवाय शक १७५९ (सन १८३८ ई.) से एक दूसरा **आँग्ल विद्या विशारदों**का पक्ष खडा होगया है. यह पक्ष श्रुति, स्मृति

नूतन पक्ष में दो भेद

व वेदांग प्रोक्त ज्योतिष और तंत्र, होरा, संहिता आदि ज्योतिष के मूलतत्वों को जाने बिना ही केवल प्रो० **कोल ब्रूक**, प्रो० **बेण्टली**, प्रो० **व्हिटने**, प्रो० **बर्जेस** आदि के बनाए हुए सूर्य सिद्धांत आदि नव्य ग्रंथों के अंग्रेजी भाषान्तर के तथा पाश्चात्यों के सूक्ष्म गणित के पंचांगों के आधारपर प्रो० **बापू देव शास्त्री**, प्रो० **छत्रे**, और **ज्योतिर्विद् केतकर** आदिने पचांग प्रणालीका रूपान्तर करने के लिये राशि चक्र के आरंभस्थान दर्शक तारकाओं में विभिन्न नूतनरूप देकर **अयनांशों का** और मंद केंद्रीय वर्षमान को प्रचलित रखकर शुद्ध **नाक्षत्र वर्षमान का** वाद उत्पन्न कर नक्षत्रों से गणना की जानेवाली वेध पद्धति के स्थल में आँग्लपंचांगोक्त सायन परिमाणों को ही दृक्प्रत्यय मानकर उसीपर से पंचांग बनानेवाले नूतन पक्ष में भी (ब) और (क) दो भेद हो गए हैं। वह इस प्रकार हैं।

१० **गणपत कृष्णाजी** मुंबई के छापखाने से प्रकाशित शके १७८२ के ग्रहलाघवीय पंचांग में लिखे मेष संक्रमण काल से ही सूर्यसिद्धांतोक्त (मंदकेंद्रीय)

पूना कमेटी पक्ष (ब)

वर्षमान लेकर प्रो R. S. के इ. स० १९०८ में पाश्चात्य ग्रंथों के आधार से प्रो. **केरो लक्ष्मण** नाना साहब छत्रे के बनाए हुए ग्रहसाधन कोष्ठकोक्त झिटापिशियम तारे को आरंभस्थानीय मानकर (१८°–१९°) अयनांशों का शक १७८७ से थोडे ही वर्षोंतक "**पटवर्धनी**" पंचांग बनानेवाला, आगे **लोकमान्य तिलक** महोदय के समक्ष में शास्त्र शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान लेकर नाटिकल आलमनाक के आश्रय से शक १८४० से ठीक २२° अयनांशों का आरंभ कर "**टिळक पंचांग**" बनाने वाला, बाद में प्रो० छत्रे के कहे हुए सूर्यसिद्धांतोक्त वर्षमान छोडकर उन्हीं छत्रे के बताए हुए अयनांश (१८°–१९°) का वही पंचांग बनवानेवाला **पूना कमेटी पक्ष** या झिटापक्ष= (ब) है.

११. उपरोक्त [ब] पक्ष को महत्व देने के लिये ज्यो. वि. वेंकटेश बापुजी **केतकर** ने शक १८२० के **ज्योतिर्गणित** नामक ग्रंथमें अयनांश[१८°–१९°]

केतकी पक्ष= [क]

को अग्रस्थान देकर चित्राभिमुख आरंभस्थान के अयनांश(२२°–२३°) के प्रचलन रहित बतलाया व शक १८२२ में झिटापक्षकाही पंचांग बनाया लेकिन जब

ज्यो. वि. शंकर बालकृष्ण दीक्षित के भारतीय ज्योतिः शास्त्र में झिटा की निराधारता व चित्रा की साधारता सिद्ध हुई देखकर निरभिमानसे झिटा पक्षको त्याग कर स्वयं केतकरजीने पूना केसरी पत्र (तारीख २-२-१९२१) आदि लेखोंमें अपनी गलती सुधारी है और शास्त्रशुद्ध चित्राभिमुख बिन्दु को आरंभ स्थान में मानकर **ग्रहगणित, वैजयन्ती व नक्षत्र विज्ञानादि** पाश्चात्य सरणी के सूक्ष्म गणित के ग्रंथ बनाये हैं तदनुसार अयनांश (२२°-२३°) का स्वयं **पंचांग बनानेवाला केतकी पक्ष** या दीक्षित पक्ष = (क) है।

तीनों पक्षों के गुणोंकी प्रशंसा.

१२. इन तीनों पक्षों का उद्देश भारतीय पंचांग प्रणालीको उन्नत करने का है किंतु इनमें से (अ) पक्ष प्राचीन ग्रंथ व प्राचीन शोधों को विकाश में लाकर और नूतन संस्कारों से शुद्धकर उसे वास्तविक स्वरूप देने में, (ब) पक्ष उसके स्थल में आँग्ल विद्याविशारदों की कही बातों को प्रचलित कराने में और [क [पक्ष प्राचीन तथा अर्वाचीन शोधों को उपयोगमें लाकर दोनों की संगति लगाने में; उसकी उन्नति समझता है।

और विद्वानो के किये हुए महत्वपूर्ण कार्य.

१३. तदनुसार ग्रहलाघव, महासिद्धान्तादि ग्रंथोंकी ट. । व कई ग्रंथों की टिप्पणी कर उनको प्रकाशित कराना, चुचरचार व चलन कलनादि कई ग्रंथों को बनाकर उसमें भास्कराचार्यादि के शोधोंकी सूक्ष्मता व उपयोगिता बतलाकर म. म. पं **सुधाकर द्विवेदीने**, पाश्चात्य गणित पद्धतिका गोल प्रकाश ग्रंथ बनाकर प्रो० **नीलांबर झा ने**, सूर्य सिद्धांत सिद्धांतशिरोमणि आदि की नव्यपद्धतियुक्त हिन्दी टीका बनाकर ज्यो. वि. पं. **दुर्गाप्रसादने**, पंच सिद्धांति का संस्कृत टीकाके साथ इंग्रजी टीका बनाकर प्रिंसिपल **थीबो साहबने**, इस शास्त्रकी उन्नति करने के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

तीनों पक्षों के प्रशंसनीय कार्य.

१४. इसी प्रकार कई ग्रंथकार और पंचांगकारोंने हमारे धर्मशास्त्र व ज्योतिःशास्त्रकी जोड कायम रखते हुए निरयण मानके पंचांगों को शनैः शनैः सूक्ष्मगणित के करते जाने का श्रेय **ग्रहलाघव पक्ष** को है। उक्त छत्रे साहेब ने ग्रंथ बनाकर तथा लो० तिलक व सर भालचंद्र भाटवडेकर आदि ने मुंबई, पूना, सांगली में सम्मेलन कराकर उसमें सूक्ष्मगणित के पंचांग को प्रचार में लाने का और ५००) रुपियों का नगद पुरस्कार देकर मि. **दफ्तरी वकील** द्वारा नूतन करण ग्रंथ बनवाने का औदार्य प्रकट करने का श्रेय **पूना कमेटी पक्ष** को है। और व्यासतंत्र-कामधेनु, तैत्तिरीय ब्राह्मण, व वेदसंहिता में लिखे हुए राशिचक्र के आरंम्भ स्थान दर्शक चित्रा तारे का अन्वेषण करने के बिना ही केवल अर्वाचीन सिद्धान्त साधित ग्रहों की तुल्यता साधन के उद्देश से क्यों न हो दीक्षितजी के सूचित किये हुए चित्रा तारे को अयनांश दर्शक मानकर; पूना कमेटी पक्ष के तर्फ से दिया

जाने वाला **पांच हजार रुपियों का पुरस्कार** त्याग करके पंचांग कार को चाहिये ऐसे लेख व ग्रंथों को प्रकाश में लाकर भारतीय ज्योतिःशास्त्र को पाश्चात्यों के वेद्ध सिद्ध परिमाणों के तुल्य शुद्ध व सूक्ष्म बनवा देने का श्रेय **केतकी पक्ष** को है।

उन्नति के मार्ग का दिग्दर्शन.

१५. इन तीनों पक्षों का ध्येय यद्यपि भारतीय ज्योतिः शास्त्र की उन्नति करना है किन्तु ये पक्ष आपस में एक दूसरे को गिराकर अपने उद्देश की सिद्धि के लिये जिस मार्ग का अवलंब कर रहे हैं वह मार्ग उन्नति का नही है। वट वृक्ष की उन्नति उसके पोषण करने में या वह वृक्ष सूख गया हो तो वटके ही बीज बोने में है न कि उसे उखाडकर उसके स्थान में पीपल आदि दूसरे वृक्षों के बीज बोने में या वृक्ष लगाने में है। यह उन्नति तो पीपल आदि वृक्ष की है। वट की नही। ठीक इसी तरह हमारे पूर्व पुरुषोंने जिन २ तत्वों का शोध लगाकर उत्क्रांति तत्वानुसार उनका विकास होते हुए अनंत काल तक उसको कायम रखने के लिये जिस पद्धतिका उन्होंने स्वीकार किया है उस पद्धति का अवलंब करके उन तत्वों का विकाश करना ही भारतीय ज्योतिःशास्त्र की उन्नति है। उसे त्यागकर दूसरी पद्धति व दूसरे २ प्रकारों के शुरू करने में प्राचीनों के प्राप्त किये हुए शोधों का श्रेय दूसरों को देना है।

आकाशीय दृश्यों से ज्योतिष की सार्थकता.

१६. हमें २२ मार्च को आरंभ होनेवाले **सायन मान के** मेष वृषभादि राशि, अश्विनी आदि नक्षत्र और चैत्र वैशाख आदि महीने केवल प्राचीन नाम धारी नहीं चाहिये तो आकाश में तारका पुंजों पर निश्चित किये हुए मेष वृषभादि की आकृतिवाले राशि, अश्वमुखादि नक्षत्र और इनकी स्थिरप्राय नक्षत्रों के या सानिध्य के नक्षत्रों युक्त पौर्णिमावाले मास; जैसे चित्रा पौर्णिमावाला महीना चैत्र विशाखा युक्त वैशाख-इसी तरह के मेषादि राशियुक्त शुद्ध नाक्षत्र मानके अन्वर्थक महीने चाहिये। केवल जो बातें **सांपातिक** मान से परिगणित होती हैं जैसे ऋतु, अयन, चरपल, लग्न, भाव साधन और वेध द्वारा छाया नापने आदि **सायनमान** माल्लम होने के लिये शास्त्र शुद्ध नाक्षत्र मान में चाहे जिस दिन चाहे जिस समय का सांपातिक मान आजावे ऐसे अयनांश चाहियें। इसी तरह मंद केंद्रीयमान आजावे ऐसा शुद्ध मंदोच्च चाहिये।

प्राचिनों के शोध हमारे लिये पर्याप्त हैं.

१७. इस प्रकार के शुद्ध व सूक्ष्म परिमाणों का योग्य अन्वेषण करनेपर हम पता लगा सकते हैं कि वैदिक और सिद्धान्त साधित ग्रहों में ही कालान्तर जन्य संस्कार करनेपर दृक्प्रत्यय युक्त शुद्ध व सूक्ष्म ग्रह बन सकते हैं। तब उस पद्धत्ति को त्यागकर दूसरे का अवलंब करना व्यर्थ है। क्योंकि प्राचीनों के शोध पर्याप्त हैं। और उनके द्वारा ही पाश्चात्य गणित सरणी की सूक्ष्मताला के शास्त्र शुद्ध नाक्षत्र मानका पंचांग साधन करने में ही हमारा गौरव है।

१८ किंतु भारतीय ज्योतिःशास्त्रमें सायनमान को समर्थित करने वाले ज्यो. वि. दीक्षित के लेखों को और सांगली संमेलन के इतिहास को तथा उसके बाद केसरी व स्वराज्य नामक पत्रोंमें प्रसिद्ध हुए पंचांग वाद संबंधी लेखों को देखने से पता चलता है कि आँग्ल विद्या विशारदों मेंसे कतिपय महानुभावों ने प्रचलित नाक्षत्र प्रणाली को धीरे धीरे नामेट करने के लिये ही हमारे में कई विसंवाद (झगडे) खडे किये हैं वह इस प्रकार से हैं।

प्रच्छन्न सायन वादियों के प्रयत्न.

१९. आरंभस्थान दर्शक, देदीप्यमान, एकतारा वाले, निजकी अत्यल्प गतिमान्, निःसंदेह योग तारावाले चित्रा नक्षत्र की जगह—आरंभस्थानसे चार अंश पहिले के, नेत्रोंसे स्पष्ट नहीं दिखने वाले, छोटे २ बत्तीस ताराओं मे से छोटे से एक तारे को योग तारा पहिचानने में संदेहोत्पादक तारावाले झिटापिशियम को रेवती की योग तारा बता कर '**नक्षत्राणि रूपं अश्विनौ व्यात्तम्**' इस प्रकार की श्रुतियों को गलत करने के लिये **आरंभ स्थान दर्शक ताराका विसंवाद**, और

इनकी पहिली चाल बाजी.

२०. छायार्क से करणागत स्पष्ट रवि का अंतर रूप के अयनांशों का अवलंब करने में प्राचीन मंदफल की स्थूलता के कारण प्रतिदिन के प्रति ग्रंथ के भिन्न भिन्न अयनांशों को बतलाते हुए सायन मेष संक्रमण के समय के ही अयनांश करणागत में मिलाकर छायार्क से उसे गलत करने के लिये और स्थिर तारासे अयनांश गणना पद्धति को नामेट करने के लिये उपर्युक्त **सिद्धान्त व करण ग्रंथों की स्थूलता व विभिन्नता बतलाने का विसंवाद**-- खडा कर देते हैं।

दूसरी चाल बाजी.

२१. और यह ऐसा कहते हैं कि—" देखिये अनेक करण ग्रंथों के अनेक अयनांश आते हैं वह भी सिर्फ सायन मेषार्क के समय के हैं। अन्य दिनों के ग्रंथोक्त सूर्यादि से छायार्कादि का मेल नहीं मिलता है। इसी कारण अधिक मास आदि में भिन्नता होती है। इस प्रकार के नाक्षत्र मान में तो कई झगडे हैं। "**वंध्यावा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः** ॥ १ ॥ ऐसा एक प्राचीन कुतर्कानुसार आर्य ज्योतिष के नाक्षत्र मान के झगडे छोडकर सायन मानका प्रचार करना अच्छा है। हमने भी ग्रहसाधन के ग्रंथ सायन मान के ही बनाये हैं। इस सायन मान से न तो अयनांशों का झगडा और जनवरी, फरवरी मास लेने में न अधिक मास का झगडा पडसकता है। क्योंकि तारीख की गिनती से क्यालेंडर के माफक महीने व दिन रहने से

चाल बाजी का भांडा फोड.

तिथि महीनों के वृद्धिक्षय का भी झगडा कते लोप होजाता है। फिर बस एक राफेल का पंचांग या नाटिकल आल्मनाक प्रतिवर्ष बुला लेने पर आकाश में ग्रहों के स्थान टटोलने के झगडे को छोडकर उन पंचांगों से तमाम भारत वर्षीय पंचांग और ग्रंथों को गलत बतला कर सूक्ष्म मत का डंका बजा सकते हैं।

नाक्षत्र मान को हटाने वालों के प्रति मेरे प्रश्न.

२२. ऐसा कहनेवाले स्पष्ट सायन वादियों के और कृतिसे प्रदर्शित करनेवाले प्रच्छन्न सायन वादियों के प्रति मेरा नम्र निवेदन है कि यद्यपि आप तो ऐसा सायन मानको एवं तारीख व महीनों को रूढकर सकोगे किन्तु निम्नांकित समस्याओं को हल कैसे कर सकोगे? वह यह है कि "चांद्मास के अनुसार होनेवाला समुद्र का ज्वार भाटा और स्त्रियों का मासिक धर्म तीन वर्ष में ३७ वार व्यक्त होकर अमावास्या पौर्णिमा के आकर्षण शास्त्रानुसार कई निर्जीव व सजीव पदार्थ चांद्रमास की ही गवाही देते रहेंगे नकि क्यालेंडर में लिखे महीनों से (१२×३)= ३६ बार होकर फिर अधिक मास का नामोनिशान आपके सायन मास से कैसे मिटेगा ?

यह शास्त्रशुद्धी के उपाय नहीं हैं.

२३. फल ज्योतिष के उच्च नीच व स्वगृही राशि आदि तारका पुंजाकृति के ग्रह सादृश्य वर्णोंपर निश्चित किये गये हैं; और जातक में कही हुई पृष्ठोदय शीर्षोदय, बहुप्रसव, अल्पप्रसव, स्वभाव, वर्ण, तथा स्थल आदि बातें स्थिरप्राय राशि व नक्षत्रों के दृश्य आकृति विशेषपर कही गयी हैं; तब वह सायन संपात प्रतिवर्ष अयनगति से हटता जाने के कारण इस वर्ष के ज्योतिःपुंज के स्थान में दुसरे वर्ण के ताराओं का नक्षत्र भाग आजाने में वर्णान्तर व आकृति में भेद हो जानेपर प्रकाश शास्त्र और आकर्षण शास्त्रानुसार फल ज्योतिष में उसका समर्थन कैसे किया जायगा ?

चलबिन्दुसे चलग्रहों की दीर्घ गणना करना कठिन है।

२४. सायन वर्षमान वर्तमानमें ३६५,२४२२१६ दिन का है किंतु यही एक हजार वर्ष के पहिले ३६५.२४२२४८ दिन का था इस तरह चल वर्ष मान के आधार पर बनाए हुए ग्रहों में प्रति वर्ष के कालान्तर संस्कार दिये बिना सूक्ष्मता का डंका कैसे बजसकेगा इताना ही नहीं तो चल संपात को अचल मानने में अचल ताराओं को वार्षिक और दैनिक अयनगति देकर जो सायन मान बनाने में कितना प्रयास पड रहा है यह नाटिकल आल्मनाक (सन १९३१) के पृष्ठ २९२ से ५१६ तक के सवा दो सौ पेजों को देखने से ज्ञात होगा। किंतु वर्तमान कालिक परावलंबी भारतमें न तो कोई इतना प्रयत्न करेगा तब रही सही तारोंसे मेलान-कर देखने की क्रिया भी क्या नामेशष नहीं होवेगी ?

२५. इसी तरह ग्रह लाघव पक्षमें भी कतिपय विद्वान् उच्च संमिश्र मंद केंद्रीय वर्षमान को लेकर अन्यान्य सिद्धांत ग्रंथों की भिन्नता व स्थूलता को प्रदर्शित करते हैं और आपके गणित का सूक्ष्ममान से मेल करने के लिये नाटिकल आल्मनाक आदि सायन पंचांगोंमें मंद केंद्रीय भाग व अयनगति कम करके सूक्ष्म मान के पंचांग बनाते हैं। किंतु शास्त्रीय रीतिसे देखा जाय तो यह दोनों प्रकार के वर्षमान अशुद्ध हैं।

केंद्रीय और सांपातिक वर्षमान शास्त्र शुद्ध नहीं हैं।

२६. अशुद्ध कहने का कारण यह है कि जैसे रविमध्यगणित और भूमध्यगणित के केंद्रीय मान से मंदफल, मंदकर्ण, दिनगति, आदि भगोल विशिष्ट बातें तथा सूर्य से पृथ्वी के अंतर में कम ज्यादा होने का परिमाण ज्ञात होने से; थोडे प्रमाण की क्यों न हो; सर्दी गर्मी का भी परिवर्तन माळूम होता है। और तदनुसार शीघ्रफल, शीघ्रकर्ण व शर आदि के गणित की भूगर्भीय बातें भी माळूम होसकती हैं। ऐसा ही सायनमान से भूपृष्ठीय गणित की खगोलीय-लंबन विशिष्ट बातें=अयन, ऋतु के अनुसार दिनमान के बडे छोटे होने से सर्दी गर्मी का परिवर्तन आदि बातें माळूम होती हैं। और उसका भगोलीय गणित में तथा खगोलीय गणित में उपयोग करने के लिये शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष से उच्च नीच स्थान और अयनांशों की योजना की गई है सो गणित शास्त्र से शुद्ध है। किंतु इस पद्धति को त्याग कर केंद्र से या संपात से राशि चक्र का आरम्भ मानकर केंद्रीय वर्ष को या सायन वर्ष को जो आप सौर वर्ष कहते हैं सो स्थिरताराओं से सूर्य के चक्र भोग में ज्यादा कम दिखते हुए विकार युक्त को भी सौर वर्ष मानने में गणित शास्त्रानुसार (३६०+उच्चगति)=केंद्रीय वर्ष; (३६०–अयन गति) =सायन वर्ष इस प्रकार रवि के चक्र भोग में अशुद्धता होती है।

अशुद्धता के कारण ये हैं।

२७. इत्यादि कारणों से कह सकते हैं कि ऐसे अशुद्ध वर्षमान को चलाकर केवल प्राचीन ग्रंथोक्त वर्षमान को स्वीकार करने की ओट में बाकी प्राचीन शास्त्रोक्त सभी मूलांकों को त्याग कर पाश्चात्यों के पंचांगों से अपने पंचांग बनाते हैं। इससे ग्रंथों की निरुपयोगिता प्रदर्शित करना है। किंतु यह भारतीय शास्त्र शुद्धि का उपाय नहीं है। वरन उसे अशुद्ध करना है। इतना ही नहीं तो मंदकेंद्र या अयन संपात से गिने जाने वाले (३०) या (१३° २०′) अंशों के विभागों को आकृति विशिष्ट न होते हुए भी मेष वृषभादि राशि के या चित्रा नक्षत्र के आकृति वाले पौर्णिमा युक्त नक्षत्र के बिना ही चैत्रादि मासों के अनन्वर्थक नाम कहना भ्रांति किंवा शास्त्र का छल करना है।

यह शास्त्र शुद्धि की ओट में भ्रांति किंवा छल हैं।

यह तो पचांग को क्यालेंडर का रूप देना है।

२८. यदि उनको इस प्रकार करने की आवश्यकता ही प्रतीत होती होवे तो आंचिक या केंद्रीय और साम्पातिक पहिली दूसरी राशि; या पहिला दूसरा महीना व आगे तारीख वार आदि लिख कर जैसे कि और भी बहुत से केलेंडर मिलते हैं; उस प्रकार से यह भी क्यालेंडर [जंत्री] कर सकते हैं। किंतु वैदिक काल से प्रचलित शुद्ध नाक्षत्र मानके पंचांग को उक्त क्यालेंडर का रूप देने की व राशि नक्षत्र तारा का पुंजों के नामों को उपयोग में लाने की फूट फैलाने के अतिरिक्त आवश्यकता ही क्या है। ऐसे निष्कारण कार्यों को खडाकर के आपस में अनैक्यता (फूट) क्यों फैलाते हैं। इस तरह प्रचलित प्राचीन प्रणाली का जो यह महानुभाव लोप कर रहे हैं; सो ऐसे ही से क्या इसकी उन्नति हो सकती है ? कदापि नहीं !!

सच्चे, उन्नति के कार्य यह हैं।

२९. वस्तुतः इस ज्ञानयुग में तो तत्ववेत्ता पुरुषों का कर्तव्य है कि जिन २ आकृति विशिष्ट तारकापुंजों के नाम वैदिक काल से कैसे कैसे किस अर्थ में किस हेतु बदलते आए हैं। उनके संबंध के वर्णन से कौन २ ऐतिहासिक बातों का पता लगता है। इसकी खोज करनी चाहिये कि जिसकी शुद्धता उपयोगिता को देखकर संसार चकित होजाय; क्योंकि इसी के द्वारा भारत के इतिहास का हजारों ही नहीं लाखों वर्ष का पता लगकर उससे संसार का बहुत उपकार हो सकता है और ऐसा करने में इसकी उन्नति है न कि झगडे फैलाकर उसका नामशेष करने में है।

ऐसे वितंडावाद से धर्म और शास्त्र की हानि।

३०. इस प्रकार के वितंडावाद और व्यर्थ परिश्रम करने से पूर्व पुरुषों के किये हुए शोधों के ऊपर पानी तो फिर ही रहा है वरन् धर्मानुष्ठान व श्रद्धास्पदों की श्रद्धा का कतई लोप होरहा है। उसमें भी अधिक मास की भिन्नता से नितांत ही विद्रोह फैल जाता है। वैसा ही अधिक मास का योग इस (सं. १९८८ शाके १८५३) वर्ष में भी आनेवाला है। जिसके संबंध में उपरोक्त ग्रहलाघवीय पक्ष और केतकी पक्ष के पंचांगों में आषाढ अधिक होने से धर्मग्रंथोक्त मान से कोकिलाव्रत का होना है। किंतु पूना कमेटी पक्ष के पंचांग में भाद्रपद को अधिक मास बतलाया है। इससे कोकिलाव्रत का लोप होजाना संभव है इतनाही नहीं तो आषाढी, नागपंचमी, श्रावणी, जन्माष्टमी और मलमास वर्ज्य की बातों के करने में उक्त द्वैविध्य से दो तीन महीनों तक कितने ही विवाद होते ही रहेंगे।

वेध क्रिया के लोप से हानि।

३१. लेकिन वर्तमान स्थिति को देखने से पता चलता है कि–भारतीय ग्रंथों का अवलोकन करके उनके तत्वों का अन्वेषण और प्रत्यक्ष वेध लेने की क्रिया के लोप होने से ही भारत में ऐसे निष्कारण विवाद खडे हुए हैं। पाश्चात्य देशों की ओर देखिये वहां हरएक बात को प्रत्यक्ष वेध क्रिया से मिलाकर देखने की प्रणाली प्रचलित है; और वहां राष्ट्रके अंगीकृत

कर्तव्यों में से ज्योतिःशास्त्र, इतिहास और अपने धर्म की उन्नति करना आपका एक प्रधान कर्तव्य मानने से पुराण वस्तु संशोधन का कार्य दीर्घ प्रयत्न से चल रहा है। उससे उधर इतिहास, ज्योतिःशास्त्र और आकर्षण शास्त्रादि की एवं धर्म की प्रतिवर्ष उन्नति होरही है। और इधर उक्त दोनों शास्त्रों के उत्पादक भारतवर्ष में इसकी उन्नति करना तो दूर रहा " साधारण शंकु द्वारा ग्रहों की छाया छापकर-स्थूलमान से भी क्यों न हो उसके विपुवांश क्रांति के निश्चय को नहीं कर सकने वाले महानुभाव भी आकाश को और प्राचीन ग्रंथों को बिना देखे भाले ही नाटिकल का आश्रय लेकर संस्कृत ग्रंथों को गलत कहने में तनिक संकोच नहीं कर सकते हैं यह भारतीय ज्योतिःशास्त्र के उन्नति की कितनी अवहेलना है।

परावलंबित्व से सूक्ष्मता का अभाव।

३२. सूर्य का उदयास्त और याम्योत्तर लंघन काल देखे कौन ? क्योंकि टेलिग्राफ ऑफिस द्वारा स्टँडर्ड टाइम् मालुम हो ही जाता है। ग्रह गणित करे कौन ? राकेल के पंचांग से या नाटिकल आल्मनाक से ५॥ क्लाक का चालन देकर भारत के ग्रह और ग्रहों की युति आदि बातें बिना परिश्रम के मालूम हो ही जाती हैं। किंतु इस प्रकार की परावलंबी बातों से सूक्ष्मता नहीं मिल सकती है। जब आप पांच दस घडी (वॉच) को एकत्रित करके देखेंगे तो उन सब की एक टाइम नहीं मिलेगा. यानी-कम से कम दो चार दिनमें दो चार मिनिट का तो फर्क पड ही जायगा।

परावलंबन की पराकाष्ठा और हमारे कर्तव्य।

३३. इसी तरह पश्चात्य पंचांगों के ग्रहों के अन्दर परस्पर के आकर्षण संस्कार दिये हुए रहने से अयनांश घटाकर शुद्ध नाक्षत्र मान नहीं बन सकता है। अयनांश वर्षमान व पंचांग शैली को बदलने में बाएं हाथ का खेल समझनेवाले एक पंचांग में लिखे हुए ग्रह तो एक तरफ जारहे हैं किंतु नाटिकल में लिखी युतिकाल के घंटों में स्टॅ. टा. के लिये ५।३० मिलाने पर कुल युति कालादि के मिनिट ३०।३० बहाल हैं। और जहां जहां इसमें युति के १९।२० व शून्य कलाक लिखे हों तो एक तारीख बढाने की तकलीफ कौन करे ? उसी तारीख में (१२।३०) और (१।३० तथा (५।३०) के आगे " पहाटे " (प्रातःकाल) लिख दिया कि बस है। जिसका अर्थ आगे पीछे की दोनों तारीखों पर लगा सकते हैं। ऐसी बातों को देख कहना पडता है कि वेध क्रिया से शास्त्र शुद्धता लाना तो दूर रहा ऐसे पंचांगों में नाटिकल शुद्धता भी नहीं रहती है।

इस लिये भाइयो ! अब ऐसे परावलंबित्व से काम नहीं चलेगा अब तो हमें स्वावलम्बन करके सब विवादों की आलोचना समालोचना करके विवादों के कारणों को दूर कर देना चाहिये।

३४. उक्त विवादों को मिटाने के लिये अनेक प्रयत्न हुए हैं कई कमेटिया स्थापित होकर उनके द्वारा कई लेख और अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इसके संबंध में कई बडी २ सभाएं हुई; जिनमें पहिली श्रीमज्जगद्गुरु **शंकराचार्य द्वारका मठ** के सभापतित्व में (शाके १८२६) बंबई में पंचांग शोधन **महापरिषद्** आगे शाके १८३९ पूनामें **लो. तिलक महोदय** के सभापतित्वमें पंचांग शोधन **परिषद्** हुई। तथा कई छोटी सभाएं होकर अंतिम सभा श्रीमन्त **पन्त प्रतिनिधि औंध नरेश** के सभापतित्वमें शाके १८४८ में **पंचांगैक्य मंडल** द्वारा पूनामें कीगई। जिसमें तीनूं पक्ष के दो दो पंच निर्वाचित हुए थे। इसीमें केतकी पक्ष के तरफ से एक पंच मैं भी नियुक्त किया गया था.

विवाद मिटाने के लिये किये हुए प्रयत्न।

३५. इस प्रकार अनेक सज्जनों के दीर्घ प्रयत्न एवं उद्योग से बहुतसा कार्य होगया है। कई विवाद मिट गए हैं कई एक विवादों के कारण अपने स्वार्थ से संबंध रखते हैं वह अभी मिटने के हैं। जटिल प्रश्नभी धीरे धीरे सुलझ रहे हैं। क्योंकि अपने २ पक्ष के समर्थन के लिये जो खंडन मंडनात्मक लेख व सभाओं की रिपोर्ट प्रकाशित होती हैं। उनके द्वारा सत्यांश निकल रहा है। अन्यान्य विवादों के मूल कारण खुल रहे हैं। अतएव उनकी जड ऊपर आरही है।

पंचांग शोधन का बहुतसा कार्य होगया है।

३६. ऐसी अनुकूल स्थिति में उन सबको एकत्रित करके सूज्ञ पाठकों की सेवामें निवेदन करने का कार्य यह इन्दोर पंचांग प्रवर्तक कमेटी कर रही है। क्योंकि शंका कुशंका ही विवादों की जड हैं। इसीके कारण पंचांग शोधन सरीखे पवित्र कार्य में कई पक्ष पैदा होगए हैं। उनका समाधान करते हुए इस विवरण में यथावकाश सर्वसाधारण विषयों के ऊपर थोडा बहुत प्रकाश डाला गया है। कई महत्वपूर्ण विषयों को निर्णित करने के लिये तो कई प्रश्न खडे करके उनको हल कर दिया है। तो भी यह कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। क्योंकि कई ऐसे जटिल कार्य व कठिन समस्या हैं कि प्रस्तुत रिपोर्ट के दिग्दर्शन मात्र लेख से सभी पक्ष के महानुभावों का समाधान न होगा वरन वह इसे पक्षपात कहेंगे। लेकिन हमने पक्षपात बिलकुल नहीं किया है। क्योंकि यह सभा " **सत्यमेव जयते नानृतम्** " सत्य की सदाजय होती है असत्य को नहीं! इसतत्वको पूर्ण जानती है। इसलिये आगे किये जानेवाले प्रश्नों का उत्तर देने परही यह सभा अपने कार्य को पूर्ण किया समझेगी। वस्तुतः वाद प्रतिवाद होने परही सत्यासत्यका निर्णय हो सकता है। अभी तो पंचांग शोधन कार्य के हितैषी महानुभावों की सेवामें प्रस्तुत रिपोर्ट का निवेदन कर्तव्य कार्य की रूपरेषा का निदर्शन मात्र है।

इंदोर सरकारकी नियुक्त कमेटी शेष कार्य कर रही है।

पंचांग शोधन के उपयोगी और तीन ग्रंथ बने हैं।

३७. इस के सिवाय पंचांग शोधन से संबंध रखनेवाले कई महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय मैंने वेदकाल निर्णय के अन्दर विशेषतः परिभाषा प्रकरण में किया है। * जैसा कि राशिचक्र के आरंभ स्थान का निर्णय (पृ. ७०-११०) महीनों के नामों की अन्वर्थकता, नक्षत्रों की योग ताराओं के भोगशर, और महापात व संपात द्वारा आज से ३० हजार वर्ष पूर्व तक के कोष्टक १-८ तथा ३ लाख वर्ष तक की स्थिति को दर्शाने वाला कोष्टक ग्रंथ के उपसंहार में दिया है। इतनाही नहीं तो पौलिश सिद्धांतादि प्राचीन सिद्धांतों के काल तथा वेदांग ज्योतिष के कूट श्लोकों का सरलार्थ बतलाया है। ऐसे ही पंचांगों में लिखे जानेवाले युगों का निर्णय जोकि संवत् १९८१ सन १८२४ से २८ युग का कलियुग समाप्त होकर कृतयुग का आरंभ होगया ऐसा युगपरिवर्तन § नामक पुस्तक में चिरंजीव गोपीनाथशास्त्री चुलेटने सिद्ध कर दिया है। ताकि पंचांगों में कलियुगे प्रथम चरणे के स्थल में कृतयुगे कृत प्रथम चरणे लिख सकते हैं। तीसरे; अयनांश वाद के संबंध में श्रीमंत होम मिनिस्टर साहब के प्रयत्न से श्रीमान् प्रिंसिपल आपटे साहब अब्झरवेट्री उज्जैन ने कृपा करके झीटा पक्ष का समर्थन और ग्रहलाघव व चित्रापक्ष का परीक्षण किया तथा इसके उत्तर में मेरे विधान व अंतिम समाधानयुक्त पुस्तक तयार हुआ है। वह भी थोडेही दिनों में-हमारी सरकार की औदार्यतासे-छपकर प्रकाशित होकर जिज्ञासु महोदयों की सेवामें भेजा जासकता है।

सम्मेलन करना अंतिम उपाय है।

३८. हमें विश्वास है कि प्रस्तुत रिपोर्ट उक्त तीन पुस्तकों के अवलोकन से पंचांग शोधन कार्य में बाधा डालने वाले कुल विवादों का समुलोन्मूलन होजायगा, किन्तु संभव है कि कई पक्षपाती लोग इतने पर भी निश्चित सिद्धांतों को मान्य नहीं करेंगे। और इसकी बहोतसी आलोचना व समालोचना होने लगेगी। ऐसी अवस्था में सर्व सज्जन महानुभावों से मेरी अपील है कि आप दत्तचित्त होकर इस जटिल समस्या का निर्णय करालें और वह इस तरह होसकता है कि; एक महती सभा करें; उसमें सर्व पक्षीयोंके तर्फ से चुनौति होकर कार्य कारिणी एवं वाद निर्णायक मध्यस्थ मंडल की स्थापना करें। उसमें निर्वाचित मुद्दोंपर लेखी या जबानी वाद प्रतिवाद कराके मध्यस्थ मंडल द्वारा न्याय करा लेना चाहिये।

---

* 'वेदकाल निर्णय' नामक पुस्तक को **वैदिकरिसर्च** इन्दौर ने पास किया और श्रीमंत होलकर सरकार की हिन्दी साहित्य समिति के एक हजार नगद पुरस्कार व श्रीमंत सरकार के आश्रय से ही प्रकाशित किया गया है।

§ युग परिवर्तन नामक पुस्तक श्रीमान् सेठ साहब किसनलालजी गोइनका के व्यय से अकोला में छपकर एलीचपुर में प्रकाशित हुआ है। यह दोनों पुस्तक इन्दोर में हमारे पते से भी मिल सकते हैं।

इस कार्यको पूर्ण करने में नरेश और विद्वानों की सहायता चाहिये।

३९. इस प्रकार का सम्मेलन जबकि इन्दौर में ही किया जायगा तो मैं आशा करता हूं कि; यहां की विद्यानुरागी न्यायप्रिय दयालु सरकार इसे योग्य रिती से पूर्ण करने के लिये पर्याप्त सहायता प्रदान करेगी। तदनुसार अन्यान्य रियासतों से भी सहायता वांछनीय है। किंतु संपूर्ण महानुभावों ने भी इस लोक हितकारी, अत्यंत आवश्यक और पवित्र कार्य में तनु, मन धन, व विद्वात्ता के परिचय से यथा योग्य सहायता प्रदान करने का औदार्य प्रकट करना चाहिये। तथा इस रिपोर्ट के पहुंचने पर आप अपना अभिप्राय प्रकट करके उक्त कार्य करने में हमें उत्साहित करें। अथवा और जो कुछ योग्य उपाय दिखे कृपया उसकी सूचना भी देनी चाहिये।

पंचांग की उन्नति के मुख्य उपाय.

४०. संसार न्याय प्रिय है। न्यायाधीश के द्वारा संसार के बडे २ आपसी झगडे तय हो जाते हैं। उसमें भी योग्य न्याय मंडल के सामने ही सभी विवादों का यथार्थ निर्णय सुचारु रूप से होकर सत्य सत्य बातों का अन्वेषण हो सकता है। इतनाही नहीं तो उक्त सम्मेलनमें पंचांग शोधन के मूल सिद्धांतों का निश्चय हो जाने से तदनुसार आगे सिद्धांत, करण, और सारणी ग्रंथों की रचना भी कीई जासकती है कि जिसके द्वारा भारत के सभी पंचांग कारोंको गणित करने की कठिनाई न होते हुए; थोडे ही समय में सरल व सुगमता से वह स्पष्ट ग्रह और पंचांग बना सकें।

यही अत्यंत आवश्यक कर्तव्य कर्म है।

४१. ऐसा करने से ही सभी पंचांगों की एकवाक्यता हो सकती है। ऐसे ही शुद्ध पंचांग से आकाश का मेल हो सकता है। इसीके अनुसार किये हुए संकल्प सत्य ही होना चाहिये। एककालावच्छेद से किये हुए धर्मानुष्ठान का कितना प्रभाव पड सकता है यह विद्वानों से कुछ छुपा नहीं है। पंचांग का उपयोग आबाल वृद्ध सभी करते हैं। पंचांग के ही द्वारा तिथि मुहूर्तादि का निश्चय होकर विवाहादि मांगलिक कार्य किये जाते हैं। प्रश्न व जन्म पत्री आदि पंचांग से ही बनाई जाती हैं। और पंचांग के ही आश्रय से उनके फला देश कहे जाते हैं। जब कि ऐसे अत्यंतोउपयोगी पंचांगों में से (अ) पक्षके पंचांग की अष्टमी निकटकी भद्रामें १९ घडी का और रवि संक्रमण में १ दिन तक का फरक तथा (ब) पक्ष व (क) पक्ष के परस्पर नक्षत्रों में १८ घडी का व्यतीपातादि में ३६ घडी का व रवि संक्रमण में ४ दिन तक का फरक रहता है यह सब निकाल जाने से शुद्ध पंचांग प्रचार का श्रेय आपको प्राप्त होगा।

इन्दौर सरकारसे अंतिम प्रार्थना।

४२. अब मैं हमारी श्रीमन्त सरकारसे प्रार्थना करता हूं कि भारत के अत्यंत ही आवश्यक इस कार्य को आज ३० वर्ष हुए तबसे श्रीमन्त महाराजाधिराज सर तुकोजीराव महाराजा ने सुसंपन्न करने के लिये हातमें लिया है और उसी कार्य की पूर्ती के लिये इन्दौर गव्हर्नमेन्ट के द्वारा प्रस्तुत पंचांग कमेटी स्थापित की गई है कि जिसके रिपोर्ट की यह भूमिका लिखी गयी है। और यहां के पंचांग को शास्त्र शुद्ध सूक्ष्म गणित का करने के लिये सुचारु प्रयत्न हो रहा है। यह कार्य पूर्ण तभी होगा कि (१) सिद्धांत, (२) करण, और (३) सारणी ग्रंथों को तयार कराकर सर्व पक्षीयों का एक सम्मेलन कराके कलम ३९-४० में सूचित न्याय मंडल के द्वारा उक्त ग्रंथोंको पास करालें। इससे श्रीमन्त के हाथमें लिया हुआ काम एक आदर्शरूप सुसंपन्न होकर भारतके ही नहीं संसार के इतिहासमें इन्दौर स्टेट की सुकीर्ति सुवर्णाक्षरोंमे अंकित होकर अजर अमररूप से सदा कायम रहेगी। ईश्वर से भी मैं यही प्रार्थना करता हूं कि श्रीमंत महाराजाधिराज श्री यशवंतराव महाराज की सदा अभ्युदय एवं विजय हो।

भवदीय कृपाभिलाषी,
दीनानाथ शास्त्री चुलेट,
अध्यक्ष पंचांग कमेटी
इन्दौर.

तारीख ६-४-३१ ई.
यशवंतगंज घर नंबर ८८
इन्दौर.

श्री.

इन्दोर पंचांग प्रवर्तक कमेटी के रिपोर्ट की

प्रस्तावना.

पंचांग; मानव जातिमात्र के लिये अत्यन्तही उपयोगकी वस्तु है। इसी के आधार पर ठीक समय धार्मिक और व्यावहारिक सम्पूर्ण कार्य किये जाते हैं। वर्तमान में विविध प्रकार के पंचांग छपकर प्रकाशित होते रहते हैं, किंतु जिन पंचांगों का हम उपयोग करते हैं उनमें लिखे अनुसार आकाश के ग्रहनक्षत्रादि दृष्टिगोचर होते हैं या नहीं, तथा वह पंचांग के नियम के अनुसार हैं या नहीं, — ऐसे मिलान में हमारी दृष्टि होनी चाहिये। घडी (वॉच्) का उपयोग करने वाले ने घडी ठीक चल रही है या नहीं, इस बात की परीक्षा प्रतिदिन करते रहना चाहिये और जिस दूसरे काल दर्शक यंत्र से हम उसकी परीक्षा करते हैं वह किस नियम के अनुसार बना है उसका भी विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार की परीक्षा न की जाय तो निश्चय ही वर्षभर चाबी देते जाने बाद घडी में प्रातः काल के ६ बजने पर वास्तविक मध्याह्नकाल का समय दृष्टिगोचर होने का प्रसंग आ सकने की सम्भावना है! यदि नाक्षत्र काल दर्शक घडी से मिलाते जाओगे तो एक दिन का फरक पड जायगा !!

पंचांग के संबन्ध में हमारी ऐसी ही स्थिति होगई है। अज्ञान आलस्य और ग्रह गणित परिवर्तित करते रहने के रहस्यों की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण हमने गत ४०० वर्षों में आकाश की तरफ मानो बिलकुल देखा ही नहीं है। हमारा जो कुछ आधार है सो पंचांग है। जैसा कोई आकाश और पंचांग का परस्पर में बिलकुल ही संबन्ध न हो, ऐसा मानने वाले हम मंदबुद्धि या नॉटिकल आल्मनाक आदि इंग्रेजी जंत्री को ही आकाश मानने योग्य परावलंबी होगए हैं। ऐसा करने से हमारी ऐतिहासिक, धार्मिक,

नैतिक, औद्योगिक तथा व्यवहारिक कितनी ही क्षति होगई और होरही है । एवं वेधक्रिया का तो सर्वथा लोप होगया है ।

इस महत्व के विषय की ओर दूरदर्शी विद्वानों की दृष्टि नहीं पहुंची ऐसी बात भी नहीं है । वर्तमान में पंचांग शोधन के लिये सभा आदि के अच्छे २ प्रयत्न भी किये जारहे हैं किन्तु कार्यकर्ताओं में नीचे लिखे अनुसार कुछ शास्त्रीय बातों की न्यूनता प्रतीत होती है । यही कारण है कि अभी तक इस कार्य में हमें पूर्ण सफलता नहीं मिली । धर्मशास्त्र और ज्योतिः शास्त्र के कई विद्वान यद्यपि संस्कृत या अंग्रेजी भाषा में उत्तमा परीक्षा तक के धार्मिक, सिद्धान्तिक और गणित के अनेक ग्रंथ पढकर उसमें प्रवीणता सम्पादन कर लेते हैं परन्तु वह पंचांग के तिथि नक्षत्रादि पांचों अंगों के मूल तत्वों को समझने की एवं पंचांग बनाने का अल्प सामर्थ्य रखतें हैं । जो विद्वान पंचांगों को बनाते आए हैं वह धर्मशास्त्रीय और ज्योतिः शास्त्रीय शास्त्रार्थ भाग समझने में तथा दृक्प्रत्ययोपपत्ति बतलाने में बहुत ही असमर्थ देखे गये हैं ।

इस तरह के भिन्न मत के विद्वानों ने उक्त दोनों शास्त्रों के कार्य कारण सम्बन्ध को न पहिचान कर आपस में विवाद करते हुवे अपना अपना पक्ष बना लिया है । यदि किसी ने किसी प्रकार कुछ कार्य किया भी तो वह चाहे ग्रंथ हो या पंचांग, उक्त न्यूनता के कारण असंगत और अपूर्ण होता है । यदि किसी ने क्रमबद्ध पूर्ण कार्य किया भी तो उसे भिन्न पक्ष का कहकर सत्यासत्य निर्णय तक उस बात को पहुंचने नहीं दिया जाता । तथा स्थूल हो या नाटिकल की नकल हो अपने अपने पक्ष के पंचांग बनाकर बिना सुधार किये ही प्रतिवर्ष प्रकाशित करते हुवे दूसरे पक्ष को गिराने की धुन में लगे रहते हैं । इससे न तो उनकी आपस में एकवाक्यता होती है न वह पंचांग का सुधार करने पाते हैं ।

विषय द्वैत और अद्वैत वाद का सा बना दिया गया है. परन्तु ज्योतिर्गणित शास्त्र ऐसा है नहीं, दो और दो मिल कर ही चार होते हैं । किसी भी पक्ष में इसके विपरीत नहीं हो सकता ।

बडे सौभाग्य एवं आनंद की बात है कि उक्त न्यूनता को दूर करने के लिये श्रीमंत होलकर राज्य की ओर से प्रकाशित होने वाले पंचांग को अखिल भारतवर्षीयोपयोगी सूक्ष्म गणित का अद्वितीय आदर्श रूप करने के उद्देश्य से उलझन में पडे हुए इस पंचांगवाद के सत्यासत्य निर्णय को प्रकाशित करने के लिये विद्यानुरागी श्रीमंत होलकर सरकार ने "शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी" की स्थापना की है; उसी का प्रथम कार्य यह १६ सभाओं की रिपोर्ट है ।

पंचाग शोधन सभाओं के अन्यान्य रिपोर्टों के साथ इस [रिपोर्ट] की तुलना करके देखने पर आप कहेंगे कि यह केवल रिपोर्ट ही नहीं प्रत्युत ऊपर बताई हुई न्यूनता की पूर्ति करने वाला, भारत वर्ष में अद्वितीय सर्वोत्कृष्ट, तुलनात्मक पद्धति से धर्म शास्त्र और ज्योतिःशास्त्र की एकवाक्यता दिखाने वाला सिद्धान्त रूप-मौलिक ग्रंथ है।

क्योंकि हमने विवरण [रिपोर्ट] विभाग (३) के साथ—(१) शास्त्रार्थ विभाग को जोड कर इस विषय की समस्त शंकाओं का समाधान कर दिया है, तथा—(२) गणित विभाग को जोडकर सूर्य सिद्धान्त और ग्रह लाघव को चालन दिया है। उसी गणित की पद्धति से दृक्प्रत्ययुक्त ग्रहों का साधन एवं शुद्ध पंचांग बनाने का प्रकार बतला दिया है। और पंचांग गणित के उपयोगी अनेक कोष्टक--वर्ष सारिणी, दिनमान व इन्दोर के सूर्योदयास्त का स्टँडर्ड टाइम दर्शक सारणी तथा भावसारणी आदि दे दीहैं. कि दो सौ वर्ष तक चालन दिये बिना ही उक्त कोष्टकों द्वारा साधारण ज्योतिषी भी सरलता व सुगमता से सूक्ष्म गणित के शुद्ध पंचांगों को निर्माण करने में समर्थ हो सकेंगे।

यह विषय इतना उलझा पडा है कि उसको सुलझाने में हमें इस रिपोर्ट के (१६०+४०) =२०० पृष्ठ लिखने पडे हैं। तो भी यह संक्षेप रूप है। आशा है इसका विस्तृत वर्णन भी शीघ्र ही ग्रंथ रूप में प्रकाशित होगा।

सर्व साधारण विद्वानों को भी उक्त विषय का सरलतासे थोडे से में आकलन हो इसलिये विभाग और प्रकरण डालकर प्रकरणों की संक्षिप्त सूची तथा विषयों की अनुक्रमणिका बना दी है; और वह ऐसी बनाई है कि रिपोर्ट के बिना पढे ही इस अनुक्रमणिका को पढने से ग्रंथ संक्षेप के सदृश रिपोर्टका रेखाचित्र आपको मालूम हो सकेगा।

ज्योतिष के संस्कृत पारिभाषिक शब्दों का अंग्रेजी शब्दों के उच्चार सहित शब्द कोष भी परिशिष्ट में जोड दिया है ताकि आंग्लविद्याविशारद भी इसके भावार्थ को समझ सकेंगे। अनुवाद करने में तो इसका विशेष ही उपयोग होगा। अंत में प्रस्तुत लेख को स्पष्ट बताने वाले चित्र (आकृति) व नकशे दे दिये हैं ताकि सब लोग उक्त विषय को अच्छी तरह समझ सकें।

हम समझते हैं कि भूमिका में बतलाए हुए चार प्रकार के पंचांग वादों में से दो तीन वाद तो इस रिपोर्ट से मिट जावेंगे किंतु एक अयनांश वाद नहीं मिटेगा। क्योंकि शुद्ध पंचांग के प्रचार के प्रवाह को रोककर दूसरी ओर हटा देने वाला यही बडा भारी रोडा पडा हुआ है। यद्यपि हमने वेदकालनिर्णय की परिभाषा प्रकरण में, युगपरिवर्तन के

चारों युगों के आरंभकालदर्शक कोष्टक आदि में एवं प्रस्तुत रिपोर्ट के संस्कृत पत्र के अन्दर आरंभ स्थान निर्णय में अयनांशों का प्रसंग आने पर इस विषय के ऊपर प्रकाश डाल कर इस रोडे के आधार को स्पष्ट बता दिया है।

और भी इसे स्पष्ट करने के लिये विद्वद्वर्य श्रीमन्त होम मिनिस्टर एवं डेप्यूटी प्राइम मिनिस्टर साहेब सरदार किबे महोदय ने बडे प्रयत्न और परिश्रम से श्रीमान प्रिंसिपल गोविंद सदाशिव आपटे साहब उज्जैन का और मेरा अयनांश और आरंभस्थान निर्णय इस विषय के ऊपर लेखी शास्त्रार्थ करीब २०० पृष्ठों का (१) विधान, (२) परीक्षण और (३) समाधान विभागों में तयार कराया है। वह प्रकाशित होने पर आशा है कि सभी विद्वान् लोग इसका विचार करके पक्षपात को त्याग कर संपूर्ण विवाद रूपी रोडों को उखाड कर फेक देंगे अर्थात् सत्य वस्तु के स्वीकार करने में मतैक्य संपादन कर लेंगे।

अब इस पवित्र और लोक हितकारी कार्य को हात में लेने वाले श्रीमन्त महाराजाधिराज राज राजेश्वर सवाई श्री यशवन्तराव होलकर बहादुर को शतशः धन्यवाद देता हूं कि; पूज्य पिता श्री के आरंभ किये कार्य को पूर्ण करने के लिये प्रस्तुत कमेटी की स्थापना आपकी सदिच्छा होने से ही स्थापित की गई है। इससे यह रिपोर्ट का लिखना श्रीमन्त महोदय के कृपा प्रसाद का ही फल है। इसलिये हमारी सर्वान्तर्यामी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि श्रीमन्त महाराजा साहब की सदा विजय हो और आप दीर्घायुः, सुखी एवं आनंदित रहें।

श्रीमन्त महाराजा साहब सर तुकोजीराव होलकर बहादुर तृतीय महोदय को अनेकानेक धन्यवाद देता हूं कि आपने संवत् १९६९ में स्थूलपंचांग के अतिरिक्त सूक्ष्म गणित का दूसरा पंचांग बनवाकर सूक्ष्मगणित के ही पंचांग बनवाने की आज्ञा प्रदान की। मुंबई, पूना आदि पंचांग शोधन सभाओं में स्टेट के तरफ से विद्वानों को भेजकर द्रव्य की भी बहुत सी सहायता प्रदान की तभी से वेधलेने के कार्य में अनेक ज्योतिषियों को श्रीमन्त के तरफ से सहायता मिलने लगी है। इतना ही नहीं तो प्रचलित पंचांग वाद को मिटाने के लिये आप दत्तचित्त हैं। ईश्वर कृपा से आप दीर्घायु सुखी आनंदित रहें।

श्रीमान् माननीय विद्यानुरागी राय बहादुर, वजीरुद्दौला, सिरेमलजी बापना बी. ए., बी. एस. सी, एल. एल. बी., सी. आइ. ई. कारभारी साहब महोदय को सप्रेम धन्यवाद है कि श्रीमान् ने अपने करकमल से इस कमेटी को नियुक्त करके उसके कार्य को सर्वांग पूर्ण करने के लिये सब रीति से हमें सहायता पहुंचाते रहे।

श्रीमान् माननीय विद्याप्रिय एतमतुद्दौला, रावबहादुर सरदार माधवरावजी किबे एम. ए., एम. आर. ए. एस., एफ. आर. एस. ए. होममिनिस्टर साहब महोदय को सस्नेह धन्यवाद है कि श्रीमान् ने अपने करकमल से धरातल यंत्र की स्थापना करके वेधलेने के लिये हमें तुरीययंत्र आदि यंत्र बनवा दिये हैं।

श्रीमन्त होलकर सरकार के मंत्रि मंडल को हार्दिक धन्यवाद है कि; जो बडे सुचारु रूप से इस कार्य का संचालन कर रहे हैं। उक्त कार्य को सांगोपांग पूर्ण करने के लिये हम लोगों को प्रोत्साहित करते हुए वेधक्रिया के समय स्वयं आप उपस्थित होकर हमें पूर्ण सहयोग देते रहे और दे रहे हैं।

श्रीमन्त के स्टेट प्रेस के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्रीमान् पं. हरिश्चंद्र जी शर्मा साहब को सहर्ष धन्यवाद है कि इस रिपोर्ट को अच्छे स्वरूप में शीघ्रही प्रकाशित करने में सहायता दी।

भाद्रपद संवत् १९८७
सन् १९३१

सम्पादक

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

(अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दोर)

प्रकरणों की-संक्षिप्त-सूची.

पंचांग शोधन संबन्धी-शास्त्रार्थ विभाग-१

पंचांग शोधन के मूलतत्व-गणित विभाग-२

प्रस्ताविक-विवरण विभाग-३

सूचनाः—कालम (प्यार ग्राफ) के अंकों को आदि में और रिपोर्ट के पृष्ठांकों को अंत्यमें लिखे हैं ।

सम्पादक,

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर की

—)०(—

रिपोर्ट.

विस्तृत अनुक्रमणिका.

—)०(—

पहला प्रकरण-सभा की स्थापना—पृ० १—३

दूसरा प्रकरण—पंचांग शुद्ध करने की प्रणाली और सभापतिका मंतव्य—पृ० ३—१८

के यदि सभी विभाग दृक्प्रत्यय से बनाना चाहते हैं तो (वह) आर्षसिद्धांत व धर्मशास्त्र से विरुद्ध होनेसे मुझे मान्य नहीं है ३:-केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पंचांग नहीं है ४:-इन प्रश्नों का लेखी उत्तर मिलने से (बाद में आपका (यह) प्रश्न-" मूलांकों में क्या संस्कार देना चाहिये जिससे दृक्प्रत्यय सिद्ध हो " — उपस्थित हो सकता है ?

उत्तर-१:-यहां के पंचांग में देने के लिये सूर्योदयास्त का स्टँडर्ड टाईम, दिनमान, वर्षसारणी लग्न व भावसारणी, तथा ग्रह स्पष्ट करने की पद्धति मैंने सूक्ष्म गणित से तय्यार की थी कमेटी ने उसे देना स्वीकार कर लिया है-२५, २:-इस पंचांग के सभी विभागों का गणित दृक्प्रत्यय उपपत्ति से सिद्ध रहेगा इसमें आर्षसिद्धांत व धर्मशास्त्र से क्या विरुद्ध होता है इसका प्रमाण बतलावें-२६, ३:-पंचांग आकाशीय नाटक ही नहीं वस्तुतः आकाशीय प्रतिबिंब रूप नकशा है, ४:-ग्रहण इत्यादि में क्यों न हो ? किंतु " क्या बीजसंस्कार देने से सूक्ष्मग्रह बनसकते हैं " इस प्रश्न का आपने अभीतक उत्तर नहीं दिया सो लिख देवें-२७,

भाग २

प्रश्न-५:-पंचांग शोधन का काम जगत के धर्मानुष्ठानोपयोगी होने से इस कार्य को काशी, कलकत्ता, लाहोर, दरभंगा, ग्वालियर, बडोदा, जैपुर, कानपुर व मैसूर कॉलेज के ज्योतिःशास्त्र के प्रधानाध्यापकों का अभिप्राय बुलाया जाय कि; कितनी वस्तु पंचांग में दृक्प्रत्यय से है और कितनी आर्षसिद्धान्तानुसार हैं-२८, ६:-मूलांक में क्या बीज संस्कार देना-इस संबंध में सूर्यसिद्धांतीय सूर्य को चरफल-मंदफल सूक्ष्म रीति से देकर स्पष्ट सूर्य और चंद्र में चारों फल को सूक्ष्म बनाकर स्पष्ट चंद्र से ही पंचांग साधन करना योग्य है। मूलांक में संस्कार करने की आवश्यकता नहीं ७:-विवाह, यात्रा, जातकादि के अदृष्टफला देश में सूर्यसिद्धांतोक्त ही ग्रह लेवें-३०, ८:-दिनमान, सूर्योदयास्त चंद्रादि ग्रहों के उदय अस्त, ग्रहयुति, नक्षत्र ग्रहयुति, शृंगोन्नति, ग्रहण इनमें प्रभाकर सिद्धांत से, ज्योर्गणित से या नाटिकल से चाहे जिस से संस्कार-करो सर्वथा मान्य है। -३२.

उत्तर-५:-वैदिककाल में ऋषि लोग सूर्य चंद्र के अंतर को प्रत्यक्ष देखकर सुपर्णचिति आदि ९ प्रकार के दृश्यगणित के ही पंचांग बनाते थे। अदृश्यगणित के नहीं-३३, ६:-बौधायन ऋषि ने १३ व १७ दिन के पक्षका होना कहा है; तो तिथि के ९,१० घडी के वृद्धिक्षय बिना पंद्रह दिन में दो तिथि की घटाबढी नहीं हो सकती ७:-तिथि के ५,६ घडी के घटबढकी कल्पना आर्यभट्ट के बाद स्थूलगणित के पंचांग करने के प्रचार से हुई है जैसा कि माधवार्य ने श्रुतिसम्मत सिद्धान्तों को असंभाव्य बतलाते हुए १३ व १७ दिन के पक्ष के प्रमाणों को भी अशुद्ध बताया है यह माधवार्य की ही गलती है- ३४, ८:-आर्य भट्टादि के बनाए हुए ग्रंथ आर्ष नहीं, आर्ष तत्वों का लोप करने वाले हैं। आर्ष-

सिद्धान्तों के अनुसार दृश्यगणित से बनाया हुआ हमारा सिद्धान्त प्रभाकर ग्रंथ है उसी पर से ज्यो. ती. नीलकंठ ने शुद्ध पंचांग बनाया है-३५,

भाग ३

(ज्यो. पं. त्रिपाठी का दृश्य गणित के पंचांग का स्वीकाररूप निष्कर्ष)

९:-ग्रहलाघव स्थूल होने से उसपर से पंचांग बनाना योग्य नहीं १०:-पंचांगस्थ ग्रहों में उच्च, क्रांति, मंदफल, शीघ्रफल सूक्ष्मता से लाकर स्पष्ट ग्रह रखना योग्य है। वेध से उनको मिलाता रहे. ११:-सूक्ष्म शब्द से गणित का वास्तविक मान लिया जाय *-३६.

छठ प्रकरण धर्म शास्त्रीय लेखी प्रश्नोत्तर--पृ० ३६-५४

(प्रश्न कर्ता=ध. पं. रामकृष्ण साठे शास्त्री, उत्तर-दाता वि. भू. दीनानाथ शास्त्री चुलेट)

भाग १.

प्रश्न १:-जबकि शुद्ध पंचांग की तिथि का १० घडी तक क्षय होता है तब उससे श्राद्ध आदि कार्यों में बाधा आती है-३६, २:-" शूलपाणिः ......कुतुपोग्राह्यः " इत्यादि बचनों से जो व्यवस्था हो सो करें-३७.

---

* **विशेष सूचना**—ज्यो. पं. त्रिपाठी के पत्रों को देखने से पता चलता है कि; किसी भी विषय को न तो उन्होंने समझा है, न उसके संबंध में कोई निश्चित मत दिया है और न पूर्ण विरोध किया है। केवल जो उन्होंने प्रमाण लिखे हैं वह उनके ही कथन के विरुद्ध होते हुए सूक्ष्म गणित के पंचांग की स्वीकृति दर्शाते हैं। वस्तुतः सूक्ष्म गणित से कोई भी विषय को हल नहीं कर सकने के कारण पंडितजी का प्रश्न व्यर्थ है। तथापि इनके पत्रों की विचित्र भाषा व परस्पर विरुद्ध शैली से जो बहुतसा निरर्थक भाग विरोधाभास रूप दिखता है वह उतना बिलकुल निरर्थक नहीं है। वह सिर्फ यथानुक्रम से बतलाते नहीं आया है क्योंकि इससे भी अधिक शुद्ध पंचांग के विरोध में मेरे प्रथम भाषण (रिपोर्ट पृ. २०-२१ अ, आ, ई, ऊ, ए,) में कहा गया है। और वह बडे २ विद्वानों की टीका, टिप्पणी सहित लेखों द्वारा प्रसिद्ध हो चुका है। किन्तु अभी तक किसी विद्वान से उन सबका यथार्थ उत्तर दिया नहीं गया है। इसलिये उन सबका संग्रह करके " **सभापति का संस्कृत पत्र** ,, नामक पत्र में पंचांग संबंधी कुल शंकाओं का समाधान कर दिया गया है। उसी के अंतर्गत आप के भी प्रश्नों का उत्तर आजाने से यहां वह अलग नहीं लिखा है।

संपादक

चुलेट शास्त्री.

उत्तर—१:-आपने जो निर्णयसिन्धु (पृ. २ अक्षय तृतीया निर्णय) की पंक्तियाँ उध्दृत की हैं; उसका निर्णय आपके कथन के विरुद्ध है. २:-उसी से तिथि का क्षय १० घडी का सिद्ध होता है. ३:-इसमें श्राद्ध का गौण काल १५ व मुख्य काल १० घडी का कहा है–३७. ४:-इसलिये श्राद्ध आदि कार्य में बाधा नहीं आती है क्योंकि गौण काल में श्राद्ध का होना कहा गया है जिसके प्रमाण- १ पद्मपुराण, २ नारद, ३ दीपिका, ४ स्मृत्यर्थ सार-३८, ५ दिवोदास, ६ गोविंदार्णव, ७ हेमाद्रि, ८ गोभिल, ९ अनन्त भट्ट, १० माधवार्य, ११ निर्णयामृत, १२ शूलपाणि और १३ कालादर्श--इन ग्रंथों के हैं-३९,४०. ५:- माध्याह्न से सायंकाल घटी १५ तक श्राद्ध का गौण काल है. ६:-कमला करने अंतिम निर्णय ऐसा ही किया है. ७: मध्यान्ह के पहिले विष्णु पूजन के बाद मध्यान्ह में भी श्राद्ध हो सकता है--४०. ८:-दीपिका में भी ऐसा ही लिखा है. ९:-सूर्योदय से दिनार्ध तक पूर्वान्ह में देव कार्य, दिनार्ध से सूर्यास्त तक अपरान्ह में पितृकार्य यह सामान्य काल है-४१ १०:-श्राद्ध में कुतुपादि ५ मुहूर्त कहे हैं सो १० घडी मुख्य काल है. ११:-दिनमान के तीन भाग पूर्वाह्न माध्यान्ह व अपरान्ह काल कहलाते हैं. १२:-९, १० घडी का वृद्धि क्षय धर्मशास्त्र सम्मत है-४२, १३:-और मनु कात्यायन, गोभिल, पारिजात, पराशर और लौगाक्षि के आर्ष प्रमाण से सिद्ध है. १४:-५,६ घडी का वृद्धि क्षय धर्मशास्त्र सम्मत नहीं है-४३.

भाग २.

प्रश्न—(**मुद्दा** ३ के संबंध में—) १:-निर्णयसिंधु में अक्षय तृतीया के ऊपर जो एक दो वचन दिख पडी वही.......हमारे छात्र खांबटे शास्त्रीजीने लिख दिया और हमको यह वाद सम्मत होने से हमने सही करके सभा में पेश किया (२) " कुतुबादि रोहिणांतो मुख्यः कालः । दिन द्वये तद व्याप्तौ पूर्वा " (अर्थ-कुतुप् ५ वें मुहुर्त से रोहिण ९ वें मुहूर्त तक की १० घडी मुख्य काल है । दो दिन के मुख्य काल में तिथि की व्याप्ति न हो तो पहिले दिन करना)-४४, ३:-"कुतुपादारभ्य सायंकालात्प्राक्तना नैमित्तिक श्राद्धस्यकाल:" (अर्थ = पांचवें मुहूर्त से सायंकाल के पूर्व अनैमित्तिक श्राद्धकाल कहा है.) ४:-श्राद्ध में पंचधाविभक्त अपराह्न को ही मुख्य माना है । उसके अभाव में रोहिणयुक्त कुतुप् ही मुख्य है ५:-प्रदोषादि व्रतों में भी दश घटी क्षय होने से बाधा आती है परंतु समयाभाव से लिखना इष्ट नहीं मानते-४५,

उत्तर:–१:-जब कि आपके लिखे २ रे व ९ वें कालम में १० घडी का मुख्य काल कहा गया है तब १० घडी के क्षय हुए बिना दोनों दिन में तिथि की अव्याप्ति हो नहीं सकती ! (कालम ३ में) आठ मुहूर्त का अनैमित्तिक-सामान्य-काल कहा होने से पांच मुहूर्त घट जाने पर पूर्व तिथि में श्राद्ध करना कहा है. २:-इसमें दिन द्वये अव्याप्तौ के अर्थप्राप्ति न्याय से १० घडी का क्षय सिद्ध होता है; ६ घडी का नहीं-४६,

भाग ३

प्रश्न—' आपके मत से १४ घटी से २४ तक श्राद्धकाल मुख्य माना जाता है और वह १० घटीमित होने से दिन का $\frac{1}{3}$ रूप है लेकिन इसका आधा २ काल दूसरे तीसरे भाग में जाता है इससे यह नहीं सिद्ध होता कि १० घटी का क्षय करना सम्मत है-४६, २:-जैसे सप्तमी २४ व अष्टमी १४ घटी है। पहिले दिन अपराण्ह काल में अष्टमी न होने से श्राद्ध कर सकते नहीं दूसरे दिन गौण कुतुपयुक्त रोहिण काल में भी नहीं है इसलिये अष्टमी श्राद्ध में आपत्ति आती है ३:-इसी रीति से २६, २६ त्रयोदशी के प्रदोष में दोष आता है-४७,

उत्तर— दिनत्रिभाग के इधर उधर आधा २ भाग जाने से मुख्य काल के एक देश में व्याप्ति रहती है। और प्रकारान्तर से मुख्य काल भी रहता है इन प्रमाणों से बाधा न आते १० घडी का क्षय सिद्ध होता है-४७, २:-जैसे आपके उदाहरण में घटी २०-३० के अपराह्न काल में २४ घडी बाद अपराह्न के एक देश में अष्टमी में श्राद्ध कर सकते हैं। अनैमित्तिक-दूसरे दिन १४ घडी कुतुपादि पांच मुहूर्त (८-१८ घडी) में होने से श्राद्ध कर सकते हैं ३:-इसी तरह प्रदोष में भी दोष नहीं है।

भाग ४ धर्म शास्त्रीय निर्णय।

(प्रस्ताविक) " बाण ५ वृद्धिः, रस ६ क्षयः " सत्य है या नहीं इस झगडे को पूर्ण निपटाने के लिये ६ प्रश्नों को हल करने से इसका निर्णय होजाता है वह यह हैं-४८,१:- धर्म के प्रमाण भूत कुल ग्रंथों में प्रस्तुत वचन कहा नहीं गया है-४९, २:-जबकि ६० घडी में १ तिथि के ४८ मिनिट बाद चंद्रोदय या अस्त में मध्यमान्तर होता है तब प्रत्यक्ष में ४० या ५६ मिनिट तक अंतर दिखने से स्पष्ट होजाता है कि तिथि का वृद्धिक्षय १० घडी तक दृक्प्रत्यय सिद्ध है। इसलिये ५,६ घडी वृद्धिक्षय का कथन भ्रांति मूलक है कात्यायन स्मृति से १० घडी के वृद्धिक्षय के दो प्रमाण व उदाहरण-५०, ३:-चंद्र में ५ संस्कार करने पर वह दृक्प्रत्यय शुद्ध होता है। केवल मंदफल से स्पष्ट नहीं होता ५१, ४:-चंद्रोदयास्त की घंटा मिनिटों पर से तिथि की शुद्धता की परीक्षा होसकती है-५२, ऋषि लोग प्रत्यक्ष सूक्ष्ममान को मानते थे सिर्फ आर्यभट्ट के बाद स्थूलमन का धीरे धीरे प्रवेश होते हुए गत ४०० वर्षों में बढ गया है उन प्राचीन व अर्वाचीनों के कथन-५३, इन सबका विचार करते ९,१० घडी का वृद्धिक्षय निश्चित होता है। ५,६ घडी का नहीं ५४ *

* यद्यपि इस प्रकार धर्मशास्त्रीय ग्रंथों के अनेकानेक प्रमाण देकर समझाने पर भी ध. पं. साठेशास्त्री ने न तो किसी विषय को हल किया न पुनरुक्त के सिवाय विरोध कर

सातवाँ प्रकरण—(ज्यो. ती. नीलकंठ की) प्रासंगिक अनुमति- पृ. ५४-६२

१:-म. म. सुधाकर द्विवेदी कृत ग्रहलाघव की संस्कृत टीका में लिखे सिद्धांत ग्रंथीय ग्रहों को वास्तविक समझकर दो कोष्टकों द्वारा ग्रहलाघव में स्थूलता है इस उद्देश से लिखा पत्र-५४-५६, २:-प्रचलित इन्दोर पंचांग पूर्ण ग्रहलाघवीय नहीं है क्यौंकि इसमें के दिनमान रविके उदय अस्त का स्टँडर्ड टाईम नव्य गणित के कोष्टक से बनाया गया है तब सभी पंचांग शुद्ध गणित से क्यौं न किया जाय—५७, ३:-ग्रहलाघव के गणित में सूक्ष्ममानसे बहुत अशुद्धी है-५८, ४:-पंचांग साधन सूक्ष्म वेधतुल्य गणितसे ही करना चाहिये-५९—६०, ५:-वराह मिहिर ने तिथि का वृद्धिक्षय ६ घडी तक का बताया है उसका तथा रवि चंद्र की दिन गति दर्शक कोष्टकों को बताकर पंचांग शोधन के मूल प्रश्नों का उल्लेख किया है तथा विद्याभूषण दीनानाथशास्त्री चुलेट कृत सिद्धांतप्रभाकर और प्रभाकर पंचांग के महत्व को लोकमान्य तिलक व प्रो. नाइक के अभिप्राय सह बताकर उसी के आधारपर सूक्ष्म गणित का संवत् १९८५ का यशवंत पंचांग तयार किया है सो सभा में पेश करता हूं-६१-६२. (अंतिम कालम पांचों पत्रों में का सार है.)

(अ) आठवां प्रकरण— सभापति का संस्कृत पत्र- पृ. ६३-९३ सिद्धान्त ग्रंथों का इतिहास पृ. ६३-६९

१:-हेतु=प्रस्तुत कमेटी के स्थापना का कारण शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने का है २:-ग्रहलघाव गणित के पंचांग स्थूल हैं ३:-ज्योतिः शास्त्र का मुख्य आधार वेध है क्योंकि यह दृश्य ज्योतियों का ही शास्त्र है.-६३, ४:-वेध लेने की पद्धति की उपपत्ति दृक्प्रत्यय है

सके तब मैंने "वर्तमान कल्पना (पृ. ५२) के लेखमें उनके ही कथन को पुष्ट करने वाले १-६ श्लोक लिख भेजने पर भी आपका उसपर तनिक भी ध्यान नहीं पहुंचने से मौनावलंबन किया ऐसा है तो भी जब कि कमलाकर भट्ट सदृश महा विद्वान ने दृष्ट व अदृष्ट कार्योंके लिये दृष्ट व अदृष्ट गणित को लेना " तत्व विवेक " ग्रंथ में लिखा है और आजतक किसी भी विद्वान से इसका योग्य समाधान न होकर सभी कार्यों में दृष्ट गणित के पचांगकाही उपयोग करें ऐसा सिद्ध न हुआ है इत्यादि कारण से तथा अनेक शंकाओं का समाधान करने के लिये (रि. पृ. ६३-९३ के) संस्कृत पत्र में विस्तृत रीति से योग्य निर्णय किया गया है । उसे मिलाकर इस धर्मशास्त्रीय निर्णय को पूर्ण समझें ।

संपादक,
चुलेटशास्त्री.

५:-अंतर पडजाने पर उसे दूर करने के लिये बीज संस्कार किया जाता है ६:-शक १४४२ में अन्य ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव शुद्ध था ७:-वर्तमान में ग्रहलाघव को चालन देने की आवश्यकता है ८:-अर्वाचीन सिद्धांत ग्रंथों में स्थूलता रहने का मूल कारण वेध का अभाव है ९:-प्राचीन काल में दृश्यगणित से पंचांग बनाए जाते थे उसके प्रमाण-६४, उस काल में स्पष्ट ग्रह से मध्यम निश्चित करने से स्पष्ट शुद्ध रहता था ११:-शक ४२७ तक दृश्य गणित से पंचांग बनाए जाते थे १२:-प्राचीन आर्य सिद्धांत पर से शक ४२१ में आर्यभट्ट ने ग्रंथ बनाया। शक ५५० में ब्रह्मगुप्त ने आर्य सिद्धान्त की भूल निकाली १३-:हमारे सिद्धान्त प्रभाकर की पांचों सिद्धांतों से तुलना-६५,वराहमिहिरोक्त नक्षत्रों के परिमाण सूक्ष्ममान के तुल्य हैं। सिद्धान्तोक्तमान सायनमिश्रित स्थूल हैं। इसका कोष्टक-६६, नव्य सूर्य सिद्धान्त यवननिर्मित न होकर आर्यभट्ट की रचना है १५:-ऐसा ग्रहगणित (पृ. १५५) में केतकर व दीक्षित ने कहा है १६:-उच्च तथा पातों का अन्वेषण सिद्धान्तकारों ने किया है १७:-प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के २० नाम; इनमें से १८ आर्ष ग्रंथ हैं। ऋषि प्रणीत ग्रंथों के आधार व नाम पर नव्य ग्रंथ बनाए वह आर्ष नहीं हैं-६७, १८:-इसीलिये इनके आपस में भिन्नता है। १९:-सूर्य सिद्धान्त में तो उसका कर्ता यवनाचार्य कहा है-६८, इसमें लिखे कृत युगान्त के २१६५०३० वर्षमान लेना असंभवित बात है। क्यौंकि इसीमें रवि परम क्रांति (२३° ५८' ५) शक पूर्व २१४७ वर्ष की लिखी है २०:-रोमक और वसिष्ठ सिद्धांत श्रीषेण व विष्णुचंद्र ने शक ५०० के करीब बनाए हैं २१:-उक्त बातों से स्पष्ट है कि यह आर्ष ग्रंथ नहीं हैं-६९.

(आ) पंचांग शोधन के लिये आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न-पृ.:-६९-७२

२२:-वेध द्वारा इनके गणित में कितना अंतर है सो केशव दैवज्ञ ने बताया है २३:-गणेश दैवज्ञ ने भी वेध लेकर उसे पुनः शुद्ध किया है २४:-भविष्य में इसे चालन देकर शुद्ध करते जायँ ऐसा स्वयं गणेश दैवज्ञ ने ग्रह लाघव में कहा है उसे अब ४०९ वर्ष हो गए हैं इसलिये अब चालन देना चाहिये-७०, २५:-वेध द्वारा चालन देते रहना ऐसा भास्कराचार्य ने भी कहा है. २६:-ग्रह लाघव को चालन देने से आर्षपरंपरा का लोप नहीं होता है; क्योंकि उसमें बहुत ही अंतर पड गया है. २७:-श्री बापूदेव शास्त्री आदि ने नूतन प्रणाली से पंचांग बनाए हैं-७१, २८:-लोकमान्य तिलक ने शक १८४० से २३ अयनांशों के पंचांग बनवाये हैं. २९:-महाराष्ट्रीय पंचांग मंडल में सभी पक्ष के सभासदों ने दृष्य गणित से पंचांग बनाना स्वीकृत किया है. ३०:-वर्तमान में सिद्धान्त ग्रंथ बनाने की आवश्यकता देख कर हमने " सिद्धान्त प्रभाकर " नामक ग्रंथ की रचना की है:-७२, उसीके आधारपर बनाई हुई सारणी से ज्यो. ती. नीलकंठ ने शक १८५२ का यशवंत पंचांग दृश्य गणित का बनाया है-७३.

(इ) श्रौतकाल में दृश्यगणित के पंचांग-पृ. ७३-७७,

३२:-वैदिककाल में भी दृश्यगणित के ही पंचांग बनाए जाते थे. ३३:-प्रत्यक्ष में चंद्र की स्थिति को देखकर दिन नक्षत्र का निश्चय किया जाता था:-७३, ३४:-वैदिककाल में सुपर्णचिति नामक पंचांग बनाया जाता था; इसका अन्वेषण हमने ही किया है ३५:-ग्रह नक्षत्रों को देखकर कालमापन किया जाता था. ३६:-सूर्यचंद्रान्तर से तिथि बताई जाती थी:-७४ ३७:-सूर्यचंद्रान्तर १२ अंशों का दृश्य होने पर १ तिथि होती है ३८:-अमावास्या और पौर्णिमा भी दृश्यगणित से ही निश्चित की जाती थी. ३९:-श्रौतयाग वेदकालीन वेध लेने के प्रयोग थे. ४०:-सूर्यास्तोत्तर चंद्रास्त के मुहूर्तान्तरों से भी तिथियों को निश्चित करना कहा है:-७५, ४१:-एक बार तिथिक्षय या वृद्धि होने पर ६ दिनों तक वेध नहीं लिया जाता था इससे स्पष्ट हो जाता है कि तिथि का वृद्धिक्षय १० घडी तक ही होता है. ४२:- इतने प्राचीनकाल में ऋषियों ने सूक्ष्ममान को निश्चित कर लिया था यह कितने गौरवकी बात है:-७६ ४३:-ऋषियों ने तारका पुंजोंका जैसा वर्णन किया है वह सब ठीक मिलता है. ४४:-यज्ञों में आकाश के दृश्य; भूमिपर बतलाए जाते थे क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगों की ही उस समय यज्ञ संज्ञा थी ४५:-काल मापन भी यज्ञों से किया जाता था ४६:-नक्षत्र और राशि चक्र का आरंभ स्थान अश्विनी के आरंभ से गिना जाता था ७७,

(ई) स्मार्तकाल में दृश्यगणित के पंचांग- पृ. ७७-८०

४७:-स्मार्त काल में भी दृश्यगणित से ही पंचांग साधन किया जाता था। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र तिथि, योग, कारण, चंद्रोदयास्तादि के पृथक् पृथक् प्रमाण ७०, ४८:-इस प्रकार श्रौत और स्मार्त काल में दृश्यगणित ही प्रचलित था ४९:-शक पूर्व २७५१७ वर्ष से शकारंभ तक ३१ ग्रंथ और शक ४४० तक ७ ग्रंथ ऐसे ३८ ग्रंथ बने हैं उनके नाम और वर्ष ७९, यह दृश्यगणित के प्रतिपादक हैं ५०:-उक्त आर्ष ग्रंथों के आधार पर अर्वाचीन ज्योतिष के ११ ग्रंथ कर्ता (शक ४२१-१५८० तक) हुए हैं, इनमें सिर्फ ६ वेधकर्ता थे-८०.

(उ)-शास्त्रशुद्ध पंचांग का स्वरूप और प्रणाली-पृ. ८१-८४

५१:-ज्योतिःशास्त्र शुद्ध पंचांग बनाने के और वेधक्रिया के प्रकार। सिर्फ १ मंदफल से सूर्य स्पष्ट होता है ५२: चंद्र को सूर्य, मंदोच्च, केंद्र, पातों से ५ संस्कार देने से वह स्पष्ट होता है ५३:-इस सूक्ष्म चंद्र से तिथिका वृद्धिक्षय १० घडी तक होता है-८१ ५:-छांदस गणित पद्धती से तिथि का वृद्धिक्षय १० घडी तक ही होता है ५५:-इस पद्धति का शोध

हमने लगाया है उस से वृद्धिक्षय का निर्णय करने का प्रकार और अंकों की संख्यादर्शक कोष्टक-८२, ५६:-स्मृति ग्रंथों में सत्रह दिन के पक्ष का वर्णन ५७:-इष्टि ग्रंथों में तेरह दिन के पक्ष का वर्णन ५८:-गर्गाचार्यादि के मतसे १३ दिन के पक्ष का उल्लेख ५९:-भारतीय युद्ध में १३ दिन का पक्ष आगया था ६०:-वराह मिहर ने १७ दिन का पक्ष कहा है ६१:-वर्तमान मुहूर्त ग्रंथों में भी १३ दिन का पक्ष कहा है-८३, ६२:-बोधायन ऋषि ने १३ और १७ दिन के पक्षों का होना कहा है-८४.

(ऊ)-तिथि का वृद्धिक्षय ५।६ घडी का शुद्ध है या ९।१० घडी का-पृ. ८४-८७

६३:-नौ, दश घडी के वृद्धिक्षय बिना १७ और १३ दिनों का पक्ष हो नहीं सकता इसी लिये हमने " अंक वृद्धिर्दश १० क्षयः " कहा है ६४:-सिद्धांत प्रभाकर के सूक्ष्म गणित से तिथि का ९।१० घडी का ही वृद्धिक्षय होता है ६५:-कालम ४९ में लिखे हुए आर्षग्रंथों में तिथि का वृद्धिक्षय ९, १० घडी का लिखा सूक्ष्म है । और कालम ५० में लिखे वर्तमान ग्रंथों में ५,६ घडी का लिखा स्थूल है-८४, ६६:-उक्त ९,१० परममान है इस लिये मध्यम मान से वह ७॥ घडी का आर्षग्रंथों में कहा गया है. ६७:-चंद्र को केवल एकही मंदफल संस्कार देने से वह शुद्ध नहीं होता और न उससे १३,१७ दिन का पक्ष होता है । किंतु ५ संस्कारों से शुद्ध चंद्र होता है और उसी से १३,१७ दिन का पक्ष होता है ६८:-धर्म शास्त्रीय तिथि निर्णय भी सूक्ष्मतिथि के उपलक्ष्य में कहे गये हैं ८५, ६९:-माधवार्य व कमलाकरादि को चंद्र स्पष्ट के पांच संस्कार मालूम न हो सके थे. ७०:-आर्ष ग्रंथों में दिन के दो भाग का गौण काल और तीन विभाग का मुख्य काल कहा है ७१:-कोष ग्रंथ व त्रिकाल संध्यादि कर्म में भी तीन भाग करीब १०, १० घडी के कहे गए हैं. ७२:-तिथि की दो दिन के मुख्य काल में अव्याप्ति व साम्यैकदेश व्याप्ति ९, १० घडी के वृद्धि क्षय बिना हो नहीं सकती-८६, ७३:-इस प्रकार अंक ९ वृद्धि १० दश क्षय सिद्ध होता है-८७,

(ए) शुद्ध गणित के पचांग पर आक्षेप और उनका खंडन पृ. ८७-९५

७४:-'बाण ५ वृद्धि रस ६ क्षय' संबंधी आक्षेप ७५:-बीज और संस्कार संबन्धी आक्षेप ७६:-अदृष्टार्थ संबंधी आक्षेप ८७, ७७:-उपरोक्त आक्षेपों का खंडन ७८:-बीज और संस्कार देकर ही दृक्प्रत्यय शुद्ध पंचांग की संपूर्ण कार्यों में ग्राह्यता होती है अशुद्ध की नहीं

इस विषय के प्रमाण-८८, ७९:-सूर्य फल में कालान्तर जन्य संस्कार चाहिये ८०:-चंद्रफल में बीज और संस्कार चाहिये ८१:-तिथियों को भी वेध द्वारा शुद्ध करनी चाहिये-८९, ८२:-तिथियों के लिये धर्म शास्त्रीय प्रमाण ८३:-धर्मशास्त्र ग्रंथों में तिथि वृद्धिक्षय के परममान के प्रमाण ८४:-पंचमी, दशमी, चतुर्दशी का सामान्य वृद्धिक्षय-९०, ८५:-तिथि के वृद्धिक्षय का प्रमाण दर्शक कोष्टक-९१, ८६:-इससे ९, १० घडी का वृद्धिक्षय सिद्ध होता है। ५,६ घडी का असिद्ध व अशुद्ध है-९२

(ऐ) दृक्प्रत्यय गणित का शुद्ध नाक्षत्र (निरयण) पंचांग बनाना योग्य है. पृ. ९२-९३

८७:-वेद और ज्योतिष का एक स्वरूप और अंगांगीभाव संबंध है ८८:-चौदह विद्या और १४ धर्म प्रमाण का एक स्वरूप तथा अंगांगी भाव संबंध है ८९:-इस सिद्धान्त को नहीं समझनेवाले अर्वाचीन विद्वान उक्त शास्त्रशुद्ध प्रणाली को बदलना चाहते हैं तथा धर्म और शास्त्र को अलग २ बताते हैं- ९२, ९०:-हमारे आपस में पक्ष भेद का झगडा खडा करके सायनवादी बीच में घुसना चाहते हैं ९१:-किंतु इससे भारतीय ज्योतिः शास्त्र की उन्नति नहीं होगी. इसलिये शुद्ध नाक्षत्र (निरयण) मानके पंचांग को ही प्रचलित रखना चाहिये-९३,

पंचांग शोधन के मूलतत्व=गणितविभाग २
नवाँ प्रकरण-वर्ष मान शोधन पृ. ९४-१०१

१:-प्रस्ताविक निवेदन में पंचांग शुद्ध करने की पद्धति का दिग्दर्शन-९४, २:-ग्रहोंका प्रदक्षिणा काल (भगणादिन) ही उन २ ग्रहोंका वर्षमान कहलाता है उसे शोधने की आवश्यकता ३-:पंचांग गणित में वर्ष मान को शुद्ध रखना मुख्य कार्य है ४:-वर्ष मान के संबंध में भास्कराचार्यादि का कथन व उपपत्ति निरूपण ५: ग्रहों के उच्च स्थानों की गति का अभी तक पूरा पता नहीं लगा था-९५, ६:-इसलिये मध्यम गति में उच्च गति मिलने से मन्द केन्द्रासन्न भगण कहे गए हैं-७ ८:-आगेके कोष्टक १ में इस विषय का स्पष्टीकरण किया गया है ९:-अन्यान्य ग्रहों के भगणों में केन्द्रीयमान कितना और क्यों कर है-९६, १०:-संपूर्ण भारतीय ग्रंथों में नाक्षत्रमान ही कहा गया है ११:-रामायण आदि ग्रंथों में स्थिर (तारका पुंज) नक्षत्र कहे गए हैं १२:-यदि हम नाक्षत्र मान को छोडकर केन्द्रीय या साम्पातिक मान लेवें तो आज तक का भारतीय शोध व इतिहास का लोप होकर धर्म ग्रंथ

व्यर्थ हो जायंगे-९७, (कालम ७ के अंतर्गत) सौर, आर्य, व ब्रह्म-सिद्धान्तोक्त भगणों के अंतर्गत शुद्ध केंद्रीय व नाक्षत्र परिमाण दर्शक कोष्टक भाग १ - ९८, इनके भगणों में मिश्रित भाग को अलग अलग दर्शानेवाला भाग २ - ९९, १३:-शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष के निर्णय में साम्पातिक वर्षमान का विवेचन (कोष्टक २ अ) केंद्रांतर व अयनांतर के पृथक पृथक परिमाणों की एक वाक्यता दर्शकसमीकरण (आ) कल्प और सौर वर्ष में उच्च के भगण और उच्चगति की एक वाक्यता दर्शक समीकरण-१००, [इ] सिद्धांत ग्रथोंके अयन के भगण व अयनगति की शुद्ध मान से एक वाक्यता दर्शक समीकरण [ई] वर्षमान, उच्च [केंद्र] गति व अयन गति की शुद्ध मान से एक वाक्यता दर्शक समीकरण

दसवां प्रकरण-शुद्ध निरयणमान की प्रामाण्यता और शुद्धता पृ १०१-१०६

१४:-सिद्धांत ग्रंथों के वर्षमान केंद्रासन्न हैं किंतु वह नाक्षत्रमान के उद्देश से कहे जाने के कारण नाक्षत्रमान ही मुख्य है–१०१, १५:-सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमानों से शुद्ध नाक्षत्र वर्ष और नाक्षत्र से सिद्धान्तोक्त वर्षमान साधन करने का कोष्टक नंबर ३, १६:-नाक्षत्र परिमाण का परंपरा प्रामाण्य–१०२, १७:-आकृति विशिष्ट अचल ताराओं से नाक्षत्र परिमाण शुद्ध रहते हैं १८:-गणित शास्त्र से-'नाक्षत्र सौर वर्ष शुद्ध हैं; केंद्रीय +११."९ व सायन–५०."२ वर्षमान रवि के चक्र (३६०°) भोग से ज्यादा व कम होने से–अशुद्ध हैं १९:-फक्त दिनगति आदि भूगर्भीय कार्य शुद्ध केंद्रीयमान से और ऋतु दिनमानादि भूपृष्ठीय कार्य शुद्ध सायनमान से करना योग्य है-१०३, २०:-किंतु यह चल होने के कारण इनसे दीर्घ काल का नाप ठीक नहीं हो सकता २१:-घडी (वाच्) के उदाहरण से नाक्षत्र मान की सिद्धता २२:-मध्यम सूर्य की समानता से वर्षमान को निश्चित करें स्पष्ट सूर्य से नहीं २३:-स्पष्ट सूर्य से वर्षमान भिन्न २ होते हैं। बारह राशि के १२ प्रकार के वर्षमान दर्शक कोष्टक नं. ४, २४:-इसलिये मध्यम सूर्य साधित नाक्षत्र वर्ष स्थिर व शुद्ध होता है, १०४, २५:- वराहमिहिर के कहे हुए पांचों सिद्धान्तों में सूर्य सिद्धांत सूक्ष्ममान के तुल्य है २६:-प्राचीनग्रंथोक्त युग परिमाण ५ वर्ष से बढते हुए १८०००० वर्ष तक बढते गए, २७:-नव्य सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथों से तो चारों युगों के लाखों वर्ष गिने जाने लगे-१०५, २८:-प्राचीन सूर्य सिद्धान्त के भगणों की वास्तविक (सूक्ष्म) मान से तुलना २९:-भगणों के मोटेपनको देखते उनमें कलाओंका अंतर होना स्वाभाविक बात है-१०६

ग्यारहवां प्रकरण-सूर्य सिद्धान्त में चालन-(अ)-ग्रंथोक्त से हमारे कहे हुए बीज की शुद्धता पृ. १०६-१०८

३०:-ग्रथोक्त बीज केंद्रीय भाग मिश्रित है-१०६, [कोष्टक] सूर्य सिद्धान्तोक्त शक ४२७ के क्षेपकों में बीज संस्कार और ग्रहों की शुद्ध वर्ष गति-१०७, म. पं. द्विवेदीका मत और लल्लसिद्धान्त का प्रमाण ३१:- शक ४२७ से आज तक के मध्यम ग्रह उक्त वर्षमान से शुद्ध बन सकते हैं। हजारों लाखों वर्ष के निम्न लिखित परिमाण से करें-१०८

(आ)-सिद्धान्त प्रभाकरोक्त शुद्ध मध्यम गति-पृ. १०८-१०९

३२:-सूर्य चंद्र, चंद्रोच्च, राहु, भौम, बुध, गुरु, शुक्र व शनि के शुद्ध भगण दिवस १०८, शुद्ध मध्यम गति के ध्रुवक तथा अंशात्मक दिन गति ३३:-उक्त क्षेपक व ध्रुव वर्तमानकालिक ग्रहसाधन करने की पद्धति ३४:-उक्त चालन देकर शुद्ध किये हुए सूर्य सिद्धान्त के मान प्रभाकर सिद्धान्त के तुल्य शुद्ध हैं-१०९,

---

बारहवां प्रकरण-सूर्य सिद्धान्तोक्त बीज शुद्ध मध्यम गति-पृ. १०९-११४

३५:-बुधका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति ३६:-शुक्र का भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति-११०, ३७:-रविका भगणकाल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति प्रकारान्तर से मध्यम रवि साधन ३८:-मंगलका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति-१११, ३९:-गुरुका भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति ४०:-शनि का भगण काल शोधन, शुद्ध दिन गति और उपपत्ति-११२, ४१:-चंद्र का भगण काल शोधन, शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति ४२-चंद्रोच्च का भगण काल शोधन शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति-११३, ४३:-राहुका भगण काल शोधन शुद्ध मध्यम गति और उपपत्ति ४४:-उक्त परिमाणों से दृक्प्रत्यय शुद्ध पंचांग (ग्रह) बनाने का दिग्दर्शन-११४

तेरहवां प्रकरण-ग्रह लाघव को चालन-११४-११९

१:-अन्यान्य सिद्धान्त ग्रंथों के ग्रहों की अपेक्षा ग्रहलाघव के ग्रह शुद्ध हैं-११४, २:-भारत वर्ष में अभी तक ग्रहलाघ व के ही आधार से बहुधा सर्वत्र पंचांग बनाए जाते हैं:-इसलिये ग्रह लाघव को चालन देकर शुद्ध पंचांग साधन की कृति बताते हैं,—

ग्रहलाघव के क्षेपकों में बीज संस्कार-११५, ४:-शक १४४२ आरंभ के ग्रहलाघवोक्त क्षेपक (मध्यम ग्रह) तीनों सिद्धान्तोक्त मानों से कितने शुद्ध हैं और उनकी परस्पर में शुद्ध मानसे तुलना दर्शक कोष्टक नं. १-११६, इसका अंकों द्वारा स्पष्टी करण ५:-लल्ल व भास्कराचार्य के कहे बीजों से हमारा कहा बीज बहुत स्वल्प है. ग्रंथोक्त बीज और बीज संस्कृत शुद्ध क्षेपक तथा अंशात्मक क्षेपक का कोष्टक नं. २-११७, ग्रहलाघवोक्त ध्रुवकों में चालन (बीज) ११ वर्ष के चक्रकी मध्यम गति कोष्टक नं. ३-११८, ६:-उक्त क्षेपक व ध्रुवक द्वारा ग्रहलाघव पद्धति से ही सूक्ष्म मान के मध्यम ग्रह बनाने का प्रकार ७:-प्रा. सूर्य सिद्धान्तीय शुद्ध भगण व दिन गति से भी मध्यम ग्रह बनाने का प्रकार ८:-ग्रंथोक्त साद्य व शौध्यके असकृत्कर्म के बिना वेध शुद्ध ग्रह बन नहीं सकते थे किंतु ९:-हमने तुलनात्मक पद्धति से स्थूल व सूक्ष्म दोनों प्रकार के गणित कोष्टकों द्वारा बता दिया है-११९,

---

चौदहवां प्रकरण-ग्रह लाघव से सूक्ष्म गणित के पंचांग साधन पद्धति और रवि मध्य-(अ) मध्यम गणित- पृ. ११९-१२८

१०:-मध्यम ग्रह बनाने की कृति-११९, ११:-शुद्ध मंदोच्च साधन, उच्च की चक्रगति और वर्ष गति दर्शक कोष्टक नं. ४-१२० ग्रह लाघवोक्त मंदफल की सूक्ष्म मान से तुलना दर्शक कोष्टक नं. ५-१२१, ग्रहलाघव के शीघ्र फल की सूक्ष्ममान से तुलना दर्शक कोष्टक नं. ६-१२२, शुद्ध मान के मंद कर्ण (सूर्य से ग्रहतक रेषा कार अंतर) कोष्टक नं. ७-ग्रहलाघवोक्त पातमें बीज देकर सूक्ष्म मानके पात और पात गति-कोष्टक नं. ८-१२३, ग्रहोंका कक्षा परिणति संकार कोष्टक ९, रविमध्यशर को. नं. १०-१२४, शीघ्र कर्ण (ग्रहसे पृथ्वी तक रेषाकार अंतर) कोष्टक नं, ११-१२५, पंच ताराग्रहों के दिन गति फल कोष्टक नं. १२,-१२६ चंद्र के ५ संस्कार, शर, और रवि की दिन गति व रवि बिंब कोष्टक १३,-१२७, चंद्र की दिन स्पष्ट गति, बिंब और क्षितिज लंबन कोष्टक १४,-१२८, १२:-रवि मध्य गणित (मंदफल, परिणति संस्कार+ मध्यम ग्रह = रवि मध्यग्रह) और रवि मध्यशर साधन प्रकार १३:-मंद कर्ण साधन-१२८,

---

(आ) सूक्ष्म और स्थूल मान से भूमध्य गणित-१२८-१३२.

१४:-बुध शुक्र को स्पष्ट करने की पद्धति अंतर्ग्रहोंका शीघ्र फलका समीकरण-१२९, १६:-मंगल, गुरु, शनि को स्पष्ट करनेकी पद्धति १७:-बहिर्ग्रहों के शीघ्रफल का समीकरण

१८:-कोष्ठकों द्वारा भूमध्य गणित (ग्रह स्पष्ट करने की विधि) १९:-शीघ्र कर्ण साधन २०:-भूमध्य दृश्य शर साधन २१:-ग्रहों की दिन गति साधन-१३०, २२:-चंद्र गणित = गति, तिथि, च्युति, मंदफल व परिणति संस्कार साधन, बीज और संस्कार का भेद दर्शक समीकरण (कोष्टक) २३:-ग्रहोंको दृक्प्रत्यय में लाने के लिये प्राचीन व अर्वाचीन बीज और संस्कारों की तुलना-१३१ २४:-चंद्र को दृक्प्रत्यम में लाने के लिये बीज और संस्कारों की तुलना २५:-चंद्र को स्पष्ट करने की पद्धति २६:-राहु और चंद्र शर साधन -०मुंजाल, लघुमानस व रामविनोद आदि में कहे हुए चंद्रको ५+६ प्रकार के बीज-१३२, २७:-शुद्ध चंद्र के द्वारा ग्रहण और युति आदिका साधन-१३२,

पन्द्रहवां प्रकरण कमेटीमें पास हुए-प्रमेयों के अनुसार पंचांग साधन प्रकार-पृ. १३२-१४१

२८:-इस [illegible] में शक १८५० के आरंभ के अयनांश २२°।५०'।२५" अयन गति ५०.२" वर्ष गति ३६५. २५६३७४ दिन रविपरमक्रांति २३°।२६'.८ २९: भूपृष्ठीय गणित = शुद्ध सायन सूर्य से सूक्ष्म चरपलों द्वारा ग्रहलाघवोक्त रीति से दिन मान, सूर्योदय, सूर्यास्तादि साधन करें-१३३, शुद्ध नाक्षत्र मानकी वर्ष प्रवेश सारणी-कोष्टक नं. १५, -१३४, सायन रविके द्वारा मध्याह्न काल के घटी पल-कोष्टक नं. १६,-१३५, इंदौर का दिन मान और सूर्यो दय सूर्यास्त की स्टँडर्ड टाइम का १०० वर्ष तक बिना चालन दिये उपयोग में आने वाला कोष्टक नं. १७,-१३६-१३७, इंदौर के अक्षांश [+२२°।४४'] की सुक्ष्म गणित की लग्न साधन सारणी और स्वदेशोदय-कोष्टक नं. १८,-१३८-१३९, बिनानतके सूक्ष्म गणित की दशम भाव साधन सारणी और षडवर्ग शुद्ध लग्नांश-कोष्टक नं. १९,-१४०-१४१

सोलहवां प्रकरण-स्थूल व सूक्ष्म पंचांग के संबंध में सभासदों के अभिप्राय पृ. १४२-१४६

१ प्रोफेसर गोळे साहब का अभिप्राय

१:-" जिन बातों में मैं आपसे सहमत हूं वह सब बातें मैंने गत सभा में आप (अध्यक्षय महोदय) को निवेदन कर दी थीं। अब तिथि और (स्थूल व सूक्ष्म-पक्ष के) पाक्षिक पचांग के बारे में मेंबर महाशयों ने अपने अपने मत लिख देना ठहरा था उसके

अनुसार मेरा मत यह है कि; २:-अभी कुछ दिन तक स्थूल और सूक्ष्म मान के (तिथि के) दो कालम पंचांग में दिये जांय और शास्त्रार्थ निर्णय में उनका यथा योग्य उपयोग बता दिया जाय। बाकी सब बातें कमेटी में पास किये प्रस्तावों के अनुसार हों " १४२,

२ रा. ज्यो. बालकृष्ण जोशी का अभिप्राय

१:-" सिद्धान्तरीत्या मध्यमग्रह बने बाद उसमें संस्कार करना योग्य है। शुद्धफल संस्कृत रविचंद्रों पर से पंचांग बनाना युक्त है। २:-छायातुल्य ग्रहों पर से जो जो कार्य लेना सिद्धान्तकारों ने ठहराया है वही कार्य दृक्प्रत्यय तुल्य ग्रहों से होना ठीक है किंतु वह सर्वमान्य होना चाहिये ३:-सिद्धान्त ग्रंथ को हाथ लगाना याने मूलांकों में चालन देना हमारे प्रकृति (शक्ति) के बाहर है। और ऐसा करने से उसका पठन पाठन व्यर्थ हो जायगा. वास्ते सिद्धान्त के मध्यम ग्रह में ही बीज संस्कार देकर कौंस में बता दिया जाय कि वह दृक्प्रत्यय में ठीक आजांय"-१४३

३ ज्यो. ती. नीलकंठ जोशी का अभिप्राय

(रिपोर्ट पृष्ठ ६०,६२ में) प्रस्तुत अभिप्राय बताया गया है। और त्रि. भू. चुलेट शास्त्रीकृत सिद्धान्त प्रभाकर के आधार से बनाया हुआ संवत् १९८७ के पंचांग को सभा में पेश किया उसके चैत्रशुक्ल पक्ष का नमूना १४४-१४५, प्रस्तुत पंचांग के संबंध में श्रीमन्त सरकार की तपासने बाबत आज्ञा और इस पंचांग को प्रकाशित करने की कमेटी की सिफारिश-१४६

सत्रहवां प्रकरण-सभाओं में पास हुए प्रस्तावों की रिपोर्ट पृ. १४७-१५४

दृक्प्रत्यय शुद्ध पंचांग करने के लिये श्रीमान् ऑनरेबल जनाब प्राइम् मिनिस्टर साहब ने यह कमेटी स्थापित करके अत्यन्त ही सर्वोपयोगी कार्य को हाथ में लिया इसका गौरव करते हुए (रिपोर्ट पृष्ठ २४ में लिखे प्रकार) मुद्दों का चुनाव हुआ। तदनुसार तारीख २९-९-२९ से ९-१२-२९ तक पंद्रह सभा (ता. १६-१-३० को श्रीमन्त माननीय जनाब होम मिनिस्टर साहब के समक्ष सोलहवीं सभा) होकर निम्नलिखित प्रस्ताव पास किये गए-१४७, १:-"पंचांग में जो सूर्य का उदय, अस्त और दिनमान लिखा जाता है वह सूक्ष्म चर पलों से अतिपरिश्रम के साथ अध्यक्ष द्वारा बनाया हुआ दिया जावे" १:-"पंचांग में जो लग्नसारणी और भावसारणी दी जाती है; वह सूक्ष्म चर पलादि से शाके १८५२ की

स्वयं अध्यक्षनिर्मित पत्र नंबर १६ (रिपोर्ट पृ. १३८-१४१) में उपस्थित हैं उसी को कमेटी स्वीकार करती है और सिफारिश करती है कि प्रतिवर्ष के पंचांग में यही प्रसिद्ध होती रहे "-१४८, ३:-"सूर्य चंद्रादि के ग्रहण, ग्रहों के उदय-अस्त, चंद्रशृंगोन्नति, ग्रहयुति, चतुर्थी एवं कालाष्टमी का चंद्रोदय इत्यादि कार्य सूक्ष्मपद्धति से किये जायं" ४:-"पंचांग में दिये जाने वाले तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण इन पांचों अंगों का साधन सूक्ष्मगणित के ग्रंथों से भूमध्यदृश्य होना चाहिये जिससे पंचांग की बातें दृक्प्रत्यय युक्त होसकें "-१४९, " जब कि सूक्ष्मगणित के पंचांग में तिथि का वृद्धिक्षय ९,१० घडी तक होता है तो क्या इसमें धर्मशास्त्र से बाधा आती है. " इसके संबंध का प्रस्ताव समान मत से वैसा ही रह गया तब एक सूचना पास की गई की शुद्ध गणित के पंचांग में एक कालम ग्रहलाघव के तिथि की भी दे दिया जाय "-१५०, और आगे एक तिथि का क्यालेंडर बनवा लिया जाय कि वह तारीख के अनुसार निश्चित काम देसके-१५१ सभापति का किया हुआ निर्णय, उक्त पास किये हुए प्रस्तावों के अनुसार शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मगणित का पंचांग प्रतिवर्ष प्रकाशित किया जाय १५२-१५३,

अठारहवां प्रकरण-प्रोफेसर गोळे साहब का निवेदन-
पृ. १५३-१५४

सभापति का अभिनंदन करते हुए आपने निवेदन किया कि; १"प्रत्येक शंका का समाधान करना, सब को अपना मत प्रतिपादन करने की संधि देना, उसमें एक वाक्यता करने का प्रयत्न करना इत्यादि गुणों को देखकर सभापति को मैं धन्यवाद देता हूं-१५३ २:- किंतु खेद है कि सब सभासद एक मत से रिपोर्ट पर सही न कर सके. अध्यक्षने समझाने में कोई बाकी न रखी; किन्तु बाकी के सभासदोंने न तो दिल चस्पी से उनका मत समझा और न उनके मतका जोर से विरोध करके अपना कोई निश्चित मत प्रतिपादन न कर सके:-रिपोर्ट में बताई हुई यथा योग्य निर्णित शुद्धियां का उपयोग अब आगे पंचांग में सरकार मान्य करेगी. ४:-शुद्ध और सूक्ष्म पंचांग बनाने का समस्त गणित अध्यक्ष महोदय ने अपने सुपुत्र पंडित गोपीनाथ शास्त्री की सहकारीता से स्वयं अपनी पद्धति से किया हुआ है उसमें बहुत से कोष्टक सारणी व आलेख्य ऐसे हैं कि केवल इंदौर के लिये ही नहीं बरन उसके छप जाने से वे समस्त भारत वर्ष में बहुत उपयोगी होंगे. "-१५४,

उन्नीसवां प्रकरण-कमेटी के कार्यकर्त्ताओं का अभिनन्दन
पृ. १५४-१५६

१:-श्रीमंत महाराजा होलकर की कृपा दृष्टि पंचांग शोधन की ओर हुई है इसके लिये कमेटी माननीय होलकर सरकार को शतशः धन्यवाद देती है २:-कमेटी के आरंभ से

अंतिम पत्र तक ज्योतिर्भूषण पंडित गोपीनाथ शास्त्री चुलेट ने सेक्रेटरी के भांति सुचारु रूप से काम किया इसलिये आपको धन्यवाद ३:-कमेटी को आवश्यक सामान आदि दिला देना वगैरे मदत रा. रा श्रीयुत सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब रि॰ ए. व चारिटेबल ने की इसलिये; आपको धन्यवाद ४:-कमेटी को गणित विषय में सहायता देना, नाटिकल आल्मनाक व चेंबर्स टेबल आदि से जांच करके योग्य सलाह देने आदि कार्य श्रीयुक्त प्रो. गोळे साहब ने किये हैं (यदि आप इस कमेटी में नियुक्त न होते तो मैं अकेला ऐसे सभासद महानुवों के साथ जो कि उनके लेखी पत्रों पर से ज्ञात हो सकता है इतने महत्व के काम को पूर्ण नहीं कर सकता था.) इसलिये आपको धन्यवाद ५:-ज्योतिष संबंध के दुराग्रह को त्याग कर सूक्ष्मगणित की बातों को मान्य करने का कार्य ज्यो. पं. त्रिपाठीजी ने, रा. ज्यो. बालकृष्ण जोशी ने और ध. पं. साठे शास्त्री ने तथा हमारे सिद्धान्त प्रभाकर के आधार से एक सूक्ष्मगणित का पंचांग बनाकर देने का कार्य ज्यो. तीं. नीलकंठ जोशी ने, कमेटी को लेखन आदि कार्य में मदत पं. मूलचंन्दजी मऊ निवासी ने,और पं. हरीराम शर्मा ने की है तथा सभाओं की संक्षिप्त रिपोर्ट की हिन्दी भाषा संशोधन पं. शिवसेवकजी तिवारी ने की है इसलिये उक्त महोदयों को धन्यवाद है १५५-१५६

बीसवां प्रकरण श्रीमंत होलकर सरकार को सभापतिका निवेदन-प. १५७-१६०

१:-श्रीमंत होलकर राज्य की विशेषताएं समस्त जगत में प्रसिद्ध हैं उसी तरह यहाँ शुद्ध पंचांग का होना भी एक विशेषता है आगे वेधशाला आदि स्थापन कर ज्योतिष के अदभुत शोधों से आपकी कीर्ति सदा वृद्धिंगत होती रहेगी-१५७, २:-इस राज्य से प्रसिद्ध होने वाला पंचांग ग्रहलाघव से बनता है उस ग्रंथ को बने ४०९ वर्ष होनसे उसके गणित में अंतर पडने लग गया है उसको दूर करने के लिये हमने पंद्रह सभाकर के पांच प्रस्ताव पास किये हैं और सूर्य सिद्धांत व ग्रहलाघव को चालन देकर शुद्ध गणित के कोष्टकों द्वारा शुद्ध पंचांग बनाने की पद्धति बताई है-१५८, ३:-उसके द्वारा साधारण ज्योतिषी भी शुद्ध पंचांग बना सकता है-१५९, ४:-किंतु इस पंचांग वाद को पूरा पूरा मिटाने के लिये १:-सिद्धांत २:-करण-और ३:-सारणी-ग्रथों की अत्यंत आवश्यकता है यदि ये बनवालिये जायं तो यहां का पंचांग और समस्त भारत वर्ष के पंचांग-शुद्ध गणित के बन जाने से आप की कीर्ति दिगंत विख्यात होगी-१६०

परिशिष्ट नंबर १

पारिभाषिक शब्दोंका अंग्रेजी अनुवाद.

लेखकः—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

अग्रा	Sine of amplitude of a rising or setting body (साइन ऑफ एमप्लीटयूड ऑफ ए राइझिंग आर सेटिंग बॉडी)
अंकगणित	Arithmetic (अरिथमेटिक)
अदर्शन	Immersion (इमरशन)
अधिमास, अधिकमास	Intercalary month (इन्टरकलरी मंथ)
अनन्त कृत्यें	Indeterminate equations (इनडिटर मिनेट इक्केशन्स)
अयन चलन	Precession of the equinoxes (प्रिसेशन ऑफ दि इकिनॉक्सेस)
अयन संधि	Solstitial point (सॉल्स्टिशल पॉइन्ट)
अयन सूत्र	Solstitial colure (सॉल्स्टिशल कोल्यूर)
अस्त	Setting, heliacal Setting (सेटिंग, हेलियाकल सेटिंग)
अस्फुट क्रांति	Mean declination (मीन डिक्लिनेशन)
अस्फुट शर	Mean latitude (मीन लॅटिटयूड)
अहोरात्रवृत्त	Diurnal circle (डयुरनल सर्कल)
इनांतर	Elongation (एलॉन्गेशन)
उच्च	Aphelion or the higher apsis of an orbit (ऑफिलायन आर दी हायर ॲप्सिस ऑफ एन आरबिट)
चंद्रोच्च	Apogee or the higher apsis of the moon's orbit (अपोजी आर दी हायर ॲप्सिस ऑफ दी मून्स ऑरबिट)
उत्तर	North point of the horizon (नार्थ पाइंट ऑफ दी होराईझन)
उत्तर ध्रुव	North pole (नार्थ पोल)
उत्तर, दक्षिणबिंदु	Poles of a circle (पोल्स ऑफ ए सर्कल)
उदय	Rising, heliacal rising (राइझिंग, हेलियाकल राइझिंग)
(कालांशात्मक) उदयांतर+मंदफल	Equation of time (इक्केशन ऑफ टाईम)
उन्नतांश	Altitude (ऑल्टिटयूड)
उन्मण्डल	Six o'clock circle (सिक्स ओक्लाक सर्कल)
उपकरण	Argument (ऑरग्युमेंट)
कक्षा	Orbit (ऑरबिट)

कक्षाकेन्द्रच्युति   Eccentricity of an orbit (एक्सेन्ट्रिसिटी ऑफ एन ऑरबिट)
कदंब   Pole of the ecliptic (पोल ऑफ दी एक्लिप्टिक्)
कर्ण   Hypoteneuse, radius vector (हायपोटेन्यूस, रेडिअस व्हेक्टर)
मंदकर्ण   Radius vector (रेडिअस व्हेक्टर)
शीघ्रकर्ण   Distance of a planet from the earth (डिस्टन्स ऑफ ए प्लॅनेट फ्राम दी अर्थ)
कुट्टक गणित   Indeterminate equation of the first degree (इन्डिटरमिनेट इक्केशन ऑफ दी फर्स्ट डिग्री)
केतू   Descending node of the moon's orbit (डिसेन्डिंग ऑफ दी मून्स आरबिट)
केन्द्र, मध्यम मंदकेन्द्र   Mean anomaly (मीन एनॉमली)
स्पष्ट मंदकेन्द्र   True anomaly (ट्रु एनॉमली)
कोटिज्या   Cosine (कोसाइन)
क्रान्ति   Declination (डिक्लिनेशन)
अस्फुट क्रान्ति   Mean declination. (मीन डिक्लिनेशन)
परम क्रान्ति   Obliquity of the ecliptic (ऑब्लिक्विटी ऑफ दी एक्लिप्टिक)
स्फुट क्रान्ति   True declination (ट्रू डिक्लिनेशन)
क्रान्ति कोटि   Polar distance (पोलर डिस्टन्स)
क्रान्ति पात   Equinoctial point, node of the equator (इक्विनाक्शल पाईंट, नोड आफ दी इक्वेटर)
क्रान्ति वृत्त   Ecliptic (एक्लिप्टिक्)
क्रान्ति सूत्र   Declination circle (डेक्लिनेशन सर्कल)
क्षितिज   Horizon (होराईझन्)
क्षेप   Latitude (लॅटिट्यूड)
क्षेप पात   Node of an orbit (नोड ऑफ ऍन आरबिट)
खग्रास ग्रहण   Total eclipse (टोटल एक्लिप्स)
खस्वतिक   Zenith (झेनिथ)
गोल   Sphere (स्फीअर)
गोल संधि   Node of an orbit (नोड ऑफ एन आर्बिट)
गोलीय त्रिकोण मिति   Spherical trigonometry (स्फेरिकल ट्रिग्नॉमेट्री)
ग्रह   Planet (प्लॅनेट)
मध्यम ग्रह   Mean heliocentric position of a planet (मीन हेलिओसेंट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लॅनेट)
मंद स्पष्ट ग्रह   True heliocentric position of a planet (ट्रू हेलिओसेंट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लॅनेट)

स्पष्ट ग्रह	Geocentric position of a planet (जॉसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लैनेट)
ग्रहण	Eclipse (ईक्लिप्स)
खग्रास ग्रहण	Total eclipse (टोटल ईक्लिप्स)
चन्द्र ग्रहण	Lunar eclipse (ल्यूनर ईक्लिप्स)
सूर्य ग्रहण	Solar eclipse (सोलर ईक्लिप्स)
ग्रहण संभव	Eclipse limits (ईक्लिप्स लिमिट्स्)
ग्रह युति	Conjunction of planets (कंजंक्शन ऑफ प्लैनेट्स)
ग्रास	Immersion, obscuration (इमर्शन ऑब्स्क्यूरेशन)
चन्द्र नीच	Perigee (परिजी)
चन्द्रोच्च	Apogee (ॲपोजी)
चाप	Arc (आर्क)
चापीय मापन	Circular measure (सर्क्यूलर मेझर)
ज्या	Chord (कार्ड)
तारतम्य	Differential coefficient (डिफरनशिअल कोइफिशंट)
त्रिकोण मिति	Trigonometry (ट्रीगॉमेट्री)
सरलरेषीय त्रिकोण मिति	Plane trigonometry (प्लेन ट्रीग्नामेट्री)
त्रिज्यावृत्त	Great circle of a sphere (ग्रेट सर्कल ऑफ ए स्फिअर)
त्रिभोन लग्न, त्रिभोन	Nonagesimal (नॉनजेसिमल)
दक्षिण	South point of the horizon (साउथ पॉइंट आफ दी होराइझन)
दक्षिण ध्रुव	South pole (साउथ पोल)
दर्शन	Emersion (एमर्शन)
दिगंश	Amplitude (ॲम्प्लिट्यूड)
दिगंशकोटि	Azimuth (ॲझिमथ)
दृङ्मंडल	Vertical circle (व्हर्टिकल सर्कल)
दृङ्मंडलस्थ लंबन	Parallax in zenith distance (पॅरलॅक्स इन झेनिथ डिस्टन्स)
द्युज्यावृत्त	Small circle of the celestial sphere parallel to the celestial equator (स्मॉल सर्कल ऑफ दी सेलेशल स्फीअर पॅरेलल टू दी सेलेशल इक्वेटर)
ध्रुव	Pole (पोल)
उत्तर ध्रुव	North pole (नार्थ पोल)
नतकालांश	Hour angle (ॲवर ॲंगल)
नतांश	Zenith distance (झेनिथ डिस्टन्स)
नति	Parallax in latitude (पॅरलॅक्स इन लॅटिट्यूड)
नीच	Perihelion of the lower apsis of an orbit (परिहेलायन आफ दी लोवर ॲप्सिस ऑफ एन आर्बिट)

चन्द्रनीच Perigee or the lower apsis of the moon's orbit (पेरिजी आर दी लोवर ॲप्सिस ऑफ दी मूनस् आरबिट)
नीचोच्च वृत्त Epicycle (एपिसायकल)
पद Quadrant (क्वाड्रंट)
परम क्रान्ति Obliquity of the ecliptic (आब्लिकिटी आफ दी एक्लिप्टिक)
परम मंद फलज्या Eccentricity (एक्सेन्ट्रिसिटी)
परम लंबन Horizontal parallax (हॉरिझोन्टल पॅरलॅक्स)
परम परित Factorial (फक्टोरिअल)
पश्चिम West point of the horizon (वेस्ट पॉईंट ऑफ दी होरायझन)
पात Node of an orbit (नोड ऑफ ॲन आरबिट)
पूर्व East point of the horizon (ईस्ट पाईंट ऑफ दी होरायझन)
प्रतिवृत्त Eccentric (एक्सेंट्रिक)
प्रपंच Function (फन्कशन)
बिंब Disc (डिस्क)
बीज गणित Algebra (ऑलजेब्रा)
भगण Revolution (रिव्होल्यूशन)
भुजज्या Sine (साईन)
भूमिति Geometry (जॉमेट्री)
गोलीय भूमिति Spherical geometry (स्फेरिकल जॉमेट्री)
सरल रेषीय भूमिति Plane geometry (प्लेन जॉमेट्री)
भूव्यास Axis or diameter of the earth (ॲक्सिस आर डायमेटर ऑफ दी अर्थ)
भेद युति Occultation (ऑकल्टेशन)
(सायन) भोग Celestial longitude (सेलेशल ल्यॉंजिटयूड)
मध्यम ग्रह Mean heliocentric position of a planet (मीन हेलिओसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लॅनेट)
मध्यम मंदकेन्द्र Mean anomaly (मीन ॲनॉमली)
मध्यम शर Heliocentric latitude (हेलिओसेन्ट्रिक ल्याटिटूड)
मंद कर्ण Redius vector (रेडिअस व्हेक्टर)
मंदकेंद्र Anomaly (ॲनॉमली)
स्पष्ट मंदकेंद्र True anomaly (ट्रू ॲनॉमली)
मंदफल Equation of the centre (इक्वेशन ऑफ दी सेंटर)
मंद स्पष्ट ग्रह True heliocentric position of a planet (ट्रू हेलिओसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लॅनेट)
मोक्ष Emersion (एमर्शन)

याम्योत्तर लग्न	Culminating point of the ecliptic (कल्मिनेटिंग पाइंट ऑफ दी एक्लिप्टिक)
याम्योत्तर वृत्त	Meridian circle (मॅरिडिअन सर्कल)
युति	Conjunction (कंजंक्शन)
ग्रह युति	Conjunction of planets (कंजंक्शन ऑफ प्लॅनेट्स्)
भेद्युति	Occultation (ऑकल्टेशन)
राहु	Ascending node of the moon's orbit (असेंडिंग नोड ऑफ दी मूनस् आर्बिट)
राशि	Zodiacal sign, quantity, function (झोडियाकल साइन् क्वान्टिटि, फंक्शन)
लग्न	Ascending point of the ecliptic (असेंडिंग पाइंट ऑफ दी एक्लिप्टिक)
लंबन	Parallax (पॅरलॅक्स)
दृङमंडलस्थलंबन	Parallax in zenith distance (पॅरलॅक्स इन झेनिथ डिस्टन्स)
परम लंबन	Horizontal parallax (होरिझॉन्टल पॅरलॅक्स)
स्पष्ट लंबन	Parallax in longitude (पॅरलॅक्स इन लॉंजिट्यूड)
लोप	Immersion (इमर्शन)
वक्रगति	Retrogression, retrograde motion (रिट्रॅग्रेशन, रिट्रॅग्रेड मोशन)
वर्गप्रकृति गणित	Indeterminate equation of the second degree इन्डिटरमाइनेट इक्वेशन ऑफ दी सेकंड डिग्री)
वसंत संपात	Ascending node of the equator, first point of aries, vernal equinox (अॅसेन्डिंग नोड ऑफ दी इक्वेटर, फर्स्ट पाइंट ऑफ दी एरीज, वर्नल इक्विनॅक्स)
वित्रिभ वित्रिभ लग्न	Nonagesimal (नॉनेजेसिमल)
विपरीत राशि	Inverse function (इनव्हर्स फंक्शन)
विमंडल	Orbit of a planet (ऑर्बिट ऑफ ए प्लॅनेट)
विषुववृत्त	Celestial equator, equinoctial (सेलेशल इक्वाटर, इक्विनॉक्स)
विषुवांश	Right ascension (राइट अस्सेन्शन)
विस्तार	Function (फंकशन)
शर अस्फुट शर	Celestial latitude (सेलेशल ल्याटिट्यूड)
मध्यम शर	Heliocentric latitude (हेलिओसेन्ट्रिक लॅटिट्यूड)
स्फुट शर	Rectified latitude (रेक्टिफाईड लॅटिट्यूड)
स्पष्ट शर	Geocentric latitude (जॅासेन्ट्रिक लॅटिट्यूड)

शारद् संपात	Descending node of the equator, first point of libra, autumnal equinox (डिसेन्डिंग नोड आफ दी इक्वेटर, फर्स्ट पॉइंट ऑफ लिब्रा ऑटम्नल इक्विनॉक्स)
शीघ्र कर्ण	Distance of a planet from the earth (डिस्टन्स ऑफ ए प्लैनेट फ्राम दी अर्थ)
शून्यलब्धि	Differential calculus (डिफ्रेन्टिअॅल कल्क्यूलस्)
शीघ्रफल	Difference between the heliocentric and geocentric position of a planet (डिफ्रेन्स बिट्विन् दी हेलिओसेंट्रिक ऍंड जेओसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लैनेट)
शृंगोन्नति	Elevation of a cusp or horn of the crescent moon (एलिव्हेशन आफ ए कस्प आर हार्न ऑफ दी क्रेस्केन्ट मून)
सम बिन्दु	North point of the horizon (नार्थ पॉइंट ऑफ दी होराइझन)
सम वृत्त	Prime vertical (प्राइम व्हर्टिकल)
संपात	Node of the equator, equinoctial point (नोड ऑफ दी इक्वाटर, इक्विनॉक्शल पॉइंट)
वसन्त सम्पात	Ascending node of the equator, first point of aries, vernal equinox (असेंडिंग नोड ऑफ दी इक्वाटर, फर्स्ट पॉइंट ऑफ एरीस, व्हर्नल इक्विनॉक्स)
सावन	Descending
नक्षत्र सावन, किंवा नाक्षत्र	Sidereal, (सॅडेरिअल)
मध्यम सावन	Mean sidereal, mean solar (मीन सॅडेरिअल, मीन सोलर)
सूर्य सावन	Solar (सोलर)
स्पष्ट सावन	True sidereal, true solar (ट्रू सॅडेरिअल ट्रू सोलर)
सूर्य ग्रहण	Solar eclipse (सोलर एक्लिप्स)
स्पष्ट ग्रह	Geocentric position of a planet (जॉसेन्ट्रिक पोझिशन ऑफ ए प्लैनेट)
स्पष्ट मंद केंद्र	True anomaly (ट्रू अनॉमली)
स्पष्ट लंबन	Parallax in longitude (पॅरलॅक्स इन लॉंजिट्यूड)
स्पष्ट शर	Geocentric latitude (जॉसेन्ट्रिक लॅटिट्यूड)
स्फुट क्रान्ति	True declination (ट्रू डेक्लिनेशन)
स्फुट शर	Rectified latitude (रेक्टिफाईड लॅटिट्यूड)



वेदार्थके कर्ता, सतयुग प्रवर्तक, विद्याभूषण

पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट, अध्यक्ष, पंचांग शोधन कमेटी, इन्दौर.

श्री.

पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर के

सभा की स्थापना.

सभा स्थापन का हेतु.

१ आजकल और शास्त्रों की भांति पंचांग संबंधी गणित शास्त्र के संबंध में भी मनमाने अनुमान किए जाते हैं। और बडे खेद के साथ यह स्वीकार भी करना पडेगा, कि आधुनिक विद्वान इस ओर कुछ उपेक्षा भी करते हैं। पुराने समय में राजाश्रय प्राप्त रहने से जो सुविधा थी वह यद्यपि इस समय प्राप्त नहीं है, तथापि यदि गणितज्ञ महानुभाव इस शास्त्र के प्राचीन वेधसिद्ध 'मूलाङ्कों' को अर्वाचीन वेध से मिलाकर ग्रह-गणित के शुद्ध मूलांक निश्चित करलें, और उसकी जांच के लिये उपपत्ति में पाश्चिमीय विद्वानों की शोध का समुचित उपयोग लेने की कृपा करें; तो मार्ग कुछ सरल हो सकता है।

२ इस ओर भारत के प्रसिद्ध विद्वानों का ध्यान कुछ वर्षों से आकर्षित हुआ और उसके अनुसार बंबई और पूना आदि नगरों में सभा आदि द्वारा कुछ काम भी किया गया परन्तु उसका प्रभाव समस्त देशपर अभीतक नहीं पडा।

३ उन्नतिशील इन्दौर राज्य से भी एक पंचांग प्रकाशित होता है। विद्यानुरागी होलकर सरकार की कुछ समय से यह आकांक्षा है कि इन्दौर से प्रकाशित होने वाला पंचांग सब प्रकार से शुद्ध और विद्वानानुमोदित हो।

४ इस उच्चाभिलाषा से होलकर राज्य के लोक प्रिय माननीय प्राइम मिनिस्टर साहब ने एक कमेटी स्थापन करने की कृपा की और उसके अनुसार विद्वान शिरोमणि माननीय होम मिनिस्टर साहब ने व्यवस्था करदी.

श्रीमंत होलकर सरकार का पत्र.

५ तदनुसार श्रीमान् होम सेक्रटरी साहब का पत्र नंबर ५,९९७, ७०० एच २८ तारीख १०-८-२९ ई. का प्रभाकर सिद्धान्त और वेदकाल निर्णय आदि ग्रंथों के संपादक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट एलीचपुर वाले मुकाम इन्दौर' की ओर प्रेषित किया गया जो थोडे में इस प्रकार है।

उद्देश.

६ 'इस रियासत में अभी जो पंचांग बनाया जाता है, उसमें किस तऱ्हा की सुधारणा अवश्य होकर वो कैसी अमल में लाई जावे। वैसेही वो लाने में क्या साधन होना' वगैरा बातों का विचार करने वास्ते निम्न लिखित महाशयों की कमेटी मुकरर की—

सभासदों की नियुक्ति

(१) प्रिंसीपाल संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर.
(२) स्टेट ज्योतिषी जो के फिल हाल पंचांग बनाते हैं.
(३) प्रोफेसर गोळे एम. ए., होलकर कालेज इन्दौर.
(४) संस्कृत महाविद्यालय में ज्योतिष और धर्मशास्त्र पढाने वाले शिक्षक.
(५) पंडित नीलकंठ मंगलजी जोशी.
(६) और इस कमेटी के सभापति 'विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

समय.

इनको मुकरर किया। और कमेटी का काम दो माह के अन्दर खतम करके इसका रिपोर्ट यहा भेज देवें.

७ इस प्रकार उक्त पंचांग शोधन कार्य करने के लिये इस कमेटी की स्थापना की गई।

सभा का स्थान व व्यवस्था.

८ इस पत्र में कमेटी का सब काम संस्कृत महा विद्यालय में होने की तजवीज की गई थी। किन्तु तारीख ३०-८-२९ को श्रीमान् होम सेक्रेटरी साहब का पत्र नंबर ६३१४, ८०० एच १५२९ आया कि "इस कार्य के लिये संस्कृत महा विद्यालय में काफी जगह और व्यवस्था नहीं है" वगैरा रा. रा. प्रिंसीपाल साहब संस्कृत महाविद्यालय इनों के तरफ से लिखा आने से कमेटी का काम श्री गोपाल मंदिर में जो के जूने राजवाडे के दक्षिण तरफ है वहां आप करेंगे। आपको इसके वास्ते जो कुछ मदत लगेगी वे देने वास्ते यहां से रा. रा. 'सुपरिन्टेन्डेन्ट साहब रि. ए. व चारिटेबल डिपार्टमेन्ट, इनों के तरफ लिखा गया है.

सभासदों को सूचना.

९ उस परसे तारीख २०-९-२९ ई. को जावक नंबर ४-८ का विज्ञप्ती पत्र पांचों सभासद महानुभावों के समीप भेजा गया कि - तारीख २५-९-२९ को पहिली सभा करके आगे प्रत्येक बुधवारको प्रतिमासमें चार अधिवेशनों में पंचांग शोधन का काम पूर्ण करके सरकारके समीप वृत्तांत (रिपोर्ट) भेज दिया जावे।

१० और तदनुसार प्रत्येक सभासद को तारीख २५-९-२९ ई. को निश्चित स्थानपर एकत्रित होने के लिये विज्ञप्ति पत्र नंबर ९ के द्वारा कष्ट दिया गया जिसे प्रत्येक महानुभावने सहर्ष स्वीकार किया। और रा. रा. होम सेक्रेटरी साहब के ओर पत्र नंबर १० द्वारा इस कामका ब्योरा भेज दिया गया।

निर्दिष्ट एक सभासद नियुक्त न हो सके।

११ इसके पश्चात् रा. रा. होम सेक्रेटरी साहब के पत्र नं. ७०४०, ७०० एच २८ तारीख २३-९-२९ इ. से ज्ञात हुआ कि इस कमेटी के एक सदस्य रा. रा. श्रीमान् प्रिंसिपाल साहब संस्कृत महा विद्यालयने 'काम की अधिकता व अस्वस्थता' के कारण इस कार्य में भाग लेनेमें लाचारी प्रगट की है और उसे माननीय श्रीमान् प्राइम मिनिस्टर साहबने स्वीकार करने की कृपा की है।

निर्दिष्ट सभासदों का संघटन।

१२ सरकार की आज्ञानुसार संस्कृत महाविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक श्रीयुत पंडित रामकृष्णजी साठे को और ज्योतिष शास्त्र के प्रधानाध्यापक श्रीयुत ज्योतिषाचार्य पंडित रामसुचित्त त्रिपाठी को इस कमेटी में काम करना था परन्तु ज्योतिषाचार्य उस समय गांव को गये थे इसलिये उनके आने तक दूसरे ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक श्रीयुत ज्योतिष तीर्थ पंडित रामकृष्णजी शास्त्री को श्रीमान् प्रिंसिपल साहबने कमेटी में भेजा इसलिये इन दो महाशयों की और पंचांग बनानेवाले श्रीयुत पंडित बालकृष्णजी ज्योतिषी की उक्त कमेटी में नियुक्ति की गई है।

एक सेक्रेटरीकी सहायता ली गई।

१३ पंचांग शोधन का काम सूक्ष्म गणित का होनेसे इस महत्व के कार्य में गणित आदिकी सहायता करने एवं प्रोसिडिंग लिखने के लिये ज्योतिर्भूषण गोपीनाथ शास्त्री चुळेट की सहायता ली गई। जो कार्यारंभ से अन्तिम रिपोर्ट लिखनेतक प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित रहने और कुल प्रोसिडिंग लिखनेका तथा गणित के अंक तयार कर देने का काम करने बद्दल नियुक्त किये गये।

पंचाग शुद्ध करने की
पद्धति
और
सभापति का मन्तव्य.

इस विषय का पत्र तारीख २९-९-२९ की दूसरी सभामें सभापतिद्वारा सुनाया गया सो पत्र—

प्रिय सभ्य महोदय जबकि माननीय श्रीमान् होम मिनिस्टर साहब का तारीख १०-८-२९ का पंचांग शोधन के लिये कमेटी स्थापित करने बाबत पत्र आनेपर तारीख २५-९-२९ ई. की पहिली सभा होनेतक हमने संवत् १९८६ शाके १८५१ वर्तमान साल के छपे हुए इस राज्य के पंचांग की जांच की; कि इसमें कहां व कितनी अशुद्धियां हैं। और उनकी शुद्धि कैसे की जा सकती है? कि यह पंचांग विद्वन्मान्य होजाय? तब

गणेश दैवज्ञ कथित शुद्धि परंपरा।

२ उक्त पंचांग के शोधन से हमें ज्ञात हुआ कि यह पंचांग 'ग्रहलाघव करण' ग्रंथ के आधारपर बनी हुई 'तिथिचिंतामणि' की सारणी से बनाया गया है। इन ग्रंथों को श्रीयुत **गणेश दैवज्ञ ने शाके** १४४२ में बनाया था और उसमें उक्त ग्रंथोंकी शुद्धता व उपयुक्तता को बतलाते हुए इस ज्योतिःशास्त्रको शुद्ध करने की प्रणाली का इस प्रकार उल्लेख किया है कि ❀ "ब्रह्माचार्य, वसिष्ठ, कश्यप आदि ऋषियोंने जो ग्रहोंकी स्थिति व गति बताई है; वह उस समय में ठीक मिलती थी। किन्तु कालांतर में जब उसमें अन्तर पड गया तब कृतयुग के अन्त में प्रसन्न हुए सूर्यके वरदान से मयासुरने (सूर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ बनाकर) उसकी शुद्धता की।

❀ "ब्रह्माचार्य वसिष्ठ कश्यप मुखैर्यत्खेट कर्मोदितं, तत्तत्कालजमेव तथ्यमथ तद्भूरिक्षणेऽभूच्छ्लथम् ॥ प्राप्यातोऽथ मयासुरः कृतयुगान्तेऽर्कात्स्फुटं तोषिता-त्तच्चास्ति स्म कलौ तु सान्तर मथा भूत्तत्र पाराशरम् ॥ १ ॥ तज्ज्ञात्वाऽऽर्यभटः खिलं बहुतिथे कालेऽकरोत्प्रस्फुटं, तत्स्वस्तं किल दुर्गसिंहमिहिराद्यैस्तन्निबद्धं स्फुटम् ॥ तच्चाभूच्छिथिलं तु जिष्णुतनये नाकारि वेधात्स्फुटं, ब्रह्मोक्त्याऽऽश्रितमेतदप्यथ बहौ काले भवत्सान्तरम् ॥ २ ॥ श्री केशवः स्फुटतरं कृतवानिह सौरार्यग्रन्थमे तदपि षष्टिमिते ६० गताऽब्दे ॥ दृष्ट्वा श्लथं किमपि तत्तनयो गणेशः स्पष्टं यथात्यकृत दृग्गणितैक्य मत्र ॥ ३ ॥ कथमपि यदि दैवात् भूरिकाले श्लथं स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दुग्रहा दृक्षयोगात् ॥ सदमलगुरुतुल्य प्राप्तबोध प्रकाशैः कथित सदुपपत्त्या **शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये** ॥ ४ ॥ (ग्र. ला. उप. सं. अ.)

३ किन्तु कलियुग में ब्रह्मी और पराशर (ऋषि) का भी ग्रह गणित जब अन्तर युक्त होगया तब आर्यभटने उसे (आर्य सिद्धांत † ग्रंथ बनाकर) ठीक करदिया। आगे जब उसमेंभी फरक पडने लगा तब दुर्गसिंह और वराह मिहिर आदिने उसे (पंच सिद्धान्तिका A आदि ग्रंथ बनाकर) सुधारा। आगे जब उसमेंभी फरक आने लगा तब ब्रह्माचार्य (ऋषि) के बतलाए हुए प्राचीन ब्रह्म सिद्धांत के संशोधित ग्रह गणित के आधारपर जिष्णु के पुत्र ब्रह्मगुप्तने (ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त B ग्रंथ बनाकर) सुधार किया।

सिद्धांत ग्रंथोंमेंभी कालांतर जन्य फर्क।

४ आगे बहुत काल बीतने पर उसमें भी अन्तर पडने लगा तब श्री केशव दैवज्ञ ने उसे सौर तथा आर्य पक्षसे मिलाकर वेधद्वारा (ग्रह कौतुक ग्रंथ बनाकर) शुद्ध कर दिया। किन्तु इस सुधार को अब [शाके १४४२ में] ६० वर्ष होजाने से उस गणित मेंभी अन्तर पडना वेधद्वारा देखकर उन [केशव दैवज्ञ] के पुत्र गणेश दैवज्ञ ने यह दृग्गणितैक्य बतलानेवाला शुद्ध गणित का यह (ग्रह लाघव व तदनुसार बना हुआ तिथि चिंतामणि) ग्रंथ बनाया है।

करण ग्रंथोंमें भी कालांतर जन्य फर्क।

५ किन्तु भविष्य में अधिक समय बीतने पर इस ग्रहलाघव के गणित मेंभी अन्तर पडना संभव है इसलिये चंद्र और ग्रहोंकी नक्षत्रों से युति, ग्रहण तथा उनके उदय अस्त काल को बारंबार देखकर गणित के मर्मज्ञ विद्वानों के स्वीकृत वेधोपलब्ध प्रमाणोंसे मिलते हुए इस ग्रह गणित को ठीक ठीक करते जावें और शुद्धि तथा केंद्र को तो बीज संस्कार देकर अवश्यही शुद्ध करें।"

गणेश दैवज्ञ की सूचना।

---

† शक ४२१ में आर्य भटने यह आर्यस्फुट सिद्धांत ग्रंथ बनाया उसमें पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है इस बात की शोध इसीने लगाई है।

A शाके ४२७ में वराह मिहिरने (१) पितामह सिद्धांत, (२) वसिष्ठ सिद्धांत, (३) रोमक सिद्धांत, (४) पौलिश सिद्धांत और (५) सूर्य सिद्धांत इन पांचों प्राचीन ग्रंथोंका संग्रह रूप पंच सिद्धांतिका नामक करण ग्रंथ और बृहत्संहिता नामका संहिता ग्रंथ बनाया है।

B शाके ५५० में ब्रह्मगुप्तने यह ग्रंथ बनाया, अब इसेही ब्रह्म सिद्धांत कहते हैं।

पंचांग शोधन में वेधका प्राधान्य ।

६ इस गणेश दैवज्ञ के कथन से स्पष्ट रीतिसे ज्ञात होता है कि; ज्योतिष यह आकाशस्थ तेजो गोल ज्योतियों को देखने का प्रत्यक्ष शास्त्र है। इसलिये रवि चंद्र आदि की गति स्थिति को प्रत्यक्ष एवं यंत्र आदि की सहायता से (वेध द्वारा) देखकर प्राचीन तंत्रोक्त गणित को शुद्ध करने की पद्धति ऋषियोंनेही अपने अपने ग्रंथोमें बताई है। उसी को सूक्ष्म करते हुए आगे विद्वानोंने **सिद्धांत ग्रंथ** बनाए, वह भी कालांतर में नए नए बनते हुए आजतक करीब १८ सिद्धांत ग्रंथ बन गए हैं। उनमें भी जब अन्तर पडने लगा तब बीज संस्कार देकर उसको शुद्ध करनेवाले कई **करण ग्रंथ** बनाए गए हैं उन्हीं ग्रंथोंमेंसे बना हुआ यह **ग्रह लाघव** करण ग्रंथ है। और इसके सिर्फ २४ वर्ष पहिले + यानी शाके १४१८ में इनके पिता केशव दैवज्ञ ने **ग्रह कौतुक** नाम का करण ग्रंथ बनाया था।

प्रत्यक्ष से फर्क का निश्चय

७ अब हमें यह देखना समुचित है कि उस समय उक्त ग्रह गणित में वास्तविक मान से कितना अंतर था और अब कितना है ? किन्तु इसके भी पहिले यह देख लेवें कि इसके संबंध में उक्त ग्रंथकारों ने क्या कहा है और अन्तर कितना बताया है ?

ग्रह लाघव के समय कितना फर्क था ?

८ इसके संबंध में केशव दैवज्ञ ने ग्रह कौतुक की स्वकृत मिताक्षरा टीका में स्पष्ट लिखा है कि--

क ब्रह्मार्यभट सौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदन्तरं - अंकतया दृश्यते। मन्दे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेस्तेच पंचभागा अधिकाः प्रत्यक्ष मन्तरं दृश्यते।

अर्थात् -- ब्रह्मसिद्धान्त, आर्यसिद्धान्त और सूर्यसिद्धान्त आदि से ग्रहों के साधन करने के अङ्कों में बहुतही अन्तर बुध और शुक्र में दिखता है। जो कि स्वच्छ आकाश में इनका नक्षत्रों के साथ तथा ग्रहों के योग में और उदय अस्त के समय में पांच अंश अधिक का अन्तर प्रत्यक्षतया, यानी यंत्रों से वेध लेने से स्पष्ट रीति से दिखता है.

ख एवं क्षेपेष्वन्तरं वर्ष भागेष्वपि अन्तर मस्ति। एवं बहुकाले वह्वन्तरं भविष्यति।

ऐसेही ग्रहों के क्षेपकों में अन्तर और ग्रहों की वर्ष गति में, अर्थात् उनके प्रदक्षिणा काल के भगण के सावन दिनों में भी अन्तर है, आगे कुछ वर्ष होजाने पर यह अंतर बहुत बढ जावेगा.

+ ग्रह कौतुक ग्रंथ का लेखन शाके १४१८ में पूर्ण हुआ लिखा है।

ग यतो ब्राह्माद्येष्वपि भगणानां सावनादीनांच बव्हन्तरं दृश्यते एवं बहुकाले बव्हन्तरं भवत्येव।

सिद्धान्त ग्रंथों में कितना फर्क था.

जब कि उपरोक्त ब्रह्मसिद्धान्त आदि सिद्धान्त ग्रंथों में कहे ग्रहों के भगणों में और भगणों के सावन दिनों में बहुत अन्तर दिखता है तब बहुत काल होने से बहुत अन्तर पडना स्वाभाविक ही है.

घ एवं बव्हन्तरं भविष्यैः सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभि र्वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि।

नये सिद्धान्त ग्रंथ बनाने की सूचना.

इसलिये ज्योतिःशास्त्र के जानने वाले याने गणित के विद्वानों ने नक्षत्रों के ताराओं के साथ ग्रहों के मेल को, ग्रहों के साथ ग्रहों के मेल (ग्रह + ग्रहयुति) को, उनके उदय अस्त के एवं याम्योत्तर लंघन काल को, ग्रह को, चंद्रशृंगोन्नति आदि ग्रहों के दृश्य चमत्कारों को देखकर वर्तमान स्थिति के गणित से उन्हें मिलाकर जो कम या ज्यादा अन्तर निश्चित होवे तदनुसार प्राचीन सिद्धान्तोक्त भगणों को कम या ज्यादा करके नया सिद्धांत ग्रंथ बनाकर उसके द्वारा ग्रहों का गणित करना चाहिये।

च यद्वा तत्कालक्षेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि।

करण ग्रंथों के सुधार की सूचना.

अथवा यह नहीं बनसके तो तात्कालिक क्षेपकों को अर्थात् आपके समय के ग्रहों के मूलाङ्कों को बनाकर उनके द्वारा ग्रहों की वर्ष गति एवं अहर्गणगति को निश्चित करके छोटे करण ग्रंथों का तो भी निर्माण करना चाहिये।

छ एवं मया परमफलस्थाने चंद्रग्रहण तिथ्यान्तात्विलोम विधिना मध्यश्चन्द्रो ज्ञातः। तत्र फलह्रास वृध्यभावात्।

ग्रहलाघव के पूर्व कितना फर्क था.

इस प्रकार मैंने परमफल के स्थान में चंद्रग्रहण की तिथि के अन्त से विलोम गणित द्वारा मध्यम चंद्र का निश्चय किया। क्योंकि उस स्थान में फल की ह्रासवृद्धि नहीं रहती। अतएव उसमें अन्तर नहीं रहता।

ज केन्द्र गोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यन्ता द्विलोमविधिना चन्द्रोच्चमाकलितं तत्र फलस्य परमन्ह्रास वृद्धित्वात्।

केंद्र गोलादि स्थान में ग्रहण के तिथ्यन्त से विलोम गणित द्वारा चंद्रोच्चे का निश्चय किया क्योंकि वहां फल की ह्रास वृद्धि पूरी (परम) रहती है।

झ तत्र चंद्रःसूर्य पक्षात्पंच कलोनो दृष्टः। उच्चं ब्रह्म पक्षात्रिसम्।

तत्र सूर्य सिद्धान्त के गणित से पांच कला कम चंद्र, उक्त प्रत्यक्ष वेध द्वारा निश्चित हुआ। और चंद्रोच्च ब्रह्मसिद्धान्त के समीप २ आजाता है।

ट सूर्यःसर्व पक्षे पीऽल्पान्तरः। स सौरो गृहीतः

किन्तु सूर्य तो सभी सिद्धान्त ग्रंथों के गणित से थोडा अन्तर वाला होने से हमने सूर्य सिद्धान्त के गणित का ग्रंथ में लिखा है।

ठ अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोग, ग्रह ग्रह योग, अस्तोदयादिभिः वर्तमान घटनामवलोक्य साधिताः। तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ यतः ब्राह्मो बुधः ब्राह्मार्य मध्ये शुक्रः। शनिः पक्षत्रयात्–पंच भागाधिको दृष्टः।

कम फर्क पडने वाले तीन पक्ष के ग्रह.

और मंगल बुध आदि ग्रहों के वर्तमान कालिक नक्षत्र ग्रहयोग, ग्रह ग्रहों की परस्पर युति, उनके उदय अस्तादि की प्रत्यक्ष घटना से ग्रहों के गणित को मिलाकर उनके मानों का निश्चय निम्न लिखितानुसार किया गया है। वहां मंगल और गुरु ब्रह्म सिद्धान्त के गणित के आसन्न मिलते हैं। बुध भी उसमें मिलता है। ब्रह्म और आर्य सिद्धान्त के गणित के मध्य में शुक्र मिलता है। और तीनों सिद्धान्तों के गणित से पांच अंश अधिक शनि दिखता है।

ड एवं वर्तमान घटना मवलोक्य लघु कर्मणा ग्रह गणित कृतम्।"

उपर्युक्त रीति से वर्तमान कालिक घटना को प्रत्यक्ष में देखकर इस लघुकर्म गणित द्वारा उक्त ग्रह गणित के मूलाङ्क निश्चित करने का गणित किया है।

९ इसी प्रकार गणेश दैवज्ञ ने भी ग्रह लाघव में ग्रह गणित के अन्तर को बतलाते हुए वास्तविक मान के दृग्गणित शुद्ध पंचांग का ही व्यवहार में उपयोग करना बताया है.

ग्रह लाघवोक्त फर्क.

"सौरोऽर्कोऽपि विधूच्च मङ्क कलिको नाक्ष्मौ गुरु स्त्वार्य जोऽसृक्षाङ्गूल कलोन् केन्द्र कमथार्येसितु भागाः शनिः॥ शौके केन्द्र मजार्य मध्य गमिति मे यानीत दृक्तुल्यतां, सिद्धैस्तैरिह पर्व धर्म नयसत् कार्यादिकं त्वा दिशेत्॥ १॥

(प्र. का. १–१६)

अर्थात्:— " सूर्य सिद्धान्त से सूर्य, चंद्रोच्च और ९ कला कम; चन्द्र आर्य सिद्धान्त से गुरू, मंगल, राहू और ९ अंश अधिक शनि, ब्रह्म सिद्धान्त से बुध केन्द्र तथा आर्य ब्रह्म सिद्धान्तों के मेल से शुक्र केन्द्र इनमें बीज संस्कार देकर दृक प्रत्यय में आने लायक बनाए हैं।"

१० इसलिये इन शुद्ध ग्रहों के बने पंचांग से—

वेध तुल्य पंचांगका धर्मानुष्ठान में उपयोग.

" पर्व ग्रहणं धर्मो यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम्। नयो नीतिः। सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतबन्ध विवाहादि। एभ्यो ग्रहेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादिभिरेवादिशेत। अयं भावः। एकादश्यादि निर्णयोऽस्मादेव तिथे कार्यः। जातकादिषु सर्वत्र ग्रहा अत्रत्या एव ग्राह्याः।

[मल्लारि भाष्य]

ग्रहणादि पर्व, यज्ञ, अनुष्ठान, एकादशी व्रत, आदि धर्म कार्य; राजा की दी हुई शिक्षा, सत्कर्म, यज्ञोपवीत, विवाह आदि मंगल कार्य, एकादशी आदि का तिथि निर्णय, जन्म पत्री, वर्षफल प्रश्न आदि फलित कार्य करना चाहिये।

११ क्योंकि वसिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियों का यह सिद्धान्त है कि

" यतो यस्मिन् यस्मिन् काले यद्यद् दृग्गणितैक्य कृत्तदेव ग्राह्यं घट मानत्वात् "

जिस जिस समय में जिस गणित के कहे प्रकार प्रत्यक्ष में ग्रह गणित के बराबर मिलते हैं वही पंचांग लेना चाहिये क्योंकि वह वास्तविक मान से शुद्ध है।

१२ इसी प्रकार तिथि चिन्तामणि में भी लिखा है कि:—

वेध तुल्य में प्राचीन संमति

" तेभ्यः स्वादग्रहणादि दृक्समामियं प्रोक्तं मया सा तिथि: ॥ ग्राह्या मंगल धर्म निर्णय विधा वेषायतो दृक्समा ॥ १ ॥ "

[ति. चिं. श्लोक १८]

अर्थात्:— " ग्रहण, युति आदि को मैंने पूर्ण तया देखकर मेरे वेध के स्वानुभव से दृक्तुल्य ग्रहों को निश्चित किया है। और उसी के आधार पर तिथि साधन किया है। इसालिये मंगलकार्य और धर्म निर्णय में यही तिथि लेना चाहिये क्योंकि यह प्रत्यक्ष में शुद्ध निश्चित होती है "।

१३ इस कथन से स्पष्ट ज्ञात होगया कि धर्म निर्णय आदि समस्त कार्यों में दृक्प्रत्यय शुद्ध पंचांग की तिथि मानी जाती है। भ्रांतिपूर्ण मत की तिथि चाहे वह किसी भी सिद्धान्त से बनाई गई हो मानी नहीं जाती थी। *

* यात्रा विवाहोत्सव जातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फल स्फुटत्वम्॥. स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुट क्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या ॥

सि. शि. प्र, ग. स्पष्टाधिकारे श्लोक १

१४ ज्योतिः शास्त्र सम्बन्धी एक लेख में जगद्गुरू शंकराचार्य द्वारका मठ ने भी कहा है कि:-

वेध तुल्य में अर्वाचीन संमति

" ज्योतिः शास्त्र महा तात्पर्यैदम्पर्यय विषयीभूतकालावयव याथात्म्य मनुभावय मानं विहित समस्त श्रौत स्मार्त क्रियाकलाप नियतकाल विभ्रमापनोद निर्भर मनुकूलीकृता शेष शेष भूत वस्तु व्यवस्थाकमपरामृष्टविपर्यय प्रतीति जननमविपर्यस्ताबाधितासंदिग्ध दृक्प्रतीति पर्याप्तमेव परि समाप्यते स्वभाव भावित सर्थत इत्यादर गोचरं भवत्येवेति

[भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ट ४०१]

" यह ज्योतिष शास्त्र शुद्ध समय को बतलाने वाला प्रत्यक्ष शास्त्र है क्योंकि इसकी एक एक बात कई रीतियों से प्रत्यक्ष हो सकती है। अतएव सम्पूर्ण श्रौत विधि और व्रत नियम विवाहादि स्मार्त कर्म यथार्थ निश्चित समय में ही करने से फलद्रूप होते हैं। इसी से सब संदेह दूर हो जाते हैं। ध्यान देकर देखने से इसकी सत्यता स्वयं सिद्ध हो जाती है। तब इसके स्वाभाविक धर्म से ही इसको संसार में आदरणीय होना ही चाहिये।

१५ वेद में भी ज्योतिः शास्त्र एवं कालमापने के संबन्ध में कहा है कि:-

वेध तुल्य लेना ही आर्ष प्रमाण है.

" स्मृतिः प्रत्यक्षमैतित्यम्। अनुमानच तुष्टयम् ॥
एतैरादित्य मण्डलम्। सर्वैरेव विधास्यते ॥ १ ॥
अणुभिश्च महद्भिश्च समारूढः प्रदृश्यते ॥
संवत्सरः प्रत्यक्षेण नाधिसत्वः प्रदृश्यते ॥ २ ॥

तैत्तिरीय आरण्यक [१०२०१,२]

अर्थात्- १- प्राचीन स्थिति के स्मरण से, २- आकाश में दूरवीक्षण त्रिककुद [तीन कांच की दूरबीन] अर्थात् नलिका, यष्टि व तुरीय यंत्रादि द्वारा प्रत्यक्ष देखने से; ३- पूर्व ग्रंथकारों की कही हुई पद्धति के ऐतिहासिक गणित से और ४- ज्योतियों की गति स्थिति के अनुमान; (इन चार साधनों) से सूर्य मण्डल का अर्थात् सूर्य के परिभ्रमण के काल का निश्चय होता है। क्योंकि ज्योतिः शास्त्र की छोटी बड़ी सब बातों से उसका वास्तविक रूप प्रत्यक्ष में दिखता है। और ऐसे ही सौर संवत्सर का भी प्रत्यक्ष देखने आदि से निर्णय हो सकता है।

वर्तमान के सिद्धान्त ग्रंथ आर्ष नहीं है.

१६ इस कथन से और ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों की उपरोक्त वेध परम्परा से, बार बार अन्तर दूर करने से स्पष्ट है, कि ऋषि प्रणीत श्रुति सम्मत प्रणाली के अनुसार अन्तर निकाल कर शुद्ध करने की पद्धति को त्यागकर; ब्रह्मगुप्त, आर्यभट और मयासुर के बनाए हुए ग्रंथों के ब्रह्म, आर्य और सूर्य, सिद्धांत नाम रखकर एवं उनको ऋषियों के बनाए हुए कहकर तथा ये सब शाके ४२१ के इधर के नए बने हुए होनेपर भी सूर्य सिद्धान्त जिसको बने आज २५,९७,०३२ वर्ष होगए ऐसा उसके गणित का गौरव करके उसके अनुसार ही पंचांग बनाकर उसके बताए हुए नित्य के सूर्योदय सूर्यास्त में एवं ग्रहण आदि में दो चार घडी का प्रत्यक्ष में अन्तर दिखते हुए भी; उसके अनुसार ही ग्रहसाधन एवं पंचांग करते रहना आर्ष ग्रंथों के नाम लेकर वेदोक्त परम्परा एवं प्राचीन ऋषियों की आज्ञा का उलंघन करके उनका अपमान करने के समान है।

सिद्धांत ग्रंथ का स्वरूप.

१७ ग्रहों की कक्षा में जो सूक्ष्म अन्तर पडता जाता है कालान्तर में उसे प्राचीन वेधसिद्ध मानों से मिलाने पर, जब वह दृष्टिगोचर होता है, तब उस अन्तर को निकालकर दृक्प्रत्यय शुद्ध ग्रंथ बनता है उसमें भी भारतीय ज्योतिर्विद; सिद्धान्त ग्रंथ उसे कहते हैं। जो श्रुति, स्मृति ग्रंथों में बताए हुए ज्योतिष के तत्वों के अनुसार बना हुआ हो, उसमें कहे हुए भगण व सावनदिन आदि से सृष्टि या कल्प के आरंभ से वर्षगण और अहर्गण के द्वारा शून्य क्षेपक से ग्रहों की स्थिति और गति सिद्ध की जाने पर वह प्रत्यक्ष में गणित करने के तुल्य मिलते हों।

करण ग्रंथ का स्वरूप.

१८ यह भी बतला देना आवश्यक है, करणग्रंथ उसे कहते हैं जो सिद्धांत आदि से बनाए हुए ग्रहों में कम या अधिक अन्तर वेध से निश्चित करके उस बीज संस्कार से ग्रहों की वास्तविक स्थिति व गति के क्षेपक व ध्रुवक युक्त; सुलभ रीति के गणित का बना हुआ हो। तब यहां विचार ने की बात है कि दृश्य चमत्कारों से दृग्गणितैक्य नहीं किया जाता तो इतने सिद्धान्त और करणग्रंथ नहीं बनाए जाते।

सूर्यसिद्धांतादि ग्रंथों की उपयुक्तता उनके निर्माण काल में विशेष थी.

१९ हां यह बात तो अवश्य कहनी चाहिये कि उक्त ग्रंथकारों ने ज्योतिःशास्त्र की बहुत कुछ प्रगति की है। और आकर्षण शास्त्र, अनेक गणित के प्रकार व सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का शोध लगाया है। ग्रंथ के अंकों को देखकर उनकी सूक्ष्मता बतलाना कुछ बडी बात नहीं है. *

---

* "वर्षेण भगण मर्कों यदि भुंक्ते किं ततो यथेष्टदिनैः ॥ अशोऽप्येवं गणयति किंन रार्वी लोष्ठ रेखाभिः ॥ ३७ ॥ कृत दिग्ग्रहणे वृत्ते रेखां पूर्वापरां यदा छाया ॥ प्रविशति सम्यक् शङ्कोः सम मण्डल गस्तदा सूर्यः ॥ ३८ ॥ पंच सिद्धान्तिका करणाध्याय. ४

किन्तु आकाश में ग्रहों को देखकर यंत्रादिकों से बेध लेकर उनकी स्थिति, गति, च्युति, उच्च, पात, फल और मंदकर्ण आदि मानों को शोध- कर उनका निश्चय करना बहुतही कठिन बात है इसलिये उनकी हम जितनी प्रशंसा करें उतनी थोडी है। किन्तु केवल उनके स्तोत्र ही गाते रहना और उनके स्वीकृत शोधन कार्य को त्याग देना योग्य नहीं है।

२० दृश्य गणित की सूक्ष्मता के लिये, ग्रंथ से निश्चित किये हुए अंकों में भी कालान्तर संस्कार दिया जाता है भारतीय ज्योतिष ग्रंथों में इसे असकृत्कर्म × कहा है। अर्थात् ग्रंथोक्त ग्रह को बार बार फल संस्कार देकर वास्तविक मान के "दृश्य ग्रह के" तुल्य सूक्ष्म करके उस शुद्ध ग्रह का उपयोग करना हमारे संपूर्ण ग्रंथों का तात्पर्य है। जैसे केशव दैवज्ञ ने कहा है कि.

दृस्य गणित के पंचांग से तिथ्यादि निर्णय के प्रमाण केशव दैवज्ञ का (१)

" यस्मिन्देशे यत्र काले येन दृग्गणितैक्य कम् ॥
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यां तिथ्यादि निर्णयम् ॥ १ ॥ "

(ग्रह कौतुक में वसिष्ठ संहिता का बचन)

" जिस स्थल में जिस काल में जिस पक्ष से लाये हुए ग्रह की दृग्गणित से एकता मिलती हो उसी ग्रह से तिथि आदि का निर्णय करें। "

२१ इस प्रकार के दृश्य गणित से स्पष्ट मालूम होता है कि जिस समय में

२ प्रमाण गणेश दैवज्ञ का.

ग्रह लाघव ग्रंथ बनाया गया था उस समय में उसके गणित के अनुसार ग्रहों की स्थिति, गति और कृति; प्राचीन ग्रंथों में बताई हुई ग्रहों की स्थिति की अपेक्षा अधिक शुद्ध थी। तौभी उसमें कुछ अन्तर होना गणेश दैवज्ञ ने स्वयं कहा है; यथा--

"पूर्वोक्ता भृगुचंद्रयोः क्षणलवाः स्पष्टा भृगो श्रोनिता ॥ द्वाभ्यां तै रुदयास्त दृष्टि समता स्या-
ल्लक्षितैषा मया ॥ २० ॥

ग्रह लाघव के समय में ही दो अंश का फर्क.

(ग्र० ला० उदयास्ताधिकार.)

× " प्राङ् मध्यमे चलफलस्य दलं प्रदद्या, त्तस्माच्च मान्दमखिलं विदधीत मध्ये. "

ग्रह लाघव (३. १०)

" दली कृताभ्यां प्रथमं फलाभ्यां ततो खिलाभ्यामस कृत्कुजस्तु ॥ नाशङ्कनीयं न चले किमित्थं यतो विचित्रा फल वासनाऽत्र ॥ ३९ ॥ " " अत्र गणित स्कंधे उपपत्तिमाने वागम प्रमाणम्। "

(सिद्धान्त शिरोमणि ग्र. ग, स्पष्टाधिकारे पृ. ७२ व गोलबन्धा धिकार.)

" यद्यपि मैने शुक्र और चंद्र के स्पष्ट कालांश लिखे हैं, किन्तु मुझे प्रत्यक्ष में उसमें दो अंश कम दिखते हैं। इसलिये इसमें दो दो अंश कम करना चाहिये।

ग्रह लाघव के बाद ज्योतिष का शोधन क्यों न हो सका.

२२ ऐसे विद्वान को धन्य है कि जिसने स्वयं अपनी बताई हुई ग्रहस्थिति में अंतर ज्ञात होने पर गलती का स्वीकार किया है। यह कितनी सच्चाई पूर्ण और उच्च विचार की बात है। ऐसे निरभिमानी ज्योतिर्विद की कही हुई बातें प्रमाणभूत क्यों न मानी जांय? किंतु हमारे दुर्भाग्य से उनके पश्चात एक भी ऐसा ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्र का ज्ञाता धुरंधर विद्वान भारत में नहीं हुआ कि जो भारतीय ज्योतिःशास्त्र का सिद्धांत ग्रंथ या करण ग्रंथ बनाकर श्रुति स्मृति प्रोक्त ज्योतिष शास्त्र का सुधार करता। क्योंकि इन ग्रंथों की आवश्यकता तो केशव दैवज्ञ ने ही (कलम ८ 'घ' और 'च' में) बता दी है।

वेधक्रिया को त्यागने से हमारे यहां ज्योतिष का अपकर्ष.

२३ किंतु साथ में यह कहना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि महाराज विक्रम और भोज के आश्रय की भांति न तो उन्हें पर्याप्त राजाश्रय ही मिला और न काल की अनुकूलता प्राप्त हुई। तब ज्योतिषी शास्त्री बिचारे क्या करते; जब उनको उदर भरण भी बडी कठिनाई के साथ करना पडता था; तब उन्हें यंत्र और ग्रंथादि वेध सामग्री के लिये द्रव्य कहां से मिलता ? फिर भी ऐसे कठिन काल में भी वे इस शास्त्र का थोडा बहुत शोधनादि कार्य तो करतेही रहे हैं। जैसे शाके १५५३ में विश्वनाथ दैवज्ञने ग्रहलाघव की टीका में 'बीज संस्कार' देकर उक्त रवि चंद्र और चंद्रोच्च की शुद्धि * बताई है।

वेध क्रिया के द्वारा पाश्चात्य देश में ज्योतिष का उत्कर्ष.

२४ उधर पाश्चात्य देशों में राजाश्रय होने से इस समय इस शास्त्र की बहुत ही उन्नति हुई है और हो रही है। एक समय वह था कि हमारे शोधन का उपयोग वे किया करते थे और अब हमें उनके शोधका उपयोग करना पडता है। जैसा कि पोलिश सिद्धान्त के रचना काल के वसन्त संपात स्थानीय तारे को ग्रीक ज्योतिषी पोलक्स कहते थे और अलेक्झांड्रिया व कान्स्टान्टनोपल के बीच के यवनपुर नाम के नगर के उज्जयिनी से रेखांशान्तर ४६.५ द्वारा पोलिशोक्तमान से अपने पंचांगों को ठीक करते थे और आज ग्रिनिविच के ७५.७ से उज्जयनी इंदौर नगर की मध्य रेखा द्वारा नाटिकल आल्मनाक नामक अंग्रेजी पंचांग से काशी निवासी महामहोपाध्याय पंडित बापूदेव शास्त्री आदि यहां काशी में शुद्ध पंचांग बनाते हैं।

---

* यह बीज संस्कार ग्रहलाघव के शोधन कार्य में आगे बताया जावेगा।

२५ इस शास्त्र के तीन विभाग माने जाते हैं।

वेद द्वारा त्रिस्कंध ज्योतिष का विकाश.

१ गणित स्कंध याने गोलीय ज्योतिष Spherical Astronomy

२ संहिता स्कंध याने प्रेरणात्मक ज्योतिष Gravitational Astronomy

३ फलित स्कंध याने द्रिव्य परिणाम ज्योतिष Physical Astronomy
Theoretical Astronomy, Celestial Mechanics.

(१) उसमें गोलीय ज्योतिष के लिये साधारण रेखा गणित के अतिरिक्त गोलिय त्रिकोण मिति, दीर्घ वर्तुलीय त्रिकोणमिति, कुट्टक, श्रेढी शून्य लब्धि, चलन कलन, व शुल्व सूत्र।

(२) प्रेरणात्मक ज्योतिष के लिये उच्च बीज गणित Higher Algebra समीकरणोपपत्ति Theory of Equations
बैजिक भूमिति Analytical Geometry
परमाणु गणित Differential Calculus
पिंड गणित Integral Calculus
परमाणु समीकरण गणित Differential Equations

(३) प्रकाश शास्त्र, आकर्षण शास्त्र, वर्ण तरंग शास्त्र, जीवनेन्द्रिय शास्त्र और विद्युन्मानस शास्त्र।

पंचांग गणित के लिये ऊंचा गणित चाहिये.

२६ उक्त तीनों विभागों को पूर्णतया समझने के लिये उक्त विषयों का ज्ञान उत्तम प्रकार का होना चाहिये इन विषयों के मूलतत्व संहिता, तंत्र, सिद्धान्त ग्रंथों में उत्तम प्रकार से वर्णन किये गये हैं; किन्तु यहां विचार करने की बात है कि एक समय वह था कि उक्त विषयों के मूलतत्वों को हमने शोधकर निश्चित किया और दूसरा आज समय यह है कि उसे हम पूरा जानते भी नहीं हैं। फिर उसकी उपपत्ति लगाकर सिद्ध करना तो दूर रहा। जिस धारा पद्धति से हम सुगमता से गणित कर सकते थे उसके स्थान में लाग्रथम्स Logarithms (घाताङ्क गणित) के कोष्टकों से हमें काम करना पडता है।

पाश्चात्यों के माफक हमें भी सूक्ष्म पंचांग बनाना चाहिये.

२७ किंतु इस समय में पाश्चात्यों ने इसे पूर्णतया हस्तगत कर लिया है। प्रेरणात्मक ज्योतिष (Gravitational Astronomy) में तो वे बहुत ही आगे बढ गये हैं। जैसे विश्व, आकाश गंगा, नक्षत्र, सूर्यग्रह, उपग्रह धूम्रकेतु, और उल्कादि पदार्थ कहां व कैसे हैं? सूर्य, ग्रह, तथा उपग्रहों का परस्पर आकर्षण शास्त्र से संबंध क्या है? कौन? किसके चारों ओर घूमता है। इन की कक्षाओं के चित्र किस प्रकार के

हैं कक्षाओं का तल किस तरफ और कैसा झुका हुवा है। उनके परस्पर अंतर व प्रदक्षिणा काल कितना है? इत्यादि अनेक प्रश्नों को हल करने में अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी आदि देशवासियों ने आजन्म परिश्रम करके उनके उत्तमोत्तम ग्रंथ लिखे हैं। और लिखते जारहे हैं।

उधर उन्नति राजाश्रय से हुई है।

२८ इन बातों को देखकर ऐसा प्रश्न होना स्वाभाविक है कि ऐसे परिवर्तन होने का मूल कारण क्या है? उसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इस शास्त्र की उन्नति के लिये सहायता करना यह बात हमारे राष्ट्रीय कर्तव्यों में से महत्व का कर्तव्य माना गया है ऐसी भावना संपूर्ण पाश्चात्य पराक्रमी राष्ट्रों की सुदृढ है। *

इधर के राजाओं ने भी इसे शुद्ध करते आए हैं.

२९ इधर हमारे भारत में स्व नामधन्य महाराजा जयसिंहजी जयपुर नरेश ने जयपुर, दिल्ली, उज्जयिनी, काशी, मथुरा आदि नगरों में वेधशालाएं बनवाकर वहां योग्यातियोग्य ज्योतिषी रखकर शक १६५२ में सिद्धान्त सम्राट नामक ग्रन्थ बनवाकर इस शास्त्र की बडी उन्नति की इसी प्रकार उन दिनों में करण कल्पद्रुम सिद्धान्तराज, और तत्व विवेकादि करण ग्रंथ अन्यान्य विद्वानों द्वारा बनाए गए.

वेध शुद्ध पंचांग बनाने में भारतीय विद्वानों की प्रवृत्ति.

३० महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्री म. पं. नीलांबर झा प्रो. नाना छत्रे, प्रो. चिन्तामणी रघुनाथाचार्य, श्री. पं. कृष्ण शास्त्री गोडबोले, ज्योतिषाचार्य वेंकटेश बापूजी केतकर, प्रातःस्मरणीय राष्ट्र सूत्रधार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिख के अनेक प्रकार से इस शास्त्र की उन्नति की। पूने की पचांग कमेटी ने तो रुपये ५००० पारितोषक देकर ज्योतिर्विद श्रीयुत दफ्तरी वकील महोदय से करण कल्पलता नामक पंचांग

---

* फ्रेंच सरकार Annuaire नामकी पुस्तक ईसवी सन १७९५ से प्रति वर्ष प्रसिद्ध करते है। उसकी प्रस्तावना में उनकी अंगीकृत कर्तव्य निश्चित किये हुए रहते हैं। जैसे— II (la Bureau des Longitudes) est institue en vue du perfectionnement de's diverses branches de la Science astronomique et de leurs applications à la geographie, à la navigation et à la physique du globe, ce qui comprend..... 4° l' avancementddes the' ories de la me- canique ce'leste et de leurs applications; le perfectionnement des Tables du Soleil, de la Lune et des planets; 5° ....

साधन का ग्रन्थ बनवाया, किन्तु उसमें शास्त्र शुद्ध अयनांश नहीं होने से और उससे बने पंचांग का कोई भी सिद्धांत या करण ग्रंथ से मेल नहीं है। क्योंकि शास्त्र शुद्ध निरयन मान से उसके ग्रह ३°।५८.१ अधिक हैं।

वेध शुद्ध पंचांग बनाने में भारतीय राजाओं की प्रवृत्ति.

३१ इस ओर महाराज जम्बू नरेश की भी कृपा हुई "आपने एक चंद्रग्रहण के गणित की प्रत्यक्ष प्रतीति करके प्रसन्न होकर म० पं० बापूदेव शास्त्री को १००० रुपिया भेट में प्रदान किये" [भारतीय ज्यो० शा० पृ. ३०० से उद्धृत].

३२ हमारे सम्माननीय महाराजा होलकर सरकार की तो कई वर्षों से इसकी ओर कृपा-दृष्टि होरही है। शके १८१८ में श्रीयुत शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने इस विषय में जो मराठी भाषा में लिखा है उसका उद्धरण निम्नलिखित है:—

इस ओर इन्दौर महाराज की कृपा दृष्टि.

"मी इन्दूर एथें गेलो होतों, तेव्हां तेथें सरकारवाड्यांत मुद्दाम वेधाकरितां दिशा साधन वगैरे सोय करून एक जागा केलेली आहे, आणि तुकोजी महाराजांच्या पदरचे ज्योतिषी तेथें कधीं कधीं वेध घेत असत असें समजलें." (भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ठ ३९३)

महापुरुष नेपोलियन सम्राट जैसा रणधुरंधर था वैसाही वह शास्त्र और कलाओं का पुरस्कर्ता भी था हमारी परमपूजनीय चक्रवर्तिनी महाराणी साहबा के उदार आश्रय से जैसे "हानसेन के चन्द्र कोष्टक" नामक पंचांग साधन ग्रंथ (ई. स. १८५७ में) प्रसिद्ध हुआ उसके सदृश "बुर्गके चन्द्र कोष्टक" नेपोलियन बादशाह के औदार्य से (ई. स. १८०६ में) प्रसिद्ध हुए थे। उसकी प्रति बादशाह को नजर करते समय लाग्रांज, लाप्लास, लालन्द और डिलांब्र विक्रम सभा के वराह मिहिरादि के सदृश महा गणितज्ञ (बोर्ड ऑफ लॉंजीटयूड) याने ज्योतिषशास्त्र प्रवर्तक मंडल के सभासद थे। उनके अर्पणपत्र में नीचे लिखे अनुसार हृदयंगम उद्गार प्रगट किए गए हैं।

.........ce n'est point au Vainqueur de Marengo et d'Austerlitz,...... que le Bureau des Longitude vient offrir le tribut de ses veilles. C'est au Protecteur e'claire' des sciences et des arts, qui couvert de tant de gloire daignait entrer dans nos rangs, assister a' nos confe'rences, animer encourager et diriger nos travaux..................

३३ इसी प्रकार इस राज्य से प्रति वर्ष जो पचांग प्रकाशित होता है उसमें संवत् १९६० शके १८२५ के पंचांग की प्रस्तावना में लिखा गया है कि:—

संवत् १९६० में दृश्य गणित का पचांग मजूर होचुका है

"माळव देशांतील सर्व लोकांस यथार्थ तिथ्यादि ज्ञानानें धर्मानुष्ठान क्रिया व विवाहादि सर्व मंगल कृत्यें उक्त मुहूर्तावर व्हावी म्हणून स्वदेश धर्माभिमाना श्रीमंत होळकरान्वय नृपचूडामणि राजाधिराज महाराज तुकोजीराव महाराज साहेब यांनीं सिद्धान्तानुसारी, सूक्ष्म, प्रतीति कारक दृश्य गणिताशि सहित पंचांग ....प्रसिद्ध केलें असे."

३४ इससे श्रीमन्त महाराजाधिराज का विद्यानुराग, सद्धर्म प्रेम और उदारता का तो परिचय होता ही है। साथ ही (१) सिद्धान्तानुसारी, (२) सूक्ष्म, (३) प्रतीति कारक, और (४) दृश्य गणित (ऐसे पंचांग के स्वरूप) को बताने वाले चारों विशेषणों को देखने से स्पष्ट होजाता है कि:—

श्रीमन्त कैं० महाराज तुकोजीराव (दूसरे महोदय) वास्तविक "मान" का, दृक्प्रत्यय युक्त व शास्त्रशुद्ध सिद्धन्तानुसार पंचांग चाहते थे। यह बडे सौभाग्य की बात है।

३५ यह बात भी बडे आनन्द की है कि प्रायः दो वर्ष से इंदोर के ज्योतिष तीर्थ पं० नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषी ने महल (जूने राजवाडे) के ऊपर बेध लेने के लिये दिशाओं का साधन करके शंकु छाया नापने एवं नलिकासे ठीक पूर्व दिशा में सूर्य का वेध लेने के लिये तथा अयनांश साधन के लिये एक संगमरमर पत्थर के स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई उसके अनुसार लोक प्रिय माननीय होलकर सरकार की आज्ञा से जब यह पत्थर रखने की व्यवस्था प्रसिद्ध विद्वान् माननीय दीवान ए-खास बहादुर सरदार माधवरावजी किबे साहब बहादुर एम. ए. (एम. आर. ए. एस. आदि) द्वारा गत फाल्गुन मास में की गई। उस समय वहां मैं भी उपस्थित था। अब उससे बेध लेने का काम उक्त पंडितजी किया करते हैं। मुझे आशा है कि माननीय होलकर सरकार भविष्य में इसकी ऐसी उन्नति कर देनेकी कृपा करेंगे, जिसके द्वारा गणित शास्त्र को प्रशसनीय सहायता सदा मिला करेगी.

वेध शुद्ध पंचांग बनाने में हमारे सरकार की मनशा.

३६ उक्त लेख का सारांश ये है कि जिस ग्रंथ के आधार पर यह पंचांग बनाया जाता है, उस ग्रंथकार के कथन से एवं अन्यान्य और प्रमाणों से निम्न लिखित दो बातें निश्चित [निर्णीत] होती हैं।

इस पंचांग के शोधन के लिये ग्रह लाघव का चालन देकर शुद्ध करना चाहिये.

(अ) जिस ग्रंथ का गणित दृक्प्रत्यय से बराबर मिलता है । उसी ग्रंथ के आधार से बने हुए पंचांग के तिथि, नक्षत्र, ग्रह-गोचर, लग्न साधनादि संपूर्ण कार्यों में यहां आज तक मान्य किये जाते थे । और—

(ब) ग्रह लाघव के समय ही उसमें थोडा अंतर था और आगे सिर्फ १११ वर्ष के पश्चात् शाके १५५३ में विश्वनाथ दैवज्ञ ने उस अंतर को निकाल ने के लिये बीज संस्कार किया है । किंतु आज उसे ४०९ वर्ष होगये हैं इसलिये निश्चय है कि उसमें बहुतसा अंतर पड गया है । इन दो कारणों से इस पंचांग के शोधन के लिये ग्रह लाघव को ही शुद्ध करना चाहिये ।

इससे यह सर्व सम्मत हो जायगा.

क्योंकि सिद्धान्त ग्रंथों की अपेक्षा करण ग्रंथ कोही चालन देकर शुद्ध करना गणित के लिये सुभीते का होना है । उसमें भी बहुमान्य ग्रंथ को चालन देनेमें उसके द्वारा बना पंचांग भी सर्वमान्य होसकता है । क्योंकि भारतवर्ष में ग्रह लाघवीय पंचांग के इतना मान और पंचांगों को नहीं है इतना ही नहीं तो यहां जिस पंचांग को सुधारने की हमें आज्ञा हुई है वही खुद ग्रह लाघव से बनाया जाता है । इसलिये पंचांगकार को ग्रह लाघव का गणित मालूम होना चाहिये इससे हमारा अब यही कर्तव्य है कि चालन देकर ग्रह लाघव को ही शुद्ध करना चाहिये ताकि उसके द्वारा सर्वसाधारण ज्योतिषी भी सूक्ष्म गणित का पंचांग बना सके ।

इससे बनाने में भी सुभीता होगा.

इतना ही नहीं तो इस सभा का यह भी कर्तव्य है कि पंचांग में जो दिनमान व सूर्योदयास्त की स्टँडर्ड टाइम् लिखी जाती है तथा लग्न सारणी भावसारणी और वर्ष प्रवेश सारणी लिखी जाती हैं सो उनकी स्थूलता निकालकर इन्दौर नगर के रेखांश अक्षांश द्वारा इतनी सूक्ष्म बना देना चाहिये कि उसके दृक्प्रत्यय में एक मिनिट का भी फर्क नहीं पडे! और वही सारणी सूर्यांशों से देते जाने में सौ पचास वर्ष तक काम दे सके ।

एक मत से हमें काम करना चाहिये.

आशा है संपूर्ण सभासद सहमत होकर श्रम विभागतत्व के अनुसार अपने अपने तर्क से इस के एक एक विषय को पूर्ण करेंगे तो निर्दिष्ट समयमें पंचांग शोधन का कार्य करके इसका विवरण [रिपोर्ट] श्रीमंत सरकार की सेवा में भेज दिया जावेगा ।

भवदीय

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

सभापति का भाषण.

[पहिली सभा में] [ता. २५-९-२९]

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट बोले कि;

हेतु.

१ "भारत में बहुत से पंचांग ग्रहलाघव व तदनुसार बनी हुई तिथि चिंतामणि की सारणी से बनाए जाते हैं किन्तु वर्तमान समय में दृश्य बातों से मिलाने पर—'अमावस्या, पौर्णिमा और कृष्णाष्टमी तिथि के समय १। घडी से १४ घडी तक अंतर सदा दृष्टि में आता है। इससे भद्रा व व्यतीपात सरीखे कुयोग के समय में भी आध घंटे से ५॥ घंटे का, ग्रहण के स्पर्श मोक्ष काल में दो घंटे का, ग्रहों के भोग में ६ अंशों का और गुरु शुक्र के उदय अस्त में ९,१० दिनों का ज्यादा से ज्यादा अन्तर दृष्टि गोचर होता है। इसके अनुसार पंचांग की सभी बातों में अन्तर रहना स्वाभाविक बात होगई है।

प्रस्ताविक बातें.

२ यह अन्तर हमही बतला रहे हैं ऐसी बात नहीं है किंतु; भारत में इस विषय में कई सभा होकर उनमें सभी पक्ष के लोगों ने इस बात को मुक्त कंठ से स्वीकार कर लिया है; इतना ही नहीं बरन उसे सुधारने के लिये क्या २ उपाय किये जावें ऐसी समस्या को पूर्ण करने के लिये उसमें बहुत से कार्य किये भी गये हैं। और उसको पूर्ण करने का सौभाग्य श्रीमंत होलकर सरकार की नियुक्ति से इस सभा को प्राप्त हुआ है।

पहले पक्ष का कहना.

३ पंचाग के सुधार के संबंध में बहुत से ग्रंथकार और प्रबंध लेखक आदि विद्वानों का कथन * है कि; हमारे धर्म शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथों का परस्पर में इतना निकट संबंध है कि वह एक रूप के बराबर होगये हैं। अतएव धर्मशास्त्र के तत्त्वानुसार अभी तक के सभी ज्योतिष शास्त्र के ग्रंथ बने हैं। और उनके अनुसंधान से ही धर्मशास्त्र के ग्रंथों में व्रतोपवास श्राद्ध आदि के काल निर्णय किये गये हैं। यह निर्णय और ज्योतिष के ग्रंथ ऋषियों के कहे हुए वचन

* काल माधव से धर्मसिंधु तक के ग्रंथ व 'महाराष्ट्रीय पंचांगैक्य मंडल पूना शाके १८४७ के वृतांत में पत्र नं० २३ आदि में लिखा है सो [देखिये पृष्ठ नं. १५]

हैं । तथा हमारा धर्म ही आर्ष वचन प्रमाण को मानने वाला A है । तो इस शोधन से आर्ष ज्योतिष के तत्वों में बाधा आने से हमारे धर्मानुष्ठान की बातों में भी बाधा आती है । जिससे यह सुधार करना हमें मान्य नहीं है । वह बाधाएँ यह हैं कि;

[अ] मनुस्मृति की युग व्यवस्था के अनुसार– ' कल्पादि से वर्ष गणों को करके; वहां ग्रहों के शून्य क्षेपक मानकर ज्योतिष के ग्रंथों में ग्रहगणित लिखा है और सूक्ष्म गणित के नव्य ग्रंथों से उस वक्त सब ग्रहों का शून्य क्षेपक नहीं आता तब धर्मग्रंथों में कही बातें क्या इससे मिथ्या प्रतीत नहीं हो सकती ? इतना होकर भी सूर्य-चंद्र के गति के कालान्तर जन्य फर्क (सौ वर्ष में प्रो० हानसेन के मत से +१२·१९ श, प्रो० न्यूकंब के मत से +८.४४ श. और गत्यन्तर +२९.१७ B से) निश्चित नहीं होते हुए भी उससे त्रिकाल दर्शी को निष्कारण मिथ्या कहना नहीं होता क्या ?

[आ] हमारे ज्योतिष के आधार से बनी तिथि की घटती ६ घडी की और बढती ५ घडी तक की होती है । इसी के अनुसंधान से धर्मग्रंथों में श्राद्ध और व्रतादि काल का निर्णय लिखा गया है । किंतु नय गणित की तिथि में वही घटा बधी ६ व १० घडी तक होती है । तब श्राद्धादि कालों का धर्म ग्रंथों से योग्य निर्णय कैसे हो सकता है ?

(ई) हमें मालूम है कि पाश्चात्य जंत्री बहुत सूक्ष्म हैं किन्तु उनकी नकल के पंचांगों द्वारा कुछ हमें नौ का स्थान दृश्य गणित से निश्चित नहीं करना है; कि उक्त स्थल के दृश्य आकाश से रेखांश अक्षांश का फर्क न पड जाय। हमें तो केवल धर्मानुष्ठान काल और फल ज्योतिष का शुभाशुभ फल चाहिये। वह भी ऋषियों के वचनों से; फिर जब उनका बताया कर्मकाल ही गलत हुआ तब उस कर्म का बताया हुआ शुभाशुभ फल भी गलत सिद्ध नहीं होता क्या ?

A जैमिनि मीमांसा सूत्र के आरम्भ में ' चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः , ऐसा (१.१.२) धर्म का स्वरूप बताया है । इससे ' वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृतिः ' प्रमाण में माने जाती है । B ज्योतिर्गणित पृष्ठ ८२ में लिखितानुसार ।

[ऊ] जब कि धर्मका फल अदृष्ट होते हुए भी आर्ष वचनों से उसका अस्तित्व माना जाता है तब उसके अनुसंधान से कहा काल भी मानना योग्य है। तथा कर्मानुष्ठान के योग्य काल की व्याप्ति इतनी बढाई हुई है कि उसके पर्याप्त काल को हमारे पंचांग बता सकते हैं जैसे संक्रांति काल के आगे पीछे '१६-४० घडी, गुरू शुक्रास्त में बाल वृद्धत्व के १६-७ दिन, आदि' बताए गए हैं; २३ अंशों के ऊपर आगे की राशि का फल कहा जाता है इतना ही नहीं बरन वास्तु प्रकरण में २। नक्षत्रों की राशि के स्थान में २ व ३ नक्षत्रों की राशि कहीं होने से वहां वही फल में स्वीकृत होती हैं तदनुसार यहां स्थूलता मानने में हानि होती है ऐसा प्रत्यक्ष बता सकते हैं क्या ?

[ए] यदि आपको कुछ सूक्ष्मता ही बताना हो तो जंत्री, क्यालेंडर, आलेख्यों द्वारा बतावें किंतु वैसा करना छोडकर श्रौतस्मार्त धर्मानुष्ठान के तत्वानुकूल पंचांग का 'उक्त अ--ऊ समस्या को पूर्ण करे बिना' शोधन करना निष्कारण प्रयत्न नहीं होता क्या ? A

४ "दूसरे" गणितशास्त्र के ग्रंथकार और प्रबन्ध लेखक आदि कतिपय विद्वानों का कथन * है कि कलाज्ञान और शास्त्रीय शोध चाहे किसी के हों उन्हें लेने में हमें हानि नहीं है। इसलिये, ज्योतिष यह प्रत्यक्ष शास्त्र है; प्रत्यक्ष दिखनेवाली बात को 'हम ऐसा मान्य करेंगे व ऐसा मान्य नहीं करेंगे इस प्रकार कहना योग्य नहीं है। तब पंचांग के शोधन करने में शुद्ध गणित से चाहे हमारे धर्मशास्त्र ग्रंथों के कथन के अनुसार; कल्प के आदि और अन्त में शून्य क्षेप के ग्रह हों, चाहे नहों; मनुस्मृति के माफक युगमान हो, या, न हो; ऐसे ही दृश्य गणित के मान से बनी हुई तिथि के निर्णय करने में धर्मशास्त्रोक्त रीति से बाधा आती हो, या न आती हो उसकी कुछ हमें आवश्यकता नहीं है। आज श्राद्ध नहीं करके कल किये ऐसे करने से हमारी कुछ हानि नहीं है; बरन पंचांग को स्थूल रखने में है। इसलिये आज जो दृक्प्रत्यय में आवे उस सारणी या ग्रहगणित से पंचांग बनावें फक्त अयनांश आदि बातों का विचार सभा में बहुमत से

दूसरे पक्ष का कहना.

A ज्योतिर्विद पंडित मनीरामजी गांगावत गौड कृत सिद्धान्त दैवज्ञ विनोद की भूमिका में इसका कुछ भाग कहा गया है।

* पंचांगैक्य मण्डल पूना में सभापति महोदय के निर्णय में इसका कुछ भाग कहा गया है [शाके १८४७ प्रथमाधिवेशन.]

करलेवें। इस प्रकार ग्रहगणित ग्रंथों से भी पंचांग नहीं बना सकें तो नाटिकल आल्मनाक नामक आदि इंग्रेजी पंचांगों से सूक्ष्म गणित का पंचांग बना लेवें. A

तीसरे पक्ष का कहना.

५ "तीसरे" भारतीय सिद्धान्त, ज्योतिष शास्त्र व धर्मशास्त्र के कतिपय विद्वानों का कथन है कि श्रुति और स्मृति ग्रंथों में कहे हुए ज्योतिष के तत्वों के अनुसार बने हुए प्राचीन ग्रंथों के मूलाङ्कों को शुद्ध करके उसके द्वारा दृक्प्रत्यय युक्त पंचांग बनाया जाय और उसकी प्रस्तावना में पहिले पक्ष के किये हुए प्रश्नों का यथा योग्य उत्तर देते हुए वह पंचांग कोई भी आर्ष वचन के विरुद्ध नहीं जाने पावे; ऐसा शास्त्र शुद्ध और उसकी सब बातें दृश्य गणित के तुल्य एवं सूक्ष्म गणित की होनी चाहिये।

ग्रहलाघव को शुद्ध करें तो.

६ जब कि; 'अन्यान्य सिद्धान्त ग्रंथों में बीज संस्कार देकर श्रीमत् गणेश दैवज्ञ ने वेध लेकर तत्कालीन दृश्य गणित से मिलाते हुए शुद्ध मूलांक ग्रहलाघव ग्रंथ में लिखे हैं, इसलिये सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव ग्रंथ शुद्ध है।" तब यदि उस मूलांकों में वेधसिद्ध चालन देकर क्षेपक, ध्रुवक और फल साधन की सारणी आदि सुधारी जावें तो जिस ग्रंथ के आधार पर आज तक के पंचांग बनाये जाते हैं वह ग्रंथ ही शुद्ध होजायगा। और उसके द्वारा शुद्ध, सूक्ष्म, व दृक्प्रत्यय कारक गणित के पंचांग भी बनते रहेंगे। इससे प्राचीन ग्रंथों का उपयोग भी होता रहेगा और केवल सारणी पर से पंचांग बनाने वालों को बडा सुभीता हो जायगा।

दृक्प्रत्यय कारक पंचांग हो सकता है.

७ किन्तु यहां यह शंका उपस्थित होसकती है कि उक्त शुद्ध पंचांग बनने से और उसमें सूक्ष्मता होने से क्या वह धर्म शास्त्र ग्रंथों से विरुद्ध होगा? ऐसा संदेह करने का कोई कारण नहीं है। क्योंकि हमारी नई शोध से सिद्ध किया गया है कि; "वेद" यह "ज्योतिष शास्त्र का मूल ग्रंथ है। अतएव इसका एक २ मंत्र आकाश के दृश्य ज्योतियों का वर्णन करता है। इसलिये निश्चय है कि जो बातें सूक्ष्मातिसूक्ष्म वेध लेने पर भी अभी तक 'निश्चित कहां' अनुमित की जासकती हैं; वही वेद में उतनी ही सूक्ष्म कही गई हैं। तब इसके द्वारा पहिले पक्ष के उपस्थित किये हुए (अ+ आ+ ई+ ऊ+ ए+) प्रश्नों का

A मुंबई की पंचांग शोधन परिषद में म० म० पं० दुर्गाप्रसादजी के कहे हुए प्रथम पक्ष के उत्तर में म० प० स्मृति तीर्थ आदि के भाषण का सारांश। व प्रस्ताव नं० २-४ में स्वीकृत बातें (शक १८२६)

सप्रमाण निर्णय करने से सब शंकाओं का समाधान होजाता है। और धार्मिक ग्रंथों से निश्चित हो सकता है कि एक तिथि का वृद्धि क्षय ५+६ घटी का नहीं है किन्तु ९+१० घडी का श्रुति स्मृति सम्मत है।

सरकार की भी ऐसी ही मनीशा है.

८ अत: अब हमें श्रुति व स्मृति ग्रंथों के प्रमाणों से ही सूक्ष्म गणित के पंचांग का निर्माण कराना चाहिये। क्योंकि इसके संबंध में कै. वा. श्रीमंत बडे तुकोजीराव महाराज ने संवत १९६० के साल के इस राजधानी से प्रकाशित होने वाले पंचांग में (भूमिका कलम ३३ में लिखे प्रकार की) जो रूप रेषा अंकित करदी है बस उसी तरह के पंचांग को हमें बनवाना चाहिये।

क्योंकि पंचाग की सब बातें जबकि दृश्य कही गई हैं तब आकाश में ग्रह नक्षत्रों के उदयास्त याम्योत्तर लंघन काल आदि द्वारा; चाहे जिस दिन की पंचांग की बातें–जैसे सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर से तिथि; चंद्र की स्थितिसे नक्षत्र और सूर्य चंद्र के नक्षत्रों के जोड से योग; इत्यादि–प्रत्यक्ष बतलाते आना चाहिये।

दृश्य गणित के पंचांग का सब आदर करेंगे.

तथा इसके संबंध का बहुतसा कार्य भाग भारतीय पंचांग शोधन महापरिषदों एवं पंचांगैक्य मंडल द्वारा निश्चित होचुका है। उन निश्चित बातों के अनुसार ही यह पंचांग बनाना चाहिये। और इस पंचांग की शास्त्र शुद्धता व दृक्प्रत्ययता बतलाने के लिये महीने या पंद्रह दिन का एक पंचांग का पृष्ठ छापकर विद्वान लोगों की सेवामें भेज दिया जाय तो मैं उम्मीद करता हूं कि आपका किया प्रयत्न और पंचांग का; विद्वान लोग अवश्य ही आदर करेंगे। अतएव यह पंचांग मालवे में ही नहीं तो भारतवर्ष में एक आदर्श पंचाग होजायगा। इससे पंचांग शोधन कार्य की पूर्णता का श्रेय इस इंदौर पंचांग कमीटी को प्राप्त होसकेगा।

भवदीय

दीनानाथ शास्त्री

चूलेट.

प्रश्नोंका चुनाव मुद्दे (विषय निर्वाचन)

इस प्रकार सभापति के भाषण के अन्त में इस रिपोर्ट की भूमिका रूप पत्र सभापति ने दाखल किये व तदनुसार नीचे लिखे प्रकार मुद्दे निश्चित किये गये वह ये हैं कि–

१ प्रचलित पंचांग में प्रसिद्ध होने वाले दिनमान व रवि के उदयास्त की स्टॅंडर्ड टाइम यहां के रेखांश अक्षांश से सांप्रतकाल की [सूर्य की] परमक्रांति द्वारा सूक्ष्म गणित से चर पलों का साधन करके दृग्गणितक्य युक्त बनाई जाती है या नहीं ? यदि नहीं हों तो उसको ठीक २ करने में क्या उपाय किया जाय ?

२ चालू पंचांग में लग्न, भावादि सारणी छप करती हैं वह बरोबर हैं या नहीं ? यदि न हो तो उसमें क्या उपाय किया जाय जिससे कि वह सूक्ष्म गणित की तयार की जाय ।

३ ग्रहण ग्रहों के उदय अस्त आदि कार्य ठीक २ मिलने के लिये सूक्ष्म गणित से ग्रह साधन करना अवश्य है इसके लिये " हमारे सिद्धान्त ग्रंथोंक्त मूलांकों में कितना बीज संस्कार दिया जाय जिससे कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुए जिनके द्वारा दृग्गणितैक्य होजाय । "

४ तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण इत्यादि पंचांग विभाग भी सूक्ष्म गणित से बराबर है या नहीं ? यदि नहीं है तो उसे शास्त्रशुद्ध और सूक्ष्म करने के लिये क्या किया जाय ।

५ शुद्ध गणित के पंचांग में जबकि तिथि का वृद्धिक्षय ९·१० घडी तक का होता है तो क्या इसमें धर्मशास्त्र से बाधा आती है । जो कि " बाण वृद्धि रस क्षयः " आदि कहा जाता है ।

ज्योतिषाचार्य पंडित रामसुचित त्रिपाठी का पहिला दृश्य गणित के पचांग का खंडनात्मक लेख.

॥ श्री ॥

जावक नंबर २३ **ता० १६-११-२९ ई.**

रा. रा श्रीमान् वि. दीनानाथ शास्त्रीजी की सेवामें

नमस्कार

पत्र नम्बर २

पंचांग कमेटी के अध्यक्ष शास्त्रीजी साहब— कई एक कमेटी में मैं नहीं उपस्थित होसका शारीरिक अस्वस्थ्यता के कारण इसलिये मैं जानना चाहता हूं कि आज तक कमेटी द्वारा पंचांग का कितना कार्य्य होचुका और कैसा पंचांग बनाने चाहते हो—गत

कमेटी में आपके मुख से मालूम हुआ कि दृक्प्रत्यय से पंचांग बनेगा यदि सबही विभाग पंचांग के दृक्प्रत्यय से बनाने चाहते हैं तो आर्ष सिद्धान्त विरोध होने से और धर्मशास्त्र विरोध होने से मेरे को मान्य नहीं है-आर्ष सिद्धान्त विरोध बचन चाहते हो तो देने को तैयार हूं आशा है कि आर्ष बचन के लिये समय भी देंगे-इस पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पंचांग नहीं बनता इन बातों का उत्तर लेखी मिलने से आपका प्रश्न मूलांकों में क्या संस्कार देना जो दृक्प्रत्यय सिद्ध हो यह प्रश्न उपस्थित होता है।

आपका हितैषी

पं. रामसुचित त्रिपाठी.

जावक नं. २३　　　　**ता. २०-११-२९ ई०**

पत्र का प्रत्युत्तर.

लेखक—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री (कमेटी में)

॥ श्री ॥

पत्र नम्बर २

श्रियुत

ज्योतिषाचार्य पंडित रामसुचित त्रिपाठी

नमस्कार !

आपसे ता० १०-११-२९ के पत्र नं. १९ द्वारा जो उत्तर मांगा गया था उस प्रश्न का उत्तर न आकर आपही ने कुछ प्रश्न खडे किये हैं। वह इस प्रकार—

१ आज तक कमेटी द्वारा पंचांग का कितना कार्य हो चुका ?

२ कैसा पंचांग बनाना चाहते हैं ?

३ यदि सबही विभाग पंचांग के दृक्प्रत्यय से बनाना चाहते हैं तो आर्ष सिद्धान्त विरोध होने से और धर्मशास्त्र विरोध होने से मेरे को मान्य नहीं।

४ केवल आकाशीय नाटक दिखाने के लिये पंचांग नहीं बनता।

उपरोक्त चार प्रश्न आपने खडे किये हैं। इनका उत्तर क्रमवार इस प्रकार है कि

१ आज तक कमेटी द्वारा जो भी कुछ कार्य हुवा है, वह आपको मुख जबानी तारीख १६-११-२९ ई. को सभा के दिन संपूर्ण विस्तारपूर्वक समझा दिया था तो भी आप के पत्र के लेख से ज्ञात होता है कि वह आपकी समझ में नहीं आया। इसलिये फिर दुबारा उसका स्पष्टीकरण करने में आता है कि—

आपके इन्दौर में प्रचलित पंचांग होलकर स्टेट के तरफ से निकल रहा है। जिसे आप ग्रहलाघवी समझ रहे हो, उसमें जो रवि का उदयास्त और [illegible] है; उसके गणित का तपास करने से पता लगा है कि वह ग्रहलाघवी नहीं है। और इस बाबत पं. बालकृष्ण जोशी द्वारा जांच करनेसे पता लगा और उन्होंने कबूल किया कि "गत पांच वर्ष से सूर्य के उदयास्त और दिनमान में ग्रहलाघव के मान से प्रत्यक्ष में चूकी के आने के कारण मैंने इसको बदल दिया है। और उसका एक कोष्टक भी न्यारा दे दिया है।" जो कि ग्रहलाघव के और धर्मशास्त्र के लिये भू गर्भीय मान से आपके मत से भिन्न है। इसलिये हमारी बनाई हुई सूक्ष्म गणितकी सारणीसे रवि के उदय-अस्त तथा दिनमान आगे के पंचांग में छापने के लिये रखा गया जिसकी जांच और उपपत्ति प्रो० गोळे साहब को पूर्ण रीति से समझाई गई और वह प्रस्ताव सर्व संमती से पास होगया।

वैसेही लग्न सारणी में राश्यारंभ में एक साथ अंतर डाल कर जो २ राशि भर में समान अंक अंशों के लिये बनाते हैं। वह मानस्थूल रहता है। अतः इस सारणी को अंतर न्यास पद्धति से सूक्ष्म करके हमने पेश करी थी वह भी सर्व संमति से पास होगई और पंचांग कर्ता पं० बालकृष्ण जोशी ने पंचाग में देने के लिये कॉपी भी करली है। सारांश पहिले प्रश्न का उत्तर यह है कि-आज तक कमेटी द्वारा-पंचांग में उदयास्त और लग्न सारणी तथा दिन मान सूक्ष्म चर पलों से जो लाये गये हैं सो ही प्रति वर्ष पंचांगों में प्रसिद्ध हो यह प्रस्ताव भी सर्व संमति से पास किया गया।

२ "ग्रहण ग्रह युति चंद्रशृंगोन्नति और रविका उदयास्त-दिनमान चतुर्थीका चंद्रोदय और कालाष्टमी आदि बातें सूक्ष्म गणित की पंचांग में दी जावे" ऐसा जो तारीख १६-११-२९ ई. को आपने प्रस्ताव लाये थे सो सर्व संमति से पास कर लिया है। उसी रह दृकतुल्य और ठीक ठीक १२ अंश के अंतर से प्रत्यक्ष सूर्य चंद्रादि की साक्षि द्वारा आने वाली तिथि ही तिथि की पात्रता रख सकती है। अन्यथा स्थूल गणित के ग्रहलाघव मान से शके १८५१ कार्तिक वदी ३० शुक्रवार का सूर्य ग्रहण जैसे अपात्र समझा गया वैसेही सब तिथियें इसी भ्रमसे अपात्र होती हैं सो स्थूल पंचांगसे भागीदार लोग न हों ? इसलिये सूक्ष्म और दृक्तुल्य तिथि धर्मशास्त्र युक्त सशास्त्र समझी जाती है। ऐसी पवित्र तिथि पंचांग में देनां चाहते हैं।

३ पंचांग में ऐसा कोई भी विभाग नहीं है कि जिसमें दृक्प्रत्यय न हो अर्थात् सब विषय प्रत्यक्षता में ओतप्रोत हैं फिर नहीं समझ में आता कि आपके ऐसे कौनसे आर्ष वचन हैं जो दृगगोचर रहित बात मानने के लिये बाध्य करते हों ? और साथ में

यह भी नहीं पढने में आया कि पंचांग में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ऐसे कोई भिन्न २ भेद दिखाया हो यदि कहीं होतो सप्रमाण आधार युक्त ऐसा लेख लिखकर लाने का कष्ट उठावें ताकि उसका विचार करने में आवेगा।

४ यह प्रश्न आपका बडा अनोखा और आश्चर्य जनक है क्या ? खगोलीय बातें खगोल में न रहेंगी तो क्या भूगोल में दिखेगी। पंचांग आकाशी नाटक ही नहीं किंतु आकाश में देदिप्यमान तारा-ग्रह इत्यादि की दीप्तियों को ब ने वाला व्यवस्थित एवं ठीक २ नकशा है। आकाश में प्रत्येक ग्रहों को अधिक ढूंढने की दिक्कत न हो इसलिये उसके राशि-अंश-कला विकला के विभागों का पता; पंचाग ही में चलता है। अत: पंचांग का अक्षर २ दृक्प्रत्यय से तोलने ही के लिये रहता है। अन्यथा उसका क्या उपयोग।

इसका थोडे से में इतना ही उत्तर बस है कि पंचांग आकाशीय नकशा है। और इसकी जांच आकाश ही में हम कर सकते हैं।

आपका
दीनानाथ चुलेट

विशेष सूचना—

ग्रहण इत्यादि में भी क्यों न हो ? किंतु क्या बीज संस्कार उसमें देना इस आशय का जो ता० १६-११-२९ को प्रस्ताव भेजा गया था उसका शीघ्र ही उत्तर लिख भेजे। अर्थात् आज से तीन दिन के भीतर तक जल्दी देवें।

आपका
दीनानाथ चुलेट.

पत्र नंबर ३

श्री.

(सूचना पत्र) ता० ९-२-२९ ई०

रा. रा. श्रीमान् वि. दीनानाथ शास्त्री पंचांग कमेटी
सभाध्यक्ष की सेवामें

नमस्कार.

आज तारीख तक दरबार आर्डर मुताबिक पंचांग कमेटी सभा में आये जैसा काम चला था वैसा काम किये. अब पंचांग संशोधन जो पंचांग का मुख्य विषय है उसमें

आपका और हमारा विचार में भेद हुआ. भेद होने से यह निश्चय नहीं होता है कि आपका विचार सच्चा है या हमारा विचार सत्य है. यह काम जगत को धर्मानुष्ठानोपयोगी होने से आपका मत यदि असत्य है तो आप दोषी बनेंगे यदि हमारा मत असत्य हुआ तो हम दोष भागी बनेंगे, इसलिये कृपया, इस विसंवाद पंचांग कार्य को काशी, कलकत्ता, लाहौर, दरभंगा, ग्वालियर बडोदा, जयपुर, कानपुर, मैसूर प्रधान कॉलेज ज्योतिष शास्त्राध्यापकों से अभिप्राय मगाया जाय, जिससे निश्चित हो जाय कि कितनी वस्तु पंचांग में दृक्प्रत्यय से है और कितने आर्ष सिद्धांतानुसार है. या कैसा धर्मानुष्ठान के लिये पंचांग साधन करना मत भेद का खुलासा हमने अलग लिखा है. ११ पत्र

आपका हितैषी,
ज्योतिषाचार्य पं० **रामसुचित त्रिपाठी.**

अ. नं. ४० ता० ९-१२-२९

श्री

श्री. दिनानाथ शास्त्री इन्होंको नमस्कार,

आपके ता. २०-११-२९ के पत्र में यह बातें लिखी गई है कि— (१) जो दृग्गोचर रहित बात मानने के लिये बाध्य करते हो ? ऐसा कौनसे आर्ष वचन है ? (२) और आप ऐसा भी लिखते है कि यह भी नहीं पढने में आया कि---पंचांग में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ऐसे कोई भिन्न २ भेद दिखाया हो ? (३) और मूलांक में कितना संस्कार देना ? इनके ऊपर हमारा यह उत्तर है.

अदृष्ट गणना से स्पष्ट ग्रह और दृष्टगणना से दृक्स्पष्ट ग्रह इस तरह दो होते हैं, यथा— पंचतारा में चार फल संस्कार होने से और सूर्य में मंद फल चरफल संस्कार देने से और चंद्र में मंदफल-चरफल—भुजफल-देशान्तर चार संस्कार से ही भौमादि तथा सूर्य चंद्र स्पष्ट कहे जाते हैं। इन ग्रहों का उदयास्त यदि देखना है तो इन ग्रहों में दृक्-संस्कार करने से स्पष्ट दृक् ग्रह होते हैं. आपने यदि इन ग्रंथावलोकन किया है तो देखो सिद्धान्त शिरोमणि के उद यास्ताधिकार श्लोक १-२ ' प्राक्दृक् ग्रहस्यादुदयाख्य लग्नम् अस्ताख्यकं पश्चिम दृक् ग्रहश्च ' इत्यादि.

आपने लिखा है कि- किस अनोखा ग्रंथ में लिखा है कि दृक्प्रत्यय ग्रह नहीं लेना इस जगह पर मेरा यह ही कहना है कि-जिस ग्रंथ को श्री. आई. ई. बापूदेव शास्त्रीजी तथा महामहोपाध्याय श्री. सुधाकरजी पढने पढाने में ही जीवन व्यतीत किया उस ग्रंथ का देख

माल कर आप अपना काम निकालना चाहते हो इसलिये वह ग्रंथ आपको अनोखा होगया. आप कहते हैं कि स्थूल रविचंद्र से कहां लिखा है. पंचांग साधन करना इसका समाधान आपके अनोखा ग्रंथ में ही भास्कराचार्य ने लिखा है. " **स्थूलं कृतं भानयनं यदेतत् ज्योतिर्विदां संव्यवहारहेतोः ॥ सूक्ष्मंप्रवक्ष्येऽथ मुनीप्रणीतं विवाहयात्रादि फल प्रसिद्धयै. ॥** " आपके दृक्प्रत्यय ग्रह पचांग को विवाह यात्रा जातक कर्म में नहीं लेना इसमें प्रमाण **सूर्यसिद्धान्त की किरणावली टीका के स्पष्टाधिकार** के अंत में लिखा है सो ऐसा है " **एतत् नियतं तत्काले वेधादिनाकृत्वा तत् संस्कृत ग्रहेभ्यो ग्रयुति ग्रहण शृंगोन्नत्यादि दृष्टफल मादेयं अदृष्ट फलं यथास्थित ग्रहेभ्यः इति विवेकः** " इस विषय में केवल इतना ही प्रमाण नहीं किन्तु गुरुवर्य महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर शास्त्रीजी की पंचांग भूमिका को देखिये इन्होंने भी सूर्य सिद्धान्तीय पंचांग दृष्ट अदृष्ट गणनानुसार ही पंचांग बनाते थे और आजभी बनता है. आप खुद अपने मुख से कहते हो कि लंबन नतकर्म संस्कृत सूर्य चन्द्र को लेकर मैं पंचांग साधन नहीं करता इसका क्या कारण. जब आप दृक् ग्रह को स्पष्ट ग्रह मानते हो तो लंबन संस्कृत नतकर्म संस्कृत ग्रह आपके मत से स्पष्ट ग्रह है फिर उस पर से फलादेश यात्रा विवाह जातकादि का विचार करने से क्यों भागते हो. यदि आपके मत से दृक् ग्रह ही मुख्य है. यदि आकाश में दृक्प्रत्यय से मिला हुवा ही यात्रा विवाह जातकादि में लिखा है तो यात्रा विवाह जातकादि में रवि मेष का चंद्र वृष का भौम मकर का बुध कन्या का गुरु कर्क का शुक्र मीन का और शनि तुला का इत्यादि " अजवृषभमृगांगना कुलीर झष वणिजौच दिवाकरादितुंगा इन उच्च राशियों का आधार लेकर यात्रा विवाहोत्सव जातकादि में विचार करना आपके मत से योग्य नहीं है, क्योंकि आपतो आकाश में जो दृक्प्रत्यय से मंदोच्च राशी है उसको ही शीघ्रोच्च उच्च समझते हो. ऐसा यदि हो तो आपका परिश्रम सबही व्यर्थ है. क्योंकि आकाशीय उच्च को नहीं लेते हुवे स्थूल ही उच्च से फलादेश किया है. ज्योतिष शास्त्र में फलादेशही मुख्य है. भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि " **ज्योतिःशास्त्र फलं पुराणगणकैःआदेश इत्युच्यते नूनं लग्नबलाश्रितःपुनरयं तत्स्पष्ट खेटाश्रयं** ॥ इत्यादि. एवं फलादेशही मुख्य ज्योतिष ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है. इसी तरह जो आपके भाषण में बातें आती हैं उनका और शास्त्रीय का बहुत ही अंतर देख पडता है. आपने किसी दिन सभा में कहा कि आधुनिक १-२ ही सिद्धान्त में मंदोच्च भगण रवि कहा है और प्राचीन सिद्धान्त में नहीं है. परंतु देखने से मालूम हुवा कि एक प्रथम आर्यभट सिद्धान्त में नहीं है और बाकी प्रायः सबही में मंदोच्च भगण लिखा है. ज्योतिष वेदांग तो सिद्धान्त ही नहीं है क्योंकि सिद्धान्त का लक्षण उसमें कोई भी नहीं आता है. किसी याज्ञिक ने अपने काम पुरते बनाया है. अस्तु अब यह कहना है कि किसी में ३८७ मंदोच्च भगण है किसी में ४३१ मंदोच्च भगण हैं. किसी में ४८० रवि मंदोच्च भगण है. रवि मंदोच्च भगण में भेद होने से

मालूम हुवा कि इन लोगों ने वेध करके निश्चय किया है. मंदोच्च भगण में अन्तर इतना बहुत दिन में पडने पर भी जो कि लिखा है कि—' वर्षशतैरनेकैः अपिनोपलक्ष्यते ' इतने दिनों में भी कोई संस्कार नवीन मंदफलातिरिक्त नहीं देकर ही पंचांग साधन किया. सिद्धान्त बनाने वाला साक्षात् ब्रह्मा और वृद्ध वसिष्ठ ऐसे त्रिकाल दर्शी थे. पौरुषेय भी नहीं जिससे अप्रमाण माना जाय. गत सभा में आपके भाषण से मालूम हुवा कि प्राचीन सिद्धान्त को पंडितों ने सुधारकर नष्ट कर डाला. आपके मत से पाप भागी होगा. आपके मत से जीर्णोद्धारकरना ही पातक है. यदि लेखकाध्यापकाध्येतृदोष से भ्रष्ट होगया होतो उसको शुद्ध करना नहीं आपके मत से पाप भागी होगा. आपके ज्योतिर्गणित, नाटिकल प्रभाकर सिद्धान्त में पांच संस्कार के योग से स्पष्ट ग्रह बनाया परंतु यहां श्री सूर्य भगवान ने अष्टगति भेद से चार फलों का संस्कार देकर स्पष्ट ग्रह बनाया. यथा— (वक्रानुवक्त कुटिला मन्दा मन्दतरासमा ॥ तथा शीघ्रतराशीघ्रा ग्रहाणामष्टधागतिः तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतांग्रहाः ॥ प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरण मादरात् इसलिये विवाह यात्रादि शुभाशुभ फलादेश के लिये यह स्पष्ट ग्रह दृक् संस्कार करने से दृक् तुल्यता को जिस तरह प्राप्त होता है. ऐसी स्फुट क्रिया कहता हूं किंतु दृक्ग्रह साधन नहीं और भौमादि के लिये कर्म चतुष्टय से ही स्पष्ट क्रिया सूर्य सिद्धान्त का ही आधार लेकर गणेश दैवज्ञ ने भी फल संस्कार किया है. (प्राङ्ग मध्यमें चलफलस्य दलं विदध्यादिति) आपने जो लिखा है कि मूलांक में क्या संस्कार देना अथवा बीज संस्कार कैसा देना इस प्रश्न का उत्तर मेरे तरफ से यही है कि सूर्य सिद्धान्तीय सूर्य को चरफल-मंदफल सूक्ष्म रीत से बनाकर स्पष्ट सूर्य और चंद्र में चारों फल को सूक्ष्म बनाकर जो स्पष्ट चंद्र इन दोनों ग्रहों से ही पंचांग साधन करना योग्य है.

मूलांक में स्पष्ट ग्रहों के लिये संस्कार करने की आवश्यता नहीं ऐसा ही भौमादि पंच तारा ग्रहों के मंदोच्च शीघ्रोच्च के जो राश्यादि को से जो चार फल संस्कार वे ही स्पष्ट ग्रह भौमादि होंगे. वे ही ग्रह विवाह यात्रा जातकादि फलोपयुक्त हैं. ' गतिच्युति परिणति , इत्यादि दृक्संस्कार से बने हुवे ग्रह अदृष्ट फला देश में नहीं लिये जायेंगे— प्रमाण " नक्षत्रग्रहयोगेषुग्रहास्तोदयसाधने । शृंगोन्नतौतुं चंद्रस्य दृक् कर्मादाविदंस्मृतम् ॥ सूर्य सिद्धान्त के किरणावली टीका में भी वैसा ही स्पष्ट लिखा है. इसलिये दिनमान-सूर्योदय, सूर्यास्त-चंद्रोदय-चंद्रास्त भौमादि पंच तारा ग्रहों का उदयास्त-ग्रहयुति--नक्षत्रग्रह योगशृंगोन्नति--ग्रहण इनमें प्रभाकर सिद्धान्त से ज्योतिर्गणित से या नाटिकल से चाहे जिस पर से संस्कार करो सर्वथा मान्य है या वेध द्वारा बीज संस्कार दे सकते हो वक्री, मार्गी उदय-अस्तादि विषय में जो कालांश-केंद्रांश सिद्धान्त या करण ग्रंथ में पठित है वह स्थूल है. यदि आप कालांश-केंद्रांश के उपपत्ति जानते हो तो आपको

व्यक्त ही है और इस कारण से ग्रंथ कर्ता ने लिखा भी है " **वक्रादिकं स्थूलमिदंमयोक्तं** सुखार्थमेवाति नतद्यथार्थम् ॥ **अस्तादयास्पष्टतरौ प्रसाध्यौ सिद्धान्तरीत्या कुसुतादिकानाम्॥ यद्वात्रशुक्राङ्गि रसौ प्रसाद्धौ विवाह यात्रादि फल प्रसिद्धयै '**, अतएव इन विषयों में सिद्धान्त कर्ता को या करण ग्रंथ बनाने वाले जो दोष भागी बनता है वह स्वयं पातकी है जो कि ग्रंथ बनाने वाला आपका दोष खुद जाहिर कर रहा है. बडे आश्चर्य की बाते हैं कि जिस वराहमिहीर के आधार पंच सिद्धान्तिका को लेकर प्रमाण साबित कर रहे हो और वराहमिहीर के ग्रंथ में अनेको जगह जिसको आर्ष मानकर प्रमाण वराहमिहीर ने दिया है उसको आप कहते हो कि कोई आर्ष ग्रंथ है नहीं अस्तु आपके मत से कोई आर्ष ग्रंथ नहीं है और वेद भी पौरुषेय है. आप के मत से तो किसी स्मृति धर्म शास्त्र में वादी प्रतिवादी कोई विषय का निर्णय कराना चाहता हो तो अब कोई आधार नहीं रहा. अस्तु आपसे छोटे पंडित वराहमिहीर ने जो निर्णय किया है सो लिखता हूं. " पौलिस-रोमक-वाशिष्ठ-सूर्य-पितामह इन पांच सिद्धान्त में जिसको बराहमिहीर ने शुद्ध आर्ष बताया, उसको भी लेकर आप पंचांग साधन करते तो सर्व मान्य होता। वराहमिहीर का बचन। **पौलिश कृतोऽस्फुटोसौ तस्यासन्नस्तुरोमकः प्रोक्तः ॥ स्पष्टतरःसावित्रः परिशेषौदूर विभ्रष्टौ ।**

ज्योतिर्विदाभरण कारने भी लिखा है.

स्थूलं सदा ब्राह्ममतं निरूक्तं मादित्य सिद्धान्तमतंचसूक्ष्मम् ॥ एवं आर्ष वचन कमलाकर भट्ट का भी है जिसने धर्मशास्त्र के ग्रंथ निर्णय सिन्धु बनाया है। " **अदृष्ट फल सिद्धार्थं यथाऽर्कायुक्तितःकुरू ॥ गणितंयद्धि दृष्टार्थं** तद्दृष्टशुद्भवतःसदा। इतना ही नहीं किंतु नृसिंह दैवज्ञ, सार्वभौम कमलाकर भट्ट ने भी सूर्य सिद्धान्त को वेद ही माना है यथा " वेद एवरवितन्त्रमथा स्यवासना कथन मल्प धियांदि ॥ दोष एवन गुणोर विणोक्तं तेन युक्ति युतमेव सदोह्यम् ॥

ब्रह्म सिद्धान्त में शाकल्य ऋषि ने भी लिखा है।

अतीन्द्रियार्थ विज्ञानंप्रमाणं श्रुतिरेवहि ॥ श्रुतिर्यत्रप्रमाणंस्याधुक्तिःकातत्र नारद ॥

जिज्ञासो युक्ति रिष्टास्ति यदि श्रुत्यानुसारिणीति यदि **इन ग्रहों में संस्कार देने की संभावना** है तो वेध द्वारा परममन्दान्ताफलज्या। **परमशीघ्रान्ता फलज्या का ज्ञान होने से ही दोनों फल में नवीन संस्कार होने की संभावना है आर्ष विरोध नहीं होते हुए वास्तव ग्रह ज्ञान होगा.** केवल ग्रह भगण में घटाना बढाना ऐसा बीज संस्कार किसी ने नहीं किया ऐसा यदि वास्तव ग्रह ज्ञान सिद्धान्त युक्ति से करना है तो वास्तव अन्य फलज्या वास्तव कर्ण के ज्ञान बिना कदापि वास्तव भुज फल ज्ञान नहीं हो सक्ता.

वास्तव भुजफल ज्ञान प्रकार.

$$\frac{\text{ज्याकेवाम}\times\text{ज्याअंवा}}{\text{त्रि.}}=\text{वाभुफ} \qquad \frac{\text{ज्याअम}\times\text{वाकर्ण}}{\text{त्रि.}}=\text{ज्याअवा.}$$

$$=\frac{\text{ज्याकेवा म}\times\text{ज्याअंग}\times\text{वा कर्ण}}{\text{त्रि.}\times\text{त्र.}} \qquad \frac{\text{वाभुफ}\times\text{त्रि}}{\text{वाक}}=\text{ज्याफवा}$$

$$=\frac{\text{ज्याकेवाम}\times\text{ज्याअंग}\times\text{वाक}\times\text{ त्रि.}}{\text{त्रि.}\times\text{त्रि.}\times\text{वाक}}=\frac{\text{ज्याकेवाम}\times\text{ज्याअंम}}{\text{त्रि.}}$$

आपका हितैषी
ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी.

आपके ता. ९-१२-२९ ई० की सभा में कहे मुताबिक वास्तव भुजफल सक्तप्रकार की युक्ती भी लिख दिया है आपने सभा कहा कि प्राचीन सिद्धान्त भ्रष्ट नहीं लिखा है सो आपके लेख में कई बार आया है हमने भली भांति देख लिया. यदि प्राचीन अर्वाचीन सिद्धान्त को जानते हो तो स्वयं वेध कर यंत्रों द्वारा देखो मंदोच्च शीघ्रोच्च जन्य कितना अन्तर पडता है और बीज संस्कार प्राचीन पद्धति के अनुसार कितना बढाना या घटाना जब आर्ष सिद्धान्तानुसार पंचांग बनेंगे जिस पंचांग से धर्मानुष्ठान कार्य होंगे. जिस २ दिन तारीख को पंचांग साधन विषय में जो विषय पास किया है आपने उसमें यदि हमारा हस्ताक्षर नहीं है तो मेरी सम्मति नहीं समझी जायगी.

आपका हितैषी,
गव्हर्नमेंट कॉलेज काशी के राजकीय ज्योतिषाचार्य
पंडित रामसुचित त्रिपाठी.

नंबर ४२ ता० ९-१२-२९ ई०

दृश्य गणित के पंचांग का मंडनात्मक पत्र ३

लेखक विद्या भूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

मिसल पत्र नं० ४०

ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी ज्योतिष शास्त्र के प्रधानाध्यापक संस्कृत महा विद्यालय इंदौर

सा० न० वि० वि० आपका कृपा पत्र नं० ४० ता० ९-१२-२९ का आया किन्तु उसमें जो आपने प्रमाण लिखे हैं सो आपके दृश्य गणित के पंचांग के खंडनात्मक लेख

के पर्याप्त न होने से आपके ही कथन को पुष्ट करने के प्रमाण इस पत्र के साथ युक्त कर के दिये हैं. आगे आपके पत्र में लिखे हुए आक्षेपों का अनेक श्रुति स्मृति के प्रमाण देकर इस पत्र में उत्तर दे दिये है. और सिद्ध करके बता दिया है कि वैदिक काल में ऋषि लोग आकाश में सूर्य चंद्रादि ग्रहों को प्रत्यक्ष देखकर उस वक्त में सुपर्ण चिति नामका पंचांग बनाते थे उसी सुपर्ण चिति के पंचांग का निर्माण ऋषि लोग किस प्रमाण से कैसा करते थे. उस समय में किस प्रकार दृश्य बातों से कई ज्योतिष के सिद्धान्त उन्होंने निश्चित किये थे वह सब प्रमाण युक्त इस पत्र में बतला दिया है और साथ में सुपर्ण चिति का एक चित्र भी बता दिया है. इसी पंचांग के तत्वों के आधार पर इस वक्त में सिद्धान्त ग्रंथ की आवश्कता हरएक सभा में श्रौतस्मार्त धर्माभिमानी विद्वानों ने बताई है। और अभी तक के शतशः ग्रंथों में दृश्य गणित का ही पंचांग शुद्ध कहाता है। वही धर्मानुष्ठान में लेना योग्य है.

इत्यादि स्वयं कारणों से हमने सिद्धान्त प्रभाकर नामका ग्रह गणित ग्रंथ बनाकर उसी के आधार पर आग्रिम साल का पंचांग भी बनवाया है। और वह इंग्रेजी पंचागों के इतना सूक्ष्म दृक्प्रत्यय कारक शुद्ध होगया है। क्योंकि प्राचीन काल में सूर्य चंद्र की दृश्य स्थिति के द्वारा ही पंचांग किये जाते थे। इसलिये उस वक्त चंद्र इतना स्पष्ट रहता था कि आज जो सुक्ष्माति सूक्ष्म यंत्रों से बने हुए; प्रो० हानसेन और प्रो० न्यू कंब आदि के बताये हुए ५०–६० संस्कारों से स्पष्ट होता है। इसको बतलाने के अनेक प्रमाण हैं उनमें से एक नीचे लिखे प्रकार वेदमूर्ति बोधायन ऋषि का है और वह हमारे पत्र नंबर में बताया गया है किन्तु यहां बताने का हमारा हेतु यह है कि उक्त सब; दृश्य पंचांग गणित का प्रचार " संहिता " ब्राह्मण, सूत्रकाल और स्मृति व पुराण काल तक था। और ज्योतिष के ग्रंथों को देखते शाके ४२१ के आर्यभट के " काल तक था; किंतु आर्वाचीन काल में वह "स्फुट ग्रहं मध्य खगं प्रकल्प" की क्रिया बंद होकर मध्यम ग्रहको फल संस्कार देने में स्थूलता होने लगगई व उक्त क्रियाका (गणित; सौदो सौ वर्ष में कोई ग्रंथकार करके अपने तात्पुरते ग्रह वेध से मिलाकर ; फिर मध्यम ग्रहों को वर्षानुवर्ष बनाकर; फक्त एक चंद्र को मंद फल संस्कार ही देने से दिनों दिन वह दृश्य गणित से) पंचांग बनाने की परंपरा छूट गई। इससे यह फरक पड गया कि जो पहिले दृश्य गणित से तिथि का वृद्धि क्षय ९+१० घडी का होताथा; वह अनुमान के गणित से ५+६ घडी का रूढ होगया। इस ऐतिहासिक बात को सिद्ध करने के लिये जूने ऋषि के कहे हुए वचन का शाके १२०० में हुए माधवाचार्य अपने काल माधव नामक ग्रंथ में अर्थ करते हैं कि "**ननु बौधायनेन त्रयोदश सप्तदश दिनयो रन्वाधानं प्रतिषिद्धयते। तथासति त्रयोदश सप्तदशयोः प्रसक्ति रेव नास्ति; तत्कथं प्रतिषिध्यते इति चेत्। एवं तर्ह्यप्रसक्त प्रतिषेधे नित्यानुवादोऽस्तु। अस्ति चाप्रसक्त प्रतिषेधरूपो नित्यानुवादो वेदे, " न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यऽग्निश्चेतव्य इति। " (काल माधव चतुर्थ प्रकरण पृष्ठ २०७)**

अर्थात् बौधायन महर्षि ने जो १३ और १७ दिन का पक्ष कहा है; इसकी क्या गति है। क्योंकि वह तेरह और सतरह दिन के पक्ष में अन्वाधान को मना करते हैं। तबतो इतने दिन का पक्ष होता रहना चाहिये। किन्तु वर्तमान में तो यह असंभाव्य बात है। क्योंकि ९+१० घडी की वृद्धि क्षय के बिना; ऐसा हो नहीं सकता। और वर्तमान में तो ६+६ घडी की ही घट बध होती है। इसलिये यह नहीं होती बात की मनाई कैसी ? ऐसा आप पूर्व पक्ष करके; उत्तर पक्ष कहतेहैं कि; यह एक कल्पना मात्र है। क्योंकि वेद में भी ऐसे कल्पना मात्र वचन हैं।

जैसे वेद में कहा है कि " (१) पृथ्वी, (२) अंतरिक्ष और (३) द्यौः में यज्ञ का आरंभ (अग्नि का आधान) नहीं करे। " इस प्रकार यह भी असंभाव्य बात है क्योंकि अंतरिक्ष और द्यौः में यज्ञ कैसे हो सकेगा ?

इस प्रकार के माधवाचार्य के कथन से दूसरी गलती उनकी ये पाई जाती है कि वेद के अर्थ को भी वे नहीं समझते थे। अतएव उन्होंने इसे भ्रामक कल्पना मात्र बता दिये हैं। वस्तुतः ऐसी बात नहीं है। इसी पत्र के साथ दिये हुए वैदिक पंचांग (सुपर्ण चिति) और वेद कालीन ज्योतिष; इसमें देखने से आपको पता लग जायगा कि वसन्त संपात से २७०, १८०, ९० अंशों पर जब सूर्य आता था, उसको क्रमशः पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्यौः कहते थे तथा वसन्त संपात के दिनको स्वर्ग कहते थे। इसलिये उपरोक्त श्रुति का तात्पर्य यह है कि वसंत संपात से २७०, १८०, ९० दिनों में यज्ञ नहीं करके संपात के दिन करें। किन्तु अबतो मरे बाद स्वर्ग लोक मिलता है और वेद में तो और ही लोक बोले गये हैं। तो "स्वर्गकामोयजेत" का क्या अर्थ होगा। ऐसी अनेक शंका होगी। इसलिये हमने इसके आगे वेद यह ज्योतिष के ग्रंथ हैं, इन्हीं ग्रंथों के आधार पर उस वक्त में ५ प्रकारके पंचांग बनते थे। (१) चक्रचित् (२) कंकचित् (३) प्रउग चित् (४) उभयत प्रउग चित और (५) सुपर्ण चित् इन पंचांगों में से अभी दिग्दर्शन के लिये एक सुपर्णचित् और उस वक्त के ज्योतिष के शोध यहीं यहां बतलाये हैं !

किन्तु आज वैदिक अर्थ में इतना परिवर्तन होगया है कि उसके सब तत्व समझाने में संक्षेप से लिखने में भी कई पृष्ठ हो जाते हैं, किन्तु इससे यह एक आपको नई बात दिखेगीकि; आज जो वेद को केवल धर्म ग्रंथ मानते हैं किन्तु वह धर्म ग्रंथ होते हुवे भी ज्योतिषके ग्रंथ हैं; ज्योतिषके मूलतत्वों को शोध कर निश्चित करने वाले इस काल के प्रोफेसर लवराचार्यादि के नाम श्रीयुत केतकरजी अपने ग्रह दगणित में रटते हैं. बाकी सभी इस जमाने के शिक्षित लोग कहते हैं कि जो कुछ शोध लगा है सो अभी दो चार सौ वर्षों में लगाहै ऐसा कहते हैं किन्तु प्राचीन पंचांग को देखकर यही लोग

प्राचीन गौरव के गुण गान करेंगे. इतना ही नहीं तो इतने प्राचीनकाल में जिस वक्त अक्षर लेखन तो दूर रहा केवल ईंटों ही से पंचांग बनाए जातेथे तदनुसार तिथि नक्षत्र योग और कारण तथा दिनमान रात्रिमान यह सब बातें उसके द्वारा अबभी मालूम हो सकती हैं। आगे स्मृति ग्रंथों में भी वही शुद्ध गणित का प्रचार था और उसी से **अंक वृद्धिर्दशक्षयः** वाक्य सिद्ध करके बताया है क्योंकि वर्तमान कालिक निर्णय सिन्धु आदि ग्रंथकारों को वह दृश्य गणित की बातें विस्मृत होनेसे उन्होंने कुछ तो भी कह दिया है। इसलिये यहां हमने वह वैदिक ज्योतिषको ही प्रमाण माना है। इनके मूल तत्त्वों की खोज वैदिक काल में ही ऋषियों ने लगा लिये थे जोकि इसके पूर्व के हिन्दी व संस्कृत पत्रों में लिखा गया है। इन सब प्रमाणों से आपको ज्ञात होगया होगा कि **उस वक्त में दृश्य गणित का ही पंचांग बनाते थे किंतु जब कि ज्योतिष को वेद का चक्षु नेत्र कहा है नेत्र से देखने का ही काम है विचार करने की बात है कि आपके कहे माफक यदि अदृष्ट गणित से ऋषि लोग पंचांग में तिथि आदि बनाते तो आज तक यह ज्योतिःशास्त्र यह इतने ऊंचे दर्जे को नहीं पहुंचता।** धन्य है जिनकी बुद्धिमत्ता को कि सिर्फ १ सुपर्णचिति पंचांग से लाखों वर्षों के तिथि, नक्षत्र, योग, करण, दिनमान, रविका और चंद्र का नक्षत्र राश्यादिमान वसन्तसंपात अधिकमास इत्यादि मूल तत्व की बातें आज भी यथार्थ मालूम होसकती हैं। आपने अपने पत्र के पृष्ठ ५ पंक्ति ६-८ में लिखा वैसा मेरा लिखने का आशय यह नहीं है। मैंने ऐसा लिखा है कि "**यदि आर्य भट आदि जिन ग्रंथों के स्वरूप को जैसे श्रीमंत वराहमिहिरने कायम रखा है वैसे करते तो किस कालमें क्या मान थे यह आज हमें दिख सकता था अथवा जैसे ग्रहलाघव कारने अंतर बताया है वैसा तो भी करना था। किंतु इन्होंने क्या उसमें कम ज्यादा किया सो भी लिखा नहीं है.** इससे मैंने लिखा है कि ये आर्ष ग्रंथ नहोते हुए **उसके लोप करने वाले हैं।** खैर हमें मुद्देके सिवा अन्य बातें देखना ही नहीं है। किंतु इस पत्र से आपकी अब खात्री होजायगी कि ऋषि लोग दृश्य रवि चंद्र से ही पंचांग बनाते थे। उसी के तत्वों के अनुसार शुद्ध सूक्ष्म गणितका हमने सिद्धांत प्रभाकर ग्रंथ बनाया है। अन्य सिद्धांतोंके ही वह स्वरूप का है उसीके अधार पर दृश्य गणित का पंचांग श्रीयुत नीलकंठ जोशी ने हमारे पास की सारणी के अंकों से बनाया है। सो ऋषियों के तत्वानुसार धर्म ग्रंथ संमत है उस दृश्य गणित के पंचांग को अब तो भी दुराग्रह त्याग अनुमति देंगे ऐसी आशा है। यदि कुछ भाग में आपको सूक्ष्मता इच्छित हो खुलासेवार वह लिख भेजने की कृपा करें।

भवदीय

दीनानाथ शास्त्री, चुलेट.

(दृश्य गणित के पंचांग का स्वीकार)

आवक नं० ४२ ता० ११-१२-२९ ई०

लेखक **ज्योतिषाचार्य पं० रामसुचित त्रिपाठी.**

॥ श्री ॥

रा. रा. श्रीमान् दीनानाथ शास्त्रीजी की सेवामें

नमस्कार

हमने लेखी अभिप्राय भेजा है उसमें इतना और समझा जाना योग्य है कि **ग्रहलाघव बहुत स्थूल होने से उसपर से पंचांग योग्य नहीं है** इसलिये पंचांग साधन सूर्यसिद्धांत से होना योग्य है और उक्त पंचांगस्थग्रह होंमें उच्च–क्रांति–मंद फल, शीघ्र फल सूक्ष्म लाकर देकर स्पष्ट ग्रह पंचांग में रखना योग्य है। इसके अतिरिक्त संस्कार जो देने से आकाश में ग्रह देख पडेगा उसको दृक् संस्कार कहते हैं उसको ग्रह में संस्कार देकर पंचांग कर्ता वेध से उदय अस्तादि में मिलाता रहे। सूक्ष्म शब्द से जीवा-चाप-क्रांति वृह-त्रिज्या-वास्तव मंदफज्या-वास्तव शीघ्र फज्या लेना।

ता० १०-१२-२९ ई०

ज्यो. आ. **पंडित रामसुचित त्रिपाठी.**

॥ श्री ॥

पत्र नं० ५

नं० २१ ता० १६-११-२९

श्रीमान् वि० शास्त्री दीनानाथजी को

सा० प्रणाम आगे आपका पत्र नं० २० का पाया आपके मतानुसार १० क्षय होवे तो धर्म्मशास्त्रानुसार श्राद्धादि कार्य्यों में बाधा आती है. इसका निर्णय होना अत्यावश्यक है। फक्त।

पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे.

पंडित रामकृष्णजी साठे का प्रथम पत्र

(मे लान के लिये ता० २०-११-३० ई०
आठवीं मिटिंग का यह पत्र ९ में उत्तर के साथ रखा है ।)

शुलपाणीः निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शे अमा श्राद्धम् अपराण्हिकम् एवं मन्वंतरादीनां युगादीनांच विनिर्णयः । यदि श्राद्धे अपराण्हेनचेत् स्मृत्यर्थसारे कुतुपकाल योगीत्युक्तम् अन्यत्र रौहिणंतु नलंघयेत् इत्यादि वचनेन रौहिणयुक्तः कुतुपो ग्राह्यः । इत्यादि वचनेन याव्यवस्था स्यात् साकार्या ।

पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे.

पत्र नं० ६ ता. २०-११-२९

उपरोक्त पत्र के उत्तर में दिया हुवा पत्र.

लेखक- **विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.**

श्रीयुत धर्मशास्त्राचार्य पंडित रामकृष्णजी शास्त्री महोदयजी

सा० न० वि० वि

आपके पत्र के उत्तर में निवेदन किया जाता है कि;

आपने जो निर्णय सिन्धु (द्वितीय परिच्छेद अक्षय तृतीया निर्णय प्रकरण) की पंक्ति अपने पत्र में उधृत की हैं । उनके द्वारा आपका कहा हुआ दश घडी का क्षय होवे तो श्राद्धादि कार्य में बाधा आती है यह अर्थ नहीं निकलता इतना ही नहीं किन्तु निर्णय सिंधु का यह समग्र लेख पढा जायतो उससे १० घटी का तिथि क्षय होने पर श्राद्ध किस दिन करे वह अर्थ निकलता है अर्थात् आपके किये हुये आक्षेप का खंडन उक्त लेख से ही हो जाता है. इसलिये यहां हम वह लेख लिखते हैं । इसमें से जो पंक्तियां आपने अपने पत्र में थोडी अशुद्धी करके लिखी हैं उनके नीचे (अंडर लाईन की) रेषा देकर बता दी हैं ।

श्राद्ध में सामान्य काल १५ घडी का.

(१.) **निर्णयसिंधु** (प. ३) अक्षय तृतिया निर्णय में- " श्राद्धेपि पूर्वान्ह व्यापिनी ग्राह्या । पूर्वाण्हेतु सदा कार्याः शुक्ला मनु युगादयः ॥ दैवे कर्मणि पित्र्येच कृष्णे चैवा पराण्हिका " इति **पाद्मोक्तेः** । द्वे शुक्ले द्वे तथा कृष्णे युगादि कवयोविदुः ॥ शुक्ले पौर्वाण्हिके ग्राह्ये कृष्णे चैवापराण्हिके ॥१॥ इति **हेमाद्रौ नारदीय** वचनाच्च दीपिकापि अथोमन्वादि युगादि कर्म तिथयः पूर्वान्हिका स्युः सिते विज्ञेया अपराण्हिकाश्च बहुले ' इति । **स्मृत्यर्थसारेपि** युगादि मन्वादि श्राद्धेषु शुक्ल

पक्षे उदय व्यापिनी तिथि र्ग्राह्या कृष्णपक्षेऽपराण्ह व्यापिनीति । **दिवोदासीये गोभिलः** वैशाखस्य तृतीयांयः पूर्व विद्धां करोतिवै ॥ हव्यं देवान गृण्हंति कव्यंच पितरस्तथेति ' । **गोविन्दार्णवे** प्येवंतेनेयं पूर्वाण्ह व्यापिनी, दिन द्वये सत्वे परैवेति धर्म तत्व विदो **हेमाद्र्यादयः** । **अनन्तभट्टस्तु** ' सवैधृतिर्व्यतीपातो युगमन्वादयस्तथा ॥ सन्मुखा उपवासेस्युर्दानादावन्तिमाः स्मृता इत्याह दानादा विति **श्राद्ध संग्रहः** उपवासस्त्वग्रे वक्ष्यते । **हेमाश्रवप्येवं माधवस्तु** व्यतीपातः श्राद्धे पराण्ह व्यापी ग्राह्य इत्याह । **स्मृत्यर्थसारेतु** कुतुपकालयोगीत्युक्तं यत्तु **मार्कंडेयः** शुक्ल पक्षस्य पूर्वाण्हे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥ कृष्णपक्षापराह्णेहि **रौहिणंतुनलंघयेत्** । रौहिणोनवमोमुहूर्तः । अत्र शुक्लपक्ष युगादि श्राद्धं पूर्वाण्हे कार्य **मिति शूलपाणिः**

दश घडी का क्षय होतो श्राद्धादि कार्य में बाधा नहीं आती.

४ अर्थात्-जब कि धर्मशास्त्र ग्रंथों में अक्षय तृतीया आदि तिथियों की युगादि व मन्वादि संज्ञा की है अतएव इस दिन श्राद्ध आदि करने का बडा माहात्म्य लिखा है तब यह श्राद्ध दिन के किस विभाग में किया जाय इस विषय का निर्णय ऊपर जो **कमलाकर भट्ट** ने किया है उसका भावार्थ ये है कि; " इस दिन श्राद्ध तिथि भी पूर्वाण्ह व्यापिनी लेना ? क्योंकि-इस विषय में प्रमाण ये हैं उनमें (अ) १ **पद्म पुराण** का प्रथम प्रमाण ये है उसमें लिखा है कि; " जैसे महीने के शुक्ल पक्ष को पूर्व पक्ष और कृष्णपक्ष को अपर पक्ष कहा है वैसे पूर्व शुक्लपक्ष की तिथि में देवपूजन व पितृश्राद्ध दिन के पूर्वान्ह नामक अर्ध विभाग में और अपर (कृष्ण) पक्ष की तिथि में दिन के उत्तरार्ध भाग = अपरान्ह में करें " ऐसा महीने के दोनों पक्षों के कार्य दिन के दोनों (पूर्वाण्ह व अपराण्ह नामक) विभागों में करना कहा है । क्योंकि

क्योंकि १५ घडी का कर्म काल कहा है.

(आ) २ युगादि तिथि शुक्ल पक्ष में दो व कृष्णपक्ष में दो होती हैं तहां शुक्ल पक्ष की पूर्वान्ह व्यापिनी लेना और कृष्णपक्ष की अपरान्ह व्यापिनी लेना ऐसा **हेमाद्रि** नामक ग्रंथ में **नारद** का वचन है ।

(इ) ३ **दीपिका** ग्रंथ में भी ऐसाही लिखा है कि " मन्वादि व युगादि कर्म की तिथि, शुक्लपक्ष में की पूर्वाण्ह व्यापिनी और कृष्णपक्ष में की अपराण्ह व्यापिनी लेना "

(ई) ४ **स्मृत्यर्थसार** ग्रंथ में भी " युगादि मन्वादि श्राद्धों की तिथि शुक्लपक्ष की सूर्योदय व्यापिनी व कृष्णपक्ष की अपराण्ह व्यापिनी लेना. " ऐसा लिखा है । इसमें सूर्योदय व्यापिनी के कथन से पूर्वान्ह का आरंभ सूर्योदय से दिनार्धतक और अपराण्ह का दिनार्ध से सूर्यास्त तक ऐसे दो ही भाग बतलाए हैं.

(उ) ५ दिवोदास ग्रंथ में गोभिल का बचन है कि " जो मनुष्य वैशाख शुद्ध तृतीया पूर्व विद्धा करे तो देव पूजन को देवता ग्रहण नहीं करते और श्राद्ध को पितर नहीं लेते " इसमें उक्त तिथि पूर्व विद्धा निषेध कहने से यह सूर्योदय व्यापिनी उत्तर तिथि लेनी ऐसा इससे अर्थ निकलता है । और

(ऊ) ६ गोविन्दार्णव ग्रंथ में भी ऐसा लिखा है अत: उक्त शास्त्रों के आधार से निश्चित होता है कि उक्त (अक्षय तृतीया) तिथि पूर्वाण्ह व्यापिनी लेना चाहिये और

(ऋ) ७ हेमाद्रि आदि धर्य शास्त्र ग्रंथों में ऐसा भी लिखा है कि यदि तृतिया दो दिन में पूर्वाण्ह व्यापिनी होवे तो दूसरे दिन की सूर्योदय व्यापिनी लेवें.

(ऌ) ८ इत्यादि निर्णय उक्त तिथि में श्राद्ध व देवपूजन करने के संबंध में हुवा किन्तु इस दिन उपवास करना हो तो उसके संबंध में निर्णय लिखते हैं कि–

देव पूजा में भी बाधा नहीं आती.

(ए) ९ अनन्तभट्ट के ग्रंथ में प्रमाण लिखा है कि 'वैधृति' व्यतीपात यह योग और युगादि मन्वादि तिथि उपवास के लिये पहिले दिन की और दान श्राद्ध इत्यादिक विषय में पर विद्धा याने सूर्योदय व्यापिनी लेनी । हेमाद्रि में भी ऐसा ही लिखा है । फक्त.

(ऐ) १० 'व्यतिपात के दिन जो श्राद्ध किया जाता है वह परान्ह व्यापि लेना' ऐसा माधवाचार्य ने अपने ग्रंथ में कहा है । जो कि मध्यम दिन मान के वक्त १५ घडी से २० पर्यंत का होता है ।

भोजन काल में भी बाधा नहीं आती.

(ओ) ११ किंतु उक्त व्यतीपात में के श्राद्ध को पूर्वान्हापराण्ह नामक दोनों कालों के बीच के संधीकाल में यानी १४ घडी से १६ के अन्दर के कुतुप् नाम के आठवें मुहूर्त में भोजन के समय ही करना ऐसा स्मृत्यर्थसार में बताया है ।

(औ) १२ मार्कंडेय ने तो शुक्ल पक्ष में श्राद्ध हो तो पूर्वान्ह में और कृष्ण पक्ष का अपराण्ह में ऐसा श्राद्ध का मुख्य काल बताकर जब कि अपराण्ह की तिथि में श्राद्ध करना हो तो रोहिण नाम के ९ मुहूर्त का उलंघन नहीं करे ऐसी इसमें (भोजन का अति काल न होने पावे इसलिये) विशेषता बताई है ।

दिन के १२ बजे से भोजनकाल होता है.

(अं) १३ किंतु रौहिण मुहूर्त को कोई श्राद्ध का मुख्य काल न समझले इसलिये शूलपाणि नामक ग्रंथकार ने इस विषय में इसका अर्थ स्पष्ट कर दिया है कि शुक्ल पक्ष का युगादि श्राद्ध पूर्वाण्ह में याने दिन के पूर्वार्ध भाग में करे अर्थात् कृष्ण पक्ष का श्राद्ध अपरान्ह में ही करे।"

मध्यान्ह्से सायकाल तक श्राद्ध काल है.

(५) इस प्रकार १३ ग्रंथकारों के वचनों के आधार पर युगादि तिथियों के अंदर श्राद्ध करने के सिर्फ **पूर्वान्ह** और **अपरान्ह** नामक **दोही काल** बताकर आगे इस (पूर्वतोऽनुवृत्त) लेख को पूर्ण करते हैं।

(६) "**निर्णयामृतादयस्तु कालादर्शे**ऽमाश्राद्ध मापराण्हिक मुक्त्वा एष मन्वन्तरादीनां युगादीनां विनिर्णय इत्युक्तत्वात् ' द्वे शुक्ले ' इत्यादि वचनं विष्णु पूजन विषयं। श्राद्धत्वापराण्हिक्येवेति व्यवस्थां जगदुः। सेयं पूर्वोक्तानेकवचो विरोधात् । पूर्वाण्हेदैविकं कुर्यादित्यादि वचना देव सिद्धे ' वचन वैयर्थ्याच स्वाच्छन्द्य विलासित मात्र मित्युपेक्षणीया किंच **कालादर्शोक्ति** र्न्यायमूला वचो मूलावा। नाद्यः युगादि श्राद्धस्यामाश्राद्ध विकृतित्वेन न्यायतो परान्ह व्याप्ता वपि वचनेन तस्य वाधात् । नान्त्यः अति देशा देवापराण्ह प्राप्तेर्वचन वैयर्थ्यात् । अप्राप्ते शास्त्रमर्थवदिति न्यायात् । तेन यदि कालादर्शोक्तेः कथंचिच्छ्रद्धा जाड्येन समाधित्सातर्हि न्याय प्राप्त कृष्ण पक्ष युगादिविषयत्वेनसा व्यवस्थापनीयेतिदिक् । पूर्वाण्हस्तत्र द्वेधाभक्त दिन पूर्वार्धः " द्वेधाभक्त दिनांश को त्वगदितः प्राण्हापराण्हाविति " **दीपिकोक्तेः** माधवादयोप्येवम्।

कमलाकर का कथन.

(निर्णय सिंधुः प. २)

[७] [**भावार्थ**] **निर्णयामृतादि** ग्रंथकार कालादर्श नामक ग्रंथ में " अमावास्या श्राद्ध अपरान्ह में करें " ऐसा कहकर " यही निर्णय मन्वन्तरादि व युगादि का है " ऐसा उनका कहना होने से ' शुक्ल पक्ष में दो युगादि कर उपरोक्त **नारद**का वचन विष्णु पूजन विषय में है। श्राद्धादि के विषय में तो अपरान्ह व्यापिनी तिथि को ही लेना ऐसी आपने इस विषयके वचनों की व्यवस्था लगादी है। तथापि यह व्यवस्था पूर्वोक्त **पद्मपुराण** आदि (१–१३) अनेक वचनों के विरुद्ध होने से और पूर्वान्ह में देव पूजन आदि कार्य व अपरान्ह में श्राद्ध आदि पितृ कार्य करना इत्यादि वचन से ही यह अर्थ प्रदर्शित होते हुए इतने (कलम १–१३) ग्रंथकारों को व्यर्थ बताना मानो मनघडंत बात है. याने मन आवे वैसे बक देने के माफक है, इसलिये इन (कालादर्श) का कथन प्रमाणित नहीं है। क्योंकि न तो यह न्याय युक्त है, न धर्म प्रमाण के वचनों से प्रमाणित है।

बारा बजे के पहिले विष्णु पूजन के आगे श्राद्ध का शास्त्रोक्त काल है।

युगादि श्राद्ध, अमावस्या श्राद्ध की विकृति (रूपान्तर) होने से प्रकृति (मूल श्राद्ध के स्वरूप) के माफिक ही विकृति होती है। इस न्याय से अपरान्ह काल की व्याप्ति युगादि श्राद्ध के विषय में प्राप्त हुई तो भी पूर्वोक्त संपूर्ण वचनों से उस अपरान्ह काल का बोध हो जाता है। इसलिये यह न्याय युक्त नहीं है. ऐसे ही इस विषय म उक्त अतिदेश (प्रकृति के माफिक विकृति करें इस कथन) से ही अपरान्ह काल की प्राप्ति होजाती थी फिर से वही कथन स्वयं व्यर्थ समझा जाता है। और इसलिये 'अप्राप्त, विषयक शास्त्र वचन सार्थक होता है,

पार्वण श्राद्ध में भी बाधा नहीं आती.

इस न्याय से **कालादर्श** का कथन अयुक्त (अयोग्य) है। इतने पर भी जब किसी का **कालादर्श** के कथन पर अंध श्रद्धा ही हो तो कृष्णपक्ष के युगादि श्राद्ध संबंध का उक्त कथन मानकर वे कैसे तो भी उसकी व्यवस्था मानलें यह उसकी दिशा बताई है.

(अः) अब ऊपर जो पूर्वान्ह और अपरान्ह नामक श्राद्ध के दो काल बताये हैं उसका निर्णय (कमलाकर भट्ट) करते हैं कि; 'दिनमान के दो समान भाग करके जो पूर्व भाग वह पूर्वाण्ह और दूसरा भाग वह अपराण्ह है क्योंकि " **दीपिका** " नामक ग्रंथ में कहा है कि " दिन मान के समान दो विभाग करने पर पूर्व भाग वह पूर्वाण्ह और उत्तर विभाग वह अपराण्ह इस (श्राद्ध) विषय में कहाता है. " और माधवाचार्य ने भी अपने ग्रंथ में पूर्वाण्ह और अपराण्ह का अर्थ ऐसाही किया है।"

१५ घडी के श्राद्ध काल का निर्णय.

(८) इस प्रकार के निर्णय सिन्धु के लेख से और उसमें बताये हुये (अ से अः पर्यंत के १३) प्रमाणों से यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि श्राद्ध के पूर्वाण्ह और अपराण्ह ऐसे दो काल हैं, उस (काल) में दिवस के पूर्वार्ध भाग को पूर्वाण्ह और उत्तरार्ध भाग को अपराण्ह कहा है। अतः यही दो श्राद्ध के कर्म काल हैं इसलिये–

१० घडी के क्षय से बाध नहीं आता.

" कर्मणोयस्य यः कालस्तत्काल व्यापिनी तिथिः ॥ तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धि र्न कारणम् ॥ १ ॥ इति विष्णु धर्मोक्तेः "

इस शास्त्राधार से युगादि श्राद्ध का कर्मकाल दिन का पूर्वार्ध और श्राद्धों का काल दिनका उत्तरार्ध है तब इसी अक्षय तृतीया के आरंभ में लिखी हुई–

(९) " सा 'अक्षय तृतीया तिथिः ' पूर्वाण्ह व्यापिनी ग्राह्या दिन द्वयेऽपित द्व्याप्तौ परैवः "

९ घड बढने से बाध नहीं आता.

इस निर्णय सिन्धु की व्यवस्था से उसका निर्णय कर सकते हैं। और स्मृत्यर्थसार [कालम (ओ)] में जो कुतुप नाम के आठवें मुहूर्त की व्याप्ति वाला पूर्वाण्ह किंवा अन्यत्र अपराण्ह लेना कहा है सो वैश्वानराधिकरण न्याय से उक्त कर्म काल के अंग की प्रशंसा के लिये है। इसलिये दूसरे ग्रंथकार (औ) मार्कंडेय ने कृष्ण पक्ष के अपराण्ह काल को मुख्य बतलाते हुये उसके रौहिण नाम के कुतुप के आगे के मुहूर्त की उसमें प्रशंसा की है। यदि यहां वैश्वानराधिकरण न्याय मानलो एक बार नहीं लगावें और कहें कि कुतुप काल मुख काल होकर बाकी का अपराण्ह काल गौण काल है।

श्राद्ध में कुतुप आदि पांच मुहूर्त को उत्तम कहा है

(१०) लेकिन ऐसा नहीं होसकता क्योंकि जिस प्रकार यहां कुतुप का प्राशस्त्य लिखा है उसी प्रकार रौहिण का भी आगे कहा है। तब जहां दोनों की समान प्रशंसा है। वहां दोनों में से मुख्य कौन यह प्रश्न खड़ा होकर जिस अंगी के यह अवयव हैं वही उत्तम होने में उक्त वैश्वानर न्याय ही सुदृढ होता है. इसलिये कुतप या रौहिण कर्म काल के प्रयोज कहीं नहीं हो सकते फिर उसका काल मुख्य कहां से होसकता है। अतः यहां यह व्यवस्था दी जाती है कि जबकि उक्त लेख में १३ प्रमाणों की एक वाक्यता से दिन के दो ही भागों को शुक्ल कृष्णपक्षादि के भेद से कर्म काल माने हैं। और छोटे से छोटा भी दिनमान हो तोभी दिनार्ध १३ घटी से कम नहीं होसकता तब तिथि के १० घटी घट जाने पर या ९ घटी बढ जाने पर भी कर्म काल व्यापिनी तिथि में श्राद्ध करने में बिलकुल बाधा नहीं आती क्योंकि १० घडी के घटने में और ९ घडी के बढने में कर्म काल (दिनार्ध) का उलंघन नहीं होता।

दूसरे पत्र का उत्तर

(११) इस प्रकार पत्र नं० ५ का उत्तर दिया गया और पत्र नं. ६ का उत्तर भी इसी आक्षेप को लिये वह पत्र होने से उसका भी यही उत्तर हो सकता है किंतु यदि कहें कि यह युगादि श्राद्ध में दिनार्ध का पर्व काल कहा गया किंतु अमावस्या के (पिंड पितृ यज्ञ) श्राद्ध में तो--- इसी निर्णय सिन्धु के-

" श्राद्धे त्वमा वास्या त्रेधाविभक्त दिन तृतीयांशेयोऽपराण्हभागस्त द्व्यापिनी साग्नि कैर्ग्राह्या ॥ [नि. सि. परिच्छेद १ अमाश्राद्ध ।]

९-१० घटी का वृद्धि क्षय धर्म शास्त्र सम्मत है.

इस लेख में अमा श्राद्ध का कर्म काल दिन का $\frac{1}{3}$ भाग बताया है अतः जिस वक्त मानों २६ घटी का दिन मान होगा तब कर्म काल भी ८ घटी ४० पल का हो जायगा इससे उस वक्त की तिथि की व्याप्ति दोनों दिन भी कर्मकाल में नहीं रहेंगी इसकी व्यवस्था धर्मशास्त्र में लिखी है क्या ?

इस शंका के समाधान में सिर्फ इतने ही शब्द हम पर्याप्त समझते हैं कि, मनु, कात्यायन, गोभिल, पारिजात, पराशर, लौगाक्षि आदि कई महर्षियों ने " दिन द्वय व्याप्त्य भावे " इत्यादि वचनों से व्यवस्था की है सो निर्णय सिन्धु आदि अनेक ग्रंथों में लिखी है अत: जबकि १० घटी के क्षय की और ९ घटी के वृद्धि की व्यवस्था आर्ष ग्रंथों में की है । अतः उक्त क्षय १० वृद्धि ९ धर्म शास्त्र सम्मत है ।

किंतु प्रचलित स्थूल गणित के पंचांग में क्षय ६ वृद्धि ५ घटी की ही होती है सो धर्म शास्त्र से विरुद्ध है अत: धर्म विरुद्ध पद्धति का संशोधन करके आगे शुद्ध पद्धति के प्रचार करने के लिये आप अनुमति देवेंगे ऐसी उम्मिद है. यदि उक्त पत्र का उत्तर ३ दिन के अंदर आप देवेंगे तो अग्रिम सभा में इन सब शंकाओं का समाधान करके प्रस्तुत प्रस्ताव को पास कर लेवेंगे ।

५-६ घटी का वृद्धि क्षय धर्म शास्त्र सम्मत नहीं है.

भवदीय-

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

॥ श्री ॥

दा. नि. नं. २७ ता. २४-११-२९

पं. दीनानाथ शास्त्री महोदय को

सा. न. वि. वि.

पं. रामकृष्णजी साठे के पूर्व पक्ष का द्वितीय पत्र.

(सभापति महोदय के ता. २०-११-२९ के पत्र का उत्तर] आक्षेप--

सभा में आज तक क्या काम हुवा यह बात हमारा गणित विषय न होने से न समझ सके. लेकिन एक सभा में करीब २ प्रभाकर पंचांग का नमूना ही कमेटी बनाना चाहती है ऐसा मालूम होने से हमने प्रभाकर पंचांग मंगवाकर देखा. उसे यह ज्ञात हुवा कि अब नये बनने वाले पंचांग में दस घटी तक क्षय आवेगा. इतना क्षय आने से सांवत्सरिक पार्वण और सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट इत्यादि श्राद्धों में वाधा आती है ऐसा शास्त्र का प्रमाण होने से और उसी ही वक्त पर दीनानाथ चुलेट महोदय का जा० नं० २० का प्रस्ताव आया उसमें लिखा हुवा था कि सिद्धांत ग्रंथों के मूलांक में कितना बीज संस्कार दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुवे जिसके द्वारा दृग्गणितैक्य होजाय. इस पर से ता. १६-११-२९ के सभा में लेखी लिख दिया कि आपके मतानुसार दस घटी क्षय होवे तो श्राद्धादि कार्य में बाधा आती है. इसका निर्णय होना अत्यावश्यक है. इस लेख के ऊपर उसी वक्त हमको पूछा गया

कि दस घटी का क्षय आने से कहां बाधा आती है. उसके ऊपर श्राद्ध को अपराण्ह काल की आवश्यकता है और वह न मिले तो रोहिण मुहूर्तयुक्त कुतुपकाल की आवश्यकता है. ऐसा मुंह से कहा और हमारे छात्र खांबेटे शास्त्री आये थे उन्होंने उदाहरण द्वारा समझाया भी लेकिन यह बात अध्यक्ष महोदय को न माने से लेखी वचन दो वह हम आगे कर देंगे ऐसा कहने पर वहां निर्णयसिंधु व धर्मसिंधु के अलाहिदा दूसरे ग्रंथ न होने से और धर्मसिन्धु या निर्णयसिंधु में श्राद्ध का संग्रह सब एकही जगह न होने से हमारे धर्मशास्त्र के आशय मुताबिक निर्णयसिन्धु में अक्षय तृतीया के ऊपर जो एक दो वचन दिख पडी वहीं लेकर हमारे को उस लिख दिये आशय मुताबिक तिथि होवे ऐसा हमारे छात्र खांबटे शास्त्री जी ने लिख दिया और हमको यह बात सम्मत होने से हमने सही कर २ सभा में पेश किया और सभा खतम हुई. बाद तारीख २७-११-२९ ई० को जा. नं. २४ से दीनानाथ शास्त्री जी ने तारीख १६-११-२९ को किस आशय से हमने वचनों को उद्धृत किया है यह बात न समझकर हकनाहक अक्षय तृतीया का निर्णय का पन्ना का पन्ना हिंदी भाषा टीका समेत लिखकर उस वचनों का अर्थ आपको समझा नहीं इस आशय का पत्र लिख भेजा. उसके ऊपर से धर्मशास्त्र दृष्टया फिर से लिखते हैं कि हमने जिस आशय से वही पंक्तियां उधृत की थीं वह हमारा आशय बिलकुल बराबर है और इस विषय में निर्णयसिंधु वादि सब ग्रंथों में लिखा है जिसमें अभी फक्त हम निर्णयसिंधु और पुरुषार्थ चिंतामणि यह दो पुस्तक का ही आधार लिखते हैं.

निर्णयसिन्धु पत्र ३३५ [पंक्ति १४]

अथ क्षयाहद्वैधे निर्णयः तत्रैकोदिष्टं मध्यान्हे कार्यम् । मध्यान्हश्च पंचधाविभक्त दिन तृतिय भागः इति माधवः । आमश्राद्धंतुपूर्वाण्हे एकोदिष्टंतुमध्यमे । पार्वणं चापराण्हेतु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् । इति हारीतोक्तौ प्रात शब्द साहचर्यात् तत्रापि कुतुपादिषु मुहूर्त द्वितये ज्ञेयम् । प्रारभ्य कुतुपे श्राद्धं कुर्यादारोहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणंतुनलंघयेत् इति गौतमोक्तेरेतत्परत्वात । रौहिणो नवमो मुहूर्तः । मैथिला श्राद्धं कौमुदी चेयम् । अन्यथा—**ऊर्ध्वंमुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्त चतुष्टयम् । मुहूर्तपंचकं ह्येतत्स्वधा भवन मिष्यते** । इत्यादि विरोधात् । दीपिकाऽपि " एकोदिष्टमुपक्रमेत कुतुप इति । माधवीये व्यासोऽपि कुतुपःप्रथमेभागे एकोदिष्ट मुपक्रमेत् । आवर्तनसमीपेवा तत्रैव नियतात्मवान् । पृथ्वी चंद्रोदयेऽप्येवम् । तेन **कुतुपादि रौहिणांतो मुख्यः कालः । दिनद्वये तद्व्याप्तौवासमव्याप्तौच पूर्वा** । विषमव्याप्तौ वाधिक्येन निर्णयःअव्याप्तौ **पूर्वैव** । परविद्धाया निषेधात् । साच पूर्वदिने रौहिणलंघनापत्तेः पूर्वामिति गौडाः **शुक्लकृष्णवशा त्खर्वदर्पादैर्वा व्यवस्थेत्यन्ये** । तन्न परविद्धा निषेधप्राबल्यात् । अत्र मूल काल माधवीये ज्ञेयम् । पार्वणंत्वपराण्हे कार्यम् पूर्वोक्तवचनात् । नि. सिं. ३३६ पृष्ट पंक्ति ६—यत्त

कार्ष्णाजिनि न्यायो—“ अन्होऽस्तमल्पवेलायाम् कलामात्रायदातिथि: । सैवप्रत्याब्दिके ज्ञेया नापुत्रपुत्रहानिदा । इति त्रिमुहूर्तस्तुति: पूर्वेद्यु:सायं त्रिमुहूर्ताभावेतु परैव । त्रिमुहूर्ता न चेत् ग्राह्या परैव कुतुपे हिसा । इति कालादर्शे गोभिलोक्ते: कालादर्शेऽपि प्रत्याब्दिकेप्येवमेव तिथिर्ग्राह्या पराण्हिकी । उभयत्र तथात्वेतु महत्वेन विनिर्णय: । पुरुषार्थ चितामणी पृष्ट ३७३ पंक्ति ४

तत्र निषिद्ध काल माह मनु: । रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिताहिसा । संध्ययोरुभयोश्चैव सूर्येचैवाचिरोहिते । इति बौधायन:— चतुर्थे प्रहरे प्राप्ते य: श्राद्धं कुरुते नर: आसुर तद् भवेत् श्राद्धं दाताच नरकं व्रजेत् । माधवे शिवराघव संवादे— प्रात:काले तु न श्राद्धं प्रकुर्वीत कदाचन । नैमित्तिकेषु श्राद्धेषुन कालनियम:स्मृत: इति ग्रहादिव्यतिरिक्तस्य प्रक्रमे कुतुप:स्मृत: । कुतुपादथवाऽप्यर्वागासन्न कुतुपे भवेत् । इति माधवे शिवराघव संवाद वचनेन गांधर्वेऽप्यारं भस्योक्तत्वेनार्थात्संगव निषेध: । तात्पर्यम् । कुतुपादारभ्य सायंकालात्प्राक्तनानैमित्तिक श्राद्धस्य काल: । इति ।

इस धर्मशास्त्र वचनों से यह बात सिद्ध होती है कि पार्वण श्राद्ध में पंचधा विभक्त आपराण्ह को ही मुख्य माना है । उसके अभाव में रौहिणयुक्त कुतुप ही मुख्य है. क्योंकि पुरुषार्थ चिंतामणी में साफ २ लिख दिया है कि प्रात:काल, संगवकाल और अपराण्ह रहित—सायंकाल और रात्र यह काल के विभाग श्राद्ध में वर्ज्य है । यदि पंचधाविभाग श्राद्ध में न माना जाता तो यह निर्णय लिखना अनुपयोगी ही था । इसलिये पंचधाविभाग मानकरही श्राद्धादि तिथियों का निर्णय करना सर्व शास्त्र के ग्रंथों को मान्य है । वही शास्त्र सारे जगत को मानना उचित है । धर्मशास्त्र ग्रंथों में केवल वचनात्प्रवृति और वचनान्निवृत्ति होने से हम धर्मशास्त्र को वेद तुल्य समझते हैं । और प्रदोषादि व्रतों में भी दश घटि क्षय होने से बाधा आती है । परन्तु समयाभाव से विशेष लिखना इष्ट नहीं मानते । यदि शास्त्रार्थ में कोई धर्मशास्त्र समझनेवाले होय तो इस विषय में पूरा २ निर्णय दे सकते हैं । इस श्राद्धादि विषय में पंचधाविभाग मानना यही सर्वथा उचित है । लेकिन कोई त्रेधाया द्वेधाही विभाग आग्रह से स्वीकृत करे तो उसके भी मत में दश घटीक्षय मानने सें दोष आते हैं । इत्यलम् ।

विशेषस्तु सब धर्मशास्त्र से अर्थापत्ति से सिद्ध हुवा २ बाण वृद्धि: रस क्षय: यह सिद्धांत लेकर ही पचांग बनाया जाय तो धर्मशास्त्र संमत हो सकता है इतिशम् ॥

ता० २४-११-२९ ई०

पं० रामकृष्ण शास्त्री साठे,
व्याकरण धर्म शास्त्राध्यापक संस्कृत महा विद्यालय इंदौर.

सभापति महोदय के मंडनात्मक लेख पत्र नंबर २७ के प्रतिखंडन में
श्रीयुत रामकृष्ण शास्त्री का दिया हुआ तीसरा पत्र.

पं. दीनानाथ शास्त्री इनको सा. न. वि. वि. कीः—

आपने ता. २७-११-२९ को यह पत्र लिखा है किः—

" प्रबन्धेऽस्मिन् एकोदिष्ट श्राद्धस्य मुख्यकालः [पृ. २ पं. १७-१८] मध्ये कुतुपादि रोहिणान्तो उक्तः अतः अमावास्यादिनं गौणः कालः लिख्यते तद्दिने श्राद्धकालस्य विधानोक्तिः ततश्च दिनद्वय अव्याप्तौ पूर्वेव [पृ. २ पं. १८] मध्ये भवद्भिः उक्तं अतः अपराण्ह कुतुपेन सह मुख्यकालः दिनस्य एक तृतियांशमितो भवति तस्यैवभागस्य मनुना अपरत्र मुख्यकालः उक्तत्वात् इत्यतः दिनद्वये अव्याप्तौ इतिकथनेसति अकीर्तितस्य दश घटिकामित तिथिक्षय कालस्य अर्थापत्यासिद्धिः तस्य व्यवस्थायाः उक्तत्वात् इत्यलम् ता. १७-११-१९२९ ई.

दीनानाथ शास्त्री.

इसके उत्तर में **पं० रामकृष्ण शास्त्री का हिन्दी पत्र.**

यह आपका लेख देखकर हमको बडाही रंज पैदा होता है कि हमारे लेख का आशय आपके ध्यान में नहीं आया. शास्त्र का आशय समझना यह बडाभारी काम है. अस्तु आपके लेख में 'अमावास्या दिनं गौणः कालः' ऐसा लिखा है उसका अर्थ कुछभी होसकता नहीं क्योंकि हमारे लेख में अमावास्या का नाम मात्र भी नहीं है. दुसरा 'अपराण्ह कुतुपेनसह' ऐसा आपके लेख में लिखा है यह अपराण्ह कुतुप क्या चीज होती है यह हमको समझता नहीं है. अस्तु. लेकिन आपके लेख का आशय हमारे मत से ऐसा निकलता है कि १४ घटी से २४ घटी तक श्राद्धकाल मुख्यकाल माना जाता है और वह दश १० घटी परिमित होनेसे दिन का तृतीयांशही है लेकिन परिमाण से यद्यपि यह दिन का तृतीयांशही हुवा होगा तोभी दिन का त्रेधा विभाग करे तो इसमें का आधाकाल द्वितीय भाग में और आधाकाल तृतीय भाग में जाता है. इस बात से यह नहीं सिद्ध होता कि दश १० घटी का क्षय करना संमत है. हमारे लिखे हुवे प्रबन्ध में पहिली दो निर्णयसिंधु की और अखेर पुरुषार्थ चिन्तामणि की प्रमाण बतलाई गई है. जिसमें निर्णयसिंधु के पहिले भाग का इतनाही आशय है कि पंचधा विभाग मानना उचित है. निर्णयसिंधु के दुसरे टप्पे में पार्वण श्राद्ध का काल बतलाया है. अखेर पुरुषार्थ चिन्तामणी के प्रमाण से श्राद्ध के निषिद्ध काल बतलाये हैं. और अखेर तात्पर्यद्वारा निर्णय लिख दिया है ऐसा होते हुवे भी लेख का आशय यदि ध्यान में नहीं आवे तो हमारा इलाज नहीं है गये लेख में हमने फक्त प्रमाणों का उद्धृत किया है लेकिन उदाहरण नहीं बतलाया था सो इसमें बतलाते हैं. मानों अष्टमी के

दिन का पार्वण श्राद्ध है और सप्तमी तिथि १४ घटी ० पल है और दुसरे दिन अष्टमी १४ घटी ० पल है पहिले दिन अपराण्ह काल में अष्टमी न होनेसे उस दिन भी श्राद्ध कर सके नहीं और दुसरे दिन १४ घटी तक ही होने से गौण कुतुपयुक्त रोहिण काल में भी नहीं है. इसलिये दुसरे दिन भी अष्टमी का श्राद्ध कर सकते नहीं. ऐसी १० घटी का क्षय मानने में आपत्ति आती है. इसीही तोर से प्रदोष में भी आपत्ति आती है. सूर्यास्त से ६ घटी का परिमित प्रदोष का मुख्यकाल है और सूर्यास्त के पहिले ३ घटी प्रदोष का गौणकाल है. ऐसे परिस्थिति में यदि प्रदोष का विचार करना होतो, मानों पहिले दिन द्वादशी १२ ३६ घ० और ४० पल है और दुसरे दिन त्रयोदशी ३६ घ. और ५८ पल है, इस परिस्थिती में पहिले दिन मुख्यकाल में न होने से और दुसरे दिन गौणकाल में भी न आने से प्रदोष में दोष आता है. हमारे पद्धत से यदि मानाजाय तो आपसे ३ घटी हमारी तिथी जादा होने से हमारे को श्राद्ध निर्णय में, और प्रदोष निर्णय में दोष आता नहीं. और भी बहोत प्रमाण इस विषय में है. लेकिन् समयाभाव से लिखते नहीं. और प्रार्थना करते हैं कि विषय को न समजते हुवे आपका अमूल्य काल खर्च करके हमको वृथाश्रम न देवेंगे. इत्यलम् । ता. १-१२-२९ ई.

पं. रामकृष्ण शास्त्री साठे.

लेखक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

श्रीयुत साठे शास्त्रीजी साष्टांग नमस्कार।

आपके तारीख १६-११-२९ के पत्र का उत्तर तारीख २०-११-२९ को हमने दे दिया तोभी नजानें फिर से वही बात आपने २४-११-२९ के पत्र में लिखी हैं। आपका प्रश्न इतना ही है कि "१० घडी का क्षय होगा तो श्राद्धादि कार्य में बाधा आती है" हमने गत पत्र में बता दिया है कि श्राद्ध का गौण कर्मकाल १५ घडी का १२ ग्रंथों के प्रमाणों से सिद्ध होता है तथा मुख्य कर्मकाल १० घडी का है जोकि आपने भी "ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतुपात् यन्मुहूर्तचतुष्टयं ॥ मुहूर्तपंचकं ह्येतत्स्वधा भवन मिष्यते॥ इसी पत्र में लिख दिया है । क्योंकि पांच मुहूर्त की १० घडी ही होती हैं । और आगे दिनद्वये तदव्याप्तौ वा समव्याप्तौच पूर्वा को भी लिख दिया है सो इसी की फैलावट करके देखें तो निर्णय होजाता है।

क्योंकि मुख्य काल में व्याप्ति नहीं हो या दोनों दिन मुख्य काल में व्याप्ति हो तो पूर्वा करें यही इसका धर्मशास्त्र में निर्णय कहा है। क्योंकि मुख्य काल में चाहे अव्याप्ति होजाय क्योंकि मुख्य काल (मुहूर्त पंचक रूप) १० घडी का है और तिथी का क्षय भी सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर को प्रत्यक्ष देखने से १० घडी तकही

होता है। सो कचित् इतनी तिथि घट जावे तो गौण काल तो पंद्रह घडी का रहता है उस गौणकाल में जिस दिन व्याप्ति रहे वही श्राद्ध का काल माना है। इससे १० घडी के क्षय से धर्म शास्त्र में बाधा नहीं आती प्रत्युत दश घडी का क्षय नहीं मानने से आती है। वह यह है कि मुहूर्त पंचकरूप १० घडी के मुख्य काल की जब कि अव्याप्ति हो नहीं सकती तब दिनद्वये तदव्याप्तौ यह धर्मशास्त्र का वचन व्यर्थ गिरता है। अर्थात् ६ घडी का क्षय मानने में दोनों दिन में अव्याप्ति हो ही नहीं सकती फिर धर्मशास्त्र में यह वचन क्यों कर कहा।

यह सब शंका समाधान की बातें गत पत्र में हमने लिखदी हैं। किन्तु फिर से वही बातें थोडी बहुत और मिलाकर आपने इस पत्र में लिखने से वही उत्तर लिखने में हमको पुनरुक्त दोष नहीं लगे इसलिये तथा इस विषय का पूर्ण निर्णय होजाने के लिये नीचे लिखे प्रकार के प्रश्न (मुद्दे) उपस्थित करके उनको इस पत्र में सप्रमाण रीति से हलकर देते हैं ताकि हमेशा के लिये यह झगडा तय होजाय।

प्रश्न [मुद्दे]

१ हमारे धर्म के प्रमाणभूत कितने ग्रंथ हैं और उनमें तिथि का वृद्धि क्षय क्या ५-६ घडी का (बाण वृद्धी रसक्षयः) लिखा है। या उक्त कथन अनुमान कल्पित है।

२ यदि अनुमान कल्पित है तो भी यह योग्य अनुमान से है या भ्रामक कल्पना मात्र है तो क्या धर्मशास्त्र से तिथि का वृद्धिक्षय और ही सिद्ध होता है ?

३ ऐसा होने का कारण क्यों ऐसी भिन्न कल्पना कब व क्योंकर हुई और क्या प्राचिन कल्पना आधुनिक सूक्ष्ममान से मिलती है।

४ क्या आकाश में तिथि प्रत्यक्ष में दिख सकती है ? यदि दिखती है तो उसे हम कैसे देख सकते हैं। और उसके स्वीकार करने में आर्ष वचन में बाधा आती है क्या ?

५ प्रत्यक्ष तिथि के संबंध में प्राचीन कल्पना किस प्रकार थी। आज किस प्रकार की है और हमें कैसी रखनी चाहिये।

६ अब इसका सिद्धान्त रूप में क्या निर्णय हो सकता है।

बस इस ६ मुद्देपर हम इस पत्र में क्रमशः हमारे विचार प्रकट करते हैं आशा है कि शास्त्रीजी का इससे समाधान होकर प्रचलित पंचांग शोधन के कार्य में (शुद्ध सूक्ष्म गणित के पंचांग की तिथि ही धर्मानुष्ठान में लेना योग्य है ऐसा) आप योग्य अनुमति देवेंगे !

पहिले प्रश्न का उत्तर.

हमारे धर्मशास्त्र ग्रंथों में निम्न लिखितानुसार १४ ग्रंथों के प्रमाण माने जाते हैं वह ग्रंथ * ये हैं।

(१) हमारे धर्म के प्रमाणभूत कितने ग्रंथ हैं और उनमें तिथि का वृद्धि क्षय क्या ५/६ घडी का लिखा है या उक्त कथन अनुमान कल्पित है.

१ पुराण व महाभारतादि इतिहास दर्शक ग्रंथ
२ न्याय व वैशेषिक तर्कशास्त्रीय ग्रंथ
३ मीमांसा= वैदिक मंत्रों का अर्थ लगाने वाला विचार शास्त्र
४ स्मृति= प्राचीन प्रणाली के दर्शक धर्मशास्त्र ग्रंथ
५ शिक्षा= पठन पाठन पद्धति युक्त स्वर शास्त्र
६ कल्प= प्रकारांतर से सत्य वस्तु को बताने वाले प्रयोग ग्रंथ
७ व्याकरण= शुद्ध लेखन पाठन ज्ञापक शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र
८ निरुक्त= भाषा शास्त्र (वैदिक कोश)
९ छंद= वृत्त गीति आदि का छंदोज्ञान साहित्य शास्त्र
१० ज्योतिष= आकाशस्थ ज्योतियों से कालज्ञान शास्त्र
११ ऋग्वेद= वेद कालीन पद्यात्मक ग्रंथ
१२ यजुर्वेद= वेद कालीन गद्य पद्यात्मक ग्रंथ
१३ सामवेद= वेद कालीन संगीत शास्त्रीय ग्रंथ
१४ अथर्वण वेद= वेद कालीन अर्थ शास्त्रीय एवं शिल्प शास्त्रीय-अर्थवान् ग्रंथ।

इन १४ प्रमाणों को ही धर्मशास्त्र कहते हैं। और यह ऋषि प्रणीत होने से आर्ष ग्रंथ हैं। अतएव इन के वाक्यों को प्रमाण मानना हमारा धर्म है। किन्तु इन ग्रंथों में कहां भी " **बाण वृद्धि रसक्षयः** " लिखा नहीं है। अथवा तिथि की ५ घडी की वृद्धि और ६ घडी का क्षय उक्त प्रमाण ग्रंथों से सिद्ध नहीं होता। अतएव कहना पडता है कि यह कथन अनुमान कल्पित है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर.

यदि अनुमान कल्पित है तो भी यह योग्य अनुमान से है या भ्रामक कल्पना मात्र है। और धर्मशास्त्रीय रीति से तिथि का वृद्धिक्षय कितना सिद्ध होता है.

क्योंकि आकाश में देखना छोडकर जब से स्थूल गणित के सूर्य चंद्रादिकों पर से तिथि बनाने की प्रथा का आरंभ हुआ तब से इस भ्रामक कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है। इसको मैं भ्रामक कल्पना इसलिये कहरहा हूं कि यह हमारे उपरोक्त धर्म प्रमाणों से तथा प्रत्यक्ष गणित से सिद्ध न होते हुए भी उपरोक्त धर्म प्रमाणों से सिद्ध होने वाले प्रमाणों को अप्रमाणित कहने तक की मजल पहुंच गई है। क्योंकि वेद और शास्त्र से तिथि के ९।१० घडी वृद्धि क्षय बताने वाले प्रमाणों को यह लोग गलत कह रहे हैं.

* " पुराण न्याय मीमांसा धर्म शास्त्रांग मिश्रिताः ॥ वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्यच चतुर्दश ॥ १ ॥ [याज्ञवल्क्य स्मृति]

(१) बौधायन ऋषि ने १३ और १७ दिन का पक्ष कहा है इसी प्रकार आपस्तं बादि सूत्रकार, महाभारत और मुहूर्त ग्रंथों में लिखा है । बिना ९।१० घडी के वृद्धि क्षय के पंद्रह दिन में दो दिन की घटबध हो नहीं सकती परन्तु काल माधव में इसको गलत [अर्थ वाद मात्र] कहते हुए न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्नि श्चेतव्य इति इस वेद वाक्य को भी गलत कहा गया है । जोकि वसन्त सम्पात से २७०, १८०, ९० अंश के उपलक्ष में निषेध करके वसन्त सम्पात के दिन अग्नि का आधान करे इस अर्थ में कहा गया है । पीयूषधारा आदि टीकाकारों ने मुहूर्त चिन्तामणि आदि में कहे हुए १३।१७ दिन के पक्षों को खपुष्प तुल्य [अशक्य] कहा है । यह कथन उनका भ्रांति से है । क्योंकि शास्त्र शुद्ध नहीं है ।

[२] धर्मशास्त्र ग्रंथों में कर्मकाल के गौण और मुख्य ऐसे २ भेद कहे हैं उसमें गौण काल का निर्णय नीचे लिखे प्रकार किया जाता है ।

गौण कर्म काल

दैव्य कर्म (देव पूजनादि) — व्रत, उपवास, स्मार्तयज्ञ — पूर्वान्ह काल में सूर्योदय प्रातःकाल से १२ बजे तक

पैत्र्य कर्म (श्राद्धादि) — एकोद्दिष्ठ–युगादि–पार्वणमहालय — अपराण्ह काल में मध्यान्ह से सूर्यास्तकाल तक

उपरोक्त गौणकाल में दिन के समान दो विभाग माने जाते हैं इसलिये इसे द्वेधा विभाग पक्ष कहा है गत [ता० २०-१-२९] के पत्र में १२ प्रमाणों से इसे सिद्ध कर दिया है ।

मुख्य काल का निर्णय कात्यायन स्मृति (खंड १६) में नीचे लिखे प्रकार किया है कि–

पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥ वासरस्य तृतीयेंशे नाति संध्या समीपतः ॥१॥ अर्थात् मुख्य कर्म काल में दिवस का एक तृतियांश ($\frac{1}{3}$) भाग कहा है । अतः सामान्य रीति से ३० घडी का दिनमान हुआ तो २०–३० घडी का कर्मकाल होता है । इसका स्पष्टि करण करते हुए दोनों दिन मुख्य कर्म काल में अमावस्या न हुई तो श्राद्ध कब करना इसका निर्णय कहते हैं कि–

यदा चतुर्दशीयामं तुरीयं मनु पूरयेत् ॥ अमावास्याक्षीय माणा तदैव श्राद्ध मिष्यते ॥ २ ॥

उदाहरण द्वारा इसका स्पष्टी करण ये है कि–

पहिले दिन चतुर्दशी घडी ३० चार प्रहर पर्यंत है दूसरे दिन अमावस्या घडी २० तक ही होने से उक्त कर्म काल में क्षयि माण है। तब दूसरे दिन में घडी १५ से २० घडी तक के अमावस्या में श्राद्ध कर लेना कहा है। क्योंकि श्राद्ध के वक्त मुख्य न रहा तो भी गौण काल रहता है।

ऐसा दोनों दिन अमावस्या की अंशतः व्याप्ति और पूर्ण व्याप्ति के निर्णय में भी वही कर्मकाल को दर्शाया है कि– " **वर्द्धमाना ममावस्यां लभेचेदपरेऽहनि ॥ यामान् त्रीन् ३ अधिकान् ४ वापि पितृयज्ञस्ततो भवत् ॥** १० ॥ उदाहरण द्वारा इनका स्पष्टी करण ये है–

पहिले दिन चतुर्दशी घडी २० के अंदर समाप्त होकर अमावस्या दूसरे दिन अमावस्या घडी २२॥ तीन प्रहर पर्यंत हो अथवा दूसरे दिन अमावस्या घडी ३० चार प्रहर पर्यंत हो तब पहिले दिन कर्मकाल में अमावस्या की पूर्ण व्याप्ति होकर दूसरे दिन भी उसकी तीन प्रहर होतो अंशतः व्याप्ति चार प्रहर हो या पूर्ण व्याप्ति होतो दूसरे ही दिन श्राद्ध करे।

इन तीनों प्रमाणों से तिथि की क्षय वृद्धि १० घडी की [**दिन के $\frac{1}{3}$ भाग मित**] कही है और वेध सिद्ध मान से भी तिथि का ९।१० घडी का वृद्धि क्षय सिद्ध होता है।

इसी प्रकार जाबालिशातातप और हारित में भी लिखा है। रात्री के वृत में भी १०।२०।३० घडी का कर्मकाल अन्यान्य कार्यों में कहा है।

" **त्रिधा विभज्यरात्रिंतां मध्यांशे यत्र तारकम् ॥**
उपोषितव्यं यद्यत्र येनास्तं याति भास्करः ॥ १ ॥ "

(ब्रह्म सिद्धान्त ३।३५ पृष्ठ ४८)

यहां भी [**दिनद्वयेऽपि मुख्यकालव्याप्त्यभाव गौण कालालाभ्यनुज्ञापरत्वात्**] ऐसा गौण काल में करना लिखा है। इसीसे रात्रि व्रत में भी तिथि का ९।१० घडी का वृद्धि क्षय सिद्ध होता है क्योंकि संपूर्ण ग्रंथों में दिन व रात्रि के तीन २ विभाग रूप कर्म का मुख्य काल कहा है। किंतु शाके १०६० में माधवाचार्य ने शाके १५८० में कमलाकर ने शाके १७२२ में काशीनाथ ने अपने काल माधव, निर्णय सिन्धु व धर्मसिन्धु तथा पुरुषार्थ चिंतामणी आदि आधुनिक ग्रंथों में उक्त त्रेधा पक्ष को खींचतान कर अयुक्त बताने का प्रयत्न किया है किन्तु आश्चर्य ये है कि जैसे ऊपर के प्रमाण में दिन रात्रि के तीन विभाग माने हैं ऐसा श्रुत्यादि १४ प्रमाणों से श्राद्ध व्रतादि में पंचधा विभाग कहा नहीं होकर भी उसको आप ने माना है। इसका कारण ही यह दिखता है है कि इस वक्त वेध क्रिया लुप्त होकर स्थूल गणित से इनको तिथि का ५।६ वृद्धि क्षय दिखता था। इसी भ्रांति से कोई गणिताभिक्त ने बाण वृद्धि रस क्षय को अनुमान से काल्पित कर लिया है।

तीसरे प्रश्न का उत्तर.

यदि भ्रामक कल्पना मात्र है तो भी ऐसी कल्पना कब व क्यों कर हुई.

चंद्र स्पष्ट करने में साधारणतः पांच प्रकार से फल संस्कार मध्यम चंद्र में देने पडते हैं। अथवा वैदिक ऋषियों के माफक उसका सतत वेध लेना पडता है किन्तु इन दोनों बातों में केवल अर्वाचीन ग्रंथ बचनों को आर्ष वचन न होते हुए भी आर्ष वचन मान कर वेध लेना छोड दिया इसलिये चंद्र में सिर्फ एकही मंदफल संस्कार दिया जाने से वह स्थूल रहने उनको यथार्थ में तिथि की घट बध समझी ही नहीं किन्तु धन्य है उन प्राचिन ऋषियों को कि शाके ४२१ के प्राचिन काल में प्रत्यक्ष वेध लेकर आपने तिथि का वृद्धि ९ क्षय १० वह निश्चित किया है कि सूक्ष्माति सूक्ष्म यंत्रों से आजभी वही काल निश्चित होता है जो कि हमारे ऋषियों ने कहा है।

चौथे प्रश्न का उत्तर.

क्या आकाश में तिथि प्रत्यक्ष दिखती है? दिखती है तो हम उसे कैसे देख सकते हैं? और उस प्रत्यक्ष तिथि से आर्ष वचन में बाधा आती है क्या।

सूर्य चंद्र के १२ अंश के अंतर से एक तिथि ऐसे ३६० अंशान्तर में ३० तिथि हो जाती हैं। इनको प्रत्यक्ष देखना हो तो सूर्य के अस्त हुए की स्टँडर्ड टाइम से ४८ मिनिट याने २ घडी के अंतर से एकेक तिथि होती है। उसका दर्शक कोष्टक ये है। किन्तु इसमें सूर्योदय सूर्यास्त काल ६ बजे का लेकर कोष्टक रचना की गई है। सूर्य चंद्रास्त के अनुलोमान्तर से शुक्ल पक्ष की और प्रति लोमान्तर से कृष्ण पक्ष की तिथि प्रत्यक्ष तया निश्चित हो सकती हैं। अनुलोम का उदाहरण है कि सूर्यास्त ६ बजे हुआ उस दिन चंद्रास्त ६-४८ को हुआ तो प्रतिपदा तिथि भुक्त होगई ऐसे ही सूर्योदय के बाद चंद्रोदय से भी शुक्ल पक्ष की तिथि निश्चित होती हैं।

तिथि समाप्ति काल.

तिथि	घंटा	मिनिट
३०	६	०
१	६	४८
२	७	३६
३	८	२४
४	९	१२
५	१०	०
६	१०	४८
७	११	३६
८	१२	२४
९	१	१२
१०	२	०
११	२	४८
१२	३	३६
१३	४	२४
१४	५	१२
१५	६	०

प्रति लोम के उदाहरण में सूर्योदय से चंद्रास्त किंवा सूर्यास्त से चंद्रोदय को देखकर कृष्ण पक्ष की तिथियों का निश्चय होता है। सूर्य चंद्रको सम सूत्रीय देखकर पौर्णिमान्त का और एक सूत्रीय देखकर अमान्त का निश्चय हो सकता है।

प्राचीन काल में इस प्रकार प्रत्यक्ष देखकर तिथि का निश्चय कर लेते थे। परन्तु वराहमिहिर व आर्य भट्ट के अर्वाचीन काल में यह वेध क्रिया लुप्त होते २ माधवाचार्य के बाद तो बहुत ही लुप्त होगई।

पांचवें प्रश्न का उत्तर.

प्राचिन कल्पना व आर्ष कथन

प्रत्यक्ष तिथि के संबन्ध में प्राचीन कल्पना किस प्रकार थी।

स्मृतिःप्रत्यक्ष मैतिह्यम्। अनुमान चतुष्टयम्॥
एतैरादित्य मण्डलम्। सर्वै रेव विधास्यते॥ १॥
संवत्सरःप्रत्यक्षेण सर्वैरेव विधास्यते
[तै. आ. १-२ १-२]

आज किस प्रकार की है और हमें कैसी रखना चाहिये।

"षड है र्मासान्संपश्यन्ति। अर्द्ध मासैर्मासान्संपश्यन्ति इति॥
[तै. सं. ७-५-६]

" सत्यंहि वैचक्षुस्तस्माद्यदि दानीं द्वौ विवदमाना वेयाता महमदर्श महमश्रौ षमिति। यएव ब्रूयादहम दर्श मिति तस्माएव श्रद्ध्याम तत्सत्ये नै वै तत् समर्द्ध यति॥
[श. ब्रा. १-२-४-२७]

आर्ष धर्मोपदेशंच। वेद शास्त्रा विरोधिना॥यस्तर्केणानु संधत्ते सधर्मं वेदने तरः॥ १॥
(इति न्याय वार्तिके कुमारिलः)

वर्तमान कालीन कल्पना व कथन.

मूला शुद्धिर्महर्षीणां वचने यदि तर्क्यते॥
तदास्म दादिवत्तेषां सर्वज्ञत्वं नयुज्यते॥ १॥
अतस्त दुप धर्मेषु मिथ्यात्वादि विभावनात्॥
वेदोक्त फल सिद्धयर्थं प्रतिभानावतिष्ठते॥ २॥
इत्थं प्रसज्जते सर्व विश्वासा भाव भावना॥
तिथ्यादि तदनुष्ठेय कर्मणान्तु कथैवका॥ ३॥
आस्तां तावद्दूरि वादा लौकायतिक कल्पना॥
यानिरस्ता समस्तैव प्रशस्त श्रुतिशालिभिः॥ ४॥
प्रकृतेतु महर्षीणां सर्वज्ञत्व प्रथाजुषाम्॥
आज्ञयैव प्रवर्तते धर्म कर्माणि यत्नतः॥ ५॥
तैरेव पुनरादिष्टा द्वेधा गणित कल्पना॥
दृष्टादृष्ट फल प्राप्त्यै ततो धर्म व्यवस्थितिः॥ ६॥

पं० दुर्गाप्रसादजी जैपुर सं. १९५८ के अधिमास परीक्षा में कहे हैं।

उपरोक्त प्राचीन व वर्तमान कालिक तिथि विषय की कल्पना का जब आप रूपान्तर देखोगे तब आपको ज्ञात होगा कि कहां तो प्रत्यक्षादि चार प्रमाणों के द्वारा शास्त्रशुद्ध पद्धति से विचार करने की कल्पना थी और कहां उसे शास्त्रीय कसौटी पर लगाने से डरने की वर्तमान में कल्पना होगई है। किंतु ऐसी कल्पना होने का कारण ही हमें यह दीखता है कि वराहमिहिर के इधर के काल में ऊपर की ऊपर वेध लेने की पद्धति का लोप होजाने पर आर्य सूर्य ब्रह्म सिद्धान्तादि आर्ष ग्रंथों को

युगान्तरीय एवं गलत गणित के कहकर उनके ही नाम पर आर्यभट्ट, मय [मीयांय॰ वनाचार्य] व ब्रह्मगुप्त के बनाये ग्रंथों को आर्ष ग्रंथ मानना है। यद्यपि इनको आर्ष ग्रंथ के परिमाण स्थूल मालूम होते हैं किन्तु उस वक्त प्रत्यक्ष वेध प्रामाण्य मानने के कारण तिथ्यादि निर्णय में इन्होंने इतना सूक्ष्म मान निश्चित कर लिया था कि आज भी वह वेध सिद्ध सूक्ष्म गणित से ठीक २ मिलता है। इसलिये उक्त भ्रामक कल्पना को त्याग कर आर्ष माने हुए ग्रंथों को ही आर्ष मानें तो उनका स्वीकृत तत्व सत्य २ होने से उसमें बाध आने का कारण ही नहीं है।

छठे प्रश्न का उत्तर.

अब इसका सिद्धान्त रूप में क्या निर्णय हो सकता है।

तिथि यह सूर्य चंद्रान्तर से प्रत्यक्ष दिखने वाली वस्तु है इसलिये जिस शास्त्र से इसका प्रमाण हमें यथार्थ दिख सके याने दृग्गणितैक्य होजाय वही ज्योति शास्त्र हमें प्रमाण्य है। हम इसको मानते हैं। इसको नहीं मानते ऐसा उपरोक्त १४ प्रमाणों में कहीं २ नहीं है फिर असिद्ध बातको सिद्ध करने का प्रयत्न क्यूं करें. इसमें न तो आर्ष वचन लोप होता है न व्रतोपवास श्राद्धादि में उक्त काल का लोप होता है प्रत्युत तिथि की ९ घडी वृद्धि और १० घडी तक का क्षय प्रत्यक्ष से और आर्ष ग्रंथों से सिद्ध होता है इसलिये **अंक वृद्धीदर्शक्षयः** यह पद हमने प्रभाकर में लिखा है सो इसका आप स्वीकार करें।

उपसंहार

यद्यपि आपके पत्र में और भी बहुत बातें हैं किन्तु वे सब मुद्दे को छोडकर होने से प्रकृत कार्य में उसका उत्तर देने से कुछ लाभ नहीं दिखने से उनका उत्तर दिया नहीं।

भवदीय,

दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

पंचांग कमेटी तारीख १०-११-१९ ई० की सभा में आया नीलकंठ का पत्र.

लेखक पंडित नीलकंठ मंगलजी ज्योतिष तीर्थ

रा. रा. प्रेसिडेंट साहिब पंचांग कमेटी इंदौर

सेवामें

सा. न. वि. है कि ग्रहलाघव ग्रंथ पर से जो पंचांग बनाये जाते हैं वे क्यों अशुद्ध है इस विषय में यदि विचार किया जाय तो इसका मुख्य कारण ग्रंथ के नाम से ही जाहिर होता है तो भी उस ग्रंथ में किस कदर स्थूलता हुई यह देखना भी एक आवश्यक बात है और इस विषय में श्री महामहोपाध्याय पं. सुधाकरजी द्विवेदी इन्होंने महान परिश्रम करके सिद्धान्त त्रय से अहर्गण तथा जिन २ सिद्धान्तों से जो २ ग्रह वा उच्च श्रीगणेश देवज्ञ ने

साधन किये हैं उन २ सिद्धान्तों से यथोक्त गणित करके ग्रहलाघवोक्त क्षेप तथा ध्रुवक इन्होंने सिद्धान्त गणित से आया हुवा वास्तविक अंतर दिखलाते हुए इस ग्रहलाघव की उपपत्ति करके इस ग्रंथ के प्रत्येक अधिकार में ही नहीं किंतु अधिकांश श्लोकों में जो स्वल्पान्तर ग्रहण किये हैं दिखाया है यह सब उन्होंके सोपपत्तिक ग्रह लाघव से प्रसिद्ध है ही तो भी उदाहणार्थ क्षेप और ध्रुवको में अन्तर होने से मध्यम ग्रहों में आज कितना अंतर हुवा इसका खुलासा संक्षेप में नीचे लिखे मुजिब है श्रीगणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव शके १४४२ में बनाया जिसको आज ४०९ वर्ष होगये और उन्होंने ११ वर्ष का चक्र माना उस हिसाब से चक्र ३७ हुए हैं जो ध्रुवकों में एक चक्र जनित अन्तर था वह अन्तर अब ३७ पट क्रम से बढा इसका सविस्तार कोष्टक साथ पेश है।

एक चक्र जनित क्षेपकांतर तथा ध्रुवांतरम्.

ग्रह.	ग्रंथ नाम.	क्षेपरा. अं.क.वि.	क्षेपान्तर.	ध्रुवक.	ध्रुवान्तर.
रवि.	ग्रह लाघव	११-१९-४१'-०"		०-१-४९'.११"	
	सूर्य सिद्धान्त.	११-१९-४१-१३	न्यून १३"	०-१-४९-११	० ध्रुवान्तर.
चंद्र.	ग्रह लाघव	११-१९-६-०		०-३-४६-११	
	सूर्य सिद्धान्त.	११-१९-१५-५२	न्यून ९'.५२"	०-३.४६-११	०
चंद्रोच्च.	ग्रह लाघव	५-१७-३३-०		९-२-४५-०	
	सूर्य सिद्धान्त.	५-१७-४०-२३	न्यून ७'-२३"	९-२-४१-११	३'-४९" अधिक.
गुरु.	ग्रह लाघव	७-२-१६-०		०-२६-१८ ०	
	आर्य सिद्धान्त.	७-२-३१-४३	न्यून १५'-४३"	०-२६-१६-५३	१'-७" अधिक.
मंगल.	ग्रह लाघव	१०-७-८-०		१-२५-३२-०	
	आर्य सिद्धान्त.	१०-६-२९-५	अधिक ३८'५५"	१-२५-२७-१४	४'-४६" अधिक.
राहू.	ग्रह लाघव	०-२७-३८-०		७ २-५०-०	
	आर्य सिद्धान्त.	०-२७-३८-४६	न्यून ०'-४६"	७-२-४६-३३	३'-२७" अधिक.
शनि.	ग्रह लाघव	९-१५-२१-०		७-१५-४२ ०	
	आर्य सिद्धान्त.	९-१५-२२-११	न्यून १'-११"	७-१५-४२-४१	०'-४१" न्यून.
बु. कें.	ग्रह लाघव	८-२९-३३-०		४-३-२७-०	
	ब्रह्म सिद्धान्त.	८-२९-१४-३०	अधिक १८'-३०"	४-३-२८-३४	१'-३४" न्यून.
शु. कें.	ग्र. ला.	७-२०-९-०		१-१४-२-०	
	(ब्र. सि + आ. सि.) / २	७-२०-३९-९	न्यून ३०'-९"	१-१३ ५६ ५०	५'-१०" अधिक.

चक्र १७ जनित ध्रुवान्तर तथा वास्तविक अन्तर.

ग्रह.	ध्रुवान्तर	क्षेपान्तर.	वास्तविकान्तर.	
	अं. क. वि.	क. वि	अं क. वि.	
रवि.	०- ०- ०	०-१३	०-१३ न्यून	ध्रुवान्तर होने से सिद्धांत तुल्य ही है.
चन्द्र.	०- ०- ०	९-५२	९-५२	,,
चन्द्रोच्च.	२-२१-१३	७-२३	२-१३-५०	अधिक है.
गुरू.	०-४१-१९	१५-४३	०-२५-३६	अधिक है.
मंगल.	२-५६-२२	३८-५५	२-३५-१७	अधिक है.
राहु.	२- ७-४९	०-४६	२- ६-५३	अधिक है.
शनि.	०-२५-१७	१-११	०-२६-२८	न्यून है पांच अंश न्यून स्वल्प कहा है सबब
बु. कें.	०-५७-५८	१८-३०	०-३९-३८न्यूनहै	४°।३३′।३२″ धन करना चाहिये.
शु. कें.	३-११-१०	३०- ९	२-४१- १	अधिक है.

उपरोक्त जो मध्यम ग्रहोंमें अन्तर हुवा इतना और उन सिद्धान्तोक्त ग्रहोंमें बीज संस्कार देकर जो क्षेपक धुवक कहे हैं वह बीजान्तर होते अन्तर हुआ है यह एक स्थूलता हुई.

इसके शिवाय ग्रहों को स्पष्ट करने में तथा अन्य वस्तुओं के साधन करने में जो संस्कार आदिं आचार्य ने बताये हैं उन्होंमें अधिकांश में स्वल्पान्तर ग्रहण किये हैं यह दूसरी स्थूलता हुई.

और सिद्धान्तकाल से आज तक कालान्तर वश जो क्रान्ती मंद फल वगैरा में अन्तर होकर स्थूलता हुई यह तीसरी स्थूलता हुई.

ऐसे तीन प्रकार से जिस ग्रन्थ मे स्थूलता हुई अर्थात वह स्थूल कहो चाहे अशुद्ध क्यों के वह अशुद्ध आयही है. और उस पर से बनी सारणीयों पर से पंचांग साधन कहां तक शुद्ध हो सकता है. और वह पंचांग वृतादिक तथा मुहुर्तादि धर्म शास्त्र में कैसे उपयोगी होगा इसका विचार आप सूज्ञ लोग कर सक्त हैं.

नीलकंठ मंगल जोशी.

रा. रा. प्रेसिडेन्ट साहेब पंचांग कमेटी इन्दौर.

सेवामें.

सा. न. विनन्ती है कि मैंने गत बुधवार के कमेटी में जो प्रश्न विनय पत्र के द्वारा पेश किये हैं उन्हों का उत्तर मिलना अति आवश्यक माल्हुम होता है क्योंके पंचांग करता जब के ग्रह लाघव से पंचांग बनाते तो इस वर्ष शके १८९२ अश्विन कृष्ण ३० सोमवार ता. १-११-२९ को समस्त भारतवर्ष में होने वाला सूर्यग्रहण इस ग्रह लाघवी पंचांग में ग्रह लाघव के गणित से आते. वे क्यों नहीं छापा गया इसका योग्य उत्तर मिले. और ता. २१-३-१९३० ई. को ग्रह लाघव के गणित से रवि उदयास्त कितने बजे होंगे और दिन मान कितना रहेगा इसका कुल कच्चा गणित ग्रहलाघव करते उस दिन रवि उदय ५-५३ सुबह पांच बजकर त्रेपन मिनिट पर होगा और रवि अस्त ६-७ शाम को छः बजकर सात मिनिट पर होगा तथा दिन मान ३० घटि ३४ पल रहेगा इसका कुल कच्चा गणित इसके साथ पेश है. और विनन्ती है कि पंचांग कर्ता कमेटी के समक्ष कह चुके हैं की यह पंचांग ग्रह लाघवसे बनाया गया है तो ग्रह लाघव के गणित से रवि उदयास्त में कितना फरक है वो देखें ता. २१-३-१९२४ ई. को पंचांग करता ने अपने पंचांग में उक्त दिन रवि उदय ५-५३ रवि अस्त ६-७ और दिन मान ३०-३६ लिखा है जो हमने ग्रह लाघव से गणित करके लायें हैं उन्हों के समान ही हैं. परन्तु तारीख २१-३-२९ ई. को पंचांग में उक्त दिन रवि उदय ६-२४ रवि अस्त ६-२९ और दिन मान ३०-१३ पंचांग करता ने लिखा है. यह कौन से ग्रह लाघव से साधन करके उन्होंने लिखा है ज्ञात होता नहीं यदि कल्पना करें की पंचांग करता ने ग्रह लाघव के गणित से रवि उदय और रवि अस्त अशुद्ध आते हैं तो उन्होंने उसमें शुद्धी की तो अखेर अशुद्ध पंचांग की शुद्धि केवल इतने ही से होना उन्होंने समझा; क्योंकि और कुच्छ भी शिवाय इसके सूक्ष्म गणित के तुल्य उन्हों के पंचांग में अभी दिखाई दिया नहीं. यह रवि उदय रवि अस्त भी वास्तविक सूक्ष्म से बहुत कुच्छ स्थूल है.

पंचांग साधन पंच तारा साधन वगैरा सब ही ग्रह लाघव के गणित से अशुद्ध आते है; जिन्होंसे लोक व्यवहार है. तो एसी आवश्यक वस्तुओंकी शुद्धी छोड इतनी ही क्यों की गई;

इससे ज्ञात होता है की पंचांग करता यह अच्छी तरह समझ चूके हैं की अपना ग्रह लाघव से किया हुवा कुल गणित अशुद्ध है. परन्तु लोक दृष्टि से बचने के लिये सिर्फ इतनी शुद्धी कर लेना अत्यावश्यक है. क्योंकि रवि उदयास्त तो सब कोई के दृष्टि में बहुधा आता है. शिवाय इसके प्रत्यक्ष में ग्रह लाघव के गणित से आते हुए सूर्यग्रहण को नहीं छापना कहां तक योग्य है. और इसी कारण ही शायत पंचांग कर्ता मेरे प्रश्नों का उत्तर देने से इन्कार करते हैं की क्या-यह विज्ञप्ति ता. २३-१०-२९

नीलकंठ मंगल जोशी.

रा० रा० प्रेसिडेन्ट साहेब पंचांग कमेटी इन्दौर

सेवा में.

सा० न० विनंन्ती है कि पंच तारा ग्रहण उदय अस्त वक्री मार्गी चतुर्थी कालाष्टमी का चन्द्रोदय आदि सूक्ष्म गणित से लेना यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो चुका अब इस विषय में मतभेद बिलकुल रहा नहीं. सिर्फ उभय पक्ष को श्राद्धादि धर्म कर्म यथा-रूचि करते आवे इस हेतु से ग्रहलाघवोक्त प्रकार से तिथी बनाकर उसका एक कालम पंचांग मे देना एसा प्रस्ताव उपस्थित हुवा है. परन्तु ग्रहलाघव से जो तिथी साधन करेंगे वे तिथि अशुद्ध होंगी कारण यह है कि ग्रहलाघव का प्रकार अब बहुतही स्थूल होकर अशुद्ध प्रायही है तो वे अशुद्ध तिथियां यदि पंचांग में दी गई तो शुद्ध पंचांग में एक अशुद्धि का दोष रह कर पंचांग कमेटी को यह दोष हटाते नहीं आया क्या ? यह एक लोकापवाद पंचाग कमेटी के उपर आवेगा.

इसके लिये उन ग्रह लाघवोक्त प्रकार से की हुई तिथियों में सूक्ष्म संस्कार देना या नहीं क्योंकि जहांतक रवि, चंद्र और दोनों की गति सूक्ष्म साधन नहीं होंगी वहांतक तिथि भी शुद्ध नहीं मिलेंगी और प्रत्यक्ष्य में दोष दिखते हुए उसका विचार नहीं करते हुवे यही सदोष तिथियां यदि पंचांग में दी गई तो यह बात उपहास कारक होकर पंचांग कमेटी सूक्ष्मता का विचार नहीं कर सकी ऐसा होगा.

यदि तिथियों में आधुनिक सूक्ष्म संस्कार देने से श्राद्धादि धर्म कार्यों में बाधा आती हो तो अपने प्राचीन सिद्धान्तोक्त प्रकार से रवि, चंद्र साधन करके नलिका बन्धन वा तुरीय यन्त्र आदियों से रवि, चन्द्र अपने संस्कृत गणित के बराबर आये वा नहीं मिलाकर उस पर से तिथि साधन किया जाय जैसे की ग्रहलाघवकार श्रीमान गणेश दैवज्ञ ने वेधोपलब्ध ग्रहों को करके ग्रहलाघव की रचना की उस मुजब करने मे कमेटी की क्या राय है क्योंकि बीज संस्कार और ग्रहों का अन्तर बिना वेध किये ठहर नहीं सक्ता.

यदि वेध करने से जो संस्कार आवें वे देकर तिथि साधन करना तो उसमें परम क्रान्ती प्राचीनोक्त २४ है वो मानना वा आधुनिक सिद्ध २२-२६ है यह मानना वैसे ही रवि चन्द्र के परम मंद फल प्राचीनोक्त लेना वा आधुनिक लेना और त्रिज्या कितनी मानना तथा यंत्रादिकों को बनाने का प्रकार भी प्राचीन गृहण करना या नवीन गृहण करना. कारण यह है कि बिना सूक्ष्म यंत्रो के वेध करना कठिन है. सूक्ष्म संस्कार जो कि आधुनिक विद्वानों ने बडे २ सूक्ष्म यंत्रो से तथा गणित चातूर्य से १०००० त्रिज्या लेकर साधन किये हैं उन्हों को गृहण करने में धर्मकार्यों में क्या बाधा होगी इस पर विचार होना भी अवश्य है.

इस कमेटी में धर्मशास्त्री भी नियुक्त हैं उन्होंको जोभी गणित विषय समझा नहीं तो भी कोन शुद्ध और कौन अशुद्ध है इतना तो आज तक के फैलाव तथा वादावाद से अवश्य ही समझ चुका होगा कि जो शास्त्र प्रत्यक्ष है और जिसमें वचनात् प्रवृति वचनान्निवृति नहीं है ऐसे शास्त्र में जो उसमें प्रमाण हो वोही गृहण करना अवश्य होता है.

जिस काल में गणित से बाण वृद्धि रसक्षय: होता था उस काल में रविचंन्द्र की जो गति थी उससे बर्तमान काल में भिन्न २ गतियां हैं इसको सिधान्तानुसार कोष्टक बनाकर हम कमेटी में पेश कर चुके हैं

जहां पर वचन प्रमाण न होते प्रत्यक्ष प्रमाण है प्रत्यक्षंज्योतिषं शास्त्रं चन्द्राऽर्कौयत्र साक्षिणौ तो इस जगह अप्रमाण बचन का प्रमाण देकर प्रत्यक्ष प्रमाण का विरोध करना कहां तक ठीक होगा. धर्म शास्त्र का कर्तब्य इतना ही है कि जो शुद्ध गणित से बनाया हुआ पंचांग हो उस पर धर्मशास्त्रके प्रमाण से वृतादिकों के निर्णय दें और धर्मशास्त्र कारों ने केवल वचन प्रमाण धर्मशास्त्र होने से किसी भी धर्मकार्य में बाधा नहीं आवे ऐसी योजना धर्म शास्त्र में की हैं.

धर्मशास्त्र सूक्ष्म और शुद्ध पंचांग की तिथी में धर्मग्लानी मानते हैं तो जो तिथी प्रत्यक्ष अशुद्ध होकर जिस काल में जिस तिथी को मानकर श्राद्धादि धर्मकार्य करते हैं उस काल में वह तिथी है ही नहीं तो इससे बडी धर्मग्लानी क्या होगी. यह बात अल्पज्ञ भी जान सकता है.

इन्दौर राज्य का चालू ग्रहलाघवी पंचांग के कर्ता खुद कबूल करते हैं की ग्रहलाघव अब स्थूल होने से अशुद्ध होकर उस में शुद्धी होना अवश्य है तो उस पर से बना पंचांग धर्म कार्य में कैसे शुद्ध हो सकता है इस का विचार खुद धर्मशास्त्री करें यह वि०

ता० २७-११-१९२९

नीलकंठ मंगल जोशी.

लेखक--ज्योतिर्कुल भूषण पं. नीलकंठ ज्योतिषतीर्थ.

रा० रा० प्रसिडेन्ट पंचांग कमेटी इंदौर.

सेवाये.

सा. न. वि.वि. गत सभा में ठहरे मुजब मैं अपना मत निम्न लिखित पेश करता हूं.

पंचांग सूक्ष्म और शुद्ध होना अति अवश्य है.

पंचांग साधन वर्तमान कालिक वेधोपलब्ध मंद फलादि संस्कार संस्कृत रवि चन्द्र से किया जाय.

पचांगस्थ किसी भी रव्यादि ग्रहमें दृक्कर्म संस्कार नहीं दिया जाय.

पंचांगस्थ सबही ग्रह सूक्ष्म और स्पष्ट होकर कदम्ब प्रोतवृत्तीय हों.

पंचांगस्थ सबही ग्रह इतने सूक्ष्म स्पष्ट होना चाहिये कि उन्हों में उक्त दृक्कर्म करने से वे वेधमें आवें .

पंचांग में ग्रहलाघव की तिथी का कालम देना या नहीं इस बाबद एक पत्र ता. २७-११-२९ को मैने पेश किया है वह देखा जाय.

पंचांगस्थ ग्रहोंको दृक्कर्म संस्कार करके बार २ वेधोपलब्ध करते रहना पंचांगकर्ता को अवश्य होकर उस मुजब होते रहना शास्त्रोन्नति का मार्ग है. यह विज्ञप्ति ता. ९-१२-२९ ई.

नीलकंठ मंगलजी जोषी
ज्योतिषतीर्थ

लेखक ज्योतिर्कुल भूषण पं० नीलकंठ ज्योतिषतीर्थ

रा० रा० प्रेसिडेन्ट साहेब पंचांग कमेटी इन्दौर

सेवा में.

सा० न० विनन्ती है कि गत ता० १६-११-१९२९ को सभा मे अनधिकार पं० खांबेटे शास्त्री ने (बाणवृद्धि रसक्षय:) इस बिना आधार प्रमाणशून्य वाक्य को लेकर व्यर्थ विवाद बढाने से उस दिन यद्यपि हम हमारा बनाया हुवा सूक्ष्म गणित का पंचांग कच्चे गणित की कापी समेत लेकर सभा मे उपस्थित थे तोभी पेश हो नहीं सका और हमारे अयनांश वेध वगैरा के बारे में रा० रा० प्रिन्सिपाल आपटे साहेब के अभिप्राय का उत्तर और विचार तथा कमेटी के कभिप्राय आदि कुछ महत्व पूर्ण कार्य हो नहीं सके.

एसा होना कमेटी के कार्य में व्यर्थ बाधा डालना होता है या नहीं इसका कमेटी ने अवश्य विचार करना चाहिये एसी मेरी प्रार्थना है. पं० खांबेटे इन्हों को उक्त सभा मे मैंने प्रश्न किया था कि (बाण वृद्धि रसक्षय:) ऐसा तुम जो कहते हो सो बतावो

यह वाक्य किस ग्रंथ में लिखा है. इस प्रश्न का उत्तर खांबेटे ने संतोष जनक दिया नहीं और कहा की यह वाक्य किसी ग्रन्थ में भी लिखा तो नहीं है परन्तु सर्व मुखी है याने मैंने लोगों के मुख से सुना है.

इसी सिलसिले में हमारे गुरुजी ज्योतिषाचार्य पं. रामसुचितजी त्रिपाठीजी ने कहा की (बाण वृद्धि रसक्षयः) यह वाक्य बृहद् संहिता में लिखा है उस मुजब गुरुजी के वाक्य प्रमाण समझकर मैंने बृहद् संहिता में देखा तो उसमें इस विषय में जो लिखा है उसकी नकल नीचे लिखे मुजब है. बृहद् संहिता पृष्टा २६ अध्याय २

नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्र भोगः । तत्र कदाचित् षट् षष्टि घटिका भवन्ति
कदाचित् चतुष्पंचाशत् । अत्रापि मध्ये संचरति ।
चान्द्रं तिथि भोगः । तस्यापि नक्षत्रवदनधिकता ।

एवं उपरोक्त वाक्य से (बाण वृद्धि रसक्षयः) यह वाक्य कुछ सिद्ध होता नहीं इससे तो (रसवृद्धि रसक्षयः) होकर वह भी कदाचित् होना लिखा है.

और वहांपर दैनिक रवि गति ५९-० और चंद्र ७९०-० लिखी है जो कि सिद्धान्तों से और सुक्ष्म गणितोक्त गति से भिन्न होना मालुम होता है उसका कोष्टक नीचे लिखे मुजब है.

अ. नं	ग्रंथों के नाम.	दैनिक रवि-गति.	दैनिक चंद्र गति.	सूक्ष्म गतिसे अंतरकलाज्यादा वा कमी कोष्टक			
				रवि.	चंद्र.	रवि	चंद्र
१	बृहद संहिता.	५९-०-०-०	७९०-०-०-०	०-३१-०-०	०-२०-०-०	कमी.	कमी.
२	सूर्य सिद्धान्त.	५९-८-०-०	७९०-३४-५२-०	०-२३-०	०-४-५२	कमी.	ज्यादा
३	सिद्धान्त शिरोमणी.	५९-८-१०-२१	७९०-३४-५३-०	०-२२-४९-३९	०-४-५३-०	कमी.	ज्यादा
४	ग्रह लाघव.	५९-८-०-०	७९०-३५-०-०	०-२३-०-०	०-५-०-०	कमी.	ज्यादा
५	प्रभाकर सिद्धान्त जिससे यह सूक्ष्म पंचांग बना है.	५९-३१-०-०	७९०-३०-०-०	०-०-०	०-०-०	०	०

इस मुजब रवि चन्द्र के गतियों में फरक होने से सिद्ध होता है की उस (रस वृद्धि रसक्षयः) की कदाचित् प्राप्ति होती हो न की आज इस पर कमेटी विचार करें यह विनन्ती.

हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों के मूलाङ्कों में कितना बीज संस्कार दिया जाय की वह हमारे धर्म शास्त्रसे विरुद्ध न होते हुवे जिसके द्वारा दृगाणितैक्य हो जाय ? इस प्रश्नके उत्तर में विनन्ती है की उपरोक्त प्रश्न के अनुकूल मेरे भी विचार मेरे ज्योतिषाध्यन के वक्त से ही होकर मै सन १९२७ ई. में ज्योतिषतीर्थ की परिक्षा पास हुवा उसके बाद इस कार्य को करने लिये मैने श्रीमन्त सरदार किबे साहेब डेपुटि प्राइम मिनिस्टर महोदय इन्होकी भेट लेकर विनंती की के मै होलकर स्टेट का वंश परंपरा से आश्रित और राजज्योतिषि घरानेका होकर इसी लिहाज से मैने ज्योतिष शास्त्र का अध्यायन इस वर्ष पूरा किया होकर अब मेरे को काम करने के लिये मदत मिले वगैरा विनंती पर विचार होकर मेरे को मदत मिली और मिल रही है. और उस मदत के जरिये जो काम मैंने किये हैं वे कुल शोध कर अभिप्रायार्थ कमेटी के तरफ दरबार से आये हैं और उसमें रा. रा. प्रिन्सिपाल आपटे साहेब ने जो कुच्छ अभिप्राय वगैरा भेजे हैं उनका लेखी उत्तर संक्षेप में इस पत्र के साथ पेश करता हूं.

मेरे विचार के अनुकूल सिद्धान्त प्रभाकर की रचना होने से पंचांग कमेटी के सब सभासदों से तथा अध्यक्ष से विनन्ती है की इस पंचांग कमेटी के अध्यक्ष पं विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्रीजी ने दश वर्ष असीम परिश्रम करके उपरोक्त प्रभाकर सिद्धान्त अपने सिद्धान्तों में यथोक्त बीज संस्कार देकर बनाया है. और उस पर से उन्होंने प्रभाकर पंचांग कुछ वर्षों के पहले छापे थे उक्त पंचांग की सूक्ष्मता आदि दृगाणितैक्य को देख कर प्रसन्नता पूर्वक लोकमान्य तिलक और प्रोफेसर नाईक आदि महान् विद्वानों ने अनुभव लेकर उक्त शास्त्रीजी को प्रशंसापूर्वक सार्टीफिकेट दिये होने से मेरा भ्रम दूर होकर उक्त प्रभाकर सिद्धान्त यथोक्त बीज संस्कृत होने से उसके आधार से यह सूक्ष्म गणित का " यशवन्त " पंचांग मैंने बनाया जो कच्चे गणित की कापी समेत पंचांग कमेटी की सेवामें पेश करता हूं यह विज्ञप्ति फक्त ता. १९-११-१९, ई.

नीलकंठ मंगलजी जोशी.

नंबर २७ का उत्तर श्रीः पत्र निर्गम संख्या २९
पंचांग कमेटी इंदोर सभा तारीख २४-११-२९ ई०

पंडित रामकृष्ण साठे शास्त्री के आक्षेप के खंडन के मंडन मे दिया हुवा- धर्मशास्त्रीय उत्तर। याने

सभापति महोदय का संस्कृत पत्र.

अयि सभासद् महोदयाः ! प्रत्याविद्यतेस्माभिः ;

हेतु.

१. योग्य काल ज्ञापनार्थ मेव सर्वत्र तिथिपत्रादीनां साधनं भवति तदपि धर्मशास्त्रानुकूल मेव विज्ञापितं पूर्व मेवा स्माभि स्तत्रापि " पूर्वाचार्याननुकुरुध्वम्. " " धर्मशास्त्रातिक्रमणं च मा भूदिति च विचारयत यदि च भाव्ये शुद्ध तिथि पत्रे धर्मशास्त्रातिक्रमणंस्या तदा परिशीलयत तदुपायान् " इति वारं वारं नोपद्रेष्टव्यं भवद्भिः।

प्रस्तुत सभा की स्थापना का कारण

अत्रहि सावधाना एव वयं, क्रियतेच संशोधनं तिथिपत्रस्य तदर्थ मे वा स्माभिराज्ञया श्रीमन्महाराज होलकर राज्ये समधिष्ठितानां प्रधान पदाधि रूढानां श्रीमद्वापना साहेबाभिधाना मुतचोप प्रधान पदाधिष्ठितानां श्रीमंत सरदार किबे साहेब महोदयानाम्।

ग्रहलाघव के अनुसार बनाये हुये पंचांग स्थूल हैं

२. पूर्वन्तने काले ऽस्माभि रपि प्राचीन सिद्धान्तरीत्यैव द्वित्रि वर्षेषु पंचांगानि सम्पादितानि किंचतैर्विगणितेषु रविचंन्द्र, गुरुशुक्रो दयास्तादिषु ग्रहणादिषुच दृग्गणित विसंवादं दृष्ट्वा, मोहमय्यां पुण्य पत्तनेच जातासु पंचांग शोधन सभासु चगत्वा तत्रोपस्थित प्रस्तावानुसारेण निम्न लिखित संप्रत्ययेभ्यश्च सिद्धांतोक्तान्मूलांकान्परीक्ष्य कालान्तरानुसारं बीजं दत्वा तेषां मूलांकानां संशोधनं चास्माभिः कृतम्।

ज्योतिःशास्त्र का मुख्य आधार ' वेध ' है

३. वेधोप लब्धिरेव प्रमाणं ज्योतिःशास्त्रस्येति सिद्धान्तितं प्राचीनैर्नव्यैश्च सर्वै र्ज्योतिर्विद्भिः। ते प्रत्ययाश्चावलोकनेन बहवः सन्ति। तद्यथाहिनित्यं प्रत्ययस्तु सूर्योदयास्त दिन प्रमाणादिभिः भवत्येव। पर्वान्त प्रत्ययस्तु सूर्यचन्द्रयोर्ग्रहणं जगतीतले आबाल वृद्धे भ्यो महान्प्रत्ययः उक्तं चैतद्विषये प्राचीन ग्रंथेषु-

ज्योतिःशास्त्र यह प्रत्यक्ष शास्त्र है.

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम्॥
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ॥ १॥

इत्यनेन चन्द्रदर्शनं चन्द्रशृंगोन्नतिः, चन्द्रोदयास्त कालौ, रव्युदयास्त कालौ, रविचन्द्रान्तरेण पर्वान्त कालः, तिथ्यान्तकालः, ताराचन्द्रयुतिः, ग्रहग्रहयुतिः,

ताराग्रहयुतिः, भेदयुतिः, पिधानयुतिः, नक्षत्र योगकरणादीनां सूर्यचन्द्रोदयास्तान्तरेणोपपत्तिः, महापात योगः सूर्यादीनां ग्रहाणां छाया गणितागता, एते संप्रत्ययाएव।

वेध लेने की रीतियां और दृक्प्रत्यय.

४ यद्यपि भौमादीनां ग्रहाणां छाया दृग्गोचरा वेधसाधनेन बिना नसंभवति तथापि गोचर प्रकारणोक्त प्रकारेण तुरीय नलिकादियंत्रवेधेन यस्मिन्समये सुषिरमध्ये ग्रहाआगच्छन्ति तत्समय संवादात्प्रमाणसिद्धा छायापि संप्रत्ययः। गुरुशुक्रादीनां लोप दर्शनाभ्यां, उदयास्ताभ्याम् नक्षत्राणां ग्रहाणांच याम्योत्तर लंघनेन, ताराग्रहान्तरादिभ्यश्च सं प्रत्यया अवलोकिताः।

अन्तर दूर करने के लिये बीज संस्कार किया जाता है.

५ इत्यादिभिःसंप्रत्ययैः, ग्रंथकारकालिक पंचाङ्गश्च विरच्य तत्काल भवैश्च प्रत्ययै र्निश्चितस्य बीजसंस्कारस्य शुद्धता सूक्ष्मताचावलोकिता। तदुत्तरं-न्निश्चितंचैतत् -

शके १४४२ में 'ग्रहलाघव' नामक ग्रंथ अन्य ग्रंथों की अपेक्षा शुद्ध था.

६ यद्यपि सन्त्यनेके प्रसिद्धाः प्राचीनैरर्वाचीनैश्च विरचिता सिद्धान्ताः करणग्रंथाश्च किन्तु सम्प्रति कालान्तरेण तेच विभ्रष्टा आसन्. अतएव श्रीमता गणेशदैवज्ञेन शके १४४२ काले विरचितं हि कालान्तर संस्कार रूपं बीजं दत्वा तत्काले दृग्गणित साम्यावहं ग्रहलाघवं करणम्।

वर्तमानकाल में 'ग्रहलाघव' के शोधन की आवश्यक्ता.

७ अतएव तदुत्तरं शाके १५९२ मिते वर्षे श्रीमता विश्वनाथ दैवज्ञेन ग्रहलाघव साधित ग्रहणे विसंवादं दृष्ट्वाएतदुक्तम्, तेन–

याते़ऽब्दे ग्रहलाघवस्य धरणी १ क्षोणी १ क्षपेशो १ न्मिते संवीक्ष्य क्षणदा करोष्ण करयोः पर्वार्यं पक्षाश्रितम्॥क्षेपान्सध्रुवकान् रविन्दुशशभृ त्तुंगोद्भवान् भादिकान् दृष्टि प्रत्यय कारकान् गणितविच्छ्री विश्वनाथो ब्रुवे— ॥ १ ॥ इति

८ एवं चावलोक्य शंकित मस्माभिः। 'सर्वेष्वपि सिद्धान्त ग्रंथेषु ग्रहकक्षास्वरूपस्य कल्पना स्थौल्येनैव दृग्गणित विसंवादे प्रधानं कारणम्। ग्रहकक्षासु दीर्घवर्तुलरूपिणीषु सतीषु कथं वर्तुलोपन्यास सिद्धानि ग्रहस्थानानि दृक्तुल्यानि भवेयुः। एवं सत्यपि प्राचीन सिद्धान्तानां गणितं नव्य सिद्धांतेभ्यः इषत्स्थूलमपि दृक्प्रत्ययात् तेषांचाराः शुद्धाएव आसन्। वारं वारं वेधद्वारा शुद्धस्यैव तदा व्यवहारात्।

प्राचीनकाल में पंचांग 'दृश्य गणित' से बनाये जाते थे उसके प्रमाण :

९ यथाचोक्तं भगवताव्यासेन, सिद्धान्त दैवज्ञ कामधेनौच—

" पूर्वार्धं मुत्तरं गोलमाचित्राम धेमादिशेत् ॥
चित्रान्तार्धं ग्रहस्यैव पश्चिमार्धं चदक्षिणम् ॥ १ ॥
पादोनास्तारका सप्त पाद इत्यत्र निश्चितः ॥
सपादंतारा द्वंद्वंस्य, राशिरित्यभि धीयते ॥ २ ॥
रवेर्मध्यमतो हित्वालिप्ताद्यं पौर्णमीततः ॥ "

एव मनूद्य " दृष्ट नक्षत्र नाडिका " इतिचोक्तम् इत्यादि वचनेभ्यःस्तदा चित्रानक्षत्रं क्रांति वृत्ते मध्यं प्रकल्प्य ते नैव राश्यादीनां नक्षत्राणांच समाने विभागे कृते सति प्रत्यक्षं नक्षत्रान्तारादिना ये ग्रहचाराः स्वाधिता स्तेतु शुद्धा एवस्युः ।

१० यद्यपि तेषां ग्रहाणां गणिते स्फुट ग्रहस्य यस्मिन्दिने गतेः परमाल्पत्वं विक्षेपा भावश्च स्यात्तस्मिन्दिने स्फुट ग्रहं पातोन रविमध्य ग्रहंच मध्य खगं प्रकल्प्य ते नैव मंद फलं, विक्षेपः, शीघ्र फलं, चानीय तैः संस्कृते स्फुट ग्रहे यत्किंचिदपि स्थौल्यं स्या त्तत्तु मध्य खगे एव । स्फुट ग्रहस्य नक्षत्रे रेववेधान्नाक्षत्र मानेन तस्य शुद्धता स्यादेव ।

शके ४२७ तक ' दृश्य-गणित ' के पंचांग बनाये जाते थे ।

११ ततो वराह मिहिरोक्त पौलिश सिद्धान्तीय ग्रहचारवत् प्रत्यक्ष वेधोपलब्धेनाहर्गणेन ग्रहसाधन पद्धतिर्यावच्च सौरादीनां च मानानामसदृशसदृश योग्यायोग्यत्वप्रतिपादन पटवः; सिद्धान्तभेदेऽप्ययन निवृतौ प्रत्यक्षं सममण्डल लेखा संप्रयोगा भ्युदितांश कानां छाया जलयन्त्र, दृग्गणित साम्येन प्रतिपादन कुशलाः; ग्रहणादि स्पर्श– मोक्षकाल दिक्प्रमाण स्थिति ग्रहसमागम युद्धानामा देष्टारः; सांवत्सरिकाश्चोक्त लक्षणा आसन्स्म । तावदेव तत्काल भवा ग्रहाणां चारा स्तदनुसारेण पंचांगानिच शुद्धान्येवासन्, तदातु वेध विना परोपदेशात्सांवत्सरिके नक्षत्र सूचकत्वस्य दोष प्रसङ्गात् ।

प्राचीन 'आर्य सिद्धान्त' के आधार से शके ४२१ में आर्यभट ने आर्य सिद्धांत नामक ग्रंथ निर्माण किया.

१२ किन्तु यदा प्रथमार्यभटेन शक ४२१ वर्षे ग्रह गणित सौकर्याय (पंचमांशेन युगसंख्यया च दशभिश्च गुणितैर्भगणां ३६० शैः स्मृतिषु उक्तानि मन्वन्तराणां ३६०÷५=७२ युगानि युग १२००० × ३६०= ४३२०००० वर्षान्, कलियुगारंभ ३६० × १०=३६००–४२१= ३१७९ वर्षान्श्च प्रकल्प्य) आर्वाचीनेषु सिद्धान्तग्रंथेषु तेन प्रथमः सिद्धान्त ग्रंथो रचितः । अतएवोक्तं ब्रह्मगुप्तेन—

शके ५५० में ब्रह्मगुप्त ने उक्त आर्य सिद्धान्त की भूल निकाली ।

" नसमायुगमनुकल्पाः कल्पादिगतं कृतादियातंच ॥ स्मृत्युक्तैरार्य भटोनातो जानाति मध्य गतिम् ॥ १·१० ॥ स्वयमेव नाम यत्कृतमार्यभटेन स्फुटं स्वगणितस्य ॥ सिद्धं तदस्फुटत्वं ग्रहणादीनां विसंवदति ॥ ४२ ॥ आर्य भट दूषणानां संख्यावक्तुं नशक्यते स्माभिः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोक्त मध्य रवि शशि तदुच्चतत्परिधिभिः स्फुटीकरणम् ॥ कृत्वैवं स्पष्ट तिथिर्दूर भ्रष्टान्य तंत्रोक्तैः ॥ (२·३१) इति ब्राह्मस्फुट सिद्धान्ते । एवं अन्य तंत्रोक्तगणितागतमानेषु ब्रह्मगुप्तेन व्यभिचारान्दृष्ट्वा उपर्युक्तानि दूषणानि दत्तानि एवमेवान्ये बहवो ग्रंथकाराः स्वकीयेषु ग्रंथेषु किमपि विशेषतां सम्पाद्य आर्यभट प्रभृति गणेश दैवज्ञान्ताः सिद्धान्तकाराः करणकाराश्च बभूवुः ।

' सिद्धांत प्रभाकर ' के परिमाणों की पाँचों सिद्धान्तों से तुलना ।

१३ यद्यप्येते महाविद्वान्सो ज्योतिशास्त्र निपुणाः नानाविध गणित सिद्धांत प्रतिपादकास्तच्चमत्कार चमत्कृत हृदया आसन्नपि यदा शून्यायनांश (शक २०८) काल सामिप्यात्स्वल्पेषु त्रिषु पंचसु चायनांशेषु सत्स्वपि तदार्यभट, लल्ल, ब्रह्मगुप्तादिभिः साम्प्रातिक ग्रह गतिं स्थितिं चावलोक्य तद्वेध सिद्ध मूलांकैः सायन ग्रहाणां गणितमेव नाक्षत्रमाने नैवाभीभिः कथितम् । अतएव पंच सिद्धांतिकायामुल्लिखितम्—

योग तारा नक्षत्र नाम	ग्रीक नाम	शुद्ध नाक्षत्र मानकं परिमाणं				सायन भाग मिश्रितं मानं			
		भोग अंशादि	शर अंशादि	अष्टमांश विभागे	वराह मिहिर कथिते	आर्यभट (सूर्य-सिद्धांते)	ब्रह्मगुप्त	द्वितीयआर्य	सार्वभौम सिद्धांते
		° '	° '	कला		° '	° '	° '	° '
कृत्तिका	इटाटारी	३६-९	उ-४-२	५.६९	षष्ठांशान्ते	३९-८	३८-५८	३८-३३	३९-२
रोहिणी	आल्डिबरान्	४५-५७	द-५-२८	३.५७	चतुर्थांशे	४८-९	४८-११	४७-३३	४८-९
पुनर्वसु	प्रश्वा	९२-०	द-१५-५१	७.२०	अष्टमेंशे	९२-५२	९२-५२	९२-५३	९२-५३
मघा	रेग्यूलस	१२६-०	उ-०-२८	३.६	अष्टार्धे	१२९-०	१२९-०	१२९-०	१२९-०
चित्रा	स्पायका	१८०-०	द-२-३	४.०	अर्धाष्टम भागे	१८०-४८	१८३-४९	१८२-५३	१८३-५०

उपर्युक्तवत् शुद्ध नाक्षत्र परिमाणेषु सायन भाग मिश्रितं प्रमाणं चाग्रीभिः ब्रह्मगुप्तादिभिः स्व स्व ग्रंथेषु लिखितम् ।

१४ अत्र तु प्रचलित सूर्यसिद्धान्तोक्तानिमानान्येव आर्यभटीय पंक्तौ लिखितानि तद्विषये डॉ. केर्न रचितायां आर्यभटीय ग्रंथस्य प्रस्तावनायाम्—
" सिद्धान्तपंचकविधावपिदृग्विरुद्धमौढ्योपरागमुखखेचर— चार क्लृप्तौ ॥ सूर्यः स्वयं कुसुमपुर्यभवत् कलौतु भूगोल-वित् कुलप आर्यभटाभिःधानः ॥ १ ॥ (भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ १९८ प्रेक्ष्यम्) इति लिखितम् तस्मिन् ग्रंथेऽपि–

'सूर्यसिद्धान्त' यवन निर्मित नहीं है। यह आर्यभट कीही रचना है.

१५ " आर्यभटो निगदति कुसुम पुरेऽभ्यर्जितं ज्ञानम् । " इत्थ मुक्तमत आर्यभटे नैव प्रचलित सूर्य सिद्धान्तो रचित इति ज्योतिर्विल्केतकर महोदयेन स्वरचितग्रहगणिते ज्यो॰ दिक्षितेन भारतीय ज्योतिःशास्त्रेतिहासे च (पृष्ठ १५५) प्रतिपादितम् । इत्यतोद्वयोर्मानान्य भिन्नत्वात् एकत्रैव पठिताः ।

१६ एवमेव उच्चपात स्थानेषु, परमफल, मंदकर्ण, परमक्रान्त्यादिषुच अंतरं वर्तते । यद्यप्यमीभिः स्वनिर्मित सिद्धान्त नामक ग्रंथेषु उच्चपात स्थानानि स्वल्पान्तरान्निश्चितानि तथापि उच्च पातादीनां यथार्थ गते रज्ञानात् - स्वल्पेनैव कालेन एतेषां ग्रंथेषु अंतरं पतितम् । अतएव भूयोभूयो ग्रंथाश्च रचिताः तेषां नामानि—

उच्चपात का अन्वेषण सिद्धान्तकारोंने किया है ।

१७ सिद्धान्त ज्योतिष ग्रंथाः–

प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों के नाम.

१ ब्रह्मसिद्धांत	६ मनुसिद्धांत	११ पुलस्त्यसिद्धांत	१६ च्यवनसिद्धांत
२ मरीचि ,,	७ अंगिरा ,,	१२ वसिष्ठ ,,	१७ गर्ग ,,
३ नारद ,,	८ बृहस्पति ,,	१३ पराशर ,,	१८ पुलिश ,,
४ कश्यप ,,	९ अत्रि ,,	१४ व्यास ,,	१९ लोमश ,,
५ सूर्य ,,	१० सोम ,,	१५ भृगु ,,	२० यवन ,,

यद्यपि एषां कर्तारो आधुनिक ज्योतिष्काराः किंच इमे सर्वे ग्रंथा आर्षा शुद्धा एवासन् किंच वर्तमान काले एतन्नामका ग्रंथाये उपलभ्यंते ते तु शक ४२१ वर्षकालादर्वाचिनैर्ज्योतिविद्भिः कृताःसंति न तु ऋषि प्रणीताः–

" ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्खिलि भूतं ॥
अभिधीयते स्फुटं तत् जिष्णु सुत ब्रह्मगुप्तेन ॥ "

-- ब्रह्मसिद्धान्त १-२

" लाटात्सूर्य शशांकौ मध्याविंदूच्च चन्द्रपातौच ॥
कुज बुध शीघ्र ब्रहस्पति सित शीघ्र शनैश्चरान् मध्यान् ॥ ४८ ॥

ऋषि प्रणीत ग्रंथो के आधार पर सिद्धांतकारोंने उनके ही नामपर ग्रंथों की रचना की है. इसलिये ये आर्षग्रंथ नहीं है ।

युगयात वर्ष भगणान् वासिष्ठान् विजयनंदि कृतपादान् ।
मंदोच्च परिधिपात स्पष्टीकरणाद्यमार्यभटात् ॥ ४९ ॥
श्रीषेणेन गृहीत्वा रत्नोच्चय रोमकः कृतकन्था ॥
एतान्येव गृहीत्वा वासिष्ठो विष्णु चंद्रेण ॥ ५० ॥ "

-- वसिष्ठ सिद्धान्त अ. ११

" यस्मान्नरोमके ते स्मृति बाह्यो रोमकस्तस्मात् ॥ १३ ॥
तद्युगवधो महायुग मुक्तं श्रीषेण विष्णु चन्द्राद्यैः ॥ "

-- ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त अ. ११-५९

" मेषादितः प्रवृत्तानार्यभटस्य स्फुटा युगस्यादौ ॥ श्रीषेणस्य कुजाद्याः "

-- ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त २-४६

" इत्थं माणुव्य संक्षेपात्-उक्तं शास्त्रं मयोदितम् ॥
विस्तृतिर्विष्णु चन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे ॥ "

-- वसिष्ठ सिद्धान्त

" आर्यभटस्याज्ञानान्मध्यम मन्दोच्च शीघ्र परिधीनाम् ॥ नस्पष्टा भौमाद्याः "

- ब्रह्म सिद्धान्त ३-३३

१८ इत्यलं खंडन प्रतिखंडनद्वारेण स्वविशेष ग्रंथ रचयितृणां प्रमाणानि। इमेतु आर्षग्रंथान् दूर विभ्रष्टान्, खिलिभूतान्, अस्फुटानुक्त्वा तेषा मुक्तान्मूलांकाननुक्त्वैव तेषामेव नामयुक्त सिद्धान्त ग्रंथ सम्पादयितृणाम् आर्षत्वं वा आर्षग्रंथलोपकतृत्वम, आर्यत्वं वा अनार्यत्वं भवति इति भवद्भिरेव ऊह्यम्।

१९ एवमेव यथा सूर्यसिद्धान्ते (आनंदाश्रम पुस्तके अधिकारे ७, श्लोक ६-९), (मुद्रित पुस्तके अ. १ श्लोक ६-९)

प्रचलित सूर्य सिद्धान्त यवनाचार्य का बनाया हुवा है. ऐसा प्रमाण

" न मे तेजसहः कश्चिदाख्यातुं नास्तिमे क्षणः ॥
मदंशः पुरुषोयन्ते निःशेषं कथयिष्यति ॥ ६ ॥
तस्मात् त्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानं ददामिते ॥
रोमके नगरे ब्रह्मशापान् म्लेच्छावतार धृक् ॥ ७ ॥
इत्युक्त्वांतर्दधे देवः ॥ ८ ॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ॥
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलम् ॥ ९ ॥

इति कथनेन सांप्रतिकसूर्यसिद्धान्तो म्लेच्छप्रणीतशास्त्राधारेण मयासुरनामेन आर्यभटेन कुसुमपुरे रचित इति श्रीमत्केतकरोक्तिः पूर्वमेव लिपि कृता। इत्यतोस्य तथैव यवन सिद्धान्तस्य, यवनाचार्यस्यच किमन्तर्यत्वं न स्यात् ? तथाच –
" अष्टाविंशाद्युगाद्यस्मा्द्यातमेतत्कृतं युगम् ॥ अस्मिन्कृत युगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः ॥"

सूर्यसिद्धान्त १ . २३, ५७

इस सूर्यसिद्धान्त में लिखे हुए सत्ययुगके अंत्य को २१६५०३० वर्षमान लेना असंभवित बात है क्योंकि परम क्रांति (२३।५८।५) शक पूर्व २१४७ वर्ष की लिखा है।

कृतयुगान्ते अनेन स्वग्रंथ निर्माण कालो दर्शितः। तदुत्तरं तदुक्त गणनया वर्तमाने शक १८५१ काले त्रेता द्वापरौच गतौ तथाच कलि वर्षाः २१,६५,०३० व्यतीताः स्युरितिस्यात् तदा तस्मिन्नेव ग्रंथे– "परमाप्रक्रम ज्यातु सप्तरन्ध्र गुणेन्दवः १३९७" इति कथनेन परमक्रांति २३।५८।३१ गणितेन निष्पद्यते। अस्या ·४७६ विकलात्मिका ऋण वर्ष गतिः तस्मात् शक पूर्व २१४७ वर्षे परम क्रांते रुक्तमानमासीत्। लंकोदयासवों लंवांशाश्च ग्रंथोक्ता आसन्। इत्यत एव विंशतिलक्षपंचषष्टिसहस्त्रादि गत कालस्य मिथ्यात्वं भवत्येव। यो वराह मिहिर प्रोक्तोऽर्क सिद्धान्तः स तु प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथो भिन्नस्तस्य भगणा कुदिनानिच भिन्नत्वात् इत्यतो वराह मिहिर शक ४२७ कालादपि सांप्रतिक सूर्यसिद्धांतस्य प्राचीनत्वं नोपद्यते तस्य वराहेण नामनिर्देशस्याप्यनुक्तत्वात् ॥

रोमक और वसिष्ठसिद्धांत श्रीषेण विष्णुचंद्रने शके पांचसौ में बनाये हैं।

२० किंच रोमक सिद्धान्तः श्रीषेणकृतः। वसिष्ठ सिद्धान्तो विष्णुचन्द्रकृतः। प्रथम ब्रह्मसिद्धान्तः शाकल्येन, आर्यसिद्धान्त आर्यभटेन, पराशर सिद्धान्तो द्वितीयेन आर्यभटेन रचितः। एवमेव सर्वेष्वपि सिद्धान्त नामका ग्रंथाः। प्राचीनोपि ग्रंथस्थानेषु तन्मानानुकत्वैव नव्यैः पंडितैर्निर्मिताः संतिनतु ऋषिभिः प्रणीताः।

उक्त प्रमाणोंसे यह आर्ष-ग्रंथ नहीं है.

२१ ननु 'शुभां विद्यामाददीता वरादपि' 'विविधानिच शिल्पानि समा देयानि सर्वतः॥ अब्राह्मणादध्ययनमापत्काले विधीयते' इति मनूक्तवत् म्लेच्छाहि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदंस्थितम् ॥ ऋषिवत्तेपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैव विद्द्विजः ॥ १ ॥

– बृहत्संहिता २-१४

इति वराहोक्त व म्लेछा अपि ऋषिवत्पूज्यन्ते तदा तन्निर्मित ग्रंथानां वा तेषां ग्रंथाधारान्निर्मितानां ग्रंथाणां आर्षत्वं स्यादिति चेन्न कैमुतिकत्वात्सम्यक् शास्त्रस्याभावाच्च यदा सम्यक्छास्त्रं स्यात्तदैवर्षिवत्पूज्यत्वं स्यादित्युक्तेः

२२ एतेषां शास्त्रस्या सम्यक्त्वं श्रीमता केशव दैवज्ञेनैव शक १४१८ काले ग्रहकौतुके "ब्राह्मार्यभट सौराद्येष्यपि ग्रह करणेषु बुध शुक्रयोर्महदन्तरं अंकतया दृश्यते। मंद आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेस्तेच पंचभागा अधिकाः इति प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते। एवं क्षेपेष्वंतरं वर्ष भोगेष्वपि अंतरमस्ति। एवं बहुकाले बव्हंतरं भविष्यति। यतो ब्राह्माद्येष्वपि भगणानां सावनादीनांच बव्हंतरं दृश्यते। एवं बहुकाले बव्हंतरं भवत्येव। एवं बव्हन्तरे जाते सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणाद्यैर्ग्रह गणितानि कार्याणि यद्वातत्काल क्षेपक वर्ष भागान् प्रकल्प लघुकरणानि कार्याणि। एवं मया परम फल स्थाने चन्द्रग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना मध्यमश्चन्द्रोज्ञातः तत्र फल ऱ्हास वृद्ध्च भावात्..........तत्र चन्द्र, सूर्य पक्षात् पंच कलोनो दृष्टः। उच्चं ब्रह्म पक्षाश्रितं। सूर्यः सर्व पक्षे पीषदंतरः ससौरोगृहितः। ....शनिः पक्षत्रयात्पञ्च भागाधिको दृष्टः।"

केशव दैवज्ञने वेधद्वारा इनके गणितमें कहां २ कितना अंतर है यह बतलाया है

इत्युक्तम्

२३ एव मेव तत्पुत्रेण श्रीमता गणेश दैवज्ञेन शक १४४२ काले ग्रह लाघवे—"ब्रह्माचार्य वसिष्ठ कश्यप मुखैर्यत्खेटकर्मोदितं तत्तत्कालज मेव तथ्य मथतद्भूरी क्षणे भूच्छूलथम् ॥ प्रापातोथ मयासुरः कृतयुगान्ते-कोत्स्फुटं तोषितात् तच्चास्तिस्म कलौतु सान्तर मथाभूच्चात्र पाराशरम् ॥ १ ॥ तज्ज्ञात्वार्यभटः खिलंबहुतिथे काले करोत्प्रस्फुटं तस्त्वस्तं किल दुर्ग सिंह मिहिराद्यैस्तन्निबद्धं स्फुटम् ॥ तच्चाभूच्छिथिलंतु जिष्णु तनये नाकारि वेधात्स्फुटं ब्रह्मोवत्याश्रित मे तदप्यथ बहौ काले भवत् सान्तरम् ॥ २ ॥ श्रीकेशव स्फुट तरं कृतवान्हि सौरार्यासन्न मे तदपि षष्ठि मिते गताब्दे ॥ दृष्ट्वाश्लथं किमपि तत्तनयोगणेशः स्पष्टं यथा ह्यकृत दृग्गणितैक्य मत्र ॥ ३ ॥ इति ब्रह्म सिद्धान्तादारम्भ स्वपितुः— केशव दैवज्ञ पर्यन्त कृत ग्रंथेषु अन्तरं पतितमित्युक्त्वा स्वकीय वर्तमान कालेऽपि ज्योतिर्विदानुदिष्य—

"कथमपि यदि दं चे द्वरिकाले श्लथं स्यान्मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहादक्ष योगात् ॥
सदमल गुरु तुल्य प्राप्त बोध प्रकाशैः कथित सदुप पत्याशुद्धि वेन्द्रे प्रचाल्ये ॥ ४ ॥"

गणेश दैवज्ञ ने वेध-द्वारा उसे पुनः शुद्ध किया है.

इत्युक्तम्

२४ अस्मात् श्रीमता गणेश दैवज्ञेन आत्म ग्रन्थ विषयकं यद्भविष्यं तत्पूर्वं मेव तर्कितं तत्प्रतीति कालः संप्रत्युपस्थितः ॥ ग्रह लाघव काले चंद्र मन्द केन्द्रं १·८ अंश प्रमाणं न्यून मासीत्। इयं न्यूनता सम्प्रति २·८ प्रमिता उपस्थिता अतचंद्र ग्रहणावसरे स्पर्शादयः कालाः कदा कदा सार्ध घटिका प्रमाणं व्यभिचरन्ति। भौमादि ग्रहाणां गणित मितोऽपि सा तरं स्थूलं जातम्। सिद्धांत ग्रंथेष्वपि ग्रहाणां भगणाः कुदिनानिच उच्च गतिसम्मिश्राः संति। यदा षष्ठि वर्ष मध्ये एव गणेश दैवज्ञेन स्वपितुर्गणिते अंतरं कथितं तदाद्य ग्रहलाघवात् ४०९ वर्षाः व्यतीता

भविष्य में इसे चालन देकर शुद्ध करते जाँय ऐसा स्वयं गणेश दैवज्ञ ने कहा है। गणेश दैवज्ञ के चालन को ४०९ वर्ष हो गये इसलिये अब चालन देना चाहिये।

अतएव ग्रह गणितान्तर्गतं महान्तं विसंवादं विजानन्तोपि वयं यावन्मूकभावं मुररीकुर्मः तावत्संशोधन दौर्बल्य दोष भाजना एव स्वभवेयुः यस्म ।

२५ इदमेव भविष्यं शँक १०७० मध्ये श्रीमद्भास्कराचार्या अपि—" यदापुनर्महता कालेन महदन्तरं भविष्यति तदा पुनर्महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तादीनां समान धर्माण एवोत्पत्स्यन्ते ते तदुपलब्ध सारणीं गति मुररी कृत्य शास्त्राणि करिष्यति । " इति सिद्धांत शिरोमणिगोलाध्याय वासनायां (पृष्ठ २९८) जगदुः । इत्यत एव साम्प्रातिकै ज्योतिःशास्त्र धौरेयै भारतीयानां पंचांगानां शोधन कार्यं आरब्ध । तदर्थ मेव चतुः पंच परिषदश्च मोहमय्यां पुण्य पत्तनादिषुच अभूवन् । तासु सर्वास्वपि सन्सत्सु दृग्गणित साम्यं पंचांगं करणीय मिति प्रस्तावः सर्वै सदस्यै रेक मत्या स्वीकृतश्चासीत् ।

'वेध' द्वारा चालन देते रहना ऐसा भास्कराचार्यने भी कहा है ।

२६ अतोनास्त्यत्र विवादो दृग्गणित शुद्ध पंचांग करणे कस्यापि तत्कारणज्ञस्य पुरुषस्य इति । यद्यपि विषयोऽसो आपतितःसर्वैः पंचांग कारैर व बुद्धस्तथापि अज्ञात शास्त्रीय गणितानामनाघ्रातार्ष वचन गन्धानां केवलं ग्रहलाघव, तिथि चिन्तामण्यादि कोष्ठकैः पंचांग रचयितृणां वैतण्ड्यम् अत्र आर्ष वचन लोपः पूर्वापरपरंपरागतपंचांगगणितपद्धत्या लोप इति । परमिदं नैव साधु । न खलु श्रेयस्करं ग्रहलाघवाद्यनुसरणं भारतीयानां धर्मे व्यवहारे वेति सिद्धेऽपि पुनस्तथैव स्थूल गणितस्य पंचांग करणम् । शके १८०६ चैत्र शुक्ल १५ यां ग्रहलाघवीयपंचांगेष्वनुक्तं चंद्रग्रहणं ग्रस्तोदितमासीत्तथैवाद्यैव वर्तमान वर्षे गत कार्तिक कृष्ण ३० ग्रहलाघव गणितेन सूर्यग्रहणे सत्यपि नाविक पंचांगादि भिरत्रदृश्यो नस्यादिति विमृष्य दृग्गणित विसंवाद भयात् पंचांगेषुनोक्तम् । प्राचीनेषुपंचांगेषु गणितागत व्यतिपात वैधृतिपातादीनामारंभ समाप्ति कालौ ग्रहाणां युतयः स्पष्ट शरक्रान्त्यादीनां निर्देश आसीत् । तदपि दृग्गणित विसंवादात्धूर्त गणकैर्बहिष्कृतमिति मे भाति ।

ग्रहलाघव के शोधन से आर्षपरंपरा का लोप नहीं होता है । क्योंकि उसमें अंतर भी बहुत ही पडगया है.

२७ किंच शुद्ध पंचांग प्रचारस्योपक्रमे श्री काशी क्षेत्र महामहोपाध्यायैः श्री बापूदेव शास्त्रिभिः नाटिकल आल्मनाक नामक वैदेशिक पंचांगानुसारेणैव शक १७९७· १८१२ वर्षेषु पंचांगा प्रकाशिता अभूवन । पुण्यपत्तनेच-प्रोफेसर केरो लक्ष्मण छत्रे महोदयेन शुद्धनाक्षत्र मानात् ३°।५८'·१' न्यूने आरंभ स्थाने झीटापिशियम तारकां परिकल्प्य " ग्रहसाधनाची कोष्टकें " नामको दृक्प्रत्ययावहोग्रंथो महाराष्ट्रभाषायां आंग्ल गणितानुसारेण रचितः तदनुसारी पटवर्धन पंचांगच प्रकाशितमासित् ।

श्री बापूदेव शास्त्री आदि ने नूतन प्रणाली से पंचांग बनाए हैं.

लोकमान्य तिलक ने २३ अयनांश मानकर शके १८४० से पचांग निकालना शुरु किया.

२८ उतच पंचांग शोधन महासभायां पुण्यपत्तनेच तत्सभाध्यक्षेण श्रीमता लोकमान्य तिलक महोदयेन शक १८४०–४१ मध्ये इषदन्तरेणसिद्धान् २३ अयनांशान् प्रकल्प्य तदनुसारी शास्त्र शुद्ध तिलक पंचांगं प्रकाशितम् किंच एतस्य स्वर्गारोहणोत्तरं पूर्वोक्तेन पटवर्द्धनी पंचांगेन, तिलक पंचांगस्वरूपं धारितं तदप्ययनांशा (३°।९८.१') न्तरमन्तरा शुद्धमेव।

महाराष्ट्रीय पंचांग मंडल में सभी पक्ष के सभासदों ने दृष्य गणित से पंचांग बनाना स्वीकृत किया।

२९ किंच विद्यमान ज्योतिषाचार्येण श्रीमता वेंकटेश बापूजी केतकर महोदयेन ज्योतिर्गणितादीन् ग्रंथान् विरच्य केतकी नामकं शुद्ध गणित पंचांग तदनुसारि गणित साधितं मोहमय्यां वेंकटेश्वर मुद्रणालये प्रकाश्यते। तथैव पुण्यपत्तने चित्रशाला पंचांगच। तदा अस्माभि रपि सूक्ष्म गणितानुसारी प्रभाकर नामकं पंचांग शके १८४२ मध्ये विरच्य प्रकाशितम्। तस्मिन् भारतीय पंचदश नगराणां दिनमानं रव्युदयास्तौ गुरुसितयोर्लोप दर्शनै ग्रहणस्य सार्वदेशिक कालश्च प्रदर्शित आसीत्। अतस्तस्य शुद्धतां सूक्ष्मतांचावलोक्य पंचांग शोधन सभाध्यक्षेण, श्रीमताळोकमान्य तिलकेन, उपाध्यक्षेण प्रोफेसर विश्वनाथ बळवंत नाईक महोदयेन, जगद्गुरुणा श्रीमता कुर्तकोटी शंकराचार्य महोदयेन, अन्यैश्च गणितज्ञैः प्रोफेसरोः राज्य ज्योतिषिकैर्योग्यः स्वस्याभिप्रायोदत्तः। एवं सत्यपि शुद्ध गणित साधित पंचांगेषु भिन्नायनांश सद्भावाताद्भिन्नत्वं स्यादेव तेन अधिमासादिषु द्वैविध्यमलोक्य अयनांश निर्णयार्थं पंचांगैक्यमण्डल सभा पुण्यपत्तने (शके १८४८) मध्ये संजाता। तस्यां सदस्याधिकरेणास्माभिर्निर्णयोदत्तस्तदातदध्यक्षेण तत्स्वीकृतत्वा त्तदनुसारी पंचांगैक्यमण्डल पंचांगंच ततो द्यापिहि प्रकाश्यते प्रतिवर्षम्।

वर्तमानकाल में सिद्धांत ग्रंथ बनानेकी आवश्यकता देखकर हमने 'प्रभाकर सिद्धांत' नामक ग्रंथ की रचना की है।

३० किंच अस्मिन् सदसि बहुभिर्ज्योतिर्विद्भि रित्थमुक्तम्। "यावच्च सूर्यादि सिद्धांतोक्तेषु भगणकुदिनादिमानेषु बीजंदत्वा शुद्धभगणयुक्तः सिद्धांतग्रंथोन विरच्यतेतावत्तदनुसारी करणानामसंभवात् येनकेनापि मानेन संप्रति गृहसाधन कोष्टकादिभिः सूर्य साधने; भिन्न २ करणागत मानेभ्यः च्छायाकान्तिरमपि भिन्नत्वादयनांशाभिन्नाएवस्युः अतोयावच्चायनांशस्य भिन्नत्वं तावत्पंचांगमानेष्वपि द्वैविध्यं भाव्यमेव," इत्यादि कारणैर्वर्तमान काले सिद्धांत ग्रंथस्यावश्यकता वर्तत इति विमृष्य नव्य ग्रंथान्प्राचीनान् ग्रंथांश्चावलोक्य यत्र कल्पादेग्रहानयनं स सिद्धान्तः। यत्र युगादे ग्रहानयनं तत् तंत्रम् यत्र शकवर्षाद्ग्रहानयनं तत्करणम् इति पृथक् २ संज्ञितं ग्रंथानमाकूतं पर्यालोच्य श्रुति स्मृति पुराणादीन् धार्मिकान् ग्रंथानामाधारेण प्राचीनैतिहासिक कालं तेषां (वेदकाल निर्णयाख्ये ग्रंथे *) निश्चित्य

---

* अद्यैव द्वित्रि वर्ष पूर्वे काले "वेदकाल निर्णयाख्योग्रंथो मया रचितः। तस्य पूर्वार्धभागोऽत्रैव इंद्रपुरे श्रीमन्महाराज होल्करराज्यपदाश्रितानां महोदयानां साहाय्येन श्रीमध्यभारत हिन्दी साहित्यसभायाश्च व्ययेनाद्य मुद्रित आसीत सतु अल्पेनैव कालेन सोत्तरार्ध भागः संपूर्णः प्रकाशितो भविष्यतीत्याशास्महे।

तदुक्तेषु तिथ्यादि मानैः तथैव प्राचीन नामकेषु ग्रंथेषु प्रकाशितैर्दानपत्र, मानपत्र, शिलालेख प्रमाणमुद्रादिभिश्च प्रकाशिते ज्योतिःशास्त्रीयमाने कालान्तरजन्यान्तरगणितेन ग्रहाणां मध्यम गतिं, उच्चपातस्थाने तयोर्गतिच फलं, केन्द्रच्युतिं, शरं मन्दकर्णादिमानांनिश्चित्य "सिद्धान्त प्रभाकराख्यो ग्रंथोस्माभीरचितः" तदुक्तमानानां संप्रत्ययावलोकनार्थं शक (१८४९ १९४५) कालस्य शतवार्षिकान् पंचांगान् विरच्य तेभ्य एवएतावत्कालपर्यन्तं ग्रहणोदयास्तादयः संप्रत्ययास्माभिर्निश्चिताः। तेतु अस्मभ्यं शास्त्रोक्त शुद्ध मानस्य दर्शका अभूवन् स्म यथावत्च यथा काले घटमानत्वात्।

उसीके आधारपर बनाई हुई सारणी से ज्यो नीलकंठ ने शक १८५२ का 'यशवंत' पंचांग नामक पंचांग दृश्य गणित का बनाया है।

३१ अनेनैव सिद्धांत प्रभाकर ग्रंथाधारेण अत्रत्य श्रीमन्महाराजाश्रित ज्योतिष् तीर्थेन श्रीमता नीलकंठ मंगलजी पंडितेन (शक १८५२) अग्रिम वर्षस्य श्री यशवंत नामकं पंचांगं संपादितम्। तस्य गणितस्य शुद्धता सूक्ष्मता एवं धर्मशास्त्रस्यानुकूलता वर्तते नवेति इत्यस्मिन् विषये निर्णयोऽस्मिन्नेव सभायां भाव्य एव।

वैदिक कालमें दृश्य पंचांग से यज्ञादि किये जाते थे।

३२ ननु आस्तां तावन्नव्य गणितस्य, प्रभाकर सिद्धांतस्य तदनुसारि पंचांगस्य शुद्धता सूक्ष्मता वा किंच सास्माकमनुपयुक्तत्वात्त्याज्या एव श्रौतस्मार्त काले यथा स्थौल्येनैव मानेन यज्ञश्राद्ध व्रतोपवासादयोऽभवन् तथैवाद्य क्रियाः स्थूलमानेनैव करणीया इति चेन्न। तस्मिन् श्रौतस्मार्तकाले शुद्ध दृक्प्रत्ययस्यैव व्यवहारात्। नहि तदा ज्योतिष तत्वानां ज्ञानं न जातमिति वाच्यम्। तस्मिन्काले ज्योतिषां प्रत्यक्ष दर्शनेनैव यज्ञकर्म प्रवृत्तेः। यथाचोक्तं वेदांग ज्योतिषे "वेदाहि यज्ञार्थमभि प्रवृताःकालानुपूर्वाऽभिहिताश्चयज्ञाः ॥ तस्मादिदंकाल विधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद सवेद *वेदान् ॥ १ ॥"

— वेदांग ज्योतिष यजुः पाठ १.

इति यज्ञार्थं वेदानां प्रवृत्तिः। कालमापनार्थं यज्ञानांत्यतो हि कालानुपूर्व्येणैव यज्ञ करणेन यथार्थ कालज्ञानं स्यादित्युक्तम्।

प्रत्यक्ष में चंद्र स्थितिसे तिथिनिश्चय की जातीथी।

३३ तथाचोक्तं तत्रैव (वेदांग ज्योतिषे) "चतुर्दशीमुपवसथस्तथाभवेद्यथोदितोदिन-मुपैतिचंद्रमाः ॥ माघशुक्लाह्निकोयुंक्तेश्रविष्ठायांचवार्षिकीम् ॥ ३४ ॥ इत्यस्मिन्पाठे उपवसथात् यज्ञात् एव संवत्सरारंभ कालो दर्शितः॥ तत्काल निश्चयस्तु प्रत्यक्षं चंद्रोदय दर्शनेन ॥ इत्यत एवोक्तं पारस्कर गृह्यसूत्रभाष्यारंभे श्रीमता कर्काचार्येण "प्रत्यक्षाहिश्रुतयः श्रौतेषु प्रवन्ततेस्मार्तेषुच स्मरणादिति ॥" तेन सर्वे श्रौतग्रंथास्तत्कालिका ज्योतिष ग्रंथा एवेति वेदकालनिर्णयस्योत्तरार्ध भागे प्रतिपादितमस्माभिः।

* 'सवेद यज्ञान्' इत्यपि पाठान्तरम्

३४ सुपर्णाचितिस्तु वैदिक कालिक पंचांगम्। तेनैव तिथि नक्षत्र दिनमान रात्रिमान मुहूर्त करणादीनां बोधो भवति। तत्साधनंतु शथपथब्राह्मणस्य तृतीयेकांडे निरूपितं। अतएव रामबाजपेयेन वेदस्य यथार्थः कथं न भवति इत्यस्य कारणानि उक्तानि—

वैदिक कालमें 'सुपर्णाचिति' नामक पंचांग बनाया जाता था इसका अन्वेषण हमने किया है।

"कश्चिन्नवेदगणितंयदिवेत्तिशुल्बं शुल्बं न वेद यदिवेत्यपरोंकक्लृप्तिम्॥ विद्वानृद्वयं न विविधागमपंडितोन्यस्तज् ज्ञानवानपि सुपर्णचितौ-पटुकः॥ १॥ इति गणितं, शुल्बं, विविधागमज्ञत्वं सुपर्णाचितिरिति वैदिक मंत्राणां अर्थ साधनेषु कारणानि एषु एकस्माप्यज्ञानात् मंत्र कर्तुर्विवक्षितार्थो न ज्ञायतेत्युक्तम्।

३५ अतएव वैदिक ग्रंथेषु नक्षत्र तिथ्यादीनां यौगिकार्थयुक्ताएव शद्बा कथिताः यथाहि—

वैदिक कालमें नक्षत्रोंको देखकर कालमान किया जाता था।

"सलिलंवाइदमन्तरासीत्। यदतरन्। तत्तारकाणांतारकत्वम्। योवाइहयजते अमुᳪसलोकं नक्षतेतन्नक्षत्राणांनक्षत्रत्वम्। देवगृहा वै नक्षत्राणि यएवंवेद। गृह्येवभवति। यानिवाइमानिपृथिव्याश्चित्राणि। तानि नक्षत्राणि तस्मादश्लीलनामᳪश्चित्रे। नावस्यन्नयजेत। यथा पापाहे कुरुते तादृगेवतत्। प्रबाहुग्वा अग्रेक्षत्रण्यातेपुः॥ तेषामिंद्रः (चित्रानक्षत्र देवता) क्षत्राण्या दत्त न वा इमानि क्षत्राण्य भूवन्निति तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्।" (तै. ब्रा. १-५-२ तथा २-७-१८-३) "यो वै नक्षत्रियं प्रजापतिं वेद उभयोरेनंलोकयोर्विदुः हस्त एवास्य हस्तः चित्राशिरः निष्ट्या हृदयं उरू विशाखे प्रतिष्ठानुराधाः एष वै नक्षत्रियः प्रजापतिः॥" (तै. ब्रा. १-५-२-२) इति नक्षत्र विषये उक्तम्। एतादृग्रूपेषु नक्षत्रेषु चंद्रमसः स्थित्यादिना नक्षत्रस्य निश्चयः प्रत्यक्षं संपद्यते।

३६ तिथि शब्दस्तु तनोते र्धातो र्निष्पन्नः। तनोति विस्तारयति क्षीयमाणां वर्द्धमानां वा चन्द्रकला मेकां यः कालविशेषः सातिथिः सोमोत्पत्तौ वृद्धि क्षयोपेता पंचदश कला स्ताभिर्विशिष्टाः काल विभागा स्तिथि विशेषाः। प्रतिपदुपक्रम्य अमान्ता पौर्णिमान्ताश्चपठिताः। अतो ऽत्र सूर्यमण्डलस्य-अधः प्रदेशवर्ती शीघ्रगामी चन्द्रः। ऊर्ध्वे प्रदेश वर्ती मन्दगामी सूर्यः। तथासति तयोर्गति विशेष वशाद्दर्शे चन्द्रमण्डलमन्यूनमनतिरिक्तं सूर्य मण्डल स्याधो भागे व्यवस्थितं भवति। तदा सूर्यरश्मिभिः साकल्येनाभिभूतत्वाच्चन्द्र मण्डल मीषदपि न दृश्यते। उपरितने काले सूर्याच्छीघ्रगत्या विनिः सृतः शशी प्राचीं याति। तत्र यदा द्वादशभिरंशैः सूर्यमुल्लङ्घ्य गच्छति तदा चंद्रस्यापि पंचदशसुशुक्ल भागेषु प्रथम भागो दर्शन योग्यो भवति, सोयं भागः प्रतिपच्छद्बेन प्रथमकलेत्यभिधीयते। तत्तु शुक्ल कृष्णे मिलित्वा त्रिंशत्समित कलाभागेषु प्रथमकला निष्पत्तिपरिमितः कालः प्रतिपत्तिथिर्भवति।

सूर्य और चन्द्रमा को प्रत्यक्ष में देखकर तिथि साधन की जाती थी।

३७ एवं द्वितीयादि तिथिष्ववगंतव्यमिति। तदेतद्विष्णु धर्मोत्तरे स्पष्टमभिहितम्—

सूर्य चन्द्र के १२ अंशों का अंतर दृश्य होने पर एक तिथि होती है।

" चन्द्रार्कं गत्या कालस्य परिच्छेदो यदा भवेत्॥
तदातयोः प्रवक्ष्यामि गतिमाश्रित्य निर्णयम्॥ १ ॥
भगणेन समग्रेण ज्ञेया द्वादश राशयः॥
त्रिंशांशश्च तथाराशे र्भाग इत्यभिधीयते ॥ २ ॥
आदित्याद्विप्रकृष्ट स्तु भाग द्वादशकं यदा॥
चन्द्रमाः स्यात्तदाराम तिथि रित्यभि धीयते ॥ ३ ॥ इति "
— " पुरुषार्थ चिन्तामणौ तिथि निर्णयप्रकरणेउक्तम् "

सेयं द्वादशभिर्भागैः सूर्यमुल्लंघितवती प्रथमा चन्द्रकला श्रृंगद्वयो पेता सूक्ष्मरेखाकारा शौक्ल्यमीषदुपयाति। उत्तरोत्तर दिनेषु सूर्यमण्डल-विप्रकर्ष-तारतम्यानुसारेण शौक्ल्य मुपचीयतेमेचकत्वमपचीयते। अनेनैव रीत्या सन्निकर्ष तारतम्येन मेचकत्वमुपचीयते तदनुसारेण शौक्ल्यं चापचीयते।

३८ अतएव पर्वान्त काल विषये उक्तं हि गोभिलेन—

अमावास्या और पोर्णिमा दृश्यगणित से निश्चित की जाती थी

" यः परमो विप्रकर्षः सूर्या चंद्रमसोः सा पौर्णमासी यः परः संनिकर्षः सामावास्येति ॥ १ ॥ (पुरुषार्थ चिंतामणौ तिथि निर्णये गोभिलः) तथाचोक्तं शतपथ ब्राह्मणे (९.४.१.९) चंद्रशौक्ल्य विषये—" सूर्यस्ये वाहिचंद्रमसोरश्मय " इति॥ अमावास्या विषये —यदामावास्यं वृत्रोय-चंद्रमाः सयन्नेष एतां रात्रीं न पुरस्तान्नपश्चाद्ददृशे " [श. ब्रा. १-६-३-१३] इति- पौर्णमासी विषये- " यत्पौर्णमास्यं विदूरमिवोदितोऽथैतमेतां रात्रिउपैव व्याप्लुवते। [१.५.३.१३] इति.

३९ एभिः प्रमाणैः सूर्याचंद्रमसोः स्थितिमंतरंच प्रत्यक्षं संप्रेक्ष्यैव तस्मा त्तिथ्यादीनां निर्णयः कार्य इति सिध्द्यते। अतएव श्रौतसूत्रेषु दर्शयागेन अमावास्यायाः। पौर्णिमासेन पौर्णिमायाः। सोमयागेन सर्वासां तिथीनां निश्चयः कार्य इति प्रतिपादितम्। एवमेव पुराणेष्वपि " कलावशेषा निष्क्रांतः प्रविष्टः सूर्यमण्डलम्॥ अमायां विशतेयस्मादमावास्या ततः स्मृतेति " ॥ १ ॥ (भगवति पुराणे) तथा " आश्रियतामामावास्यां पश्यत सुसमागतौ ॥ अन्योन्यं चंद्र सूर्यौ तौ यदातद्दर्श उच्यते ॥ २ ॥ " इति मत्स्यपुराणे उक्तम्। न दृश्यते चंद्रोऽमेतिनिर्वचनम्। सूर्यदर्शनमेव चंद्रदर्शनरूपं यत्रस्यात्तद्दर्शकालः। अस्मिन्समये सूर्या चंद्रमसोः कला विकला साम्यात्तदातयोः समसूत्र गत्वं संपद्यते इत्यनेन तयोरेकस्य दर्शनेन द्वयोर्दर्शनं दर्शदिने भवतीत्यर्थः। इत्थं श्रुति स्मृति प्रतिपादित सिद्धांतादर्श तिथेर्निर्णय उक्तः।

४० एवं प्रत्यक्षदर्शनेन सामान्येन तिथिनां निश्चयः कार्य इत्यभिधाय दर्शपूर्णमास

इसी प्रकार सब तिथियां सूर्य और चंद्रमा के अन्तर को देखकर निश्चित की जाती थीं।

ब्राह्मणे सामिधेनीरनुवक्ष्यन्ते ता मुहूर्तैः स्तिथयः " सूर्या चंद्रमसोरन्तरे कलाः पुरस्ताद्दध्यादिति " " ब्रह्मेवप्रतिपदं कुरुत इति- " च प्रदर्शितत्वात्। सूर्यास्तोत्तरं चंद्रास्तकाले यदि मुहूर्तान्तरेण स्यात्तदा प्रतिपत्समाप्तिः। द्विमुहूर्ते द्वितिया एवं पंचदश मुहूर्तान्तरे पंचदशी पोर्णमासी इतउत्तरं कृष्णपक्षे सूर्यास्तोत्तरं चंद्रोदयस्य मुहूर्तान्तरे प्रतिपत्, द्विमुहूर्तान्तरे

द्वितिया एवं पुनः पंचदश मुहूर्तान्तरे अमावास्या स्यादिति एवं सूर्याचंद्रमसोरस्तोदय कालस्यान्तरेण तिथीनां निश्चयः प्रत्यक्षं संपद्यतेति ग्रंथोक्त प्रमाणैरपि उक्तार्थस्यैव संसिद्धिः। भागद्वादशकस्य तुरीययंत्र साध्यत्वात्सूक्ष्मत्वंस्यादेव।

एक बार तिथि क्षय या वृद्धि होनेपर छे दिनोंतक वेध नहीं किया जाता था।

४१ ननुप्रत्यक्ष दर्शनेन अमावास्यापौर्णिमास्योः पर्वयोरेव " अर्धमासैर्मासान् संपाद्याहरुत्सृजन्ति अर्धमासैर्मासान् संपश्यन्ती " ति तैत्तिरीय श्रवणात् पक्षमध्ये क्षयवृद्धिकलानां साकल्येन ज्ञानात्प्रतिदिनं वेधस्य गौरवादशक्यत्वं स्यादेवेत्यतः पर्वव्यतिरिक्तानां प्रतिपदादितिथीनां प्रत्यक्षतयानुपलंभात्प्रमाण्यं नस्यादितिचेन्न तत्रैवतासां " षडहैर्मासान् संपाद्याहरुत्सृजंति; षडहैर्मासान् संपश्यन्तीति " व्यवस्थायाउक्तत्वात्। इत्यतहः षडहमध्ये तिथिक्षयस्तिथिवृद्धिर्वा नैवभवतीति निर्दिष्टंभवति यथाहि– " चन्द्रमाः षड्ढोतासऋतून् कल्पयति " इति। सूक्तविशेषे सूर्याचंद्रमसौ प्रकृत्य आम्नायते।

" पूर्वापरं चरतो माययेतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्॥ विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुन " रिति–

—बव्हृचं श्रुतौ (पु. चिंतामणि पृ. ८) उक्तम्

उक्त प्रमाणोंसे तिथिकी क्षय और वृद्धि –१० घडी तक,– सिद्ध होती है।

अत्रतु अध्वरेणैव चंद्रकृत कलानां ऋतुत्वं दर्शितं। इयर्ति=गच्छति अग्रिमकला विभागे पृष्ठ्य कलाभागेच इष्ट चांद्रमसी कलाः सात्र चांद्रऋतुत्वेनोक्ता इत्यत एव श्रौतसूत्रेषु षडहानां अभिप्लवपृष्ठ्येति संज्ञा चंद्रर्तु सद्भावादेवोक्ता। इत्यस्मिन्नपि ज्योतिगौरायुरायुर्गौर्ज्योरिति लौम्य· प्रति लौम्येन त्रिकद्रुभिरेकैकस्य कलाया निर्देशात् एकस्मिन्दिवसे परमवृद्धिक्षयो वा दश घटी परिमितो भवतीत्यपदिश्यते।

इतने प्राचीन कालमेंभी ऋषियोंने सूक्ष्ममान को निश्चित करलिया था यह कितने गौरव की बात है!

४२ नूनं वाद्यशुद्धसूक्ष्मपंचांगगणितेनापि तिथिक्षयस्य वृद्धेर्वान्हः षडंशभाग मितं दशघटी मितंवा परमं प्रमाणं सिद्ध्यत एतदवेक्षमाणा नव्या ज्योतिःशास्त्र तत्वज्ञा अपिक्षणं स्तिमितान्तरा इव सन्तो विस्मयेरन्। वदेयुश्चाहोकिमुतह्येतादृशिप्रज्ञा प्राचीनानां भारतीयवेदविदुषामिति उतचैतादृशे अतिप्राचीनकाले कथं चान्द्रिकलामापने शुद्धता सूक्ष्मता वास्यात्कथंच यज्ञकर्मणाकालमापनं कर्म भावितुमर्हतीति पुण्यभावनया यज्ञानुष्ठान प्रवृत्तेरितिमाशंकनीयम्। " यत्पुण्यंनक्षत्रंतद्बट् कुर्वीतोपव्युषम्। यदावैसूर्यउदेति। अथनक्षत्रंनैति। यावतितत्रसूर्योगच्छेत्। यत्रजघन्यंपश्येत्। तावतिकुर्वीतयत्कारिस्यात्। पुण्याहएवकुरुते। " इति तैत्तिरीय ब्राह्मणे (१·५·२·१) सूर्यनक्षत्रस्यवेधान्निर्णीतस्यैव-

पुण्यत्वमुक्तम् । ननुतदासूर्यनक्षत्रयैवस्थूलतया ज्ञानमासीन्नान्येषामितिचेन्न । अन्येषामप्युक्तत्वात् तथाहि अभिजिन्नाम नक्षत्रम् । उपरिष्टादषाढानाम् । अवस्ताश्रोणायै । यदभ्यजयन् । तदभि जितो ऽभिजित्वम् । (तै. ब्रा. १-५-२-३) इत्यनेन सुदूरदेशे उत्तरभागे स्थितस्याभिजितस्य यथार्थ ज्ञानमासीत्तदा क्रांतिवृत्तासन्नानां अश्वमुखादि–चित्ररूपनक्षत्राणां ग्रहाधिष्ठितानां ज्ञानं किमुत दुष्कर मिति ।

४३ इत्येवन किंच नक्षत्र समीपवर्तिनीनां देवयानी, शर्मिष्ठा, वृषपर्वादीनां तारकापुंजाकृतिमयचित्रस्य यथार्थस्वरूपवर्णनंच वेदे उक्तत्वात् 'अहेर्बुध्निय मंत्रम्' चतुः शिखंडा युवतिः सुपेशा: घृत प्रतीका भुवनस्य मध्ये' (तै. ब्रा. १-२-१-२६) इत्यादिभिः प्रमाणैः तस्मिन्काले खगोलीयं नक्षत्रादीनां सुष्टुतरं ज्ञानं चासीत्तत्साधन भूता वेध क्रियाच "तुरीयेण विन्द दत्रिरिति ऋचा सूर्यग्रहणादिकालदर्शिका तुरीययंत्र साध्या यथा तथ्येनावगता ऋषिभिरिति सिद्ध्यते ।

ऋषियों ने जिन तारका पुंजों का वर्णन किया है वह वर्तमान कालीन नक्शों के चित्रों से एंव वर्णनों के लगभग ठीक मिलता है ।

४४ तस्मिन्काले कालमापनार्थमेव यज्ञानुष्ठानंचासीदाकाशस्थिति निदर्शिकाया एव यज्ञकर्माणि क्रियाया उक्तत्वात्-यथाहिश्रूयते (१) प्रांचमग्निमुन्नयति तस्मात्प्राङासीनो होता (२) असावादित्यः प्राङ्पाङ्संचरति तस्मादध्वर्युः प्राङ्पाङ् संचरति, (३) अथैष चंद्रमा दक्षिणेनैति तस्माद्ब्रह्माणं दक्षिणत आसयन्ति (४) अथैतस्यामुदीच्यां दिशिभूयिष्ठं विद्योतते तस्मादेतां दिशमुद्गाता प्रत्युद्गायति (५) अथैष आकाशेमध्यतो भूताना ँ सन्नस्तस्मान्मध्ये सदस्यमासयन्ति (६) उच्चावचावा आप उत्तेवगाधाभवन्ति उत्तेव गंभीरास्तस्माद्धोत्राश ँ सिन उत्तेव पंचर्चेनकुर्वंति उत्तेवभूयसा (७) आदित्यस्यैवगत ँ रश्मयोनुयंति तस्मादध्वर्योरेवगतं चमसाध्वर्यवोनुयन्ति " "अग्निर्मेहोता, आदित्योमेध्वर्युः, चंद्रमा मे ब्रह्मा, पर्जन्योमउद्गाता, आकाशो मे सदस्यः आपोमेहोत्राश ँसिनः रश्मयोमे चमसाध्वर्यव एता देवता ऋत्विजा प्राणोयजमानोऽयो यत्रैतासां देवतानां लोकस्तदुपहूतोभवति ।" इति षड्विंश ब्राह्मणे (२-३-४-६) उक्तत्वात् ।

यज्ञों में आकाश के दृश्य भूमिपर बतलाये जाते थे; क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगों की ही उस समय यज्ञ संज्ञा थी ।

४५ इत्यादि प्रमाणैः श्रौतकाले कालमापनार्थमेव यज्ञानुष्ठानं तस्मिश्च । "दृष्टे तत्परिमाणम् (का. श्रौ. सूत्रेण १-४४) इत्यनेन सूर्याचंद्रमसोः प्रत्यक्ष दर्शनेनैव तिथिनक्षत्रादीनां परिमाणं कुर्यादिति यज्ञेषु विधानस्योक्तत्वात् ।

यज्ञों से काल मापन किया जाता था ।

४६ किंच "असौ वा आदित्योग्निरनीकवान् । तस्य रश्मयोऽनीकानि" "भागधेये वैनान्समर्धयति" (तै. ब्रा. १-६-६-२-६) तत्रापि नक्षत्राणां गणनातुरेवत्यन्तभागेन अश्विन्यारंभादेवोक्ता यथाहि "कलाप्रमाणंतु-सोमात्" सूर्यचन्द्रान्तरेण कुर्यादितिच "ते नक्षत्रं नक्षत्र मुपातिष्ठन्त ते रेवत्यामुपातिष्ठन्त । यकिंचार्वाचीन ँ सोमात् । प्रैवभवति" (तै. ब्रा. १-५-२-४) इति स्पष्टमभिहितमुतच "नक्षत्राणिरूपं अश्विनौव्यात्त" मितिवाजस संहितायामुक्तत्वाच्च ।

नक्षत्र और राशिचक्रका आरंभ स्थान अश्विनी के आरंभ से गिना जाता था ।

स्मार्तकाल में भी दृश्यगणित से ही पंचांगसाधन किया जाता था।

४७ स्मार्तकालेऽपिसैव स्फुटग्रहवेधात्पंचांगसाधनपद्धतिर्ग्रहचारगणितरीतिश्च प्रचलिता आसीत्। तथाचोक्तंव्यासतन्त्रे तदनुसारिणि सिद्धांत कामधेनौच—

" मध्याह्नार्के स्फुटंज्ञात्वा गोलात्कुर्यात्पदक्रियाम् ॥ ४२ ॥
सपाद तारा द्वन्द्वस्यवाक्यमेकं समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
मध्यार्कस्योज पादं तु विलिप्ती कृत्य कोविदः ॥
दिनार्धं विकला प्राप्तं घटिकादि विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥
अंगुलादिततोलब्धं मध्यच्छाया मिहक्षिपेत् ॥ ५५ ॥
पूर्वापरार्धयोर्मध्यच्छाया विरहितं ततः ॥
नीचेन वर्धयेदेष भागहारो भविष्यति ॥ ५७ ॥
ततश्च नूतनैः प्राप्तं नक्षत्र मिति निर्दिशेत् ॥ ६२ ॥ "

(सि. का. संवत्सराध्याये १)

" चंद्रार्क दृष्टि नक्षत्रे विलिप्ती कृत्य लिप्ति काम् ॥
पुनर्नीचेन चाभ्यस्य शुद्ध भुक्त्या विभाजयेत् ॥ ७ ॥

इति चंद्र नक्षत्र साधनम्

शुद्धं नीति विशुद्धं तत् दृष्ट नक्षत्र नाडिका ॥ ८ ॥ "
" भानुनेन्दुं कली कृत्य प्रतिलिप्ता तिथिर्भवेत् ॥ '
शेषन्तु विकली कृत्य पुनर्नीचेनताडयेत् ॥ १ ॥ "
विवरेण विभज्याप्तं तद्दृष्ट तिथि नाडिका ॥ २ ॥
पक्षयो रुभयोरेव तिथयः स्युः पुनः पुनः ॥ ४ ॥ "

(इति तिथि साधनम्.)

" चंद्रमर्केण संस्कृत्य दृष्टो योग उदाहृतः ॥ १ ॥

इति योग (निर्णये) साधनम्.

" इन्दुरस्तमितः प्राच्यांप्रतीच्या मुदयंव्रजेत् ॥
विशोध्यचंद्रतः सूर्यं शेषं कुर्याद्विलिप्तिकाम् ॥ १ ॥
समाश्चेत्पूर्व वाक्येन तदा दृग्गोचरः शशी ॥ ४ ॥

(इत्यस्तोदयानिर्णये).

आकाश में ग्रहस्थिति को प्रत्यक्ष देखकर ही पंचांगोंका गणित शुद्ध कर लिय जाता था।

" अस्तार्कोनेन्दुतः पूर्वमस्तिचेत्तपरित्यजेत्॥ १ ॥
कृष्णे दिनकरस्यास्तादा चंद्रोदयमन्तरा ॥ २ ॥
शेषं पूर्वाम्बरे शुक्ले व्यतीताः स्युर्विनाडिकाः
घटिकाः साधयं देवं चंद्रच्छाया पदैर्बुधः ॥ १ ॥
अंतरंच निशानाथ प्रमाणंच परस्परम् ॥ १२ ॥

—इतिच्छाया निर्णये.

इस प्रकार श्रौत स्मार्त काल में दृश्य गणित से पंचांग बनाये जाते थे

४८ इत्या गमोक्ते स्तंत्र प्रतिपादित सद्युक्तिभिः प्रमाणेर्ज्ञायते हि श्रौत कालादारभ्य आवराह मिहिर पर्यन्तेषु बहुषु ग्रंथेषु स्फुटग्रहस्य नक्षत्रे वेधा देव साधितेभ्यो ग्रहेभ्यः पंचांगस्य साधन पद्धतिःप्रचलिता आसीत्। तदा पंच वर्षात्मके द्वादशा द्वात्मके वा युगारंभे उक्त मानान् वेध द्वारा संशोधयन् शुद्धमानान्निश्चित्य तैः साधिताभ्यां चंद्र सूर्याभ्यां तिथ्यादि साधनेन तेषु वास्तवं मानं स्यादेवेति। अस्मद्वस्तविक्रमानात्साधितानि पंचांगान्यपि शुद्धान्येवासन्। नक्षत्राणां स्थिर प्रायत्वात्; सहस्त्रवर्षेष्वपि यस्मिन्नेककलायाअधिकान्तरं नस्यादिति दृश्यनिजगतिरल्प केन चित्रा नक्षत्रेण उपर्युक्त (धारा ९) वत् नक्षत्र राश्यादीनां साधित विभागै स्तारकादिभिश्च वेधसाधनसद्भावात्।

हमारे बनाये हुए वेदकाल निर्णय और सिद्धांत प्रभाकर की भूमिकामें प्राचीन आर्ष-ग्रह गणितके ग्रंथोंका निमार्ण काल।

४९ तेच बहवोग्रंथा एतेषां कालानुक्रमश्च निश्चितोस्माभिर्वेदकालनिर्णयाख्ये ग्रंथे सिद्धांतप्रभाकर भूमिकायांच तद्यथा निम्न लिखित ग्रंथानां

	शकपूर्व वर्षाणि
१ बोधायन श्रौतसूत्रम्	२७५१७
२ आपस्तंब श्रौतसूत्रम्	२९०५६
३ कात्यायन श्रौतसूत्रम्	२४३९४
४ मैत्र्युपनिषद	२२६२७
५ वेदांग ज्योतिषम् (ऋक्पाठ.)	२२०९०
६ गर्गतंत्र, ७ पाराशरतंत्र, ८ पितामह सिद्धांतश्च	२२०९०
९ पुराणानांच मूलग्रंथाः १० प्राचीन स्मृतयश्च	२२०९०
११ नारदतंत्रं तदनुसारि नारद संहिताच	२०२२६
१२ पारस्कर गृह्यसूत्रम्	१९०००
१३ कात्यायनस्मृतिः वायु पुराणंच	१९०००
१४ आद्यं रामायणं व्यास प्रोक्तं भारतंच	१९०००
१५ कर्कोपाध्यायः (कात्यायन सूत्राणां भाष्यकर्ता)	१३१९१

दृश्य गणितके शोधक, ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक आद्य ग्रंथकर्ता १० हैं इनके रचेहुए ग्रंथोंकोही आर्षग्रंथ कहते हैं इनमें ८ ग्रंथ पूर्व ग्रंथानुसारी हैं। सब मिलाकर कुल ३८ ग्रंथ दृश्य गणित के हैं।

१६ गालव संहिता १७ वसिष्ठ सिद्धांतश्च	६४००
१८ रोमक सिद्धांतः (पंचसिद्धांतिका प्रोक्तः)	६३८७
१९ पौलिश सिद्धांतः (,,)	६३३६
२० प्राचीन ब्रह्मसंहिता (तत्रनाम्नि विपरिणमिता)	२३२१
२१ प्राचीन सोमसंहिता (,, ,,)	२१४१
२२ प्राचीन सूर्यसिद्धांतः (पंचसिद्धांतिकाप्रोक्तः)	१४८४
२३ विक्रमादित्यः (प्रथमः) संवत्कर्ता तस्य ग्रंथः	(१३५)

२४ अस्मिन्नेव काले भोज २५ मणित्थ २६ बादरायण २७ प्रल्हादन २८ बृहस्पति २९ सुबुद्ध ३० सारस्वत ३१ विष्णुगुप्ता-(अर्वाचीनाद्विष्णुचन्द्राद्भिन्नः)- दयो ग्रंथकारा प्रायशः शकारंभ काले अभूवन्स्म

शालिवाहन शकारंभादुत्तरं	वर्षाणि
३२ सिंहाचार्यस्य गुरुः (वराहोक्तः)	२०१
३३ सिंहाचार्यः (आरंभस्थाने संपातस्य स्थितौ)	२०८
३४ लाटाचार्यः (वराहोक्तो गौड वंशोद्भवो विप्रः).... ...	२७१
३५ प्रद्युम्नः (वराहोक्तः)	३००
३६ विजयनंदिः (,,)	३९०
३७ वराहमिहिरः (पंचसिद्धांतिका बृहत्संहिता कर्ता)	४२७
३८ अनवदर्शी संघ राजः लंकायां दैवज्ञ कामधेनु नामक ग्रंथस्य कर्ता	४४०

५० प्राचीननेषु आर्षग्रंथेषु स्वबुध्यनुसारेण संस्कारंदत्वा अर्वाचीन सिद्धांताः आर्यभटादिभिश्च निर्मिता ग्रंथाश्चेमे संति।

उक्त आर्षग्रंथोंके आधार-पर अर्वाचिन ज्योतिष के १९ ग्रंथकर्ता हुए हैं।

१ आर्यभटः (आर्यस्फुट सिद्धांत कर्ता)	४२१
२ लल्लाचार्यः (शिष्यधी वृद्धि) लल्ल सिद्धांतकर्ता	५००
३ ब्रह्मगुप्तः ब्राह्मस्फुट सिद्धांत कर्ता)	५२०
४ सूर्य सिद्धान्तः (मयासुर कृतः)	६४६
५ द्वितीय आर्यभटः (आर्य) महासिद्धांत कर्ता....	८७५
६ भास्कराचार्यः (सिद्धांत शिरोमणि कर्ता)	१०७२
७ सिद्धांत सार्वभौम कर्ता मुनीश्वरः एलीचपुर निवासी	१९२९
८ कमलाकर भट्टः (तत्व विवेक कर्ता)	१५८०
९ केशव दैवज्ञः (ग्रहकौतुक कर्ता)	१५०२
१० गणेश दैवज्ञः (ग्रहलाघव कर्ता)	१४४२

११ विश्वनाथादीनां कालस्तु पूर्वमेवोक्तत्वादत्र पुनर्नोक्तः —

९१ एतावज्ज्योतिष् तत्व प्रकाशकानां ग्रंथानां कालक्रम मनूद्य गणितक्रमं दर्शयिष्यामः। अस्य संवादाद्धर्मशास्त्र ग्रंथेषु की दङ्मान मुरीकृतं तत्स्फुटी भविष्यतीति जानीते।

शास्त्र शुद्ध पंचांग का स्वरूप।

(अ) ग्रहकक्षायां उच्चासन्ननाभौ स्थितो दृष्टा मध्यमतुल्यं ग्रहं पश्यति
(आ) सूर्य मध्यास्थितो मन्दस्पष्टतुल्यम् (ई) भूमध्यस्थितः शीघ्र स्पष्टम्
(ऊ) भूपृष्ठस्थितो लंबन स्पष्टम्

एवमिदं दृष्टुः स्थानभेदोभ्योदर्शनभेदा नामसंस्काराउत्पद्यन्ते। एषु संस्कारेषु भूमध्य यावत् संस्कारा (अ, आ, ई.) क्रियन्ते किंच लंबन संस्कारस्तु भगोलीयगणिताद्भिन्नः सतुखगोलीय गणित साध्यत्वाद्भूपृष्ठे नाना स्थलेषु भिन्नत्वात्पंचांगगणिते तस्यनोपयोगः। प्रयोजनाभावात्। स्फुटग्रहाश्च सर्वे कदम्बाभिप्रोत भोगशराभ्यांसाधिताः क्रांतिवृतीया एवस्युः। वेधार्थमेवतेषां ध्रुवप्रोतीय भोगशराभ्यां परिणमनम्। तथैव उदयास्तयाम्योत्तर लंघनकालज्ञानार्थं तेषां विषुवांशाः क्रांतयश्च साध्यंते। मंदफल संस्कारस्तु मंदकेन्द्रोपकरणेन सूर्याचंद्रमसोमुख्यः संस्कारः। किंचमन्दफलस्यैव रूपान्तरादुद्भूताश्चत्वारोन्ये संस्कारा यदा चंद्रमसि स्युस्तदैव तस्य वास्तविकं स्फुटत्वंभवति।

सूर्य को एक मंदफल संस्कार देने से वह स्पष्ट होता है।

९२ यथाहि-(१) उदयान्तर जन्यो गतिसंस्कारः (२) कक्षाया दीर्घ वर्तुलरूपिण्या भव स्तिथिसंस्कारः (३) चंद्रे सूर्ये मंदफलजन्यश्च्युतिसंस्कारः (४) विक्षेप जन्यः कक्षा परिणाति नामकः संस्कारः (५) उच्च-वशादुत्पन्नो मंदफल संस्कारश्च केंद्रात्साध्यते यद्यप्युक्तफल पंचकेनतुल्यं पर्वान्तकाले फलं नव्यसिद्धान्तग्रंथैर्ग्रहलाघवादिकरणैश्च साध्यते किं च तत्तु। अष्टमी समीपे महदन्तरितोभवति। उच्चकेन्द्रयाम्य केन्द्रयोर्वास्तविक गतेस्तदानुपलंभात्। शक ४२७ कालादर्वाचीनेषु ग्रंथेषु मध्यमगति साधितेषु भगणेष्वपि अंतरंसंभवति तेषां प्रदक्षिणाकालस्य उच्चगति संमिश्रत्वात्।

चन्द्रमा को; सूर्य चन्द्रोच्च पातों से मंदफलादि ५ संस्कार देने से वह स्पष्ट होता है।

९३ उक्तानां फलानां न्यूनाधिककारणात्तिथेर्वृद्धिःक्षयोवा सदाभवत्येव तत्र परमावधौ कियती वृद्धिः कियान्क्षयो भवतीत्यस्यात्रागमप्रमाणेन निर्णयः क्रियते। अस्मिन्विषये पूर्वमेवास्माभि (धारा ४१ यां) निरूपितं 'षडहैर्मासान्संपाद्याहरुत्सृजन्ती' ति श्रुतेः षडहमध्ये तिथेः क्षयोवृद्धिर्वा नैवभवतीत्यपदेशात् परमा वृद्धिः क्षयो वा दशघटीमितो भवतीति निश्चितम्।

वैदिककाल में तिथिका वृद्धि और क्षय १० घडी पर्यंत का माना जाता था।

९४ अमुमेवार्थं तैत्तिरीयब्राह्मणे (१-८·१०·२) स्फुटमभिहितम् यथाहि **"पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति व्यष्टकायामुत्तरम्; नानैवार्धमासयोः प्रतितिष्ठति। अमावास्यायां पूर्वमहर्भवति उद्दृष्टउत्तरम्। नानैवमासयोः प्रति-तिष्ठति। अथेखलु ये समानपक्षे पुण्या (पूर्णा) हे स्यातां तयोः कार्यं प्रतिष्ठित्यै अपशव्यो द्विरात्र इत्याहुः। द्वे ह्येते छन्दसी गायत्रं च त्रैष्टुभं च जगतीमन्तर्यन्ति यदा वा एषाहीनस्याहर्भजते। साह्नस्य वा सवनम्**

छांदस गणितपद्धति से तिथिका वृद्धि और क्षय १० घडीका निश्चित होता है.

अथैव जगतीकृता, अथ पशव्यः, व्युष्टिर्वा एषद्विरात्रः " इत्यत एतावदुक्तं भवति—त्रिंशद्दिनात्मको-परिपूर्णोमासोऽहीनसंज्ञको द्विधा अहीनहीनपक्षयुतोहीनाहीनपक्षयुतश्चेति । अथवा पूर्णापूर्णपक्षयुतो ह्रासवृद्धिपक्षयुतश्चेति । तत्र तावदहीनपक्षरूपं 'पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति प्रतितिष्ठतिरित्यन्तेन विवृणोति । पौर्णमास्यांवृद्धिः । अष्टम्यां क्षयस्तदा पंचदशदिनात्मकपक्षत्वा· दहीनोपक्षः । एवमेव अमावास्यायावृद्धिः अष्टम्याक्षयस्यापि पूर्णः पक्षः । तयोर्मासोप्यहीनः **पूर्णैव** ।

९५ अथ क्षयवृद्धिपक्षयुतं पूर्णमासं 'अपशव्योद्विरात्रोव्युष्टिर्वा एष द्विरात्र इत्यन्तेन विवृणोति । तत्र दिनद्वयक्षययुतो अपशव्याख्योहीनोपक्षः तद्योतके अहीनाख्ये यागे दैवीछन्दसी A गायत्रं च (१) त्रैष्टुभं च (६) जगती (७) मन्तर्यन्ति सप्तचान्द्रदिनेषु एकस्याह्नोभागस्य ऊनितत्वात् षट्तिथयः स्युः । एवं दिनद्वयवृद्धियुतः पक्षः पशव्योव्युष्टिसंज्ञको भवति तत्र सप्तचन्द्रदिनेषु एकस्याह्नोभागस्य वृद्धित्वादष्टौ तिथय स्युः एवं क्षयवृद्धियुताभ्यां पक्षाभ्यां युतोमासोऽपि अहीन एव (१३+१७=३०) त्रिंशद्दिनात्मकत्वात्पूर्णश्चोपदिश्यते ।

छान्दस गणितपद्धति का शोध हमने लगाया है उसके आधारसे भी तिथि निश्चय इस प्रकार होता है।

A छांदस गणितपद्धत्या अंक संख्या दर्शकः कोष्ठकः

	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्तिः	त्रिष्टुप्	जगति
१ दैवी	१	२	३	४	५	६	७
२ आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
३ याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
४ साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
५ आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
६ आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
७ ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२
८ प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
देवता	अग्नि	वायु	आदित्य	बृहस्पति	वरुण	इन्द्र	विश्वेदेवा

५६ एव मेवेष्टिकालनिर्णये त्रयोदशाहसप्तदशाहकौ पक्षौ निषिद्धावुक्ताविति च स्मर्यते

स्मृति कालमें सत्रह दिन के पक्षका वर्णन.

" षोडशेऽहन्यभीष्टेष्टिर्मध्या पंचदशेऽहनि ॥
चतुर्दशे जघन्येष्टिः पापा सप्तदशेऽहनिरित्यत्र ॥
सप्तदश १७ दिनात्मकः पक्षः प्रतिषेधे उक्तः ॥ "

(कालमाधवे प्र. ४ पृष्ठे २०७)

५७ तथैव त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोऽपि मांगल्ये निषिद्धश्चोक्तः सांहितकैः । उक्तं हि ज्योतिनिर्बन्धे " **पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद्रौरव कालयोगः ॥ पक्षेविनष्टेसकलंविनष्टंमित्याहुराचार्यवराःसमस्ताः ॥ १ ॥ उपनयनं परिणयनं वेश्मारंभादि कर्माणि ॥ यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥ २ ॥** इति "

इष्टि कालमें-तेरह दिनके पक्ष का वर्णन.

५८ तथा हि व्यवहार चण्डेश्वरे—

गर्गाचार्य आदिके मतसे तेरह दिन का पक्ष.

" त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् ॥
गर्गादि मुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥ १ ॥ इति.
प्राचीननिबन्ध ग्रंथेषु त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोनिर्दिष्टः शुभकार्ये तस्य प्रतिषेधोक्तेः

५९ प्राचीनैतिहासिक धार्मिकग्रंथेष्वपि त्रयोदशदिनात्मकपक्षस्य सत्ताचासीदित्यवगम्यते महाभारते भीष्मपर्वणि दुर्योधनं प्रति भीष्मोक्तेः । यथाहि—

महाभारतमें १३ दिनके पक्षका वर्णन ।

" चतुर्दशीं पंचदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ॥
इमां त्वमभिजाने ह ममावास्यां त्रयोदशीम् ॥ १ ॥ "
इत्यत्र त्रयोदशदिनात्मकस्य पक्षस्य नेष्टत्वं सूचितम् ।

६० वराहमिहिरेण तु सप्तदशाह पक्षस्य वृद्धिसंज्ञां त्रयोदशाहपक्षस्यक्षयसंज्ञां चोक्त्वा तयोः फलं च " **शुक्ले पक्षे संप्रवृद्धिं प्रयाते ब्रह्मक्षत्रं यातिवृद्धिं प्रजाश्च । हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन ॥ १ ॥** " इति जगाद—

वराह मिहरने १७ व १३ दिन का पक्ष- कहा है

६१ प्राचीन ग्रंथाश्रयाद्राचितेषु नव्यनिबंधग्रंथेष्वपि त्रयोदशदिनपक्षस्य शुभकार्येषु प्रतिषेध उक्तः यथाहि मुहूर्तचिंतामणौ (शक १५२२) " **विश्व १३ घस्रेऽपि पक्षे** " (मु. चिं. शु. प्र. श्लो. ४८) एवमेव मुहूर्तसिन्धौ मु. गणपत्यादिषुच त्रयोदशदिनात्मकः पक्षोनिरूपितः ।

वर्तमान मुहूर्त ग्रंथोमें भी १३ दिनका पक्ष कहा है ।

६२ इत्थंस्मृतिग्रंथेषु सप्तदशदिनात्मकस्य पक्षस्य ज्योतिषसंहिता ग्रंथेषु च त्रयोदश दिनात्मकस्य पक्षस्य सद्भावो निरूपितः। किं च महर्षिणा बौधायनेन तु अन्वाधान प्रतिषेधकालेन द्वयोरपि पक्षयोरेकत्रैव सद्भावो दर्शितः। यथाहि—

बोधायन ऋषीने १३ और १७ दिनका पक्ष कहा है।

" यत्रोपवसथं कर्म यजनीयात् १३ त्रयोदशम् ॥
भवेत्सप्तदशं १७ वापि तत्प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥ १ ॥"

इति (कालमाधवे प्र. ४ पृ. २०७ मध्ये) उक्तम्.

६३ इत्यादिषु श्रुति, स्मृति, पुराण, ज्योतिःशास्त्र ग्रंथेषु त्रयोदश सप्तदशदिनात्मकयोः। पक्षयोः कालोदर्शितः। इत्यत्र सामान्यतया त्रैराशिकगणितादपि त्रयोदशदिनात्मके पक्षे $\left(\frac{13\times60}{15}\right)$ =५२ वा १३×४=५२ घटी मितत्वात्प्रतिदिनं अष्टौ घट्यः क्षयउपेयंताम्। एवमेव $\left(\frac{17\times60}{15}\right)$ =६८ वा १७×४=६८ अष्टौ घट्योवृद्धौ भवंताम्। किं च प्रतिदिनं चंद्रस्य गतिवैलक्षण्यात्, दीर्घवर्तुलोपन्यासाद्गणिते कृते गतिफलस्य न्यूनाधिकमानत्वात्, मध्यमातिथ्यन्त मानात् ५९ घटी ३·७ पल मितात्कालात्क्षयवृद्धिसत्वे " अंक ९ वृद्धिर्दश १० क्षयः " इति वास्तवं परमं मानं सिध्यति। उपपद्यते च सूर्यास्तोत्तरं चंद्रास्तोदयाभ्यां निश्चितस्य कालस्य तुलनया केवलं होरामिनिटादिभिः साधारणैरपि प्रयोगैः। सम्पद्यते च नाटिकल-आल्मनाकादिषु आङ्ग्लपंचांगेषु लिखिताभ्यां रविचंद्राभ्यां तिथि साधन गणितेन साम्यं। दृक्प्रतीतौ घटमानत्वात्।

नौ, दस, घडीके वृद्धि, क्षय बिना १७ और १३ दिनोंका पक्ष होही नहीं सक्ता। इसीको " अंक वृद्धिर्दश क्षय " कहते हैं।

६४ इत्यत एवास्माभिरपि अनेकेषु दिनेषु तिथ्यारंभसमाप्तिकालं सूर्यचंद्रमसोर्वेधा द्वेधासिद्धपंचांगाच्च अमुयोः संवादमनेकवारं चावलोक्य तेभ्यो निश्चितेभ्योमानेभ्यः सिद्धांतितं चास्माभि स्तिथेर्वृद्धिक्षययोः परमावधौ मानम् " अंक ९ वृद्धिर्दश १० क्षय " इति।

सिद्धांत प्रभाकरके गणित से भी तिथिका वृद्धिक्षय नौ दश घटी का होता है।

६५ ननु " अंकवृद्धिर्दशक्षय " इति प्रतिपादितस्य सिद्धान्तस्यार्यभटादिभिरनुक्तत्वा-त्तदुक्तगणितेनासिद्धत्वाच्चास्याग्राह्यत्वं स्यादितिचेन्न; वेदशास्त्राभ्यामुपपन्नत्वात्। यत्तु आर्यभटेन तस्मादर्वाचीनैश्च सिद्धान्तनामकग्रंथकर्तृभिः मध्यमचंद्रे केवलं उच्चोपकरणेन मंदफलस्य संस्कारः कृतः सतु अमान्ते पौर्णिमान्ते च यद्यपि शुद्धफलपंचकस्य स्वल्पान्तरात्समत्वं भजते। तथापि तस्मिन् रव्युच्चोदयान्तरादिवशादुत्पन्नस्य फलस्यासाधितत्वादशुद्धफलत्वादष्टमी समीपेतिथ्यादिमानेषु महदंतरं जायते। उपर्युक्त ५१ धाराया मादिष्टेभ्यो गति, तिथि, च्युतिपरिणतिसंस्कार चतुष्टयेभ्यो युतमेव

कलम ४९ में लिखे हुए ऋषियों के ग्रंथों में तिथि का वृद्धि क्षय ९-१० घडी का और कलम ५० में लिखे वर्तमान ग्रंथोंमें ५-६ घडी का लिखा है।

मंदफलं शुद्धं स्यात्तदन्तरा हीनत्वादपूर्णत्वाच्चाशुद्धं स्यादेव अस्तदाश्रयादुत्पन्नस्य "बाण ५ वृद्धि रस ६ क्षय" इति वाक्यस्याप्यशुद्धत्वं स्यादेव ज्योतिः शास्त्रेणानुपपन्नत्वात् ।

सामान्य रीति से तिथि का वृद्धि क्षय ७॥ घडीका कहा है ।

६६ नचात्रार्षवचनलोप इति वाच्यम् । सामान्येनैव अहीने यागे 'पौर्णमास्यां अष्टम्यामिति [धारा ९४ यां] वाक्ये अष्टदिनेषु एकस्याह्नः वृघ्या ७॥ घटी मिता ह्रासवृद्धेरुक्तत्वात् तथा च "चतुर्दश्यष्टमे भागे क्षीणोभवति चंद्रमाः ॥ अमावास्याऽष्टमेंशेतु पुनः किल भवेदणुः ॥१॥ इति कात्यायनस्मरणाच्च इत्यत्र सार्धघटी सप्तकं दिवसस्य $\frac{1}{8}$ अष्टमांश एव । तद्यथा $\frac{60}{8}$=७.५ इति यदि च कात्यायनस्य बाणवृद्धिरसक्षयमिता विवक्षा चेत्तदा द्वादशांश, दशांशभागा उक्तं स्यात् किं च इत्यत्र तु अष्टमांशभागस्यैव सामान्येन उक्तत्वात् परमावधौ त्रयोदशसप्तदशदिनात्मकपक्षयोरूपपत्या दशक्षयांकवृद्धीरेव सिध्यति ।

चंद्र को एक मंद फल संस्कार देने से १३-१७ दिन का पक्ष नहीं होता है

६७. यत्तु माधवाचार्येण कालमाधवे (४ प्रकरणे)" तथा सति त्रयोदशसप्तदशयोः प्रसक्तिरेव नास्ति तत्कथं प्रति षिद्ध्यते इति चेत् एवं तर्ह्य प्रसक्त प्रतिषेधे नित्यानुवादोऽस्तु । अस्तिचाप्रसक्तप्रतिषेधरूपो नित्यानुवादो वेदे "**न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्नि** श्चेतव्य इति" उक्तं तदसत् शास्त्रेणप्रसक्तत्वात् । "प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चंद्रार्कौ यत्र साक्षिणा" विति सिद्धान्तोक्तेः रविन्द्वो र्द्वादश भागान्तरे तिथिस्तस्या अंकवृद्धिर्दशक्षयेऽपि प्रत्यक्षं दृश्यते । सिद्ध्येते चानेन त्रयोदशसप्तदशदिनात्मकौ पक्षौ । उदाहृतवेदस्यापि वैदिकार्थेन पृथिव्यन्तरिक्षदिवादिलोकानां विषुवदिनात् २७०, १८०, ९०, रवेर्भागेषु उक्तत्वात्तद्दिनेषु अग्नेश्चयनारंभो न कुर्यादुत च वाक्यस्य शेषात्स्वर्गेलोके = विषुवद्दिने अग्निश्चेतव्य इत्यर्थो निष्पद्यते । अवगम्यत इत्येतत्सुपर्णाचितिचयनेन सर्वमनवद्यम् । एवमेव मुहूर्तचिन्तामणिपीयूषधारायामुक्तवचनस्य "पक्षस्य त्रयोदशादिनात्मकतां ख पुष्प तुल्यै" त्यस्याप्यसमीचीनत्वमूह्यते ।

धर्म शास्त्रीय ग्रंथों में तो सूक्ष्म तिथि कहीं स्वीकार किया है ।

६८ यत्तु अह्ने द्वेधा, त्रेधा, चतुर्द्धा, पंचधा, सप्तधा, पंचदशधा, त्रिंशद्धा च विभागा उक्तास्तेषु कर्मकालस्य सामान्यविशेषाभ्यांनिर्णये द्वेधा त्रेधा एव विभागाः स्मृत्यादिषूक्ताः । अत्र माधवाचार्येणाऽपि "यथोक्तेषु पंचसु कालेषु यानि विहितानि कर्माणि तानि दैवपित्र्यरूपेण राशिद्वयं कृत्वा तयोर्गौणकालाभ्यनुज्ञायेति" सामान्यकालनिर्णये द्वेधा विभागः स्वीकृतः आवर्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः स्मृतः ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते ॥ १ ॥ इति स्मृत्युक्तेः ।" विशेषकालनिर्णयस्तु त्रेधा विभागेनैव कार्य इत्युक्तं सर्वेषु धर्मशास्त्रग्रंथेषु "

६९ ननु कमलाकरमाधवादिभिरर्वाचीनैर्ग्रंथकारैः पंचधाविभागस्योक्तत्वात्तस्याऽपि प्रामाण्यं कथं नस्यादिति चेन्नेति भ्रमितव्यं धर्मप्रमाणग्रंथेष्वित्थमनुक्तत्वात् । तत्तु यामविभागेन चतुर्धा, त्रिमुहूर्तविभागेन पंचधा, मुहूर्तविभागेन पंचदशधा, घटीविभागेन त्रिंशद्धा एवं सप्तधाऽपि दिवसस्य विभागाः गोभिलादिभिरन्यान्यकार्येषु तत्तत्प्रयोजनवशादेवोक्ताःस्युः ।

कमलाकरादि को चंद्र स्पष्ट के सूक्ष्म संस्कार मालूम नहीं थे.

७० किंच श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु सर्वत्रैव दैवपित्र्यादिकर्मानुष्ठानेषु तु त्रेधा विभाग एव स्वीकृतः " उर्ध्वं सूर्योदयात्प्रोक्तं मुहूर्तानां च पंचकम् ॥ पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तोमध्याह्नस्तु ततः परः ॥ अपराह्णस्ततः प्रोक्तोमुहूर्तानां च पंचक इति " ॥ १ ॥ स्कांदोक्तेः । " तस्मादह्नस्तु पूर्वाह्णे देवा अशनमभ्यवहरान्ति । मध्यन्दिने मनुष्याः अपराह्णे पितर इति " शातातपोक्तेः । " ऋग्भिः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते यजुर्वेदे तिष्ठति मध्य अह्नः ॥ सामवेदेनाऽस्तमिते महीयते वेदैरशून्यस्त्रिभिरेती सूर्य " इति तथाच 'पूर्वाह्णोदेवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणा मपराह्ण पितृणा' मितिश्रुतेः ।

प्राचीन ग्रंथों में दिन के तीन विभाग माने हैं.

७१ अतएव प्राह्णपराह्णमध्याह्नास्त्रिसन्ध्य " मित्यमरादिकोषकारैश्चोक्तम् । तस्यैव प्रातर्मध्याह्नसायाह्नःपर्याय रूपा ' त्रिकालसंध्यादौ विहिताः ' स्नानं त्रिषवणं चरेदित्यादौ च, सवनत्रयानुष्ठानेचोक्ता नतु पंचधादिविभागाः । " मुहूर्तैः पंचभिर्विद्धा प्रात्यावैकादशी तिथि " रिति ऋष्यश्रृंगेण, " त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम् " इति स्कंदेन। " ऊर्ध्वं मुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम् ॥ मुहूर्तपंचकं स्येतत् स्वधाभवनमिष्यत " इति आपस्तंबेन देवपितृकार्येषु विशेषतया कर्मकालस्य व्याप्तिः पंचमुहूर्तात्मकस्याह्नस्त्रिभागेनैवचोक्ता । तत्र सामान्येन त्रिंशद्घटीमिते दिनमाने दशघटिकारूपः प्रातःकालोपूर्वाह्णः । तदुत्तरं मध्याह्नकालः विंशतिघटीपर्यन्तरूपः । तदुत्तरं सायंकालोऽ पराह्णः त्रिंशत्घटी पर्यन्त रूपः ।

स्नान संध्यादि कर्म तीन विभाग मानकर होते हैं ।

७२ अतएव धर्मशास्त्रग्रंथेषु तिथिप्रयुक्तानां कर्मप्रयुक्तानां च विशेषकर्मकालानां निर्णये षट्पक्षा भवन्ति । (१) पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले व्याप्तिः (२) परेद्युरेव व्याप्तिः (३) उभयेद्युर्व्याप्तिः (४) उभयत्रापि व्याप्त्यभावः (५) उभयत्र साम्यैकदेशव्याप्तिः (६) वैषम्येणैकदेशव्याप्तिरिति । तत्र तृतीयपक्षेण तिथे वृद्धिः । चतुर्थपक्षेण क्षयोदशघटीमितोऽर्थ प्राप्त्या सिध्यते अन्यथा उभयेद्युर्व्याप्तिर्व्याप्त्यभावस्य वैय्यर्थ्यप्रसंगः । इत्यतएव त्रयोदशदिनात्मकपक्षवाक्येन उभयत्रापिव्याप्त्यभावपक्षेणच तिथेर्दशघटीप्रमितःक्षयः । तथा च सप्तदशदिनात्मकपक्षवाक्येनोभयेद्युर्व्याप्तिपक्षेण च सामान्यतया दशघटीमितावृद्धि श्चसंपद्यते ।

धर्म शास्त्रीय प्रमाणों से तिथि की ९ घडी वृद्धि और १० घडी का क्षय होता है

७३ एवं धर्मशास्त्रप्रामाण्यात् सूर्याचन्द्रमसोर्द्वादशभागान्तररूपकायास्तिथेः प्रत्यक्षैः प्रमाणैः सूक्ष्मतया च " अंकवृद्धिर्दशक्षय " इति सिध्यति । किंचार्य- भट वराहमिहिरोत्तरं वेधक्रियायाः स्थाने स्थूल गणितागतायास्तिथे- रंगीकारात् तदुत्तरकालिकग्रंथकारैष्टीकाकर्तृभिश्च यद्यपि पंचधाविभाग प्रोक्तस्तथैव १३।१७ दिनात्मकयोः पक्षयोः शशशृंगत्वं चोक्तं तथाप्येतद्विषये श्रुतिस्मृति पुराणादिष्वनुक्तत्वात् प्रत्यक्षविरोधाद्बाणवृद्धिरसक्षयइत्यस्याप्रामाण्यंस्यादेवेत्युपपन्नमिदम् ।

इस प्रकार अंक वृद्धि दशक्षय सिद्ध होता है ।

७४ यत्तु श्रीनिवासकृत वैखानस तिथिनिर्णय कारिकायां " **रवीन्दुमन्द संसिद्ध भवात्तिथ्यादिभोगतः ॥ स्यातां तत्काल बीजोत्थौ, बाणवृद्धि रसक्षयौ ॥ १ ॥ अतः पैत्रिक कर्मादौ तत्काल चरबीजकैः ॥ बाणवृद्धि रसक्षीणा ग्राह्या नान्या तिथिक्वचित् ॥ २ ॥** " इति धर्मशास्त्र विरोधवारणभयात् सिद्धान्त साधितसूर्याचंद्रमसोः तत्काल चरसंस्कारादीन् बीजंच दत्वा बाणवृद्धिरसक्षयौ यथास्यातां तथाप्रसाध्य पैतृककर्मादौ तिथिर्ग्राह्येत्युक्तम् ।

" बाणवृद्धि रसक्षय " संबंधी आक्षेप

७५ किंच " मान्दैककर्म संसिद्धव्यर्केन्दूत्पादितातिथिः ॥ श्राद्धादिषुपरिग्राह्या ग्रहणादौतुबीजयुक् ॥ १ ॥ " इति **कालार्के,** " प्रत्यहंतिथि नक्षत्रयोगस्यानयनेविधुः । अबीजसंस्कृतो ग्राह्योग्रहणादौसबीजकः " ॥ २ ॥ इति **ज्योतिः संग्रहे,** " यंत्रबंधादिनाज्ञातं यद्बीजंगणकैस्ततः ॥ ग्रहणादौ परिक्षेत नतिथ्यादौकदाचन " ॥ ३ ॥ इति । **ब्रह्मगुप्तकृत ग्रंथेच** " शृंगोन्नतौ ग्रहयुतौ, ग्रहणे, तथास्ते, छायानिरीक्षणविधौ उदयेचदेयम् ॥ बीजंफलं तिथिभयोगविधावदेयं चंद्रेप्रदेयमखिलं क्षितिजादिकेषु " ॥ ४ ॥ इति । **लल्लेन** " तिथ्यादिसाधने क्वापि नार्केन्द्वोर्बीज योग्यता ॥ अन्यथा सायनार्कस्य राशिसंक्रमसद्भवे " ॥ ५ ॥ तथाच " ग्रहणादन्ययोगेच कालमालग्नसाधने शृंगोन्नत्युदयास्तेषु दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् " ॥ ६ ॥ अन्यच्च " नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदय- साधने ॥ शृंगोन्नतौतुचंद्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥ ७ ॥ " इति सूर्यसिद्धान्तटीकायां **संगृहीत वचनेभ्यः** । श्राद्धादि धर्मकृत्येषु बीजमदत्वैव ग्रंथ साधिततिथेरेव ग्राह्यत्व मुक्तम् ।

बीजसंस्कार संबंधी आक्षेप

७६ तथाच " अदृष्ट फलसिध्यर्थं यथार्काद्गणितंकुरु ॥ गणितं यदिदृष्टार्थं तदृष्टयुद्भवतः सदा ॥ १ ॥ श्रीसूर्यसिद्धान्तमतोद्भवाऽर्कात्साध्यौ तदातात्रधिक- क्षयाख्यौ ॥ मासौ ग्रहज्ञैर्गणितं तथान्यत्साध्यं सदा यद्यपि तद्ग्रहाद्यम् ॥ २ ॥ स्थूलंसदा ब्राह्ममतं निरुक्तमादित्य सिद्धांतमतं च सूक्ष्मम् ॥ भाद्यादिके सूक्ष्मतगादसूक्ष्मं सूक्ष्मंमतं स्थूलतएवसिद्धम् ॥ ३ ॥ अतोऽनिशं संक्रमणे शुभाविनास्थितौसदा सूक्ष्मविधान साधने ॥ सौरंमतंशस्तमथान्यनिर्णये स्थूलंचमन्ये-

" अदृष्टार्थ " संबंधी आक्षेप ।

ग्रहसंक्रमेष्वपि ॥ ४ ॥ इति **तत्वविवेके कमलाकरस्तु** ब्रह्मगुप्तादिकृतसिद्धान्तापेक्षया साम्प्रतिक सूर्यसिद्धान्तस्य सूक्ष्मत्वंप्रतिपाद्य ततोऽधिमासादीनां निश्चयोधर्मानुष्ठेयकृत्यानि अदृष्टार्थरूपाणिच तेनैवसाधिततिथ्यादिषुकुर्यादिति; 'ग्रहणे, अस्तोदये, लोपदर्शने, ताराग्रहयुतौ, ग्रहग्रहयुतौ, नतांशोन्नतांशदिगंशेषु, छायानिरीक्षणविधौ, अन्येषुचदृष्टार्थकार्येषु बीजंदत्वाअदत्वावा दृक्प्रत्ययावहसूक्ष्मगणितसाधिता ग्रहाएवग्राह्या' इति च जगाद ।

७७ एवमेव ब्रह्मगुप्तादर्वाचीनानां (७३-७५ स्तंभोक्तानां) उदाहारादनुयोगः संभवति 'किमनेन दृग्गणित शुद्धतिथ्यादिष्वदृष्टार्थानुष्ठानेन धर्मशास्त्र हानिः किमुत भ्रांतिपूर्णासिद्धानुष्ठानेनाभ्याख्यानमिति । नचाद्यः धर्मशास्त्र मूल भूतानां श्रुतीनां तत्स्मरण कर्तृणां स्मृतीनांच ज्योतिःशास्त्रस्यैक रूपत्वात्, श्रुतिसम्मत वेधसिद्धमानानामेव वेदांगत्वेन पुरस्तादागमत्वोपादानाच । नचान्त्यः दृग्गणित सिद्धस्य दृश्यप्रत्यावहान्तस्य तात्कालिककालान्तरजन्यसंस्कारसंस्कृतसिद्धान्त ग्रंथस्य तदाऽनुपलंभात्-ऋषिप्रणीतग्रंथसाधिततिथ्यादीनां अदृष्टार्थकार्येष्वपि अदृष्टार्थ तया उपादेयत्व प्रतिपादनेन सूक्ष्माभावे '**सूक्ष्मंमतं स्थूलत एवसिद्धम्**' इत्यनूद्य निर्व्यलीकेन मनसा आर्षसत्ताया एवांगीकारात् ।

उपरोक्त आक्षेपों का उत्तर

७८ इत्यत इदं सान्वं कथनम् । तद्यथा यद्यपि रविंदोर्मन्दफलयोः संस्कारे कृतेऽपि तत्कालीन बीजसंस्कारवशेन यथा बाण वृद्धिरसक्षयौस्यातां तथा तिथेः साधनं कुर्यादिति (७४ स्तंबोक्त) प्रमाणानि (७४+७६ स्तंबोक्त) प्रमाण विरुद्धानि गोलाविरुद्धानिच संति । एवमेव (७५ स्तंभोक्त) प्रमाणानि [७४+७६] विरुद्धानि अतएव प्रचरणरहितानिच संति । यथाहि वराहमिहिरेणोक्तम् "**पौलिश तिथिस्फुटोसौ तस्यासन्नस्तुरोमकः प्रोक्तः ॥ स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूर विभ्रष्टौ** ॥ " [पंचसिद्धांतिका १·४] पैतामहवासिष्ठौ दृग्गणितहीनौ जातावित्यर्थः । किंच सूर्यसिद्धांतोक्त गृहेष्वपि "**क्षेप्याशरेन्दुविकलाः प्रतिवर्षम्**" (पं. सि. १५·१०—११) इत्यनेन बीजसंस्कारोदत्तः । अतएव सिद्धांतितंचानेन "**वर्षेणभगणमर्कोयादिभुंक्ते किं ततो यथेष्टदिनैः ॥ अज्ञोप्येवं गणयति किं न रविं लोष्ठरेखाभिः ॥ १ ॥ सममंडल रेखा संप्रवेशवेलां करोतियोर्कस्य ॥ तत्प्रत्ययंच जनयति जानाति स भास्करं सम्यक्** ॥ २ ॥ (पं. सि. ४·३७—३६) इति दृक्प्रत्ययावहगणितसाधितसूर्यस्यैवांगीकारः कृतः । मकरंदेतुचंद्रोच्च पातादीनां लल्लेनच चंद्र, चंद्रोच्चपातादीनां ग्रहणांच, सिद्धान्तशिरोमणौच भास्कराचार्येण सूर्यचंद्रादीनां ग्रहाणांमध्ये बीजसंस्कारःकृतः । गणेशदैवज्ञेनतु बीजादन्यदप्यन्तरंदृष्ट्वा '**अंक कलिकोनाब्जः**' इत्यनेन चंद्रमसिच बीजंदत्वा "**मे यांति दृक्तुल्यतां सिद्धैस्तैरिह पर्वधर्म नयसत्कार्यादिकंत्वादिशेदि**"

बीजसंस्कार के प्रमाण

जगाद। एव मेव विश्वनाथोऽपि "**दृष्टि प्रत्यय कारकान्**" "रवीन्दु शशभृत्तुंगोभवान् भादिकान्" कथितवान्। किमुत सांप्रतिक सूर्य सिद्धान्तेऽपि "**युगानांपरिभेदेन कालभेदात्र केवल**" मित्यनेन कालान्तरानुसारेणायंद्वितीयः सूर्यसिद्धान्तो रचित इत्युक्तम्। अतएवाष्टादशसिद्धान्ता बभूवुः। तैश्चतत्तत्कालेषु तिथि पत्रादीनांसाधनं चासीत्तदा अदृष्टार्थ कार्येषु अदृष्टैक ग्रंथसाधितायास्तिथेःकेनाऽपि ग्रंथकारेण अंगीकारोनकृत इत्यतः कमलाकराद्युक्तिरबद्धमूलैव भाति। तथाप्येतच्छुद्रसूक्ष्मग्रंथालाभकालिकया प्रासंगिकोक्त्या युक्तकथनमेव त्यवगम्यतेऽस्माभिः।

७९. वस्तुतस्तु भूकक्षा केंद्रच्युतिर्मन्दं मन्दमपचीयमाना वर्तते तेनरवेः परमंफलं यत्पूर्वं (२°। १३′। ४१″। तः २°। ८′। ५९″) आसीतच्च संप्रति (१°। ५५′। १७″) वर्तते। चंद्रस्य मध्यमगतिरपिमन्दंमन्दमुपचीयते तस्मात्कालान्तरे मध्यमचंद्र उच्चपातयोश्चमहदंतरमुत्पद्यते। सम्प्रतितु- अस्माकीनानि नाक्षत्रमानान्यपिउच्चगतिसंमिश्राण्यतएवमंदकेंद्रगतितुल्यान्यभवन्। यथाचोक्तं भास्कराचार्येण "यस्मिन्दिनेगतेःपरमाल्पत्वंदृष्टं तत्रदिने मध्यमएव स्फुटग्रहोभवति तदेवोच्चस्थानं यतउच्चसमे ग्रहे फलाभावोगतेश्च परमाल्पत्वमिति" गतिमतस्योच्चस्यविषये "अस्यचलनं वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यत" इत्यतोस्यनाक्षत्रवत् स्थिरत्वमुक्तम्। इदमपि तस्मिन्काले उच्चस्य वास्तविकगतेरनुपलंभादेव नाक्षत्रस्थाने मंदकेन्द्रीयतुल्याः भगणा उक्ताआसन्स्म।

सूर्य फल में कालान्तर जन्य संस्कार.

८०. एवमेव चंद्रफलं (४°। ५६′) अतः (५°। ५′। ३९″) आसीत्। तच्चसंप्रति (६°। १७′) वर्तते किंचतस्मिन्सूर्यवार्षिकगतिफलजन्योगतिसंस्कारः। सूर्यस्यभूमेश्चाकर्षणभवौतिथिच्युति संस्कारौ पातभवश्चपरिणतिसंस्कारः एवं पंच संस्कारैः सहमंदफल साधितस्यस्पष्टचंद्रस्य भूमध्यदृश्यस्थानं निश्चीयते नत्वेकेनमंदफलेन। एतत्तुपंचांगसाधानार्थमेव। ग्रहणादौयुतौचएकादश संस्कारसंस्कृतेन स्पष्टतर चंद्रेणैव नतांश नति लंबनादीनां भूपृष्ठीय दृश्य मानानां सूक्ष्मतरेणभाव्यत्वान्निश्चयो भवति। तुरीय यंत्रादौ स्थूलेन भिद्यमानत्वात्।

चंद्र फल में संस्कार

८१. अतएवोक्ताभ्यां स्पष्टरविचंद्राभ्यां द्वादशप्रभागान्तरमितैका चांद्रमसी कला तिथिशब्देनोच्यते एवं (१२+१५=१८०) पंचदशीकला पौर्णिमा, अमातुषोडशी शून्यस्थानीयाकला ध्रुवाख्या अस्याः निश्चयस्तु "**यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नेति चंद्रमाः॥ अनयापेक्षयाज्ञेवमिति**" कात्यायनस्मरणोक्तचंद्रादर्शनकालादेवभवति। तदनुसारेण एकैककलायाः उन्नतांशदिगंशाभ्यां छाययानतकालांशवशेनच याम्योत्तरलंघने यथा भूगर्भीयमानं दृश्यं स्यात्तथा स्पष्टकलारूपां तिथिं निश्चित्य तस्मिन्नेव सर्वाणि (दृष्टार्थादृष्टार्थ) कार्याणि कुर्यादिति (३६-४१ स्तंभेषूक्तवत्) आर्षवचनैरेवोपपन्नत्वाद्बाणवृद्धिरसक्षयवृद्धिक्षयौबहुधापंचम्यांतिथावेवस्तः परमंमानंतु अंकवृद्धिर्दशक्षयामितंसूक्ष्मगणितेनसिध्याति

तिथियों में संस्कार

तिथियों के लिये धर्म-शास्त्रीय प्रमाण ।

८२. यत्तु निर्णयसिन्धौ कमलाकरेण विद्धातिथि निर्णये पैठिनस्युक्त प्रमाणेन "पक्षद्वयेऽपि तिथय स्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम् ॥ त्रिभिर्मुहूर्तै र्विध्यन्ति सामान्योयं विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ इत्यत्र सामान्यतया त्रिमुहूर्तात्मको वेध उक्तः । किंच ' पूर्वांतथोत्तरा " मिति कथनेन त्रिमुहूर्तात्मकः क्षयस्त्रिमुहूर्ता वृद्धिश्च संपद्यतेऽत्र परमस्थाने एवेतिचेन्न तस्य सामान्यतया निर्देशात् ।

तिथिके वृद्धि और क्षयका परम मान ।

८३. किंच तिथि विशेषस्य पूर्वापरवेधविशेषप्रसङ्गेन तिथेर्वृद्धिक्षययोर्मानमप्युक्तं स्कंदेन ।

" नागो द्वादश नाडीभिर्दिक्पंचदशभिस्तथा ॥
भूतोऽष्टादश नाडीभि र्दूषय त्युभये तिथिम् ॥ १ ॥ *
+ वृद्धि क्षयौ स्तः परमौ तिथौ सदा व्यर्धारसाः ५॥
सार्धरसा ६॥ श्च नाडिकाः ॥
सनेमिशैला ७। विपदोष्टमा ७॥। स्तथा निरंघ्रिरंध्रा ८॥।
सपदा नव ९। क्रमात् ॥ २ ॥ ‡

द्वयोरेकैवार्थ := यथाहि– (१) नागः पंचमी तस्या व्यर्धारसाः , सार्धरसाश्च नाडिकाः (५॥) + (६॥) = १२ द्वादश तस्यां तिथौ परमौ वृद्धिक्षयौस्तः । (२) दिक् दशमी तस्याः सनेमिशैला वृद्धिः, विपदोष्टमाःक्षयः एवं (७।) + (७॥।) = १५ पंचदश घट्यः वृद्धिक्षयरूपाः । तथैव (३) भूतश्चतुर्दशी तस्या निरंघ्रि रन्ध्रा A वृद्धिः, सपदा नव क्षयः एवं (८॥।) + (९।) = १८ अष्टादश नाड्यः । अमूभिः उभयेपार्श्वे तिथिं दूषयति भिनत्तीत्यर्थः । अन्यथा क्षयवृध्यनुसारेण प्रोक्तस्य वेधस्य गणितेनासंभवादुतचोक्तस्य प्रमाणस्य वैयर्थ्यापत्तेः । द्वितीयस्य प्रमाणस्य निर्वचनसंगत्या उपर्युक्तार्थ एव बोभवीति । नचाद्यस्यान्तेनान्त्यस्याद्येनान्योन्याश्रयत्वं भवति किंच प्रथक्पृथगिति प्रोक्तप्रमाणयो स्वतंत्र्येणैवामुयोः सार्थकता, परस्परं संबंधत्वादेकवाक्यताच बोभूयते ।

५- १०- १४ तिथियों का परम वृद्धि क्षय.

८४ नचोक्ताभ्यां स्कांदोक्त प्रमाणाभ्यां प्रोक्तासु तिथिषु वृद्धिक्षयवशेन प्रत्यक्षतया ज्योतिःशास्त्रविरोधापत्ति रितिवाच्यम् । उक्तवचनाभ्यामेवार्थप्राप्त्या तिथेर्भोगानुसारेण (१) तस्यादिनगतिः (२) चंद्रदिनगतिस्तयाच (३) चंद्रस्यबिंबं, (४) क्षितिजलंबनं च सूक्ष्मपरिमाणेन सह दृग्गणितस्य तुल्यत्वमेवनाद्यास्य ज्योतिः शास्त्रशुद्धत्वंभवत्येवेत्यतोऽधस्तन समीकरणेनायमेवार्थोप्रदर्श्यते

* उक्त श्लोकस्य चतुर्थचरणस्तु निर्णयसिंधौ (प्रथमपरिच्छेदे तिथिनिर्णयप्रकरणे) "दूषत्युत्तरां तिथि " मितिपठितः । तदातु युग्मवाक्या दैवपित्र्यकर्मभेदेन वृद्धौसत्यां क्षयेसतिच उतरामेवतिथिं दूषयति । पूर्वां तिथि वेंधेतु शुद्धैवेत्यर्थः

‡ पुण्यपत्तन पंचांगैक्य मंडलविवरणे (पृष्ठ ९२ मध्ये) प्रस्तुत श्लो रा: ज्यो. आष्टेकरेण पठितः

A मनुष्यस्यनवद्वाराण्येव रंध्र= छिद्र शब्देन व्यवह्रियन्ते ।

८५ कोष्टकः प्रथमः (तिथी के वृद्धीक्षय का प्रमाण दर्शक कोष्टकः)

स्कांदोक्त प्रथम प्रमाणस्य विवरणम्	नागः=पंचमी द्वादश नाडीभिः (५.५+६.५=१२.०)				दिक्=दशमी पंचदश नाडीभिः (७.२५+७.७५=१५.०)				भूत=श्चतुर्दशी अष्टादश नाडीभिः (८.७५+९.२५=१८.०)			
द्वितीय प्रमाणस्यच	वृद्धौ व्यर्धारसाः		क्षये सार्धरसाः		वृद्धौ सनेमिशैलाः		क्षये विपदोष्टमाः		वृद्धौ निरंध्रिरंध्राः		क्षये सपदानव	
मध्यम तिथि गतौ ५९।१.७	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल
वृद्धिक्षयमाने	+९	३०	−६	३०	+७	१५	−७	४१	+८	४१	−९	११
तिथि भोगः	६४	३१.७	५२	३३.७	६६	१८.७	५१	१८.७	६७	४८.७	४९	४८.७
तिथीनांदिनगतिः		६६९		८२२		६५२		८४२		६३७		८६७
सूर्य मध्यमगतिः		+५९		+५९		+५९		+५९		+५९		+५९
चंद्रस्य स्पष्टगतिः		=७२८		=८८१		=७११		=९०१		=७०६		=९२६
कालान्तरम्		−१७		−१२		−१		-३०		+२		−७
संप्रति चन्द्रगतिः		=७११		=८५९		=७१०		=८७१		=७०८		=९१०.
बिंबं		२९.६		३१.६		२९.६		३२.८		२९.६		३३ ८
लंबनं		५४.२		५९.८		५४.२		६०.२		५४.१		६२.७
	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	घटी	पट	घटी	पल
तिथेर्दिन भोगः	६५	३०	५३	३०	६७	१५	५२	११	६८	४५	५०	४५
तिथेर्दिन गतिः		६७०.०		८१०.३		६५२.६		८३९.९		६३८.४		८६४.८
सूर्य स्पष्टगतिः		+६०.१		+५८.१		+६०.६		+५७.६		+६१.१		+५७.१
चंद्र दिनगतिः		=७३०.१		=८७८.४		=७१३.२		=८९७.५		=६९९.५		=९२१.९

(Vertical labels at the left of the table: "तिथेर्मध्यमगति ५९।१.७ चांद्रदिनं प्रकल्प्य." beside the upper rows; "६० घटीदिनंप्रकल्प्य" beside the lower rows.)

* संप्रति सूर्य (मध्यम) दिनगतिः ५९.१३६५५२ } तिथिगतेर्लघुरिक्थं
" चंद्र " " ७९०.५८१४९८
" तिथि " " ७३१.४४४९४६ = घा. ६.४२०४८४१ (भाज्यः) कोष्टकस्थ तिथिभोग्यः भाजका उह्याः

८६. ननु उपर्युक्त त्रिषष्ठितम (६३) स्तंभोक्ताभ्यां त्रयोदश स सप्तदशदिनात्मकाभ्यां पक्षाभ्यांतिथेरष्टघटी वृद्धिरष्टघटीक्षयश्च प्रतिपादितस्तथाचात्र उपर्युक्तस्कांद प्रमाणाभ्यां पादोन-नवघटीवृद्धिः सपादनवक्षयश्च प्रतिपादितोनतु अंकवृद्धि र्दशक्षयश्चेत्यत एतदेव परमावधौ परिमाणमितिचेन्न । उक्ताभ्यांस्कंदपुराण वचनाभ्यां पंचम्यामेव बाणवृद्धि रसक्षयासन्नसंभवो-न्ययोर्दशमी चतुर्दश्योस्तु सप्ताष्टमितौ, पादोनाधिके नवमितौ च दर्शितौ ते सर्वे चंद्रफल दीर्घवृत्त जन्याएव क्रमेणोक्ताः । किंच सूर्याकर्षण भवेन गतिसंस्कारेण, सूर्यमंदफलाकर्षणोत्प-न्नेन च्युति संस्कारेण विक्षेप जन्य परिणति संस्कारेण संस्कृतास्युस्तदा पौर्णिमान्ते अमान्तेवा केंद्रोपकरणात्परमफलेतु तिथेः परम वृद्धिक्षये नवदशघटीमिते एवसिद्ध्येत इत्युपपन्नमिदम्।

८७. अहोभाग्यं भारतवर्षस्य यत्प्राचीनतमवैदिककालादेवश्रुतिस्मृतिद्रष्टारोस्मतातश्च ऋषयः सर्वेएव ज्योतिर्विदो ज्योतिस्तत्वानामाविष्कर्तारः सुपर्णचि-त्यादिरूपेण तत्कालीनपंचांगानां प्रणेतारः सुविमलविभासित विज्ञाना महाविद्वान्स आसन्स्म । चितिचयनेवा तदंतर्गत देवता-भ्यर्चनादिभिरेव तदा सांप्रतिकपंचांगवदुपयोग आसीत्तदर्थंचेदमुक्तं कुंडगाम बाजपेयेन " कश्चिन्नवेदगणितं यदिवेत्तिशुल्वं शुल्वंनवेदयदियोत्यपरोंकक्षामिम् ॥ विद्वान्द्वयं नविवि-धागम पंडितोन्यस्तज्ज्ञानवा नपिसुपर्णचितौपटुः कः ॥ १ ॥ " इत्यत एवास्माकं ज्योतिः शास्त्रस्य धर्मशास्त्रेणांगांगीभावो वर्तते.

वेद और ज्योतिष का एक स्वरूप.

८८. उतच विद्यानां यानि स्थानानि तान्येव धर्मस्यस्थानानीति स्मरणं भगवतोयाज्ञ-वल्क्यस्य " पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्यच चतुर्दश ॥ १ ॥ इत्यत एव यदा २ आसां उन्नति कर्त्रीः काचिद्युक्तिस्यात्तदा' जिज्ञासो युक्तिरिष्टास्ति यदि श्रुत्यनुसा रिणी ' तिसाकल्य ब्रह्मसिद्धान्तोक्तव च्छ्रुत्यनुसारिण्येवोन्नतिः स्वीकार्या । श्रुतिविरुद्धा युक्तिस्तु आसां अवनति कारिण्येव । प्रोक्तानिच चतुर्दश विद्यास्थानान्यपि नूनं श्रुतिमूलान्यतएव तेषां आर्षत्वं प्रामाण्यंच सर्वेविपश्चितोमन्यन्ते ।

विद्या और धर्म शास्त्र का एक स्वरूप.

८९. किंच संप्रति केचन विद्वांसः सम्यगनवलोकित चतुर्दशविद्यास्थाना, अविचारित श्रौतस्मार्तोचर रहस्या, अनधीत त्रिस्कंध ज्योतिषकाः, केवलं वैदे-शिकशिक्षणचमत्कार चमत्कृत हृदयाः ; श्रुतिसम्मतां नाक्षत्रगणना-पद्धतिं निःसारां तथैव भारतीय ज्योतिषं जीर्णशीर्णंच मत्वा तस्मिन्-स्थानेऋग्विजैराविष्कृतामृत्वयनसंवत्सरसत्रादिश्रौतयज्ञैः परिशोधितां-त्यक्त्वा किंच केवलं भूपृष्ठदृश्यखगोलीय गणित साधन भूतां, ध्रुवसूत्रीय परिमाणोपकरणां, तदु-पयोगिकार्यादिषु कदंबसूत्रीयनाक्षत्रगणनयैवायनभागसंकल्पोऽपिसुसाध्यां साम्पातिक गणनाप-द्धतिं रोमकसिद्धान्तोक्तवत्पंचसाधनेऽपि विनियोज्यास्माकं धर्मशास्त्रोक्त कार्यादिषु केवलं सायनमानं स्थिरीकर्तुं प्रयतन्ते ।

प्राचीन प्रणाली को कुछ अर्वाचीन विद्वान् बदलना चाहते हैं.

९० तदर्थंच ते अर्वाचीनसिद्धांत ग्रंथानां केंद्रीय मानमविगण्य तेषां करणानांच मध्ये परस्परमुच्चावचार्यविसंवादं, सूक्ष्मासूक्ष्मायमयनांशवादं, प्रचरणयुतमयुताद्यमारंभस्थानवादं, इदंयुक्तमिदमयुक्तमित्यतिवादांश्चपुरष्कृत्य; सूक्ष्मफलत्यागेन ज्योतिःशास्त्रहानिः भारतीय ग्रंथोक्त स्थूलफलत्यागेन धर्मशास्त्रहानिरित्यादिभ्य उभयपक्षयो-र्दोषालापादिभिर्धर्मशास्त्र ज्योतिःशास्त्रयोर्मध्ये भेदमुत्पाद्यउक्तानां विसंवादानां मूलकारणं अयनभागा एवसन्त्यतस्तान्सूदूरमुत्सृज्य तथैव कदंबसूत्रीयनिश्चलारंभस्थानंचोज्झित्य; तस्मिन् स्थले वसंत संपातस्य चलस्थानमपि राशिचक्रस्यारंभस्थानेयुङ्क्त्वा, रवेश्चक्रभोगाऽपूर्णवर्षमपि पूर्णमंडलरूपं सौरवर्षमत्वा, नक्षत्रराश्यादीनामश्वमुख मेषाद्याकृति विशेषै यौगिकाभिधेयानां संपातादेव नामानि कल्पयित्वा, नौकायानोपयुक्तान्मानान्पंचांगसाधने अनुपयुक्तान्यपि युक्तानुक्त्वा, स्थिरप्राय तारकानपि अयनगत्या प्रतिवर्षं प्रतिदिनं च संचाल्य स्थिरवत्कृत्वा, तदनुकूल पंचांग प्रचारेणांततोऽधिमास तिथ्यादीनां वृद्धिक्षयादिमानान्निःशेषं चिकीर्षवःस्तारीखवद्दिन गणना रूपकान्कल्प्यमानान्प्रचारयन्- इत्यादि प्रयत्नै रीदृशेषु कार्येष्वेव भारतीय ज्योतिःशास्त्रस्योन्नतिं दर्शयिष्यन्तीत्यस्मात्किमन्यदाश्चर्यकरम् ।

सायनमान के प्रचार के लिये आधुनिक विद्वानों के प्रयत्न।

९१. किंच ईदृशस्य प्रयत्नस्यासमीचीनत्वं इत्यतः पूर्वं (पुनर्वसु संपातकाले) एव पुलिशाचार्येण प्रतिपादितं तथाचोक्तं पौलिशसिद्धान्ते—

इससे भारतीय ज्योतिष की उन्नति नहीं होगी।

" रोमक महर्गणं पादमर्कमिन्दुं च गणयता माद्या ॥
चैत्रस्य पौर्णिमास्यां नवमी नक्षत्रमादित्यम् ॥ ३९ ॥
कालापेक्षा विधयः, श्रौताः स्मार्ताश्च तदपचारेण ॥
प्रायश्चित्ती भवति द्विजो यतोऽतोऽधिगम्येदम् ॥ ३१ ॥ *

[पंचसिद्धांतिकायां अध्याये ३]

इत्यतः सुधीभिर्भृशं विमृष्य ' श्रुति सम्मता, ज्योतिःशास्त्र शुद्धा, नाक्षत्रपद्धतिरेव यथातथावा दृग्गणितरूपास्यात्तथातां संस्कार्य तया एव शास्त्रशुद्धया सूक्ष्मगणितरूपया नाक्षत्रपद्धत्या एव परंपराप्रामाण्ययुतं अत्रत्यपंचांगं रचयंतु भवन्तोऽन्यत्रापि प्रचारयन्तु इत्यभ्यर्थ्यते पल्लवितेन—

गोपालमंदिरे इन्दौर नगरे
सभायां तारीख २४-११-२९

विनीत वशंवदो विद्याभूषण
दीनानाथ शास्त्री, चुलेटः

---

* अस्य प्रमाणस्य तात्पर्यार्थोऽस्माभि "वेदकालनिर्णये पौलिश सिद्धान्तकाल निर्णय प्रकरणे" निरूपित स्तमवलोकनीयं श्रीमद्भिः ।

पत्र नंबर १५ ता. २४-११-२९ ईसवी

पंचाग शोधन के मूलतत्व.

लेखकः— विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर.

वर्षमान शोधन.

प्रस्ताविक निवेदन ।

१ उपरोक्त संस्कृत पत्र में ज्योतिःशास्त्र और धर्मशास्त्रके अनेक प्रमाण देकर शास्त्रीय पद्धतिसे सिद्धकर के बतादिया है कि; शुद्ध एवं सूक्ष्म गणित के पंचांग के उपयोग करने में धर्मशास्त्र की बाधा नहीं है। अतएव अत्यन्त प्राचीन वैदिक काल से तो आजतक वास्तविक स्थिति दर्शक अर्थात् यथार्थ सूक्ष्म गणित का दृक्प्रतीति कारक पंचांगकाही उपयोग किया जाता था। और जब २ उसमें कालान्तर जन्य फर्क दृष्टिगोचर होता था; तब २ तत्कालीन ज्योतिर्विद उसे शुद्ध करलिया करते थे। तथा अन्यान्य शास्त्रोंकी ज्ञानोन्नति के साथ २ ज्योतिःशास्त्र के मूल तत्वों का यानि इसके शुद्ध सूक्ष्म परिमाणों का जैसे २ शोध लगते गया है। वैसे २ पंचांग शोधन कार्य में उसका उपयोग भी होता गया है। क्योंकि आदिम शोधमें स्थूलता रहना स्वाभाविक बात है। किंतु कालावधि गणित से सुधारणा होते होते अन्त्य में शुद्ध सूक्ष्ममान निश्चित होजाते हैं। तब बुद्धिमान पुरुषका कर्तव्य है कि संमिश्र परिमाणों से शुद्ध परिमाणों को अलग अलग करके शुद्ध परिमाणों को ही उपयोग में लावें।

वर्षमान शोधन की आवश्यकता।

२ इस प्रकार की प्रणाली चलते हुए पहिले चंद्र के उच्च और पात [राहु] का शोध लगा, तब उसके भगणभी करीब ९ व १८ वर्ष में पूर्ण होनेवाले यानी थोडेही वर्षों के होनेके कारण चंद्रोच्चपात की गतिभी यथार्थ निश्चित होगई, इसलिये चंद्रकी मध्यम गतिभी शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के अनुसार सूक्ष्ममानकी निश्चित की गई। इसी प्रकार सूर्यादि ग्रहों के उच्च और पातों का भी शोध हमारे पूर्वजोंने लगालिया है। किंतु इन उच्च व पातों के भगणों का काल बहुत बडा यानी लाखों वर्षोंका होनेसे इन उच्च पातोंके सूक्ष्म गति का यथार्थ पता अभीतक लगा नहीं था। इसलिये उन ग्रहोंके भगण अर्थात् प्रदक्षिणाकाल [वर्षमान] भी उच्चगति सम्मिश्र यानी मंद केंद्र के आसन्न के कहे गये हैं। इसी प्रकार फलसंस्कार भी कुछ स्थूल हैं। इसलिये ग्रहोंके प्रत्यक्ष वेध में बहुतही अंतर पडता है। किंतु अब हमें सब ग्रहोंके उच्च व पातों का और उनके गति का तथा ग्रहोंकी मध्यम गति एवं उनके परम फलादिके सूक्ष्म परिमाणों का पता लग गया है। इसलिये हमारा पवित्र कर्तव्य है कि इन सब परिमाणों को शास्त्रीय रीति से शुद्ध व सिद्ध करके अलग अलग बतला दें। ताकि पंचांग का गणित

शुद्ध एवं सरल होजाय । क्योंकि ग्रहों के भगणों [वर्षमान] को शुद्ध बतला देनाही पंचांग गणित का मुख्य कार्य है ।

पंचांग गणितमें वर्षमान शोधन ही मुख्य कार्य है.

३ लेकिन ग्रहोंके भगणों (वर्षमान) को शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के तब तक नहीं बता सकते, जब तक हम यह न बतादें कि इनके वर्षमान किस तरह उच्चगति संमिश्र हुए हैं, चंद्रका वर्षमान शुद्ध कैसे किया गया है और हमारे पूर्व ग्रंथकारों ने इसके संबंध में क्या कहा है । क्योंकि हमें उसी प्रणाली का अनुकरण करके पंचांग का शोधन करना चाहिये कि हमारे सर्वमान्य ग्रंथकारों ने जिसे अंगीकृत किया है ।

वर्षमान के संबंध में प्राचीनों का कथन ।

४ इस विषय के संबंध में भास्कराचार्य ने [शाके १०७२ में] बहुतही उत्तम प्रकार से वर्णन किया है । और गणेशदैवज्ञादिने [शाके १४४२] अपने २ ग्रंथोंमें उसे गणित द्वारा मान्य किया है । इसलिये वह पंक्ति इस प्रकार है कि उसमें मध्यमगति और चंद्रोच्च के संबंध में लिखा है कि " **एवं प्रत्यहं वेधं कृत्वा स्फुटगतयो विलोक्याः । यस्मिन्दिने गते परमाल्पत्वं दृष्टं तत्रदिने मध्यमएव स्फुटचंद्रोभवति तदेवोच्चस्थानम् । यत उच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमाल्पत्वम् । ततश्च तस्माद्दिनादारभ्यान्यस्मिंश्चंद्रपर्यये प्रत्यहं चंद्रवेधात् तथैवोच्चस्थानंज्ञेयम् । तच्च पूर्वस्थानादग्रतएवभवति । यत्तयोरंतरं तज्ज्ञात्वानुपातः क्रियते । यद्येतावद्भिरंतरदिनैरिदमुच्चयोरंतरं लभ्यते तदैकेन किमितिफलं तुङ्गगतिः । तयानुपातात् कल्पभगणाः ।**

(सिद्धान्तशिरोमणि ग्र. ग. मध्यमाधिकार श्लो. ६ वासना देखो)

अर्थात् " नित्यप्रति वेध लेते हुए चंद्रकी दिन गति को देखते जाना, जिस दिन सबसे थोडी गति दिखे उसदिन मध्यम चंद्र ही स्पष्ट चंद्र होता है । वही उच्चस्थान है क्योंकि जब उच्च के समान ग्रह होता है तब फलका अभाव और उसकी गति परमाल्प होती है । उसके बाद दूसरे उच्चस्थान जानेतक नित्यप्रति चंद्रवेधद्वारा उसी प्रकार उच्चस्थान को निश्चित करे तो वह पहिले के स्थान से आगे के स्थान पर होता है । उक्त दोनों उच्चांतर के दिनों के गणित से-उच्चगति' भगण और कल्पभगणों को निश्चित कर लेना चाहिये ।" इसीतरह शरके अभाव स्थानसे पात को निश्चित कर लेना कहा है ।

अभीतक उच्चगति का पूरा पता नहीं लगा था.

५. यद्यपि उपरोक्त कथन चंद्रके संबंधमें कहा गया है किंतु यह उपलक्षणमात्र होने से इसी तरह सूर्य भौमादि ग्रहों का भी जान लेना योग्य है । किंतु इसके संबंध में भास्कराचार्यने लिखा है कि; " **तस्योच्चस्य चलनं वर्ष शतेनापि नोपलक्ष्यते, किन्त्वा** चार्यैश्चंद्रमन्दोच्चवदनुमानात् कल्पिता गतिः । सा चैवम् । यैर्भगणैः साम्प्रताऽहर्गणाद्वा एतावदुच्चं भवति ते

भगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिताः ।" (सि. शि. म. वासना श्लो. ६ देखो)
अर्थात्— "सूर्यादि ग्रहोंके उच्चका चलन सैकडों वर्ष में भी दृष्टिगोचर नहीं होता लेकिन आचार्योंने चंद्र के मन्दोच्चके सदृश सूर्यादिकों के उच्चकी गति भी अनुमान से कल्पित की है । वह इस प्रकार होती है कि' जितने भगणों से सांप्रतिक अहर्गण या वर्ष गण के गणित द्वारा के वेधसिद्ध उच्च स्थान आसकें उस युक्ति या कुट्टक गणितसे उच्चके तथा इसी तरह शराभाव स्थानसे पातके भगण-कल्पित किये हैं ।

उच्चगति मध्यमगति में मिलने से मंद केंद्रग्रह भगण कहे गये हैं.

७ इस कथन से स्पष्टतया ज्ञात होता है कि; भास्कराचार्य के समय (शाके १०७२) तक चंद्र के शुद्ध नाक्षत्रमान की मध्यमगतिका तो पता लग गया था क्योंकि चंद्र के उच्चपात के भगणादिमान सूक्ष्मपरिमाण के तुल्य निश्चित होगए थे किंतु सूर्यादिके उच्चभगण और भौमादिके पातभगणयुक्ति से कल्पित किये हुए हैं अतएव वह स्थूल रहने के कारण इनग्रहोंके भगण परिमाण भी उच्चपात गति मिश्रित कहे गए हैं और आजतक वह वैसे ही उपयोग में लाए जाते हैं जैसाकि भास्कराचार्य ने (आपके साम्प्रतिक मानके तुल्य) बतलाए हैं ।

कोष्टक परिचय

८ *कोष्टक १ के दो भाग तथा दोनों भागोंमें पांच पांच कालम हैं । पहिले कालम (पंक्ति) में शुद्धमंद केंद्रीय याने उच्च भगणतुल्य, पांचवें कालम में शुद्धनाक्षत्रीय परिमाणके और २-३-४ कालम में सौर, आर्य व ब्रह्मगुप्त के सिद्धांत ग्रंथों में लिखे ग्रहों के भगणदिन बतादिये हैं । तथा दूसरे भाग में उसी क्रम से केंद्रांतर – उच्चगति और नाक्षत्रांतर – शुद्ध परिमाण से अन्तर अलग २ बतादिये हैं ।

तात्पर्य का अन्वेषण.

९ इसके देखने से आपको मालूम हो जायगा कि तीनों सिद्धांत ग्रंथोक्त चंद्र के भगण तो शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के तुल्य हैं । इसीलिये केंद्रान्तर चद्रोच्चगति के तुल्य वास्तविक होने से मध्यमचंद्र, चंद्रकेंद्र और पातोपकरण सूक्ष्ममान के कहेगए हैं । और बुध शुक्र व मंगल के भगण स्वल्पान्तर से मंदकेंद्र तुल्य होकर गुरु व शनि के भगणों में कुछ थोडा अधिक अन्तर है किंतु वह उनके बडे भगणों के हिसाब से उन ग्रंथों के रचना काल के गुरु शनि के परस्पर आकर्षण संस्कार करनेपर मंदकेन्द्रीय मान के तुल्य ही हैं ।

* स्थलाभाव के कारण यह कोष्टक १ आगे के पृष्ठ में लिखा गया है । उसे पढकर बाद में कलम ८ को पढिये तो उसके अर्थ को स्पष्ट रीति से समझ सकेंगे.

१०. संपूर्ण भारतीय ग्रंथों में जहां जहां ज्योतिर्गोल का वर्णन है वहां वहां आकृति विशेष वाले नक्षत्रों से उनकी गतिस्थिति बताई गई है। जैसा कि वेद में- **चित्राणिसाकं दिविरोचनानि अहानिगीर्भिः सपर्यामि नाकम्** ॥ १ ॥ अथर्व संहिता (१९-७) तैत्तिरीय संहिता (४-४-१०) तै. ब्राह्मण (१-५-१), (३-१-४-६) तांड्य ब्रा. (१-१-५) इस प्रकार अनेक स्थल में आकृति द्वारा नक्षत्रों के नाम कहे गए हैं इतना ही नहीं तो तै. ब्रा. (१-५-१) में २७ नक्षत्रों के आगे पीछे दिखनेवाले आकृतिरूप तारकापुंजों का (२७।२७) वर्णन भगोलीय दृश्य के अनुरूप किया है।

११. वाल्मीक रामायण में—**शुभक्षेत्रे हलोत्खाते तारेचोत्तरफाल्गुने ॥ सीतामुखे समुत्पन्ना सीताश्रीरिव रूपिणी** ॥ २ ॥ (बा. ६६-१४ टीका में पद्मपुराणोक्ति) यहां भूतपको शुनासीर कहकर स्वाती के समीपवर्ति कन्याराशि के चित्र के संबंध में कहा गया है " **मघाह्यद्यमहाबाहो तृतीयदिवसे प्रभो ॥ फल्गुन्यामुत्तरे राजन्स्तस्मिन्वैवाहिकं कुरु** ॥ २४ ॥ (बा. कांड सर्ग ७) **राज्ञः पुत्राश्च चत्वारः ॥ गुणवंतः सुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः** (बा. कां. १८ १६) **तस्मात्वं पुष्ययोगेनयौवराज्यमवाप्नुहि**। (अयोध्या ३-४१) **अवष्टब्धंचमेराम नक्षत्रं दारुणग्रहैः ॥ आवेदयंति दैवज्ञाः सूर्यांगारकराहुभिः** ॥ १८ ॥ **अद्यचंद्रोभ्युपगमत्पुष्यात्पूर्वंपुनर्वसु ॥ श्वःपुष्ययोगं नियतं वक्ष्यंते दैवचिंतकाः** ॥ २१ ॥" (अ. कां. ४-२१) इस प्रकार दृश्यनक्षत्राकृतिपर चंद्रादि ग्रहोंकी स्थिति कही गई है. इतना ही नहीं तो " **विष्णुपादच्युतां दिव्यां ॥ शंकरस्य जटाजूटात् भ्रष्टां सागरतेजसा**" (अ. कां. ५०-२४) विष्णुपादच्युत यानी श्रवण नक्षत्र निकट से बहती हुई आकाशगंगा दक्षिण गोलार्ध में शंकर जटा आर्द्रा नक्षत्र को स्पर्श कर दक्षिण तर्फ सागर के माफक जाती हुई दिखती है।

१२. इत्यादि जो वर्णन है सो स्थिर ताराओं के आकृति विशेष के उपलक्ष्य में कहा गया है। तथा इसी के द्वारा महीनों के चैत्रादि नाम कहे गए हैं। सो यदि हम नाक्षत्रमान को छोडकर केंद्रीय या सांपातिक वर्षमान को लेवें और उच्चस्थान से या संपात से राशिचक्र का आरंभ मानकर तदनुसार नक्षत्रों को मानलें तो इनके अन्वर्थक नामका ही व्यत्यय नहीं तो; आजतक का सब भारतीय शोध व इतिहास का पता जो नाक्षत्रमान से लगता है; प्रायः नष्ट हो जायगा। और सब धर्मशास्त्रीय ग्रंथ निरुपयोगी (व्यर्थ) होजावेंगे। इसलिये उक्त परंपरा को देखते हमने भी शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान का ही अवलंब करना चाहिये। केवल इनके संबंध के कार्य साधन के लिये नाक्षत्र में ही उच्चगति व अयनगति का संस्कार करके उसके द्वारा हम इन परिमाणों का साधन भी कर सकते हैं।

+ ऐसा ही भारत में भी ' नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वह्नि देवतं ' (वनपर्व अ. २३० श्लो. ११) कहा गया है.

वर्षमान शोधन के लिये

७ सौरार्यब्रह्म सिद्धांतोक्त भगणों के अंतर्गत केंद्रीय और नाक्षत्र परिमाणों के हरएक पहलु को बतानेवाला कोष्टक १

ग्रहोंके वर्षमान अर्थात् भगणोंके दिन = राशिचक्र में परिभ्रमण के दिवस.

ग्रह	शुद्ध केंद्रीय मान से	सूर्य सिद्धांत से	आर्य सिद्धांत से	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत से	शुद्ध नाक्षत्र मान से
	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन
सूर्य	३६५.२५९७१	३६५.२५८७५	३६५.२५८६८	३६५.२५८४४	३६५.२५६३७
चंद्र	२७.५५४५५	२७.३२१६७	२७.३२१६७	२७.३२१६७	२७.३२१६६
भौम	६८६.९९६५	६८६.९९७५	६८६.९९९७	६८६.९९७९	६८६.९७९६
बुध	८७.९६९४	८७.९६९७	८७ ९६९९	८७.९६९९	८७.९६९३
गुरू	४३३२.८५९२	४३३२.३२०६	४३३२.२७१२	४३३२.२४०१	४३३२.५८४८
शुक्र	२२४.७००६	२२४.६९८५	२२४.६९८१	२२४.६९७८	२२४.७००८
शनि	१०७६२.९४६२	१०७६५.७७३०	१०७६६.०६४७	१०७६५.८१५२	१०७५९.२१९८
चंद्रोच्च	चंद्रस्योच्चस्थानं	३२३२.०९३७	३२३१.९८७१	३२३२.७३४१	३२३२.५७५७
राहु	चंद्रस्यपातः	६७९४.३९९८	६७९४.७४९५	६७९२.२५४०	६७९३.३९११

अंतर	शुद्ध केंद्रीय परिमाण		सूर्य सिद्धांत		आर्य सिद्धांत		ब्रह्म सिद्धांत		शुद्ध नाक्षत्र परिमाण	
ग्रह	केंद्रांतरं	नाक्षत्रांतरं	केंद्रांतरं	नाक्षत्रांतरं	केंद्रांतरं	नाक्षत्रांतरं	केंद्रांतरं	नाक्षत्रांतरं	केंद्रांतरं	नाक्षत्रांतरं
	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन	दिन
सूर्य	० (इक्रप्रत्यय शुद्ध होनेसे अंतर नहीं है.)	-.००३३४	+.०००९६	-.००२३८	+.००१०३	-.००२३१	+.००१२७	-.००२०७	+.००३३४	० (इक्रप्रत्यय व नाक्षत्र शुद्ध होनेसे अंतर नहीं है.)
चंद्र	०	-.२३२८९	+.२३२८८	-.०००१	+.२३२८८	-.०००१	+.२३२८८	-.०००१	+.२३२८९	०
भौम	०	-.०१६९	-.००१०	-.०१७९	-.००३२	-.०२०१	-.००१४	-.०१८३	+.०१६९	०
बुध	०	-.०००१	-.०००३	-.००४	-.०००५	-.०००६	-.०००५	-.०००६	+.०००१	०
गुरु	०	-.२७४४	+.५३८६	+.२६४२	+.५८७०	+.३१२६	+.६१९१	+.३४४७	+.२७४४	०
शुक्र	०	-.०००२	+.००२१	+.००२३	+.००२५	+.००२७	+.००२८	+.००३०	+.०००२	०
शनि	०	-३.७२६४	-२.८२६८	-६.५५३२	+३.११८५	-६.८४४९	-२.८६८९	-६.५९५४	+३.७२६४	०
सौर वर्षमें	अंतर	पळ	अंतर	पळ	अंतर	पळ	अंतर	पळ	अंतर	पळ
अंतर	०+	१२.०२४ =१२.०२४	३.४५६+	८.५६८ =१२.०२४	३.७०८+	८.३१६ =१२.०२४	४.५७२+	७.४५२ =१२.०२४	१२.०२४+	० =१२.०२४
अंतर विकला ११.९			३.४+८.५		३.६+८.३		४.५+७.४		११.९	

१३. उक्त वर्षमानों में सूर्य का वर्षमान (भगण काल) बडे महत्व का है। क्योंकि अन्यान्य ग्रहों के परिमाण सौर वर्षमान के आधार पर ही निर्भर हैं। इसलिये प्रस्तुत विवेचन में साम्पातिक वर्षमान का विचार करते हुए सौर वर्षमान की शुद्धता और विशेषता को बतलाते हैं।

सौर वर्षमान के निर्णय में सांपातिक वर्षमान का विवेचन.

कोष्टक नं० २

(अ) महायुग के ४३२०००० सौर वर्ष (भगण) मानकर उसमें नीचे लिखे प्रकार केंद्रांतर और अयनांतर के दिन होते हैं।

एक महायुग के.	सावन दिवसों में.	केंद्रांतर	व	अयनांतर	दिन.
१ शुद्ध मंद केंद्र	१५७७९२१९५७	—०००००	,,	+७५५८४	,,
२ सूर्य सिद्धांत	१५७७९१७८२८	—४१२९	,,	+७१४५५	,,
३ आर्य सिद्धांत	१५७७९१७५००	—४४५७	,,	+७११२७	,,
४ ब्रह्म सिद्धांत	१५७७९१६४५०	—५५०७	,,	+७००७७	,,
५ शुद्ध नाक्षत्र	१५७७९०७४८०	—१४४७७	,,	+६११०७	,,
६ शुद्ध सायन	१५७७८४६३७३	—७५५८४	,,	+०००००	,,

(आ) उक्त परिमाणों के आधार से कल्प (४३२०००००० वर्ष) में उच्च और अयन के भगणादि मान तथा उनकी वर्ष गति सूक्ष्म गणितद्वारा निम्न लिखितानुसार निश्चित होती है।

कल्प में.			सौर वर्ष में रवि के उच्च की	
सूर्य	उच्चांश	उच्च भगण	अंशात्मक गति	विकला गति
१ मं. केंद्र	००००००	०००००	.०००००००००	०' ०००
२ सू. सि.	४०६९४४	११३०४	·०००९४२००	३·३९१२
३ आ. सि.	४३९२७२	१२२०२	·००१०१६८३	३.६६०१
४ ब्र. सि.	५४२७७२	१५०७७	·००१२५६४२	४·५२३१
५ नाक्षत्र	१४२६८६०	३९६३५	.०·३३०२९२	११·८९०५
६ सायन	७४४९६२४	२०६९३४	.०१७२४४५०	६२·०८०२

(इ) शुद्ध परिमाण से मध्यम गति

कल्प में		सौर वर्ष में	
अयन के	भगण	अयनांश गति	अयन, गति विकला
१ मं. केंद्र	२०६९३४	+ ·०१७२४४५	+ ६२·०८०२
२ सू. सि.	१९९६२१	·०१६३०२२	५८·६८७८
३ आ. सि.	१९४७३०	·०१६२२७५	५८ ४१९०
४ ब्र. सि.	१९१८५६	·०१९९८८०	५७·५५६८
५ नाक्षत्र	१६७२९६	·०१३९४१३	५० १८८८
६ सायन	००००००	·०००००००	०·०००००

(ई) उक्त तीनूं सिद्धांत और तीनू शुद्धपरिमाणों के एक सौर वर्ष में केंद्र और अयन के वर्ष गति के अंतर दिन

ग्रंथों के	सौर वर्ष के दिन	केंद्रीय वर्ष गति	अयन वर्ष गति के दिन
१ मं. केंद्र	३६५·२४२७१२२	—·०००००००	+ ·०१७४९६० ,,
२ सू. सि.	३६५·२५८७५६५	—·०००२९९७	+ ·०१६५३०१ ,,
३ आ. सि.	३६५·२५८६८०६	—·००१०३१६	+ .०१६४६४४ ,,
४ ब्र. सि.	३६५ २५८१३९५	— ००१२७४७	+ ·०१६२२१३ ,,
५ नाक्षत्र	३६५·२५६३६ [illegible]	—·००३३९११	+ ·०१४१४४९ ,,
६ सायन	३६५·२४२२१६१	—·०१७४९६०	+ ·००००००० ,,

१४. कलम ७ कोष्टक १ में कहे हुए सूर्यभगण के केन्द्रान्तर और नक्षत्रान्तर को तथा उपरोक्त कोष्टक २ (अ-आ-इ-ई) में भगण उच्च, केंद्रगति व अयनगति को परस्पर तुलनात्मक पद्धति द्वारा देखने से निश्चित होता है कि सौर-आर्य-ब्रह्मसिद्धान्तोक्त वर्षमान यद्यपि नाक्षत्र मानके उपलक्ष्य में कहेगए हैं किंतु मध्यम ग्रह के स्थान में गति फलाभाव स्थानवाला मंद केंद्र कहा जानेसे उसमें उच्चगति मिश्रित होगई है। इसीलिये हमने इसे मंदकेंद्रासन्न यह बडा शब्द नहीं लगाकर मंद केंद्रीय कहा है। किंतु उक्तसिद्धांत ग्रंथों के वर्षमान अयन सांपातिक नहीं हैं। क्योंकि अयन संपातसे इनका बहुत अंतर है। अतएव जबकि हमारे प्राचीन ग्रंथों के वर्षमान शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के अर्थ में कहे· गए हैं तो अब हम उक्त परिमाणों से शुद्ध नाक्षत्रीय परिमाण कैसा बनसकता है यह गणित से स्पष्ट करके कोष्टक द्वारा बताते हैं.

कोष्टक ३.

१९ सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमान से शुद्ध नाक्षत्र वर्ष और शुद्ध नाक्षत्र वर्ष से सिद्धान्तोक्त वर्षमान दर्शक कोष्टक:—

	एक वर्ष के सावयव दिन	दिन के घातांक	अंश के घातांक
१ मं. केंद्र.	०·००३३५११३३	७·५२५१९१७	७·९१८८९१५
२ सू. सि.	·००२३९५३७०	७·३७९३७२६	७·३७३०७७४
३ आ. सि.	·००२३१९४४४	७·३६५३८४०	७·३५९०८८८
४ ब्र. सि.	·००२०७१३८८	७·३१७३०८५	७·३११०१३३
५ नाक्षत्र	·०००००००००	००००००००	००००००००
६ सायन	·०१४१४५१११	८·१५०६०६४	८·१४४३११२

	एक वर्ष की अंशात्मक गति	तिथिगति घातांक	स्वाभाविक तिथि	विकलागति
१ मंद केंद्र	०·००३३०२९	७·५३२०४१९	०·००३४०४४	११·८९०५
२ सू. सि.	·००२३१०९	७·३८६२२२८	·००२४३१५	८·४९९१
३ आ. सि.	·००२२८१०	७·३७१२३४२	·००२३५६३	८·२२९८
४ ब्र. सि	·००२०४६१	७·३२४१५८४	·००२१०९४	७·३६७५
५ नाक्षत्र	·०००००००	०·०००००००	·०००००००	०·००००
६ सायन	·०१३९४१६	८·१५७४५६६	·०१४३७००	५०·१८९१

नाक्षत्र परिमाणका परंपरा प्रामाण्य.

१४ जब कि वेद, वेदांग, तंत्र और सिद्धांतादि संपूर्ण भारतीय ग्रंथों में नक्षत्र व भगणोंद्वारा यांनी अचल ताराओं से पंचांग साधन × कहा है। तारका पुंजों के अश्वमुखादि आकृति विशेष से अश्विनी आदि नक्षत्रों के और पौर्णिमांत कालमें चित्रादि नक्षत्रों के योगसे चैत्रादि महीनों के, इसीतरह मेषादि राशियों के अन्वर्थक नाम कहे गए है. इस प्रकार भारतीय ग्रंथों के परंपरा प्रामाण्य से सिद्ध होता है जैसाकि आजतक के पंचांग [साधन] शुद्ध नाक्षत्रसौर गणनासे ही किये जाते थे। इसलिये नाक्षत्र गणनाही मुख्य है।

× नक्षत्रों से ही आकाश की गणना हो सकती है ऐसा वेद में लिखा है " सलिलंवा इदमंतराशीत्। यदतरन्। तत्तारकाणां तारकत्वम्। यो वा इहयजते अमुंसलोकं नक्षते तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं। देवगृहावै नक्षत्राणि। यएवं वेद गृह्येवभवति। यानिवाइमानि पृथिव्याश्चित्राणि तानिनक्षत्राणि। तस्मादश्लीलनामंश्चित्रे नावस्येन्नयजेत। यथापापाहं कुरुते तद्वदेवतत्।" (तैत्तिरीयब्राह्मण १-५-२) इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

१७ गोल गणित से देखा जायतो नाक्षत्रसौर वर्षमान के यानी अचल आरंभ स्थान के बिना केंद्रीय या अयन सांपातिक मानसे शास्त्रशुद्धता आ नहीं सकती क्यौंकि यह चलबिन्दु होनेसे इनके गति में कालान्तर जन्य फर्क पडना स्वाभाविक बात है।

आकृति द्वारा नाक्षत्र मानकी शुद्धता।

आकृति नंबर १ देखिये.

१८ आकृति १ के देखने से आपको मालूम हो जायगा कि जिस अचल तारेपर मध्यम सूर्य की स्थिति थी फिर दूसरे वर्ष में उसी तारेपर आने से गणित शास्त्र से शुद्ध ३६० अंशका चक्र भोग पूर्ण होता है। किंतु उतने समय में मंद केंद्रीय+११".९, सूर्य सिद्धान्तीय+८"·५, आर्य सिद्धान्तीय +८"·२ और ब्रह्मसिद्धान्तीय मान +७".४ विकला आगे बढ जाने से तथा अयन सांपातिक मान --५०"·२ विकला पीछे हट जानेसे शुद्ध चक्र भोग ३६० अंशों से इनका वर्षमान ज्यादा कम होजाता है। तथा अयन गतिका कालान्तर संस्कार-- (०·०००११८९ वर्ष गणे)--बहुत बडा होनेसे सौपचास वर्ष मेंही सायन वर्षमान और अयनगति में बहुत अंतर पड जाता है। इसलिये उक्त चल परिमाणों से निश्चयात्मक शुद्ध परिमाण समझने में बडी कठिनाई जाती है। इससे दीर्घकाल के तथा सूक्ष्म परिमाण के गणित करने में गोलीय शास्त्र से यह अशुद्ध हैं। ×

शास्त्रीय दृष्टिसे नाक्षत्र मान ही शुद्ध है।

१९. किंतु यहां ऐसा प्रश्न खडा होसकता है— " जब कि मंदफल, मंदकर्ण, रविमध्यशर दिनगति और शीघ्र फलादि भूगर्भीय परिमाणों की समानता मंदकेंद्रीय वर्षमान द्वारा. " तथा - " ऋतु अयन, उदयास्त, नत, अग्रा, दिनमान और लग्न साधनादि भूपृष्ठीय परिमाणों की समानता सायन वर्षमान द्वारा– से ही प्राप्त होसकती है। और वेधक्रिया से इनका संपातबिन्दु भी निश्चित होसकता है। तब पंचांग गणित में इनके ही वर्षमान को मुख्य स्थान क्यों नहीं देना चाहिये ? क्यौंकि इसी मानका विशेष उपयोग होता है। इसलिये इसमें यदि कुछ स्थूलता आगई हो सो सूक्ष्मगणित के वेध द्वारा निकालकर इसे शुद्धरूप कर सकते हैं। और विलोम गति का संस्कार करके दूसरे परिमाणों को भी निश्चत कर सकते हैं.

२० इस प्रश्न का थोडे से में यही उत्तर पर्याप्त है कि " सूर्य चंद्रादि ग्रहों का आकाशीय स्थान निर्देशका नाक्षत्र मान से चाहे जब हजारों ताराओंमें से चाहे तब वेध

× इस विषय का और भी विस्तृत विवेचन देखना हो तो हमारे वेद काल निर्णय (पृष्ठ ६८--८०, १००–११०, १४३--१५२) में देखिये।

द्वारा अंतर नापकर जैसे सरलता से निश्चित होसकता है। वैसे केंद्रीय या सायन मान से हो नहीं सकता क्योंकि यह दोनों परिमाण चल हैं चलबिंदु से अचल अनंतपदार्थों को चलित करने में प्रतिदिन का यह द्राविडी प्र णायाम किये बिना सूक्ष्मता आ नहीं सकती. उदाहरण के लिये नाटिकल ऑल्मनाक को देखिये उसमें सायन मान के ग्रहादि होने से इसके कुल ६९० पृष्ठों में से २२८ पृष्ठ ' १५०४ ताराओं को प्रतिदिन का चालन देकर शुद्ध– अचल व निरयण ताराओं को अशुद्ध रूप के ' चल व सायन बनाने में' प्रतिवर्ष प्रकाशित किये जाते हैं। वह दूसरे वर्ष काम नहीं देसकते हैं।

२१ दूसरा उदाहरण घडी (वाच) का देखिये : इसके छोटे बडे चल कांटे घंटा मिनिट और सेकिन आदि के अंकित अचल चिह्नों के बिना जैसे सूक्ष्मकाल के दर्शक नहीं होसकते हैं। इसी तरह केंद्रीय या सायन मान चल होने से इससे चल ग्रहों के स्थान ठीक ठीक निश्चित नहीं होसकते। और शुद्ध नाक्षत्रीय मान के कदंब प्रोत भोग शर अचल नक्षत्रों के एक बार निश्चित करलेनेसे सेकडों हजारों वर्ष तक का गणित; यथार्थ व शास्त्रीय रीति से हो सकता है। और इसी नाक्षत्र परिमाण के द्वारा मंदकेंद्रीय तथा सायन मान भी उन २ के गति को धनर्ण करने से यथार्थ निश्चित होसकते हैं। इत्यादि कारणों से तथा पंचांग शोधन कार्य में शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मनिरयण वर्षमानका ही आज तक उपयोग किया गया है इससे; सिद्ध होता है कि हमने भी निरयण मान के गणित द्वारा पंचांग शोधन करना चाहिये।

२२ किंतु यह वर्षमान स्पष्ट सूर्य से नहीं बन सकेगा। क्योंकि उच्च गति और कक्षा केंद्रच्युति के गति के कारण अलग २ समय में मंदफल कम ज्यादा होने से हरएक राशि अंशसाम्य का वर्षमान अलग २ आवेगा। जैसे कि साम्प्रतिक सौरवर्ष शुद्ध सूक्ष्म नाक्षत्र परिमाण से नीचे लिखे कोष्टक ४ में बारा राशियों का वर्षमान भिन्न २ रूप का बनता है। एक रूप का बनता नहीं है।

कोष्टक ४

२३ शुद्ध नाक्षत्र सौरवर्ष के ३६५ दिन १५ घटी और नीचे लिखे प्रकार पल होते हैं।

मेष २३·०८४,	कर्क २२·५२६,	तुला २२·७२६,	मकर २३·३६७,
वृष २२·८९९,	सिंह २२·५००,	वृश्चिक २३·०२६,	कुंभ २३·३६७,
मिथुन २२·६५२,	कन्या २२·५९५,	धनु: २३·२३१,	मीन २३·२७२,

२४ ऐसी स्थिति में हमें मध्यम मान का ही उपयोग करना चाहिये क्योंकि जैसे अचल नक्षत्रों के बिना एकवाक्यता शास्त्रसिद्धमान में निश्चित ही नहीं हो सकती वैसे ही मध्यम मान के बिना स्पष्ट मान से भी सभी के वर्षमान की एकवाक्यता नहीं हो सकती।

न उसमें शुद्धता आती है। और हमारे ग्रंथों में भगणादि मान मध्यम मानकेही कहे गये हैं। और अद्रूप तिथि शुद्धि आदि भी मध्यम मान से किये जाते हैं। इससे यह बात सिद्ध है कि सूर्यादि ग्रहों के वर्षमान मध्यम गति से ही लेना चाहिये।

२५. वराहमिहिर ने (शाके ४२७ में) अपनी पंच सिद्धांतिका (अध्याय ९ व १६ में) में जो सूर्य सिद्धांत के भगणादि परिमाण लिखे हैं; वही मूल सूर्य सिद्धांत है। यह वराहमिहिर के समय में दृक्प्रतीतिकारक स्पष्ट गणित का था. इसलिये इसके उपलक्ष्य में वराहमिहिर ने "स्पष्टतरः सावित्रः" कहा है। आगे इसीके आधार पर मयासुर या आर्यभट ने नव्य सूर्य सिद्धांत की रचना की है। क्योंकि उसमें इसके सम्बन्ध में कहा है कि—

"शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राहभास्करः ॥
युगानांपरिभेदेन कालभेदोऽत्रकेवलम् ॥ (नव्य सू. सि. १-९)

अर्थात "इस सिद्धांत को पहिले भास्कर (सूर्य) ने कहा था उसीके अनुसार यह बनाया गया है। किन्तु इसमें जो अंतर दृष्टिगोचर होता है सो युगों की भिन्नता से केवल कालान्तरजन्य भेद है"

२६. पंचसिद्धांतिका के आधार पर युगों के परिमाणों को देखना चाहें तो उसमें नीचे लिखे प्रकार युगों के वर्ष कहे गये हैं।

पितामह सिद्धांत में	५	वर्ष का	युग	इन में (चतुर्युग का) कृत त्रेता द्वापर व कलिका उल्लेख तक नहीं होकर वर्ष संख्या भी क्रम से बढती गई है।
वशिष्ठात्रिपराशर तंत्र में	१२	,,	,,	
बार्हस्पत्य (बृहत्संहिता) में	६०	,,	,,	
मूल पौलिश सिद्धांत में	१२०	,,	,,	
,, रोमक सिद्धान्त में	१५०	,,	,,	
,, सूर्य सिद्धांत में	८००	,,	,,	
वराहोक्त करणाध्याय (शाके ४२७ में)				
रोमकानुसार	२८५०	,,	,,	
मूल सौरमतानुसार	१८००००	,,	,,	

२७ किंतु नव्य सूर्य सिद्धांत के अनुसार चतुर्युग संख्या का एकयुग ४३,२०,००० तथा इसके हजार संख्याका कल्प लिखा होने से तथा अस्मिन्कृतयुगस्यान्ते सर्वेमध्य गता ग्रहाः (सू. सि. १-५७) इस कथन से सूर्य सिद्धांत के कालसे आज (शाके १८९३) तक २२६५०३२ ग्रंथ गताब्दकी अपूर्वोक्त बडीभारी संख्या होनेसे भगणों के स्वल्पान्तर से भी वर्तमान में वेधसिद्धमानोंद्वारा बहुत अंतर दृष्टि गोचर होता है। इस प्रकार का अंतर और दीर्घ गणित करने का परिश्रम मूल सूर्यसिद्धांत से करने में नहीं पडता है। इतना ही नहीं तो नव्य सूर्य सिद्धांतकी अपेक्षा मूल सूर्य सिद्धांत के भगण दिवसादि परिमाण शुद्ध

हैं क्योंकि वह शुद्ध नाक्षत्र परिमाणोंके स्वल्पान्तर से तुल्य हैं। इसीलिये गणेश दैवज्ञादि करण ग्रंथकारोंने मूल सूर्य सिद्धांतोक्त वर्षमान (३६५।१५।३१।३०) को तथा भास्वती करण में सौरोक्त सभी ग्रहोंके परिमाणोंको प्रमाणभूत माने हैं।

२८ इसलिये अब हम मूल सूर्यसिद्धांत के भगणादिकों की (आधुनिक वेधसिद्ध-मानोंसे बने हुए) शुद्ध नाक्षत्र परिमाणों से तुलना करके बताते हैं। ताकि इसके देखने से पाठकों को स्वयं मालूम होजायगा कि; वास्तविक सूक्ष्ममान से इसमें कितना स्वल्प अंतर है।

न्यास.

	सिद्धांतोक्त परिमाण	+ संस्कार	= वास्तविक परिमाण
	[सूर्य सिद्धांतोक्त भगण दिन	+ अंतर दिन	= शुद्ध नाक्षत्र सौर के दिन]
बुध	८७.९७	० ००	८७.९७
शुक्र	२२४.७०	०.००	२२४.७०
सूर्य	३६५.२५८७५	−०.००२३८	३६५.२५६३७
मंगल	६८७.००	−०.०२	६८६.९८
गुरु	४३३२.३२	+०.२६	४३३२.५८
शनि	१०७६०.०६६	−०.८४६	१०७५९.२२०
चंद्र	२७.३२१६७३३	−०.००००११९	२७ ३२१६६१४
चंद्रोच्च	३२३१.९८७७	+०.५८८	३२३२.५७५०
राहु	६७९४.५२	−१.१३	६७९३.३९

२९ उपरोक्त न्यास में बताई हुई तुलना को देखनेसे निश्चित होता है कि बुध और शुक्र में तो बिलकुल अंतर नहीं है। चंद्रोच्च, सूर्य व मंगल में थोडा अंतर है सो सूर्योच्च गति मिश्रित होने से तथा गुरु शनि में उनके परस्पर के आकर्षण से अंतर पडा है किंतु वह भी बहुत थोडा है। फक्त राहु में एक दिनका अंतर पडा है; सो फल चतुष्टय साधित स्पष्ट चंद्र के कारण हुआ है। संभव है प्राचीन काल में यहमान शुद्ध हो किंतु वर्तमान में वेधसिद्ध परिमणोंकी तुलना में जब कि इतना अंतर आता है सो इतना अंतर ग्रहों की कक्षा ऱ्हास के कारण कालान्तर जन्यभी हो सकता है।

सूर्य सिद्धान्त में बीज संस्कार.

३० इसीलिये वराह मिहिरने अपनी पंचसिद्धांतिका में उक्त सूर्य सिद्धांतोक्त ग्रहोंके भगणों में तथा वर्ष की मध्यम गतिमें दो जगह बीजसंस्कार लिखा है। इसमें से अब यहां पहिले वर्षमान का बीजसंस्कार लिखते हैं।

"क्षैप्याः शरेन्दु १५ विकलाः प्रतिवर्षं मध्यम क्षितिजे" दश १० दश गुरोर्विशोध्याः शनैश्चरे सार्धसप्त ७।३० युताः ॥ पंचदया १५ विशोध्याः सिते बुधे स्वाश्विचंद्रयुताः॥ ख ख वेदेन्दु विकलिकाः, शोध्याः सुरपूजितस्य मध्यात्स्युः ॥१०-११॥

पंचसिद्धांतिका (अ. १५)

ऐसा श्री सुधाकर द्विवेदी कृत टीका में तथा इसी प्रकार का वराहमिहिर ने दूसरा बीजसंस्कार भगणकाल साधन में कहा है किंतु वह बीजसंस्कार केंद्रासन्न परिमाणका होने से तब वह शुद्ध नाक्षत्र परिमाण से दृष्टियोग्य (मध्यम ग्रह साधन में केंद्रस्थान से दृष्टि योग्य) होता था। इसलिये शुद्ध बीजसंस्कार देकर निम्नलिखितानुसार क्षेपक और वर्ष की मध्यम गति आती है :

पंच सिद्धांतिका के क्षेप कों में बीज संस्कार

शाके ४२७ चैत्र (वैशाख) कृष्ण १४ सोमवार को इष्ट ४९10 अर्धरात्र कालिक सौरोक्त क्षेपक + बीज संस्कार = शुद्ध नाक्षत्र क्षेपक दर्शक कोष्टक.

विवरण	सूर्य			चंद्र			चंद्रोच्च			राहु		
	के	स	ना	के	सं	ना	क	सं	ना	क	सं	ना
के=केंद्रासन्न ग्रंथोक्त	११	—	११	११	—	११	९	—	९	०	०	०
सं=बीज संस्कार	२९	२	२७	२६	०	२६	९	०	८	२७	०	२७
ना=शुद्धनाक्षत्र	५६	१५	४१	४३	१९	२७	४५	४८	५६	१०	०	१०
	५३	११	४२	१२	३६	३६	७०	३६	२४	२३	०	२३

मंगल			बुध			गुरु			शुक्र			शनि		
के	सं	ना	के	सं	ना	के	सं	ना	के	सं	ना	के	सं	ना
२	—	२	४	+	५	०	—	०	८	—	८	४	—	३
१५	२	१२	२८	४	२	८	१	६	२७	१	२५	२	३	२९
३४	३६	५८	१६	२३	४०	६	५१	१४	३०	३९	५१	२८	३	२५
४८	०	५८	४८	२४	१२	२०	५६	२४	३६	३६	०	४९	१	४८

ग्रहों की वार्षिक मध्यम गति के अंश	
सूर्य	३६०.०००
चंद्र	१३२.७४९
चंद्रोच्च	४०.६७७
राहु	१९.३५६
मंगल	१९१.४०६
बुध	५४.७५३
गुरु	३०.३५०
शुक्र	२२५.१८८
शनि	१२.२२१

अत्रोपपत्तिः

बुध शीघ्रं= $\frac{\text{अ.×१००}}{\text{८७९७}}$ अतः $\frac{\text{८७९७}}{\text{१००}}$ = ८७·९७ ग्रंथोक्त भगणदिन

संस्कारः (तत्पराः तत्स्थानात्पराः हीनाः) − ·००,०७४२ बीजम्.

बुध भगणदिवसाः शुद्धाः .... ८७९६९२५८ नाक्षत्रदिन

अनेन चक्रांशाः ३६०° भक्ता=बुध दिनगतिः ४·०९२३३९ अंशाः

३६ शुक्र का भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति. "**शितशीघ्रं दशगुणिते द्युगणे भक्ते स्वरार्णवाश्वियमैः** ॥ (" अर्द्धैकादश देया विलिप्तिका भगणसंगुणिताः " पं सि. ८) **स्वरवसुनगाश्च देया खखपरा भगणसंगुणिताः** ॥ २ ॥" वासना– ' द्युगणेऽहर्गणे दशगुणिते स्वरार्णवाश्वियमै २२४७भक्ते, सति भगणाद्यं सितस्म शुक्रस्य शीघ्रोच्चं भवेत् । परन्त्वत्र तत्परा उक्त भगणदिवसांशभागेषु दशस्थानात्पराः खखपराः स्वरवसुनगाश्च ००७८७ भगणसंगुणिता देया भगणदिवसेषु योज्या तदा (२२४·७+·०,००७८७=२२४.७००७८७) शुक्रशीघ्रोच्च भगणदिवसा भवतीत्यर्थः । "

अत्रोपपत्तिः

शुक्रशीघ्रं= $\frac{\text{अ.×१०}}{\text{२२४७}}$ अतः $\frac{\text{२२४७}}{\text{१०}}$ भगणदिवसा २२४·७ ग्रंथोक्ताः

संस्काराः (तत्परा दशस्था नात्परा योज्याः)+ ·०००७८७ = बीजं

शुक्र भगणदिवसाः शुद्धाः .... २२४·७००७८७ = नाक्षत्र

अनेनेचक्रांशा भक्ता=शुक्रशीघ्रोच्च दिनगतिः = १·६०२१३१ अंशाः

३७ सूर्यका भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति—

सूर्यस्यायुतनिघ्ने श्रुतिरसपंचाश्विभूतरसलोकैः ॥
भक्ते द्युगणे मध्यः पराश्चहेयात्ररसपक्षाः ॥ ३ ॥ *

---

* " द्युगणेऽर्कोष्टशतघ्नेत्रिपक्षवेदार्णवेऽर्कसिद्धान्ते ॥ स्वरखद्विद्विनवयमोद्धृतेक्रमाद्दिन-दलेऽवन्त्याम् ॥ (प. सि. ९·१)

वासना— " मंदकेंद्रीयरविसाधनमाह द्युगणेऽर्कइति । अत्रोपपत्तिः—

केंद्रासन्नरवि= $\frac{\text{अ.×८००}}{\text{२९२२०७}}$ अतः $\frac{\text{२९२२०७}}{\text{८००}}$ =३६५·२५८७५ भगणदिवसाः

शुद्धकेंद्रार्थेसिद्धान्तोक्ता उच्चगतिः	·०००९६२	,,
शास्त्रशुद्धमंदकेंद्रीय वर्षमानम्	३६५·२५९७१२	,,
शुद्ध उच्चगतिदिवसाः ऊनिताकार्या—	·००३३३८	,,
:: शुद्ध नाक्षत्र सौरवर्षे भगणदिवसाः	३६५·२५६३७४	,,

इति प्रकारान्तरेणानीतपरिमाणस्य (२९,२८ स्तंबोक्तेः) तुल्यत्वेउपपन्नामिदम्.

वासना–" द्युगणेऽहर्गणे अयुतनिघ्ने दशसहस्रैर्गुणिते श्रुतिरसपंचाश्विभूतरसलोकै ३६५२५६४ भक्ते सतिमध्यः मध्यमरवेर्भगणाद्यंस्यात् । परन्त्वत्र लब्धोत्तरांकपराः दशसहस्रस्थानात्परांशस्थानेषुरसपक्षाः २६ हेयाऊनिताकार्यास्तदा वास्तवोमध्यमसूर्यः स्यात् ।"

अत्रोपपत्तिः

मध्यमरविः $= \frac{\text{अ.}\times १००००}{३६५२५६४}$ अतः $\frac{३६५२५६४}{१००००} =$ ३६५·२५६४ भगणदिवसाः

संस्कारः — ·००००,२६ बीजं ,,

रवेर्भगणदिवसाः ३६५·२५६३७४नाक्षत्र ,,

अनेन चक्रांशा ३६० भक्ता रवेर्मध्यमादिनगतिः =०·९८५६०९१ अंशाः

३८. मंगल का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

द्युगणं कुजस्य चंद्राहतन्तु सप्ताष्टषड्भक्तम् ॥

कृतविषयक्रमकृतिखैस्तत्परै रूनिता घस्राः ॥ ४ ॥ †

वासना—" चंद्रेणैकेन गुणितं द्युगणमहर्गणं सप्ताष्टषड्भि ६८७ भजेत् यल्लब्धं ते कुजस्य मंगलस्य भगण दिवसाः । परन्त्वत्र कृतविषय क्रमकृतिखै (·०२०३५४) स्तत्परै रंशैरूनिताः सन्तः घस्राः सावयवभगण दिवसा वास्तविका भवंतीत्यर्थः ।"

अत्रोपपत्तिः

भौमस्य $= \frac{\text{अ.}\times १}{६८७}$ अतः $\frac{६८७}{१} =$ भगण दिवसाः ६८७·५२४०३२८ ग्रंथोक्ताः

संस्कारः — ·०२०३५४ बीजं

भौमस्य भगण दिवसाः शुद्धाः ६८६·९७९६४६ नाक्षत्र.

अनेन चक्रांशा भक्ताः = अंशात्मिका भौमस्य दिनगतिः ·५२४०३२८ अंशाः

३९. गुरु का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

जीवस्य शताभ्यस्तं द्वित्रियमाग्निंत्रि सागरै-र्विभजेत् ॥

प्रकृतिगजाब्धिरसयमै-र्दिवसपरैर्योजिते साग्राः ॥ ५ ॥ ‡

वासना–"गणकः शताभ्यस्तं शतगुणितं द्युगणमहर्गणं द्वित्रियमाग्नित्रिसागरै ४३३२३२ र्विभजेत् यल्लब्धं स्यात्तदंशा दशमलवांशाः प्रकृति गजाब्धिरसयमैदिवसपरै ·२६४८२१ र्योजिते सति जीवस्य गुरोः साग्राः सावयवा भगण दिवसा भवन्तीत्यर्थः ।"

पंच सिद्धांतिका में कहा हुआ भगण काल में बीज संस्कार–

† " दश दश भगणे भगणे संशोध्यास्तत्पराः सुरेजस्य ॥

‡ मनवः कुजस्य देयाः

अत्रोपपत्तिः।

गुरोः = $\frac{\text{अ. ग.} \times १००}{४३३२३२}$ अतः $\frac{४३३२३२}{१००}$ = भगण ४३३२·३२ दिवसा ग्रंथोक्तः

संस्कारेण (अत्रतुदिवसपरांशा उक्तत्वात्) + ·२६४८२१ बीजं

संस्कृता वास्तविका भगण दिवसा: ४३३२·५८४८२१ नाक्षत्र

एभिश्चक्रांशाभक्ता गुरोर्दिनगत्यंशा: ·०८३०९१२ ,,

४०. शनि का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

सौरस्य सहस्रगुणा-दृतुरसशून्या ‡ भ्रषट्कमुनिखै कैः ॥
त्रिवसुकुरसयुगगजै-र्दिवसपरैरूनितेशुद्धाः ॥ ६ ॥ ※

वासना—" सहस्रगुणादहर्गणात्सकाशात; ऋतुरसशून्याभ्रषट्कमुनिखै कै· १०७६-००६६ र्हृताद्यल्लब्धं तद्ग्रंथोक्त भगणदिवसाःस्युस्तस्मिन् सहस्रभक्त दिवसांशेषु दिवसपरे दशमलवदिवसबिन्दुरुत्तरांशैस्त्रिवसु कुरसयुगगजैः ·८४६१८३ ऊनि ते सति सौरस्य शनैश्चरस्य सामयव भगणदिवसाः शुद्धा दृग्गणितैक्यरूपा वास्तविका भवन्तीत्यर्थः। '

अत्रोपपत्तिः

सौरस्य= $\frac{\text{अ. ग.} \times १०००}{१०७६००६६}$ अतः $\frac{१०७६००६६}{१०००}$ = १०७६०·०६६ भगण दिवसाः

बीज संस्कारः --·८४६१८३ ,,

शनेर्भगण दिवसाः सावयवाः शुद्धाः १०७५९·२१९८१७ ,,

अनेन चक्रांशा भक्ता=शनेरंशात्मिका दिनगतिः ०·०३३४५९७ अंशाः

४१. चंद्र का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति.

नवशनसहस्रगुनिते स्वरैकपक्षांबरस्वरर्तूने ॥
षटशून्ये द्रियनव वसुविषयाजिनैर्भाजते चंद्रः ॥
शून्यार्कखाभ्रखखा दिवसपराश्चोनिता भागाः ॥ ७ ॥ ऽ

---

‡ शनेश्च बाणा विशोधयातु ॥ ४ ॥ (पंच सिद्धांतिका अध्याय १६)

※ "शून्यर्तुषट्कमुनिखै कैः" इति मुद्रित पुस्तके पाठस्तत्र—

१०७६६·०६६ ६·८४६१८३ १०७५९·२१९८१७	आर्याया उत्तरार्धे- त्रिवसुकुरसयुगगजैः षड्दिनैश्चोनितेशुद्धाः ॥ ६ ॥ इति पाठः पठनीयः।

ऽ " शशिविषयघ्नान्निन्दोः खार्कविहृतानि मंडलानि ऋणम् ॥
स्वेच्चे दिघ्नानि धनं, स्वरनंदयमोद्धृते विकलाः ॥ (पंचसि. ९.४)

इस वराहमिहिरोक्त बीज संस्कार के तुल्य ही चंद्र और चंद्रोच्च में बीज संस्कार ऊपर कहा गया है किंतु उसका पृथक् निर्देश सूक्ष्म परिमाणों की एकवाक्यता प्रस्थापित करने के लिये है।

वासना—" अहर्गणे नवशत सहस्त्र ९००००० गुणिते ततः स्वरैकपक्षांबरस्वरर्तुभि ६७०२१७ विरहितेऽवशिष्टे (इति क्षेपकार्थिकोक्तिः) कथंभूते षट्शून्येंद्रियनववसुविषय जिनै २४५८९५०६ र्हते भगणादिकश्चंद्रःस्यात् । परंचास्मिन्पूर्वानीत भगण दिवसपरभागेषु शून्यार्कखाभ्रखखा '००००१२० दिवसपराभागा दिनाचिह्नितबिन्दोः सकाशादुत्तराभागाः ऊनिताः कार्यास्तदाचंद्रस्यसाग्रा भगणदिवसा भवन्तीत्यर्थः । '

अत्रोपपत्तिः ।

चंद्रस्य= $\frac{\text{अ. ग.}\times ९०००००}{२४५८९५०६}$ अतः $\frac{२४५८९५०६}{९०००००}$	२७·३२१६७३४ भ. दिवसाः	
बीज संस्कारः	—·००००१२०	,,
शुद्ध नाक्षत्रमानेन चंद्रभगणदिवसाः	२७·३२१६६१४	,,
अनेन चक्रांशाभक्ता-चंद्रस्य दिनगतेः	१३·१७६३५८३ अंशाःस्युः	

४२ चंद्रोच्च का भगण काल शोधन और शुद्ध मध्यम गति

नवशतगुणितेद्या-द्रसविषयगुणांबरर्तुयमपक्षान् ॥
नववसुसप्ताष्टांबर-नवाश्विभक्ते शशांकोच्चम् ।।
स्वोच्चे दिग्घ्नानि धनं, रसांकदशयमोद्धृते विकलाः ॥ ८ ॥

वासना–"अहर्गणे नवशत ९०० गुणिते ततः रसविषय गुणांबरर्तुयमयक्षान् २२६०३५६ प्रक्षिप्य योगे नववसुसप्ताष्टांबरनवाश्विभि २९०८७८९ भक्ते भगणाद्यं शशांकोच्चं भवति । परंत्वत्रस्वोच्चेदिग्घ्ना नीत्यनेन धनसंस्कारेण संस्कृतं वास्तविकमुच्चं भवतीत्यर्थ : "

अत्रोपपत्तिः ।

चंद्रोच्चस्य= $\frac{\text{अ. ग.}\times ९००}{२९०८७८९}$ अतः $\frac{२९०८७८९}{९००}$ = ३२३१·९८९ भगणदिवसाः

संस्कारः= $\frac{\text{भगण}\times १०}{२१०९६}$ अतः $\frac{२१०९६}{१०}$ = २१०९·६ विकला = पलरूपं बीजं

,, = $\frac{२१०९६}{३६००}$ =कलाभिरंशात्मकःसंस्कारः + ·५८६ स्वल्पान्तरादिनरूपः

शुद्धनाक्षत्रमानेन चंद्रोच्चभगणदिवसाः	३२३२·५७५	,,	,,
अनेन चक्रांशा भक्ता = चंद्रोच्चदिनगतेः	०·११३६६३ अंशाःस्युः		

४३ राहु.बा भगणकाल शोधन और शुद्ध मध्यमगति.

त्रिघनदशघ्ने नवकै—कपक्षरामेन्दुदहशब्दाः
सहिते यमवसुभूता—र्णवगुणधृतिभिः क्रमाद्राहोः ॥
हेयो भगणे परत - संस्कारस्त्रिघनेन्दुदिनैकयुतः ॥ ९ ॥

वासना—" अहर्गणे त्रिघनदशभिर२७०र्गुणिते । क्षेपयुक्ते । यमवसुभूतार्णवगुणधृतिभि १८३४५८२र्भक्ते राहोर्भगणस्य दिवसरूपः कालःस्यात् । परंत्वत्र भगणे प्रतिभगणे त्रिघनेन्दु दिनैकयुतः १·१२·७ संस्कारः परतः दिनचिह्नादुत्तरांश स्थानेषु हेयः ऊनितः कार्यस्तदा राहोर्वास्तविकभगणादिवसा भवतीत्यर्थः । "

अत्रोपपत्तिः

राहोः—$\frac{\text{अ. ग.} \times २७०}{१८३४५८२}$ अतः $\frac{१८३४५८२}{२७०}$ =६७९४ ५१८ भगणदिवसाः

बीजसंस्कारः=	— १·१२७ ,,
शुद्धनाक्षत्रमानेन राहुभगणकालः	६७९३·३९१ ,,
अनेन चक्रांशा भक्ता राहोर्दिनगतिः	०·०५२९९३३ अंशाः

४४ अब जब उक्त प्रकार से वराहमिहिरने ही सूर्य सिद्धान्त के मूलांकों में दो जगह बीजसंस्कार देकर उसे शुद्ध बनाने का अर्थात् दृक्तुल्य में लानेका प्रयत्न किया है । किंतु इसको अब जबकि करीब १॥ हजार वर्ष होगए हैं तब इसमें भी फर्क पडना स्वाभाविक है। यानी अब वह मान वेधलेने से दृक्प्रत्ययमें आनहीं सकते. इसीलिये हम परोक्त (सिर्फ एकही) बीज संस्कार देकर सूर्यसिद्धांतोक्त परिमाणों को दृक्प्रत्यय में आने लायक शुद्ध करके उपपत्ति सहित बता दिये हैं । सो इससे या सिद्धांत प्रभाकर के शुद्ध मूलांकों से ग्रहों के वर्षमान यानी भगणादिवसों का साधन करके उसके द्वारा ग्रहोंकी शुद्ध मध्यमगति का निश्चयकर पंचसिद्धांतिका के शुद्ध किये हुए उपरोक्त क्षेपकों द्वारा शुद्ध नाक्षत्रमान के मध्यम ग्रहोंको बना सकते हैं ।

ग्रह लाघव में बीज संस्कार.

१ आज भारतवर्ष में जितने पंचांग बनते हैं वे सब प्रायः ग्रहलाघव नामक करण-ग्रंथ के ही आधार पर बनाए जाते हैं । इस ग्रंथको केशव देवज्ञ के पुत्र गणेश देवज्ञने संवत् १५७७ शाके १४४२ में बनाया है । इस समय वराहमिहिरोक्त बीज संस्कार देकर प्राचीनसूर्यसिद्धांतके; तथा लल्लाचार्य व भास्कराचार्य के कहे हुए बीज संस्कार देकर आर्यभट, मय, ब्रह्मगुप्तकृतसिद्धांतग्रंथोंके आधारपर पंचांग बनाए जाते थे किंतु उस

समय उक्त ग्रंथों के काल को बहुत वर्ष होजाने से उस पद्धति के गणित में बहुत अंतर पडने लगगया था, इसलिये गणेश दैवज्ञने वेधद्वारा ग्रहों के स्थान को तपासकर ग्रहों के साधन में जिस पक्षसे सबसे कम अंतर पडता था उनमें उतनाही बीज संस्कार देकर शक्य उतने शुद्ध करके ग्रह लाघव में उनके ही ध्रुवक और क्षेपकों को लिख दिये हैं। अतएव अन्यान्य प्राचीन ग्रंथों की अपेक्षा ग्रह लाघव शुद्ध है।

२ इसी प्रकार ग्रहलाघव के बाद "नागेशकृत ग्रहप्रबोध (शाके १५४१), नित्यानंदकृत सिद्धांतराज (१५६१), कृष्णकृत करण कौस्तुभ (१५७५) निर्णयसिंधुकार कमलाकरभट्ट कृत सिद्धांत तत्वविवेक (१५८०), रत्नकंठ कृत पंचांग कौतुक (१५८०) जयपुराधीश्वर महाराजश्री जयसिंह ने जयपुर, दिल्ली, काशी, मथुरा और उज्जैन में वेधशाला स्थापन करके जगन्नाथ नामक पंडित द्वारा बनाया हुआ सिद्धांत सम्राट् [१६५३], मणिरामकृत ग्रह गणित चिंतामणि (१६९६) और इसके बादभी आजतक भारतीय तथा आँग्ल पद्धति के कई ग्रंथ बने हैं। और उनमें से कतिपय ग्रंथों में ग्रहलाघव से कई बातों में विशेषता व सूक्ष्मता भी साधित हुई है किंतु जिस शैलीका (बीज संस्कारादि एवं गणित पद्धति का) गणेश दैवज्ञने अंगीकार किया है. उस तरह किसीने किया नहीं है। इसलिये कहना पडता है कि "जो प्राचीन श्रुतिस्मृत्युक्त प्रणाली से यानी हमारे धर्मशास्त्र के अनुसार बना होते हुएभी; जिसके परिमाण शुद्ध गणित के, सरलता से बनाने लायक और वेधक्रिया में ठीकठीक दृक्तुल्य मिलते हों ऐसा ग्रंथ ग्रह लाघव के अतिरिक्त उपलब्ध नहीं है। इसीलिये आजतक ग्रहलाघ के ही पंचांगों का प्रचार बहुधा सर्वत्र प्रचलित है। अतएव हमारा अब यह कर्तव्य है कि उसीको; बीज संस्कार देकर शुद्ध नाक्षत्र मानका एवं दृग्गणितैक्ययुक्त सूक्ष्मपरिमाणों का कर देना योग्य है. ताकि इसके पढने वाले लोग प्रस्तुत शोधनयुक्त इसी ग्रंथ के द्वारा शुद्ध सूक्ष्म गणित का पंचांग सरलतासे बना सकें।

३ इसके लिये पहिले हम यह बता देना चाहते हैं कि तीनूं सिद्धांतों के आधार पर बनाए हुए ग्रहलाघवोक्त क्षेपक व ध्रुवकों में शुध्दनाक्षत्र मानसे कितना अंतर था; उसे निकालने के लिये गणेश दैवज्ञने कितना बीज संस्कार दिया है और अब हमें कितना देना बाकी है सो निम्नलिखित कोष्टकों से ज्ञात होगा।

कोष्टक नं. १.

ग्रहलाघवोक्त क्षेपकों में बीज संस्कार.

(ग्रहलाघव ग्रंथारंभ समय के यानी शाके १४४१ फाल्गुन (चैत्र) कृष्ण ३० सोमवार प्रातःकाल के ग्रंथोक्त और चालन देकर शुद्ध किये हुए ग्रहों के क्षेपक)

तत्कालीन मध्यम ग्रह.

सिद्धांत ग्रंथ तनि पक्ष.	क्षेपक विवरण.	ग्रहलाघव कालीन मध्यम ग्रह. (क) (ब्र+आ+प्र) सिद्धांतसाधितग्रह	(ख) ग्रहलाघव में कहे हुए क्षेपक.	(ग) शुद्ध नाक्षत्रमान से तत्कालीन क्षेपक.	बीज संस्कार. क - ग शुद्ध नाक्षत्रमान से सिद्धांतीय ग्रहों में अंतर.	क - ख सिद्धांत ग्रंथोंमें गणेश दैवज्ञका दिया हुआ बीज संस्कार.	ख - ग ग्रहलाघव में हमारा दिया हुआ बीज संस्कार.
(ब्र)	ग्रह	रा। अं। क। वि	रा। अं। क। वि	रा। अं। क। वि	अं। क। वि	अं। क। वि	अं। क। वि
ब्रह्मगुप्त सिद्धांत साधित ग्रह.	सूर्य	११।२०।५३।३६	११।१९।४१। ०	११।१८।५१।५४	− २। १।४२	− १।१२।३६	− ०।४९। ६
	बुध	८। ८। ३।४२	८। ८। ४। ०	८।१०। ४।१२	+ २। ०।३०	+ ०। ०।१८	+ २। ०।१२
	शुक्र	७।२८। ९।३९	७। ७।२०। ०	७। ७।४०।४८	−२०।२८।५१	−२०।४९।३९	+ ०।२०।१८
(आ) आर्य भट सिद्धांत के आधार से बनाये हुए मध्यम ग्रह	राहु	१। ४।११।१३	०।२७।३८। ०	०।२७। ३।१४	− ७। ७।५९	− ६।३३।१३	− ०।३४।४३
	मंगल	१०। ३।१२।५२	१०। ७। ८। ०	१०। ५।३६।३६	+ २।२३।४४	+ ३।५५। ८	− १।३१।२४
	गुरु	७। ५।४३।५१	७। २।१६। ०	७। ०।२९।२४	− ५।१४।२७	− ३।२७।५१	− १।४६।३६
	शुक्र	७।२८।११।२३	७। ७।२०। ०	७। ७।४०।४८	−२०।३०।३५	−२०।५१।२३	+ ०।२०।४८
	शनि	९। ९। ०।२५	९।१५।२१। ०	९।१३। ६। ०	+ ४। ५।३५	+ ६।२०।३५	− २।१५। ०
(प्र) प्रचलित सूर्य सिद्धांत साधित ग्रह	सूर्य	११।१९।४१।१३	११।१९।४१। ०	११।१८।५१।५४	− ०।४९।१९	− ०। ०।१३	− ०।४९। ६
	चंद्र	११।१९।१५।४०	११।१९। ६। ०	११।१८।१९।५९	− ०।५५।४१	− ०। ९।४०	− ०।४६। १
	चंद्रोच्च	५।१७।४०।२३	५।१७।३३। ०	५।१६।४९।४८	− ०।५०।३५	− ०। ७।२३	− ०।४३।१२
चंद्र का ४था उपकरण	चंद्रोच्च	५।१७।४०।२३	५।१७।३३। ०	५।१४।५४। ०	− २।४६।२३	− ०। ७।२३	− २।३९। ०

उपरोक्त कोष्टक को देखने से स्पष्टतापूर्वक मालूम हो जाता है कि शुद्ध नाक्षत्रमान से सिद्धांतीय ग्रहों में जो कुछ [क-ग] अंतर था उसमें का बहुतसा भाग [क-ख] बीज संस्कार देकर गणेश दैवज्ञ ने शुद्ध कर दिया था इसलिये अब हमें सिर्फ ग्रहलाघव [ख] में थोडाही संस्कार [ख-ग] देने से यह क्षेपक शुद्ध नाक्षत्र परिमाण [ग] के तुल्य शुद्ध हो जाते हैं।

५ यदि कहें कि ऐसा करने से प्राचीन ग्रंथों का उपयोग व महत्व कम हो जायगा किंतु ऐसी बात नहीं है ऐसा करने से तो उनका महत्व कायम रहा है क्योंकि लल्लाचार्य और भास्कराचार्य ने जो बीज संस्कार कहे हैं वह उनके उपयोग को कायम रखने के लिये कहे गये हैं और वह बीज संस्कार देते रहने से ही आजतक पंचांग साधन में उन सिद्धांत ग्रंथों का महत्व कायम रहा है। यदि तुलना करके देखा जायतो लल्ल व भास्कर बीज से हमारा कहाहुआ बीज संस्कार बहुत थोडा है। सो निम्नलिखित कोष्टक से स्पष्ट करके बताते हैं।

कोष्टक नंबर २

ग्रंथोक्त बीज संस्कार और बीज संस्कृत क्षेपक.

मध्यमग्रह	भास्कराचार्योक्त बीज	लल्लोक्त बीज.	हमारा बताया हुआ बीज संस्कार.	बीज संस्कृत क्षेपक	अंशात्मक क्षेपक
क्षेपक	० । ॥	० । ॥	० । ॥	रा ० । ॥	०
सूर्य	−१। ९।१९	०। ०। ०	−०।४९। ६	११।१८।५१।५४	३४८·८६५
चंद्र	−१।५५।३१	−३।४२।१२	−०।३६। १	११।१८।१९।१९	३४८·३३३
चंद्रोच्च	−०।४६।१३	−७।४६। २	−०।४३।१२	५।१६।४९।४८	१६६·८३
राहु	+०।४६।१३	−६।३२।२७	−०।३७।४६	०।२७। ३।१४	२७·०५४
मंगल	+०।२३। ६	+३।१६।१३	−०।३१।२४	१०। ५।३६।३६	३०५·६१
बुध	+२०। १।२७	+२८।३८।१८	+२।००।१२	८।१०। ४।१२	२५०·०७
गुरु	−१।१५।३१	−३।१२। ८	−१।३६।३६	७। ०।२९।२४	२१०·४९
शुक्र	−५।४६।३५	−१०।२५।२८	+०।२०।४८	७। ७।४०।४८	२१७·६८
शनि	+५। ०। ०	+१।२१।३६	−२।१५। ०	९।१३। ६। ०	२८३·१०
बुधकेंद्र	+२१।१०।३६	....	+८।२०।४२	८।२१।१२।१८	२६१·२१
शुक्रकेंद्र	−३।३७।१६	....	+१।२०। ६	७।१८।४८।५४	२२८·८२
रविकेंद्र	−१। ९।१९	....	+०।१९।३८	९। १।२१।२२	२७१·३५६
उंप ४ असंस्कृत चंद्रोच्च	−०।४६।१३	−७।४६। २	−२।३९। ०	५।१४।५४। ०	१६४·९०

कोष्टक नंबर ३.

बीज संस्कृत ध्रुवक और अहर्गण ४०१६ की शुद्ध नाक्षत्रीय मध्यम गति.

तुलनात्मक पद्धति से.	तीनों सिद्धांत ग्रंथोंसे साधित होनेवाले.				ग्रहलाघव के स्वीकार किये हुए.		ग्रहलाघव में लिखे हुए.				शास्त्रशुद्ध गति जन्य संस्कार.		बीज संस्कृत शुद्ध नाक्षत्रमानक (चक्रशुद्ध)				अहर्गण ४०१६ की शुद्ध नाक्षत्र मान की
ग्रह.	ध्रुवक				+ बीज		= ध्रुवक				+ बीज		= ध्रुवक.				मध्यम गति.
प्रमाण	रा.	अं.	क.	वि.	कला.	वि.क.	रा.	अं.	क.	वि.	कला	वि.	रा.	अं.	क.	वि.	अंशाः
सूर्य	०	१	४९	८	+०	३	०	१	४९	११	−१	३५	०	१	४७	३६	३५८·२०७
चंद्र	०	३	४६	१०	+०	१	०	३	४६	११	−१	२९	०	३	४४	४२	३५६·२५५
चंद्रोच्च	९	२	४१	११	+३	४९	९	२	४५	०	+०	११	९	२	४५	११	८७·२४७
राहु	७	२	४६	३३	+३	२७	७	२	५०	०	−०	४४	७	२	४९	१६	१४७·२७९
मंगल	१	२५	२७	१४	+४	४६	१	२५	३२	०	−२	५७	१	२५	२९	३	३०४ ५१६
बुध	४	५	१७	४२	−१	३१	४	५	१६	११	−६	११	४	५	१०	०	२३४·८३३
गुरु	०	२६	१६	५२	+१	८	०	२६	१८	०	+०	२१	०	२६	१८	२१	३३३ ६९४
शुक्र	१	१५	४५	५८	+५	१३	१	१५	५१	११	+०	३३	१	१५	५०	३८	३१४·१५६
शनि	७	१५	४२	४१	−०	४१	७	१५	४२	०	−४	२७	७	१५	३७	३३	१३४·३७४
बु. केंद्र	४	३	२८	३४	−१	३४	४	३	२७	०	−४	३६	४	३	२२	२४	२३६·६२६
शु. केंद्र	१	१३	५६	५०	+५	१०	१	१४	२	०	+१	२	१	१४	३	२	३१५·१४९
र. केंद्र	....	...	...	....	....	...	....		१	४९	१२	+०	३४	०	१	४९	४६	३५८·१७१
चक्रशुद्ध राहु	४	२७	१३	२७	−३	२७	४	२७	१०	०	+०	४४	४	२७	१०	४४	२१२·८२१

६ उक्त कोष्टक (२) को देखने से आपको मालूम हो जायगा कि ग्रहलाघव कालिक क्षेपकों में भास्कराचार्य और लल्लाचार्य के बीज की अपेक्षा हमारा कहाहुआ बीज कितना अत्यल्प है। इससे सिद्ध होता है कि ग्रहलाघवोक्त क्षेपक वास्तविक मानके स्वल्पान्तर से शुद्ध हैं। अतएव उक्त बीज संस्कृत क्षेपकों में ग्रहलाघवोक्त मध्यम दिनगति को जोड देनेपर तत्कालीन मध्यम ग्रहभी शुद्ध नाक्षत्रमान के हो जाते हैं। क्योंकि ग्रहलाघवोक्त दिनगति में वास्तविक मानसे विशेष अंतर नहीं है. किंतु करीब ११ वर्ष के बाद उसमें थोडा थोडा फर्क होने लगता है। इसलिये गणेश दैवज्ञने ग्यारह वर्ष के अहर्गण ४०१६ का एक चक्रमानकर जो ध्रुवक कहे हैं; उनमें हमारा बताया हुआ बीज संस्कार करने पर कोष्टक नंबर ३ के अनुसार बीज संस्कृत=ध्रुवक निश्चित होते हैं।

७. उक्त कोष्टक नं. ३ में जो मध्यम गति और बीज संस्कृत ध्रुवक लिखे हैं, सो एक चक्र के अहर्गण ४०१६ को उपर्युक्त सिद्धांत प्रभाकरोक्त भगण दिनों का भाग देकर लब्ध भगणों को त्याग कर शेष भाग को ३६० गुणा करके उसी भगण दिनों का भाग देते हुए अंशात्मक मध्यम गति लाई है। इसी को चक्र ३६० अंशों में शुद्ध करके ध्रुवक लिखे गये हैं सो प्राचीन सूर्य सिद्धांतोक्त परिमाणों के तुल्य है। तथा प्रचलित सिद्धान्तत्रय ग्रंथों के मान से भी (११ वर्ष में इतना स्वल्प यानी ४-६ कलाओं के अंदर ही बीज संस्कार होना मानों स्वल्पांतर से तुल्य एवं शुध्द हैं।

मंद स्पष्ट एवं रविमध्य ग्रह.

८. ग्रह लाघव के भौमादि मध्यम ग्रहों में शीघ्र फलार्ध भाग (प्राङ्मध्यमे चलफलस्य दलं विदध्यात्—ग्र. ला. ३.१०) मिलाकर बाद में मंद केंद्र साधन कहा है इसलिये ग्र. ला. में मंदोच्चों की राशि मात्र कही हैं। अंशादि कहे नहीं हैं. किन्तु शुद्ध गोलीय गणित से ग्रहों की वास्तविक रविमध्य दृश्य कक्षाओं को देखते ऐसा करना 'सूक्ष्म दृग्गणितैक्य' कारक नहीं है। तो भी यह प्राचीन शोध है जबकि इतने सूक्ष्म यंत्रादि नहीं थे उस समय में भी स्वल्पान्तर से स्पष्ट ग्रहों को मिला देना कुछ छोटी बात नहीं है। कागद में लिखे अंकों से चाहे सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंक लाना साधारण गणितज्ञ भी कर सकता है लेकिन आकाश में वेध लेकर ग्रहों के प्रमेयों को निश्चित करना बहुत कठिन बात है।

९. इसलिये अब आगे हमने ग्रहों का साधन तो रवि को मध्य केंद्र में मानी हुई कक्षाओं से किया है लेकिन ग्रह लाघवोक्त परिमाणों की साम्यता बतलाने के लिये तुलनात्मक पद्धति से कोष्टक लिखकर बाद में रविमध्य गणित और भूमध्य गणित बतला दिया है। ताकि कोष्टकों के सहारे शुद्ध सूक्ष्म गणित के स्पष्ट ग्रहों का साधन हो सकता है।

मध्यम ग्रह साधन.

१०. ग्रह लाघव में लिखे हुए गणित क्रम से इष्ट दिन का चक्र और अहर्गण साधन करके कोष्टक ३ में लिखे हुए बीज संस्कृत शुद्ध नाक्षत्र मान के ध्रुवकों को चक्र से गुणकर, कोष्टक २ में लिखे हुए बीज संस्कृत क्षेपकों में घटा देनेपर वह शुद्ध मानके ध्रुवोन क्षेपक होते हैं। जैसे ३७ चक्र से गुणे

हुए धवकों को क्षेपकों में घटा देनेपर संवत् १९८४ शाके १८४९ के (चक्र वर्ष ११×३७ =४०७+१४४२=१८४९ के) आरंभ के ग्रह मध्यम ग्रह हुए। इस प्रकार ग्यारह ग्यारह वर्ष के ध्रुवोन क्षेपक तैयार कर लेने से बाकी अहर्गण थोड़ी लेने से शुद्ध मध्यम ग्रह बन सकते हैं।

कक्षावृत्तीय मध्यम ग्रह साधन के लिये समीकरण.

ध्रुवोन क्षेपक = बीज संस्कृत क्षेपक—चक्र गुणित ध्रुवक.

अहर्गण गति = ग्रह लाघव साधित गति + $\frac{\text{विकलात्मक ध्रुव बीज}}{४ : १६}$ × अहर्गण.

मध्यम ग्रह = ध्रुवोन क्षेपक + अहर्गणोत्पन्न मध्यम गति.

„ = बीज संस्कृत क्षेपक+ $\left(\frac{\text{अखंडाहर्गण} \times ३६०}{\text{प्रभाकरोक्त भगण दिन}}\right)$ भगणादि मध्यम गति

११. **शुद्ध मंदोच्च साधन.** उक्त प्रकार से शुद्ध नाक्षत्र मान के कक्षावृत्तीय मध्यम ग्रह साधन किये बाद उनका मंदफल और शीघ्र फल लाने के लिये ग्रहलाघवोक्त उच्च व फल परिमाणों को वास्तविक मान से तुलना करके उनमें कितना बीज देने से ग्रहों के शुद्ध मंदोच्च मंदफल और शीघ्र फलादि हो सकते हैं सो निम्नांकित कोष्टकों द्वारा स्पष्ट मालूम हो जाता है।

मंदोच्च कोष्टक नंबर ४.

तुलना के लिये स्थूल मंदोच्च के अंश.		ग्रहगणित के लिये सूक्ष्म मंदोच्च				
मंदोच्च	शाके १४४२ में ग्रहोंके मंदोच्चोंमें बीज संस्कार	शाके १४४२ में सूक्ष्ममानसे	चक्र (११ वर्ष) गति		सौरवर्ष गति	शाके १८५२ में सूक्ष्ममान से
ग्रह	ग्रह लाघव में बीज सूक्ष्ममान	अंश	कला	विकला	विकला	अंश
सूर्य	७८° ०° = ७८°	७७.५०९	२।	९.९४	११.८१२	७८.८५३
मंगल	१२० + १० = १३०	१३०.०००	३।	५.९०	१६.९००	१३१.९२४
बुध	२१० + २३ = २३३	२३२.८२१	१।	७.६६	६.१५१	२३३.५२१
गुरु	१८० – १० = १७०	१६९.५६०	१।	१२.९४	६.६३१	१७०.३१६
*शुक्र	२७० + १८ = २८८	२८७.८१५	—	१६.४९	१.४९९	२८७.६४४
शनि	२४० + ७ = २४७	२४६.८६२	२।	५५.६७	१५.९७०	२४८.६८१

* ग्रह लाघव में शुक्र के मंदोच्च की अनुलोम गति मानकर मंदोच्च की ३ राशि अर्थात् ९० अंश लिखे हैं। वस्तुतः उसकी विलोम गति होनेसे तुलना के लिये चक्र शुद्ध करके २७० अंश लिखे हैं।

कोष्टक ५.

ग्रहलाघवोक्त मंद फलकी आधुनिक सूक्ष्ममानसे तुलना.

उपकरण मंदकेंद्र = (मंदोच्च-मध्यम ग्रह).

उपकरण.	मंगल.		बुध.		गुरु.		शुक्र.		शनि.		उपकरण.
	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	
०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	३६०
१५	२.९	३.१	१.२	८.१	१.४	१.५	०.६	०.२	१.९	१.८	३४५
३०	५.७	५.९	२.१	१४.९	२.७	२.९	१.१	०.४	४.०	३.४	३३०
४५	८.५	८.२	२.८	१९.९	३.९	४.१	१.३	०.६	६.०	४.८	३१५
६०	१०.९	९.७	३.३	२२.८	४.८	४.९	१.४	०.७	७.७	५.८	३००
७५	१२.४	१०.६	३.५	२३.७	५.५	५.४	१.५	०.८	८.९	६.४	२८५
९०	१३.०	१०.६	३.६	२२.९	५.७	५.५	१.५	०.८	९.३	६.५	२७०
१०५	१२.४	१०.०	३.५	२०.९	५.५	५.३	१.५	०.८	८.९	६.१	२५५
१२०	१०.९	८.७	३.३	१७.८	४.८	४.६	१.४	०.७	७.७	५.४	२४०
१३५	८.५	७.०	२.८	१३.९	३.९	३.७	१.३	०.६	६.०	४.४	२२५
१५०	५.७	४.८	२.१	९.६	२.७	२.६	१.१	०.४	४.०	३.१	२१०
१६५	२.९	२.५	१.२	४.९	१.४	१.४	०.६	०.२	१.९	१.६	१९५
१८०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	१८०

कोष्टक ६.

ग्रह लाघवोक्त शीघ्रफल की आधुनिक सूक्ष्ममान से तुलना.

उपकरण शीघ्रकेंद्र = (स्पष्टरवि-मंद स्पष्टग्रह).

उप-करण.	मंगल.		बुध.		गुरु.		शुक्र.		शनि.		उप-करण.
	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्रहलाघव.	आधुनिक.	ग्र. ला.	आ. नि.	
०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	३६०
१५	५.८	५.९	४.१	४.२	२.५	२.४	६.३	६.३	१.५	१.४	३४५
३०	११.७	११.८	८.१	८.३	४.७	४.७	१२.६	१२.५	२.८	२.८	३३०
४५	१७.४	१७.६	११.७	१२.१	६.८	६.८	१८.६	१८.७	३.९	४.०	३१५
६०	२२.८	२३.२	१५.०	१५.७	८.५	८.६	२४.६	२४.७	४.८	४.९	३००
७५	२७.९	२८.५	१७.८	१८.८	९.८	१०.०	३०.२	३०.५	५.४	५.६	२८५
९०	३२.५	३३.३	१९.९	११.२	१०.६	१०.९	३५.४	३५.९	५.७	६.०	२७०
१०५	३६.५	३७.४	२१.२	२२.६	१०.८	११.१	४०.२	४०.७	५.७	५.९	२५५
१२०	३९.३	४०.२	२१.२	२२.६	१०.२	१०.४	४४.०	४४.५	५.३	५.५	२४०
१३५	४०.०	४०.९	१९.५	२०.७	८.९	८.९	४६.१	४६.३	४.५	४.६	२२५
१५०	३६.८	३७.३	१५.५	१६.२	६.६	६.६	४४.३	४४.१	३.३	३.३	२१०
१६५	२४.९	२४.९	८.९	९.१	३.६	३.५	३२.१	३१.९	१.८	१.७	१९५
१८०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	१८०

मंदकर्ण कोष्टक ७.

(सूर्य से पृथ्वीपर्यंत ९५०००००० माइल अंतर को = १ मानकर अंक लिखे हैं)

ग्रहों के मंद कर्ण (ग्रह से सूर्य तक रेषाकार अंतर) उपकरण मंद केंद्र.

उपकरण	रवि.	मंगल.	बुध.	गुरु.	शुक्र.	शनि.	उपकरण.
१०	०·९८३२	१·३८११	०·३०७५	४·९५२	०·७१८३	९·०१०	३१०
१५	०·९८३८	१·३८७५	·३११८	४·९६२	·७१८६	९·०३०	३४५
३०	०·९८५५	१·४०४४	·३२३६	४·९८९	७१९१	९·०९०	३१०
४५	० ९८८३	१·४३०६	·३४१०	५·०३२	·७१९८	९·१८२	३१५
६०	०·९९१८	१·४६३३	·३६१४	५·०८७	·७२०९	९·३०१	१००
७५	०·९९५९	१·४९९७	·३८२१	५·१४९	·७२२१	९·४३५	२८५
९०	१·०००३	१·५३६९	·४०३०	५·२१४	·७२३४	९·५७६	२७०
१०५	१·००४६	१·५७१३	४२१५	५·२७८	·७२४७	९·७१२	२५५
१२०	१·००८६	१ ६०४०	·४३७३	५·३३६	·७२५९	९·८३६	१४०
१३५	१·०१२०	१·६३०१	४५००	५ ३८५	·७२६९	९ ९३९	२२१
१५०	१·०१४१	१·६४२७	४५९२	५·४२२	·७२७६	१०·०१७	२१०
१६५	१·०१६२	१·६६[illegible]७	·४६४८	५·४४५	·७२८२	१०·०६६	१९५
१८०	१·०१६८	१·६६५७	·४६६७	५·४५३	०·७२८३	१०·०८२	१८०

पात कोष्टक ८

तुलनाके लिये स्थूल पात के अंश				ग्रह गणित के लिये ग्रहोंके सूक्ष्मपात.			
पात स्थान.	शाके १४४२ में ग्रहोंके पातों में बीज संस्कार.			शाके १४४२ में सूक्ष्ममानसे.	वर्ष ११ की चक्रगति.	सौरवर्ष गति	शा. १८५२ सूक्ष्म मानसे.
ग्रह	ग्रहलाघवमें०	बीज०	सूक्ष्ममान०	अंश ०	कला. वि.	विकला	अंश ०
सूर्य	१७	०	=१७	·१७·१४९	९।१२ ५९	५०·२३६	२१·८१७
मंगल	४०	−१४	=२६	२८·६९४	४।१० ४७	२२·७७०	२६·१०१
बुध	२०	+ ५	=२५	२५·४२६	१।१४·५९	६ ७२९	२४·१५२
गुरु	८०	− ३	=७७	७८·५०२	२।३८:४०	१४ ०००	७६·८१२
शुक्र	६०	− ७	=५३	५५·३२८	३।३०·०९	१९·०९९	५३·१५४
शनि	१००	−१०	=९०	९२·३२५	३।२४·०५	१८·५५०	९०·२१२

पात कोष्टक में सूर्य का क्रांतिपात यानी अयनांश और भौमादि ग्रहों के कक्षा पात स्थान; कहे गये हैं। रवि क्रांतिपात ऋण लिखा जाने से उसकी गति धन; बाकी के ग्रहों की वर्षगति ऋण है।

परिणति कोष्टक ९.

ग्रहोंका कक्षापरिणति संस्कार । उपकरण = मंद स्पष्टग्रह – पात.

उपकरण		मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	उपकरण	
अं.	अं.	—	—	—	—	—	अं.	अं.
		०	०	०	०	०		
०	१८०	.००	.००	.००	.००	.००	१८०	३६०
१५	१६५	.०१	.११	.००	.०३	.०१	१९५	३४५
३०	१५०	.०१	.१८	.०१	.०४	.०२	२१०	३३०
४५	१३५	.०१	.२१	.०१	.०५	.०३	२२५	३१५
६०	१२०	.०१	.१८	.०१	.०४	.०२	२४०	३००
७५	१०५	.०१	.११	.००	.०३	.०१	२५५	२८५
९०	९०	.००	.००	.००	.००	.००	२७०	२७०
अं.	अं.	+	+	+	+	+	अं.	अं.

रविमध्यशर कोष्टक १०.

उत्तरशर		मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	दक्षिणशर	
अं.	अं.	कला	कला	कला	कला	कला	अं.	अं.
०	१८०	०.०	०.०	०.०	०.०	०.०	१८०	३६०
१५	१६५	२८.७	१०८.५	२०.४	५२.७	३८.८	१९५	३४५
३०	१५०	५५.८	२०९.६	३९.५	१०१.७	७४.९	२१०	३३०
४५	१३५	७८.५	२९६.६	५५.९	१४३.९	१०५.९	२२५	३१५
६०	१२०	९६.२	३६३.५	६८.५	१७६.३	१२९.८	२४०	३००
७५	१०५	१०७.३	४०५.६	७६.७	१९६.६	१४४.८	२५५	२८५
९०	९०	१११.१	४२०.०	७९.०	२०३.६	१४९.९	२७०	२७०
ग्रहलाघवोक्त		११०.०	१५२.०	७६ ०	१३६ ०	१३०.०	परमशरसे तुलना	

शीघ्रकर्ण कोष्टक ११.

ग्रहोंके शीघ्रकर्ण उपकरण शीघ्रकेंद्र.

(सूर्यसे पृथ्वीतक का अंतर = १ मानकर अंक लिखे गए हैं.)

उपकरण	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	उपकरण
	अंक	अंक	अंक	अंक	अंक	
०°	२.५२४	१.३८७	६.२०३	१.७२३	१०.५३९	३६०°
१५	२.५०१	१.३७८	६.१७४	१.७०९	१०.५०८	३४५
३०	२.४४१	१.३४९	६.०८९	१.६६६	१०.४१७	३३०
४५	२.३४०	१.३०३	५.९५२	१.५९६	१०.२७०	३१५
६०	२.२०१	१.२४०	५.७६८	१.४९९	१०.०७६	३००
७५	२.०२७	१.१६२	५.५४६	१.३७७	९.८४९	२८५
९०	१.८११	१.०७२	५.२९८	१.२३४	९.५९१	२७०
१०५	१.५११	०.९७४	५.०३७	१.०७२	९.३३०	२५५
१२०	१.३४१	.८७३	४.७८१	०.८९४	९.०८०	२४०
१३५	१.०८०	.७७१	४.५५१	०.७०७	८.८६०	२२५
१५०	०.८२६	.६९२	४.३१५	.५२०	८.६८७	२१०
१६५	०.६१५	.६३४	४.२४५	.३५१	८.५७६	१९५
१८०	०.५२४	०.६१३	४.२०३	.२७७	८.५३९	१८०

गतिफल कोष्टक १२.

ग्रहोंके भूमध्य गतिफल । उपकरण शीघ्रकेंद्र.

(रवि मध्यगति ५९.१ + गतिफल = स्पष्टगति)

उपकरण		मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अंश	अंश	कला	कला	कला	कसा	कला
०	३६०	—१६.७	+ ५२.२	—४५.९	+ १५.९	—५१.८
१५	३४५	१६.८	५१.४	४५.६	१५.४	५१.९
३०	३३०	१७.०	४९.६	४६.०	१५.३	५२.४
४५	३१५	१७.३	४६.५	४६.९	१४.९	५२.९
६०	३००	१७.६	४१.०	४८.२	१४.६	५३.९
७५	२८५	१८.३	३२.५	५०.०	१३.८	५५.०
९०	२७०	१९.४	२३.८	५१.४	१२.७	५६.५
१०५	२५५	२१.१	+ ७.९	५४.९	१०.८	५८.०
१२०	२४०	२४.०	— १३.०	५८.०	७.४	५९.६
१३५	२२५	२९.१	४१.६	६१.२	+ ०.९	६१.१
१५०	२१०	४०.७	७५.८	६४.१	—१४.२	६.२७
१६५	१९५	६२.१	१०६.१	६६.३	५१.८	६३.४
१८०	१८०	—८०.१	—११७.४	—६७.०	—९५.०	६५.८

काष्टक नं. १३.

अन्यान्य उपकरणों द्वारा साधित होनेवाले चंद्र के ५ संस्कार और चंद्रका शर.									रवि स्पष्ट दिनगति और बिंब.		
उपकरण.	रवि केंद्र.	तिथि केंद्र.	च्युति केंद्र.	मंद केंद्र	पात राहु.	चंद्र-राहु.		चं.+रा.-२ रवि.	उपकरण रवि केंद्र.		उपकरण
संस्कार.	१ उदयांतर (गति)	२ तिथि.	३ च्युति.	४ मंदफल	५ परिणति	चंद्रका शर.		शर संस्कार.	रवि की दिन गति.	रवि बिंब	संस्कार और गति.
केंद्रांश.	अंश	अंश	अंश	अंश	अंश	अं	कला	अं कला	स्पष्ट	कला	केंद्रांश
०	−०.००	+ ·००	+०·००	+ ०·००	− ·०००	०	०००	० ०	६१·१	३२·६	३६०
१५	.०५	·२९	०·३३	१·७४	·०५६	१	१९·८	२·३	६१·०	३१·६	३४५
३०	.०९	·५०	०·६३	३·३४	·०९६	२	३४·३	४·४	६०·९	३२·५	३३०
४५	.१३	·५७	०·८८	४·६७	·११०	३	३८·२	६·२	६०·६	३२·४	३१५
६०	·१६	·४८	१·०८	५·६३	·०९६	४	२७·१	७·६	६०·१	३२·३	३००
७५	·१८	+ ·२६	१·२०	६·११	·०५९	४	५८·२	८·५	५९·१	३२·२	२८५
९०	·१९	− ·०३	१·२४	६·२७	− ·०००	५	८·८	८·८	५९·१	३२·०	२७०
१०५	·१८	·३३	१·१८	५·९७	+ ·०५८	४	५८·१	८·५	५८·६	३१·९	२५५
१२०	·१६	·५४	१·०६	५·२१	·०९७	४	२७·३	७·६	५८·१	३१·८	२४०
१३५	·१३	·६२	०·८७	४·२४	·११०	३	३८·२	६·२	५७·७	३१·७	२२५
१५०	·०९	·५२	०·६१	२·९६	·०९७	२	३४·३	४·४	५७·४	३१·६	२१०
१६५	·०५	·३०	०·३२	१·५३	·०५८	१	१९·८	२·३	५७·३	३१·५	१९५
१८०	− ·००	− ·००	+ ०·००	+ ०·००	+ ·०००	०	०·०	०·०	५७·१	३१·५	१८०

कोष्टक नं. १४.

चंद्र की दिन स्पष्ट गति । उपकरण २।३।४ केंद्र.								उपकरण चंद्र स्पष्ट दिन गति कला.		
उपकरण.	उप तिथि केंद्र	उपच्युति केंद्र.	उप. मंद केंद्र.	उपकरण.	उप. तिथि केंद्र	उप. च्युति केंद्र.	उप. मंद केंद्र.	चंद्र स्पष्ट गति.	चंद्र बिंब.	क्षितिज लंबन.
अंश	कला	कला	कला	अंश	कला	कला	कला	उपरकरण.	कला	कला
०	११४ ४	११६.१	६८२.३	१८०	११५.२	८४.५	५१०.४	०	'	'
१५	११०.७	११५.०	६७४ ३	१९५	१११.५	८५.५	५१४.७	६८०	२९.०	५३.१
३०	१०४.०	११२.९	६६०.८	२१०	१०४.८	८६.८	५२३.४	७१०	२९.६	५४.२
४५	९६ ५	१०९.९	६४२.१	२२५	९७.१	९०.२	५३६.३	७४०	३०.२	५५.४
६०	८९.७	१०६.४	६२०.५	२४०	९०.०	९३.७	५५२.७	७७०	३०.८	५६.५
७५	८६.०	१०२.४	५९७ ५	२५५	८६.५	९७.५	५७२.७	८००	३१.४	५७.६
९०	८५.७	९८.२	५७५ ४	२७०	८५.७	१०१.६	५९४.७	८३०	३२.०	५८.७
१०५	८९.२	९४.१	५५५.३	२८५	८८.८	१०५.४	६१७.६	८६०	३२.६	५९.८
१२०	९५.६	९०.५	५३८.०	३००	९५.०	१०९.२	६३९.७	८९०	३३.२	६०.९
१३५	१०३.५	८७.७	५२५.०	३१५	१०२.७	११२.२	६५८.९	९२०	३३.८	६२.०
१५०	११०.३	८५.५	५१५.९	३३०	१०९.६	११४.६	६७३.१	९५०	३४.४	६३.१
१६५	११४.९	८४.६	५१३.०	३४५	११३.७	११६.०	६८१.३	९८०	३५.०	६४.३
१८०	११५.२	८४.५	५१०.४	३६०	११४.४	११६.१	६८२ ३			

रविमध्य गणित.

१२ उपर्युक्त कोष्टक ४ से इष्ट वर्ष के सूक्ष्म मंदोच्च और कोष्टक ८ से सूक्ष्मपात साधन करके मध्यम ग्रहों के नीचे लिख लेवें। आगे मंदोच्च में मध्यम ग्रह कम करलेने पर [मंदकेंद्र = मंदोच्च -- कक्षा वृत्तीय रवि मध्य ग्रह।] मंदकेंद्र होता है। इस मंदकेंद्र के उपकरण से कोष्टक ५ से सूक्ष्ममान का मंदफल लाकर मध्यम ग्रह में जोड देवे तो यह मंद-स्पष्ट (विक्षेप वृत्तीय रवि मध्य) ग्रह होता है। आगे उपरोक्त पात को उक्त मंदस्पष्ट ग्रह में कम करदेने पर पातोन रवि मध्यग्रह बनाकर इस उपकरण से कोष्टक ९ से परिणति संस्कार तथा कोष्टक १० से रवि मध्यशर लेआना चाहिये। और पूर्व साधित मंदस्पष्टग्रह में इस परिणति संस्कार को करने से सूक्ष्ममान का क्रांतिवृत्तीय रवि मध्यग्रह हो जाता है।

१३ पूर्व साधित ग्रहों के मंदकेंद्र के उपकरण से कोष्टक ७ द्वारा मंदकर्ण साधन करके मध्यम ग्रहों के नीचे क्रम से उनके मंदकर्ण लिखलेना चाहिये.

सूक्ष्ममान से भूमध्य गणित.

१४ सूक्ष्ममान से शीघ्रफल साधन करके क्रांतिवृत्तीय रविमध्यम ग्रह में फल संस्कार करनेपर भूमध्य दृश्य ग्रह होता है इसके लिये नीचे लिखे प्रकार गणित करना चाहिये। उसमें बुध और शुक्र यह दो ग्रह अंतर्ग्रह हैं क्योंकि सूर्य से भूकक्षा का अंतर (मंदकर्ण) एक अंक मानने से इन दोनों ग्रहों की मध्यम कक्षा ०.३८७१ और ०.७२३३ होने से एक के यानी पृथ्वी कक्षा के अंदर है। इसके लिये ग्रह लाघव में इनके मध्यम भोग को बुध शीघ्र, व शुक्र शीघ्र नाम से लिखा है तथा इनका शीघ्रफल संस्कार भी स्पष्ट सूर्य में देनेपर यह दोनों स्पष्ट हो जाते हैं।

समीकरण।

१५ अंतर्ग्रह (बुध व शुक्र) को स्पष्ट करने के लिये गणित —

शीघ्रकेंद्र = रविमध्यग्रह ---- मंदस्पष्ट रवि = [क]

कार्ध = ग्रह के शीघ्रकेंद्र का अर्धविभाग।

कार्ध स्पर्शरेषा = शीघ्रकेंद्रार्ध की छाया।

$$\text{खार्धच्छाया} = \frac{\text{रविमंदकर्ण} - \text{ग्रहमंदकर्ण}}{\text{रविमंदकर्ण} + \text{ग्रहमंदकर्ण}} \times \text{कार्धच्छाया।}$$

शीघ्रफल = कार्ध — खार्ध।

स्पष्टग्रह = मंदस्पष्टरवि + शीघ्रफल।

इसकी उपपत्ति मालूम होने के लिये आकृति संग्रहमें इसको निदर्शक आकृति (आलेख्य) बताई गयी है ताकि इसके सहारे शीघ्रफल की उपपत्ति पाठकगण सरलता से समझ जांयगे.

१६. मंगल, गुरु और शनि यह बहिर्ग्रह हैं क्योंकि सूर्य से इनकी कक्षा का मध्यमान्तर (मध्यम मंदकर्ण) क्रम से मंगल का १·५२३७, गुरुका ५·२०३ और शनि का ९·५५९ है। सो भू कक्षा एक से अधिक होने से इनको बहिर्ग्रह कहे हैं। इनके शीघ्र फल साधन के लिये विलोम रीति से शीघ्र केंद्र बनाकर फल संस्कार इनके (क्रांतिवृत्तीय) रविमध्य ग्रह मे देने पर यह भूमध्य दृश्य (स्पष्ट) होते हैं।

१७ बहिर्ग्रह (मंगल, गुरु और शनि) को स्पष्ट करने के लिये—

समीकरण

शीघ्र केंद्र = मंदस्पष्ट रवि — रवि मध्य ग्रह = (क).

खार्धच्छाया = ग्रह मंदकर्ण — रवि मंदकर्ण × कार्धच्छाया

शीघ्रफल = कार्ध — खार्ध।

स्पष्टग्रह = रवि मध्य ग्रह + शीघ्र फल।

स्थूलमान से भूमध्य गणित।

१८ उपर्युक्त समीकरणों से सूक्ष्ममान का शीघ्र फल आता है किंतु इसके लिये ज्या-चाप का गणित और अंश कला तक की भुजज्या, कोटीज्या व स्पर्श रेषा (छाया) के बने हुवे कोष्टकों (टेबलों) से हो सकता है। उसमें भी लाग्रथम् (घातांक गणित) के आश्रय से उक्त गणित किया जा सकता है। इसलिये जिनको यह गणित आता नहीं है उन्होने ग्रहलाघवोक्त पद्धति से ग्रहों के शीघ्रकेंद्र साधन करके उसके उपकरण से कोष्टक नंबर ६ के द्वारा (सूक्ष्म मानका) शीघ्र फल लाकर मध्यम ग्रह में संस्कार (धनर्ण) करे तो भूमध्य दृश्य क्रांतिवृत्तीय स्पष्टासन्न ग्रह होता है। और यह ग्रह लाघव साधित ग्रह से सूक्ष्म अतएव दृक्प्रत्यय कारक होता है।

१९ ऐसा ही उपर्युक्त ग्रहोंके शीघ्र केंद्र के उपकरण से कोष्टक ११ द्वारा ग्रहों का शीघ्र कर्ण (ग्रह से पृथ्वी तक का सरल रेखाकार अन्तर) ज्ञात हो सकता है।

२० उपर्युक्त रवि मध्य शरको मंद कर्ण से गुणकर शीघ्र कर्ण का भाग देने पर भूमध्य दृश्यशर होता है अर्थात् भूमध्यशर = रविमध्यशर × मंदकर्ण ÷ शीघ्र कर्ण।

२१ उक्त शीघ्र केंद्र के उपकरण से कोष्टक नंबर १२ के द्वारा ग्रहों के भूमध्य गति फल लाकर; रवि मध्य गति (५९·१) + गति फल कला = स्पष्ट दिन गति कला; होती हैं।

चंद्र गणित।

२२ जिस प्रकार मध्यम रवि में सिर्फ एक मंदफल संस्कार करने पर वह स्पष्ट (भूमध्य दृश्य) हो जाता है; ऐसा मध्यम चन्द्र में एक मंदफल संस्कार करने पर वह स्पष्ट नहीं हो सकता क्योंकि स्पष्ट रवि करने में पृथ्वी और सूर्य इन दो गोल के आकर्षण से गोलद्वय प्रश्न के शास्त्रानुसार सिर्फ एक ही फल संस्कार करना पडता है। किंतु चंद्र स्पष्ट करनें में केवल चंद्र और पृथ्वी इन दो गोलका ही विचार करना नहीं है। इसमें एक तीसरे गोल सूर्य के आकर्षण का भी विचार करना पडता है। इसलिये गोलत्रय प्रश्न के शास्त्रानुसार (१) सूर्य के मंद फल के (धनर्ण के) कारण उत्पन्न होनेवाला उदयान्तर (गति) संस्कार, (२) तिथ्यंतर के कारण उत्पन्न होने वाला तिथि संस्कार, (३) दीर्घवर्तुलीय कक्षा के कारण उत्पन्न होने वाला च्युति संस्कार, (४) चंद्रोच्च के कारण उत्पन्न होने वाला मंदफल संस्कार और (५) चंद्रशर के कारण उत्पन्न होनेवाला कक्षा परिणति संस्कार यह पांच संस्कार करने पर भूमध्य दृश्य स्पष्ट चंद्र हो सकता है। सिर्फ एक मंदफल से नहीं हो सकता ऐसा सब गोल गणितज्ञों का सिद्धांत है। इसके सब भाव को बतलाने के लिये चित्र नंबर ९ में स्थूल तिथि गोलाकृति एंव सूक्ष्म तिथि अण्डाकृति रूप बताई है

बीज और संस्कार.

बीज.	संस्कार.
दृग्गणितैक्य के लिये अवश्य है. इसकी उपपत्ति शास्त्र से नहीं रहती.	दृग्गणितैक्य के लिये अवश्य है. इसकी उपपत्ति शास्त्र से रहती है.

२३ ग्रहलाघव के क्षेपक और ध्रुवकों में भास्कराचार्य और लल्लाचार्य आदि का कहा हुआ कितना बहुत बीज दिया जाता था और हमने कितना अत्यल्प कहा है सो कोष्टक (१-४) से ज्ञात होगा और कोष्टक (५-१४) से तथा ग्रंथोक्त असकृत्कर्म के देखने से आपको ज्ञात होगा कि हमारे कहे हुए फलसंस्कार एवं उनके मूलांक शास्त्रीय उपपत्ति से कितने युक्त और थोडे हैं कि जिनके द्वारा दृक्प्रत्यय युक्त ग्रहस्पष्ट होसकते हैं। ऐसे ग्रहलाघव से हो नहीं सकते तथापि कोष्टक (४-६) में उनकी तुलना करके बतादी है।

२४ यद्यपि चंद्रको त्रिफल संस्कार के अतिरिक्त ग्रहलाघव में उपर्युक्त ५ संस्कार कहे नहीं है तोभी मध्यम चंद्र में " **अंक कलिकोनाब्जः** " नौकला कम करने का बीज कहा है। और दूसरे ग्रंथकारों ने संस्कार भी कहे हैं * तथा प्रो० छत्रे ज्यो. केतकर आदि आधुनिक ज्योतिर्विदों ने चंद्र को यही पांच संस्कार कहे हैं। दृक्प्रत्ययावह सूक्ष्मचंद्र साधन के लिये इस प्रकार के संस्कार करने का जबकि शास्त्रीय निषेध न होते हुए इसीसे ही सूक्ष्मचंद्र साध्य होता है तब हमने भी कोष्टक (१३-१४) में पांचों संस्कारों के फल लिख कर उसी के द्वारा सूक्ष्मगणित का दृक्प्रत्ययावह चंद्रसाधन कहा है। अर्थात् कलम ९ में लिखे प्रकार मध्यमग्रहसाधन पद्दति से सूक्ष्ममान के मध्यमचंद्र, चंद्रोच्च और राहु का साधन करके नीचे लिखे प्रकार (कोष्टक १३) द्वारा चंद्रको स्पष्ट कर.

२५ पूर्वानीत रविकेंद्र (रव्युच्च – मध्यमरवि = केंद्र) से लाए हुए रविमंद फल का दशांश अथवा कोष्टक (१३) से [१] प्रथम उदयान्तर यानी वार्षिक गतिफल संस्कार [२] मध्यमरव्यूनचंद्र तिथि केंद्र होता है इस उपकरण से मासिकगति संस्कार, [३] चंद्रोच्चयुक्त मध्यमचंद्र में द्विगुणमध्यमरवि घटाने पर च्युति केंद्र होता है इस उपकरण से च्युति संस्कार लेकर, [४] उक्त तीनों संस्कारों को – चंद्रोच्च में मध्यमचंद्र कम करने पर मंदकेंद्र होता है उसमें उक्ततीनूं संस्कार युक्त कर देने पर त्रिफल संस्कृत चतुर्थ उपकरण होता है इससे मंदफल संस्कार लेकर यह चारों संस्कार चारों केंद्रों के धर्मानुसार मध्यम-चंद्र में जोड देना चाहिये तो कक्षावृत्तीय भूमध्यदृश्य स्पष्टचंद्र होता है। [५] इसमें राहु कम करने पर पात केंद्र होता है इस उपकरण से कक्षा परिणति नामक पांचवां संस्कार कर देने पर क्रांति वृत्तीय भूमध्य दृश्य स्पष्टचंद्र सूक्ष्ममान का चंद्रभोग होता है।

२६ इसी पांचवे उपकरणसे तथा चंद्र + राहु – २ रवि अथवा द्विगुणद्वितीयोपकरण में पांचवां उपकरण कम करने पर से इसी कोष्टक १३ के छट्ठी व सातवीं कलमसे चंद्रशर और चंद्रशर संस्कार लेकर स्पष्टशर बना लेवें।

---

* " इन्दूच्चोनार्क कोटिघ्ना गत्यंशा विभवा विधोः ॥ गुणो व्यर्केन्दुदोः कोटयो रूप-पंचाप्तयोः क्रमात् ॥ १ ॥ फले शशांक तद्द्रत्योर्लिप्ताद्ये स्वर्णयोर्वधे ॥ ऋणंचंद्रेधनं भुक्तौ स्वर्णसम्यग्वधेऽन्यथा ॥ २ ॥ " ऐसा मुंजाल ने लिखा है। तथा " एकादशाभिः भागैर्विवर्जि-तैः शुद्धचंद्रगतिभागैः। स्फुटसूर्यात् चंद्रोच्चंत्यक्त्वा तत्कोटि जीवायाः ॥ १ ॥ गुणितास्याद्गुण-कारैर्धनर्ण संज्ञा प्रयात्येषा ॥ २ ॥ " ऐसा कल्पवल्ली लघुमानस टीका में और " शुद्धेन्दौ स्फुटसूर्ये विशोध्यकोटिज्यकां भुजज्यांच ॥ ज्ञात्वातयोर्धनाख्यामृणसंज्ञावा यथोचितां कृत्वा ॥ ३ ॥ भुजकोटिज्येगुणितेतेनगुणेनैवतेभुजेक्रमशः ॥ रूपेणपंचभिर्ये लिप्ताद्येशीतगोश्चतद्भुक्तौ ॥ ४ ॥ तथा रामबीजादि (१) देशांतर (२) अब्दबीज (३) रामबीज (४) भांशफल-(५) उदयान्तर और (६) चरकर्म इत्यादि चंद्र में संस्कार कहे गए हैं।

२७ रविकेंद्रोपकरण से कोष्टक १३ में लिखे प्रकार रवि की स्पष्ट दिनगति व रवि-बिंब और चंद्रके ३। ४। ५ से कोष्टक १४ द्वारा चंद्र की स्पष्ट दिनगति का साधन करे। आगे इसी चंद्रगति के उपकरण से चंद्रबिंब और क्षितिजलंबन का साधन करलें। ताकि इसके द्वारा तारा चंद्रयुति, ताराग्रह युति, ग्रह ग्रह युति, उदयास्त, और ग्रहण इत्यादि यथार्थ काल में स्पष्ट दिख सकते हैं। *

२८ कोष्टक ८ में सूर्य का क्रांतिपात याने अयनांश कहे गए हैं। उसके द्वारा शाके १८५० संवत् १९८० के मेष संक्रमण के समय के अयनांश २२°। ५०′। २५″। होते हैं। उसके आगे पीछे के अयनांश बनाना होतो अयन वर्ष गति ५०″। २३५७२ विकला मान-कर इष्टदिन के अयनांश बना सकते हैं। यह अयनांश " तथा वर्षगति ३६५· २५६३७४ दिन; ३७१·०६२४१४ तिथि " इस कमेटी की चौथी मिटिंग (तारीख १६-११-२९) में प्रोफेसर गोळे साहब की उप सूचना से सर्व सम्मति से पास किये गए हैं। इस समय रवि की परमक्रांति २३°। २६′′ ८ है।

भूपृष्ठीय गणित

२९ इस प्रकार स्पष्टग्रहों के भोग और शर आदि का जो साधन किया गया है यह सब भूमध्य दृश्य यानी भूगर्भीय है। किंतु दिनमान आदि बनाने के लिये भूपृष्ठीय परिमाणों का गणित करना पडता है वह सब उक्त परिमाणों द्वारा किंवा ग्रहलाघवपद्धतिसे कर सकते हैं। यदि वह सूक्ष्मगणित से करना होतो नीचे लिखे समीकरणों द्वारा करें।

(१) पचांगस्थ स्पष्टग्रहोंमें अयनांश मिला देने पर सायन ग्रह होजातेहैं।

(२) विषुवांशस्पर्शरेषा = सायनभागस्पर्शरेषा × परमक्रांति कोतिज्या।

(३) विषुवकालघट्य: = विषुवांशा: ÷ ६

(४) सायनरवि भोगस्पर्शरेषा = विषुवांशज्या × रविपरमक्रांतिच्छेदनरेषा

(५) इष्टकालिक रविक्रांति: = भुज्यारवि परम क्रांति × भुज्यासायनरवि:

(६) चरभुजज्या = अक्षांशस्पर्शरेषा × क्रांतिस्पर्शरेषा उसका धनु = चरांश होते हैं। चरांश को दशगुणित करने पर चरपल होते हैं।

भवदीय दीनानाथ शास्त्री चुलेट,
अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर.

---

* ताराग्रह युति क लिये नक्षत्रों के शुद्धनाक्षत्रीय भोग शर तथा आरंभस्थान निर्णय आदि बातें हमारे वेद काल निर्णय के परिभाषा प्रकरण में विस्तृत रीति से सप्रमाण लिखे गए हैं। सो उन नक्षत्र भोगों में अयनांश मिला कर सायन करके विषुवांश क्रांति आदि का. साधन करें।

पत्र नंबर १६

अध्यक्ष की बनाई हुई सारणी.

कोष्टक नंबर १५.

प्रभाकर सिद्धान्तानुसारेण वर्ष प्रवेश सारणी.

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२
१५	३०	४६	१	१६	३२	४७	३	१८	३३	४९	४	१९	३५	५०	६	२१	३६	५२	७	२३	३८	५३	०९	२४	३९	५५	१०	२६	४१
२२	४५	०८	३१	५४	१७	४०	०३	२६	४९	१२	३५	५८	२१	४४	७	३०	५३	१६	३९	०१	२४	४७	१०	३३	५६	१९	४२	५	२८
५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	०९	६	३	०	५७	५४	५१	४०	४५	४२	३९	३६	३३	३०
३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	४	६	०	१	२	४	५
५६	१२	२७	४३	५८	१३	२९	४४	५९	१५	३०	४६	१	१६	३२	४७	२	१८	३३	४९	४	१९	३५	५०	६	२१	३६	५२	७	२२
५१	१४	३७	००	२३	४६	९	३२	५५	१८	४०	३	२६	४९	१२	३५	५८	२१	४४	७	३०	५३	१६	३९	२	२५	४८	११	३४	५७
२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०
६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०	८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०
६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१
३८	५३	९	२४	३९	५५	१०	२६	४१	५६	१२	२७	४३	५८	१३	२९	४४	५९	१५	३०	४५	१	१६	३२	४७	२	१८	३३	४९	४
१९	४२	५	२८	५१	१४	३७	००	२३	४६	९	३२	५५	१८	४१	४	२७	५०	१३	३६	५८	२१	४४	७	३०	५३	१६	३९	२	२५
५७	३६	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	९	६	३	०	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०
९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००	१०१	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८	११९	१२०
२	३	४	६	०	१	२	४	५	६	०	२	३	४	५	०	१	२	३	५	६	०	१	३	४	५	६	१	२	३
१९	३५	५०	५	२१	३६	५२	०७	२२	३८	५३	०९	२४	३९	५५	१०	२५	४१	५६	१२	२७	४२	५८	१३	२८	४४	५९	१५	३०	४५
४८	११	३४	५७	२०	४३	०६	२९	५२	१५	३७	००	२३	४६	०९	३२	५५	१८	४१	४	२७	५०	१३	३६	५९	२२	४५	०८	३१	५४
२७	२४	२१	१८	१५	१२	०९	०६	०३	००	५७	५४	५१	४८	४५	४२	३९	३६	३३	३०	२७	२४	२१	१८	१५	१२	०९	०६	०३	००

कोष्टक नंबर १६.

मध्यान्हकालः उपकरणं साधन रविः

	०	३०	६०	९०	१२०	१५०	१८०	२१०	२४०	२७०	३००	३३०
	० मे.	१ वृ.	२ मि.	३ क.	४ सिं.	५ क.	६ तु.	७ वृ.	८ ध.	९ म.	१० कुं	११ मी.
	घ. प.	घ. प.	घ. प.	घ. प.	घ. प.	घ. प.	घ. प.	घ प.	घ. प.	घ. प.	घ प.	घ. प.
०	१५१८	१४५६	१४५१	१५ ३	१५१५	१५ ७	१४४३	१४२२	१४२५	१४५६	१५२९	१५३५
१	१७	५६	५१	४	१५	६	४२	२१	२६	५७	३०	३५
२	१६	५५	५१	४	१५	६	४१	२१	२७	१४५८	३१	३५
३	१५	५५	५१	५	१५	५	४०	२१	२७	१५ ०	३१	३४
४	१४	५४	५२	५	१५	४	४०	२१	२८	२	३२	३४
५	१३	५४	५२	६	१५	४	३९	२०	२९	३	३३	३३
६	१२	५३	५२	६	१५	३	३८	२०	३०	४	३३	३३
७	१२	५३	५२	७	१५	२	३७	२०	३१	६	३३	३२
८	११	५३	५३	८	१५	१	३६	२०	३१	७	३४	३२
९	१०	५२	५३	८	१५	१५ ०	३५	२०	३२	८	३४	३१
१०	१०	५२	५३	९	१५	१४५९	३४	२०	३३	९	३४	३१
११	९	५२	५४	९	१५	५८	३३	१९	३४	१०	३५	३०
१२	८	५१	५४	१०	१४	५८	३२	१९	३५	११	३५	३०
१३	७	५१	५५	१०	१४	५७	३२	१९	३६	१२	३५	२९
१४	६	५१	५५	१०	१४	५६	३१	२०	३७	१३	३६	२९
१५	६	५१	५६	११	१४	५५	३०	२०	३८	१५	३६	२८
१६	५	५१	५६	११	१३	५५	२९	२०	३९	१६	३६	२७
१७	४	५१	५७	१२	१३	५४	२९	२०	४०	१७	३६	२७
१८	३	५०	५७	१२	१३	५३	२८	२०	४१	१८	३६	२६
१९	३	५०	५८	१२	१२	५२	२८	२०	४२	१९	३६	२६
२०	२	५०	५८	१३	१२	५१	२७	२०	४४	२०	३७	२५
२१	२	५०	५८	१३	११	५०	२६	२१	४५	२१	३७	२४
२२	१	५०	५९	१३	११	५०	२६	२१	४६	२२	३७	२४
२३	०	५०	१४५९	१४	११	४९	२५	२१	४७	२३	३७	२३
२४	१५ ०	५०	१५ ०	१४	१०	४८	२५	२२	४८	२४	३७	२२
२५	१४५९	५०	१५ ०	१४	१०	४७	२४	२२	५०	२५	३६	२२
२६	५९	५०	१५ १	१४	९	४६	२४	२३	५१	२६	३६	२१
२७	५८	५०	२	१५	८	४५	२३	२३	५२	२७	३६	२१
२८	५७	५१	२	१५	८	४५	२३	२४	५३	२७	३६	२०
२९	५७	५१	३	१५	७	४४	२२	२५	५४	२८	३६	१९
३०	१४५६	१४५१	१५ ३	१५१५	१५ ७	१४४३	१४२२	१४२५	१४५६	१४२९	१५३५	१५१८

कोष्टक १७

इन्दौर नगर का दिनमान और सूर्योदय व सूर्यास्त की स्टँडर्ड टाईम उपकरणं सायनरविः।																		
सूर्य राशिः	० मेष			१ वृषभ			२ मिथुन			३ कर्क			४ सिंह			५ कन्या		
उपकरणं सायनरविः	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त
सूर्य के अंश	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट
०	३० १०	६ ३२	६ ३६	३१ ४७	६ ४	६ ४७	३३ ६	५ ४६	७ १	३३ ३९	५ ५४	७ १२	३३ ६	५ ५६	७ १०	३१ ४७	६ ८	६ ५३
१	१३	३१	३७	५०	३	४८	८	४६	१	३९	४५	१२	४	५६	१०	४४	९	५०
२	१७	३०	३७	५३	२	४८	१०	४६	२	३९	४५	१२	२	५७	१०	४१	९	५०
३	२०	२९	३७	५६	२	४८	१२	४५	३	३९	४६	१३	३३ ०	५७	९	३८	१०	४९
४	२३	२८	३८	५९	१	४९	१४	४५	३	३८	४६	१३	३२ ५८	५८	९	३५	१०	४८
५	२७	२७	३८	३२ २	६ ०	४९	१६	४५	४	३८	४६	१३	५६	५८	८	३२	१०	४७
६	३०	२६	३८	५	६ ०	५०	१८	४४	४	३७	४६	१३	५३	५८	८	२९	११	४६
७	३३	२५	३८	८	५ ५९	५०	१९	४४	५	३७	४६	१४	५१	५९	७	२५	११	४५
८	३७	२४	३९	११	५८	५०	२१	४४	५	३६	४७	१४	४९	५९	७	२२	११	४४
९	४०	२३	३९	१४	५७	५१	२३	४४	६	३६	४७	१४	४६	६ ०	६	१९	११	४३
१०	४३	२३	४०	१७	५७	५१	२४	४४	६	३५	४८	१४	४४	०	६	१६	१२	४२
११	४७	२२	४०	२०	५६	५२	२५	४४	६	३४	४८	१४	४१	१	५	१३	१२	४१
१२	५०	२१	४०	२३	५५	५२	२७	४४	७	३३	४८	१४	३९	१	५	९	१२	४०
१३	५३	२०	४१	२५	५४	५३	२८	४४	७	३२	४९	१५	३६	२	४	६	१३	३९
१४	५६	१९	४१	२८	५४	५३	२९	४४	८	३१	४९	१५	३४	२	४	३	१३	३८
१५	३१ ०	१८	४२	३१	५३	५४	३०	४४	८	३०	५०	१५	३१	३	३	३१ ०	१३	३७
१६	३	१७	४२	३४	५३	५४	३१	४३	८	२९	५०	१५	२८	३	२	३० ५६	१४	३६
१७	६	१६	४२	३६	५२	५५	३२	४३	९	२८	५०	१४	२५	३	२	५३	१४	३५
१८	९	१५	४२	३९	५१	५५	३३	४३	९	२७	५१	१४	२३	४	१	५०	१४	३४
१९	१३	१४	४३	४१	५१	५६	३४	४३	१०	२५	५१	१४	२०	४	७ ०	४७	१५	३३
२०	१६	१३	४३	४४	५०	५६	३५	४३	१०	२४	५२	१४	१७	५	६ ५९	४३	१५	३२
२१	१९	१२	४४	४६	५०	५७	३६	४३	१०	२३	५२	१४	१४	५	५८	४०	१६	३१
२२	२२	११	४४	४९	४९	५७	३६	४४	१०	२१	५२	१४	११	६	५८	३७	१६	३०
२३	२५	१०	४३	५०	४९	५८	३७	४४	११	१९	५३	१३	८	६	५७	३३	१६	२९
२४	२९	१०	४५	५३	४८	५८	३८	४४	११	१८	५३	१३	५	६	५६	३०	१७	२८
२५	३२	९	४५	५६	४८	५८	३८	४४	११	१६	५४	१२	२	७	५६	२७	१७	२७
२६	३५	८	४६	५८	४८	५९	३८	४४	१२	१४	५४	१२	३१ ५९	७	५५	२३	१७	२६
२७	३८	७	४६	३३ ०	४७	५९	३९	४४	१२	१२	५५	११	५६	७	५४	२०	१८	२५
२८	४१	६	४६	२	४७	७ ०	३९	४४	१२	१०	५५	११	५३	८	५३	१७	१८	२४
२९	४४	५	४७	४	४७	०	३९	४५	१२	८	५६	१०	५०	८	५२	१३	१८	२३
३०	३१ ४७	६ ४	६ ४७	३३ ६	५ ४६	७ १	३३ ३९	५ ५४	७ १२	३३ ६	५ ५६	७ १०	३१ ४७	६ ८	६ ५३	३० १०	६ ३२	६ २२

कोष्टक १७

इन्दौर नगर का दिनमान और सूर्योदय व सूर्यास्त की स्टँडर्ड टाईम उपकरणं सायनरविः।

सूर्य राशिः	६ तुला			७ वृश्चिक			८ धनुः			९ मकर			१० कुंभ			११ मीन		
उपकरण सायनरविः	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त	दिनमान	रविउदय	रविअस्त
सूर्य के अंश	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट	पल	मिनिट	मिनिट
०	३० १०	६ १८	६ २२	२८ ३३	६ ३०	५ ५४	२७ १४	६ ४६	५ ४०	२६ ४१	७ ५	५ ४६	२७ १४	७ १२	६ ६	२८ ३३	६ ५९	६ २४
१	७	१९	२१	३०	३०	५४	१२	४७	४०	४१	६	४६	१६	१२	६	३६	५८	२४
२	३	१९	२०	२७	३१	५३	१०	४८	४०	४१	६	४७	१८	१२	७	३९	५७	२४
३	३० ०	१९	१९	२४	३१	५२	८	४८	४०	४१	७	४८	२०	१२	८	४२	५६	२५
४	२९ ५७	२०	१८	२१	३२	५२	६	४९	४०	४२	७	४८	२२	१२	८	४५	५६	२५
५	५३	२०	१७	१८	३२	५१	४	५०	४०	४२	८	४९	२४	११	९	४८	५५	२६
६	५०	२०	१६	१५	३३	५०	२	५१	४०	४२	८	४९	२७	११	१०	५१	५४	२६
७	४७	२०	१५	१२	३३	५०	१	५२	४०	४३	९	५०	२९	११	१०	५५	५३	२७
८	४३	२१	१४	९	३४	४९	२६ ५९	५२	४०	४४	९	५१	३१	११	११	५८	५२	२७
९	४०	२१	१३	६	३४	४८	५७	५३	४०	४४	९	५१	३४	१०	१२	२९ १	५२	२८
१०	३७	२१	१२	३	३४	४८	५६	५३	४०	४५	१०	५२	३६	१०	१२	४	५१	२८
११	३३	२२	११	२८ ०	३५	४७	५५	५४	४१	४६	१०	५२	३९	९	१३	७	५०	२९
१२	३०	२२	१०	२७ ५८	३५	४७	५३	५४	४१	४७	१०	५३	४१	९	१४	११	४९	२९
१३	२७	२२	९	५५	३६	४६	५२	५५	४१	४८	१०	५४	४४	८	१४	१४	४८	३०
१४	२४	२३	८	५२	३७	४६	५१	५६	४१	४९	११	५४	४६	८	१५	१७	४७	३०
१५	२०	२३	७	४९	३७	४५	५०	५६	४१	५०	११	५५	४९	८	१६	२०	४६	३१
१६	१७	२४	६	४६	३८	४४	४९	५७	४१	५१	११	५६	५२	७	१६	२४	४५	३१
१७	१४	२४	६	४४	३८	४४	४८	५८	४१	५२	११	५६	५५	७	१७	२७	४४	३२
१८	११	२४	५	४१	३९	४३	४७	५८	४१	५३	१२	५७	५७	६	१७	३०	४४	३२
१९	७	२५	४	३९	४०	४३	४६	५९	४१	५५	१२	५८	२८ ०	६	१८	३३	४३	३२
२०	४	२५	३	३६	४०	४२	४५	७ ०	४२	५६	१२	५८	३	५	१८	३७	४२	३३
२१	१	२६	२	३४	४१	४२	४४	०	४२	५७	१२	५९	६	५	१९	४०	४१	३३
२२	२८ ५८	२६	१	३१	४२	४२	४४	१	४२	५९	१२	६ ०	९	४	२०	४३	४०	३४
२३	५५	२६	६ ०	२९	४२	४१	४३	२	४३	२९ १	१२	०	१२	४	२०	४७	३९	३४
२४	५१	२७	५ ५९	२७	४३	४१	४३	२	४३	२	१२	१	१५	३	२१	५०	३८	३४
२५	४८	२७	५८	२४	४३	४१	४२	३	४४	४	१२	२	१८	२	२१	५३	३७	३५
२६	४५	२८	५८	२२	४४	४१	४२	३	४४	६	१२	३	२१	२	२२	५७	३६	३५
२७	४२	२८	५७	२०	४४	४०	४२	४	४४	८	१२	४	२४	१	२२	३० ०	३५	३६
२८	३९	२९	५६	१८	४५	४०	४१	४	४५	१०	१२	४	२७	०	२३	३	३४	३६
२९	३६	२९	५५	१६	४६	४०	४१	५	४५	१२	१२	५	३०	०	२३	७	३३	३६
३०	२८ ३३	५ ५४	६ ४७	२७ १४	६ ४६	५ ४०	२६ ४१	५ ४०	५ ४६	२७ १४	७ १२	६ ६	२८ ३३	६ ५९	६ २४	३० १०	६ ३२	६ ३६

इन्दौर नगर की सूक्ष्म गणित की निरयन लग्नसारणी. **कोष्टक**

राशीमान		०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
४	मेष	२	३	३	३	३	३	३	३	३	४	४	४	४	४	४	४	५
११	०	५५	२	१०	१८	२६	३४	४२	५०	५८	६	१४	२३	३१	३९	४७	५६	०४
७		९	५९	५१	४४	३९	३६	३५	३६	३८	४३	५१	००	११	२५	४२	१	२३
४	वृषभ	७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	८	९	९	९	९
५५	१	६	१५	२४	३३	४२	५२	१	१०	२०	२९	३९	४९	५८	८	१८	२८	३८
३८		१६	२०	२९	४०	५४	११	३२	५७	२५	५६	२९	६	४६	३०	१७	७	१
५	मिथुन	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१४
३२	२	१	१२	२३	३३	४४	५५	६	१७	२८	३९	५०	१	१२	२३	३४	४५	५६
५८		५४	३२	१३	५७	४३	३१	२२	१५	१०	७	६	७	१०	१५	२२	३१	४१
५	कर्क	१७	१७	१७	१८	१८	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२७	२०
३९	३	३४	४६	५७	९	२०	३१	४३	५४	६	२८	४०	५१	२	१४	२५	३६	४८
४१		५२	१५	३८	१	२५	४०	१३	३७	०	२३	४६	८	३१	५४	१६	३७	५७
५	सिंह	२३	२३	२३	३३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६
३९	४	१४	२५	३६	४८	५९	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	११
३३		३४	४४	५३	१	८	१४	१९	२४	२८	३१	३३	३५	३६	३६	३५	३३	३१
५	कन्या	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१
२६	५	४४	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	१०	२१	३२	४३	५४	५	१५	२६	३७
१९		६	१७	४८	३९	२९	१९	१०	०	१५	४१	३१	२१	१२	३	५४	४५	२६
५	तुल	३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६	३७
३५	६	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	११	२३	३४	४५	५६	७
१८		२५	२४	२४	२५	२७	२९	३२	३६	४१	४६	५२	५९	७	१६	२६	३७	४८
५	वृश्चिक	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१	४२	४२	४२	४२	४२
३९	७	४५	५७	८	१९	३१	४२	५४	५	१६	२८	३९	५०	२	१३	२५	३६	४७
५४		४४	६	२९	५२	१४	६७	०	२३	४७	११	३५	५९	२२	४५	८	३१	५३
५	धन	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८
१६	८	२५	३६	४७	५८	९	२०	३१	४२	५३	४	१५	२६	३६	४७	५८	८	१९
५		३८	४५	५०	५३	५४	५३	५०	४५	३८	२९	१७	३	४७	२८	६	४१	१४
४	मकर	५०	५०	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३
३०	९	४१	५१	१	१०	२०	३०	३९	४९	५८	७	१७	२६	३५	४४	५३	२	११
३५		४३	३०	१४	५४	३१	४	३५	०३	२८	४९	६	२०	२१	४०	४४	४६	४४
३	कुंभ	५५	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७
५५	१०	१२	२०	२८	३७	४५	५३	१	९	१७	२५	३३	४१	४९	५७	४	१२	२०
३		१८	३५	४९	००	९	१७	२२	२४	२५	२४	२१	१६	९	१	५१	४०	२७
३	मीन	५९	५९	५९	५९	५९	५९	५९	०	०	०	०	०	०	०	०	१	१
४७	११	७	१४	२२	२९	३७	४४	५२	०	७	१५	२२	३०	३७	४५	५२	०	७
८		२१	५३	२५	५७	२८	५९	३०	०	३०	१	३२	४	३५	७	३९	११	४४

१८　　अक्षांशा:　अंश २२ कला ४१

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	स्वदेशो दया:
५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६	६	
१२	२१	२९	३८	४६	५५	४	१२	२१	३०	३९	४८	५७	२५१·१
४७	१५	४५	१७	५१	२८	९	५३	३९	२८	२१	१६	१४	
९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११	
४७	५७	८	१८	२८	३८	४८	५९	९	१९	३०	४०	५१	२९५·६
५८	५८	१	७	१६	२८	४३	२	२४	४९	१६	४६	१९	
१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	
७	१९	३०	४१	५२	४	१५	२६	३८	४९	०	१२	२३	३३३·०
५२	५	१९	३४	५०	७	२५	४४	४	२४	४५	७	२९	
२०	२०	२१	२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२३	
४८	५९	१०	२२	३३	४४	५६	७	१८	२९	४१	५२	३	३३९·७
१७	३६	५३	१३	३०	४७	३	१९	३४	४८	१	१२	२३	
२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८	
२२	३३	४४	५५	६	७	२८	३८	४९	०	११	२२	३३	३२९·५
२९	२६	२२	१७	१२	१७	१	५५	४८	४०	३२	२४	१५	
३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३३	
४८	५९	१०	२१	३१	४२	५३	४	१५	२६	३७	४८	५९	३२६·३
२८	२०	१२	५	५९	५३	४८	४३	३८	३४	३१	२९	२७	
३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३९	३९	९३	
१८	३०	४१	५२	३	१५	२६	३७	४९	०	११	२३	३४	३३५·३
५९	१२	२६	४१	५७	१३	३०	४७	५	२४	४३	३	२३	
४२	४३	४३	४३	४३	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५	
५९	१०	२१	३३	४४	५५	७	१८	२९	४०	५२	३	१४	३३९·९
१५	३६	५६	१६	३५	५३	१०	२६	४०	५५	८	१९	२९	
४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५७	
२९	४०	५०	०	११	२१	३१	४१	५१	२	१२	२१	३१	३१६·१
४४	११	३६	५८	१७	३२	४४	५३	५९	२	२	५९	५३	
५३	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	
२०	२९	३८	४७	५५	४	१३	२१	३०	३८	४७	५५	३	२७०·६
३९	३२	२१	७	५१	३२	९	४३	१५	४५	१३	३७	५९	
५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	५८	
२८	३५	४३	५१	४९	६	१४	२१	२९	३७	४४	५२	५९	२३५·१
१२	५६	३९	२१	१	४०	१८	५५	३१	७	४२	१६	४९	
१	१	१	१	१	१	२	२	२	२	२	२	२	
१५	२२	३०	३८	४५	५३	०	८	१६	२४	३१	३९	४७	२२७·८
१८	५३	२९	५	४२	२०	५९	३९	२१	४	४८	३३	२०	

कोष्टक १९ सुगम दशाम

इसमें नत वगैरा का कुछ काम नहीं सिर्फ लग्न साधन करने के लिये इष्ट जोडकर तयार किये

राशीमान	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
मेष	१८	१८	१८	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२१
०	३२	४२	५१	१	१०	२०	२९	३९	४८	५८	७	१७	२७	३७	४६	५६	६
	४८	१२	४२	०	३०	००	३०	००	४२	१२	४८	३०	१२	४८	३०	१८	१२
वृषभ	२३	२३	२३	२३	२४	२४	२४	२४	२४	२४	२५	२५	२५	२५	२५	२६	२६
१	२६	३६	४६	५६	७	१७	२७	३८	४८	५९	९	२०	३०	४१	५१	०२	१३
	०	१८	३०	४२	०	१८	४२	१२	४२	१२	३०	००	३०	१२	४२	१८	००
मिथुन	२८	२८	२९	२९	२९	२९	२९	३०	३०	३०	३०	३०	३०	३१	३१	३१	३१
२	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	०	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८
	४८	४२	३०	१८	१८	१२	१२	०	४८	४८	४८	४२	३०	१८	१२	१२	०
कर्क	३४	३४	३४	३४	३४	३५	३५	३५	३५	३५	३५	३६	३६	३६	३६	३६	३६
३	८	१८	२९	४०	५०	००	११	२१	३२	४२	५३	३	१३	२३	३४	४४	५४
	१८	४८	३०	००	३०	४८	१८	४८	१८	४२	००	१८	३०	४८	००	१२	१८
सिंह	३९	३९	३९	३९	३९	४०	४०	४०	४०	४०	४०	४०	४१	४१	४१	४१	४१
४	१३	२३	३२	४२	५२	१	११	२१	३०	४०	४९	५९	८	१७	२७	३६	४६
	३०	१२	४८	३०	१२	४८	१८	००	३०	००	३०	००	१८	४८	१२	४२	००
कन्या	४३	४४	४४	४४	४४	४४	४४	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४६	४६	४६
५	५५	५	१४	२३	३२	४१	५०	००	९	१८	२७	३६	४५	४५	४	१३	२२
	१२	०	१२	१८	३०	४२	१८	००	१२	१८	३०	४२	४८	००	१८	१८	४२
तुल	४८	४८	४८	४९	४९	४९	४९	४९	४९	४९	५०	५०	५०	५०	५०	५०	५१
६	३२	४२	५१	१	१०	२०	२९	३९	४८	५८	७	१७	२७	३६	४६	५६	६
	४८	१२	४२	००	३०	००	३०	००	४२	१२	४८	३०	१२	४८	३०	१८	१२
वृश्चिक	५३	५३	५३	५३	५४	५४	५४	५४	५४	५४	५५	५५	५५	५५	५५	५६	५६
७	३६	३६	४६	५६	७	१७	२७	३८	४८	५९	९	२०	३०	४१	५१	२	१३
	००	१८	३०	४२	०	१८	४२	१२	४२	१२	३०	००	३०	१२	४२	१८	००
धन	५८	५८	५९	५९	५९	५९	५९	००	०	०	०	०	०	१	२	२	२
८	४३	५४	५	१६	२७	३८	४९	००	१०	२१	३२	४३	५४	५	१६	२७	३८
	४८	४२	३०	१८	१८	१२	१२	००	४८	४८	४८	४२	३०	१८	३२	१२	०
मकर	४	४	४	४	४	५	५	५	५	५	५	६	६	६	६	६	६
९	८	१८	२९	४०	५०	०	११	२१	३२	४२	५३	३	१३	२३	३४	४४	५४
	१८	४८	३०	००	३०	४८	१८	४८	१८	४२	००	१८	३०	४८	००	१२	१८
कुंभ	९	९	९	९	९	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	११	११	११	११	११
१०	१३	२३	३२	४२	५२	१	११	२१	३०	४०	४९	५९	८	१७	२७	३६	४६
	३०	१२	४८	३०	१२	४८	१८	०	३०	०	३०	०	१८	४८	१२	४२	०
मीन	१३	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१६	१६	१६
११	५५	५	१४	२३	३२	४१	५०	०	९	१८	२७	३६	४५	५५	४	१३	२२
	४२	०	१२	१८	३०	४२	४८	०	१२	१८	३०	४२	४८	०	१८	१८	४२

भाव सारणी । कोष्टक १९

हुये विषुव घटी पलके अंकोंके समान कोष्टकसे दशम भावका साधन होजाता है ।

१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	लंकोदया:शुद्धांशा	
२१	२१	२१	२१	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२२	२३	२३	❀ २७९°०	
१५	२४	३५	४५	५५	५	१५	२५	३५	४५	५५	५	१५	०	५
४८	४२	३०	३०	१८	१८	१८	१८	१८	१८	३०	४२	४८	२१	४७
२६	२६	२६	२६	२७	२७	२७	२७	२७	२८	२८	२८	२८	२९९°२	
२३	३४	४५	५५	०६	१७	२८	३८	४९	००	११	२२	३२	१	९
४२	१८	००	४२	१६	१८	१२	००	४२	३०	१२	१२	४८	१४	१८
३१	३१	३२	३२	३२	३२	३२	३३	३३	३३	३३	३३	३३	३३१°८	
४८	५९	१०	२१	३२	४२	५३	०४	१५	२५	३६	४७	५७	२	१५
४८	४८	३०	१८	००	४८	४२	१८	००	४२	१८	००	४२	१७	८
३७	३७	३७	३७	३७	३७	३८	३८	३८	३८	३८	३८	३९	३३१°८	
४	१४	२४	३४	४४	५४	४	१४	२४	३४	४४	५३	३	३	१९
३०	४२	४२	४२	४२	४२	४२	३०	३०	१८	१२	४८	४२	८	६
४१	४२	४२	४२	४२	४२	४२	४३	४३	४३	४३	४३	४३	२२९°२	
५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१८	२८	३७	४६	४	२६
१८	४२	००	१८	४२	४८	१२	३०	४२	४८	१२	१८	४२	१८	३२
४६	४६	४६	४६	४७	४७	४७	४७	४७	४७	४८	४८	४८	२७९°०	
३१	४१	५०	५९	८	१८	२६	३६	४६	५५	४	१४	२३	५	३०
४८	१२	१८	३०	४८	१२	१८	४२	००	१८	४२	००	१८	८	१०
५१	५१	५१	५१	५१	५२	५२	५२	५२	५२	५२	५३	५३	२७९°०	
१५	२४	३५	४५	५५	०५	१५	२५	३५	४५	५५	५	१५	६	३८
४८	४२	३०	३०	१८	१८	१८	१८	१८	१८	३०	४२	४८	२४	३८
५६	५६	५६	५६	५७	५७	५७	५७	५७	५८	५८	५८	५८	२९९°२	
२३	३४	४५	५५	६	१७	२८	३८	४९	०	११	२२	३२	७	४२
४२	१८	००	४२	१८	१२	००	४२	३०	१२	१२	००	४८	१२	२
१	१	२	२	२	२	२	३	३	३	३	३	३	३३१°८	
४८	५९	१०	२१	३२	४२	५३	४	१५	२५	३६	४७	५७	८	४८
४८	४८	३०	१८	०	४८	४२	१८	०	४२	१८	००	४२	१७	३०
७	७	७	७	७	७	८	८	८	८	८	८	९	३३१°८	
४	१४	२४	३४	४४	५४	४	१४	२४	३४	४४	५३	३	९	५४
३०	४२	४२	४२	४२	४२	४२	३०	३०	१८	१२	४८	४२	१४	५२
११	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१३	१३	१३	१३	१३	१३	२९९°२	
५५	४	१४	२३	३२	४१	५१	०	९	१८	२८	३७	४६	१०	५८
१८	४२	०	१८	४२	४८	१२	३०	४२	४८	१२	१८	४२	२६	३७
१६	१६	१६	१६	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१८	१८	१८	२७९ ०	
३१	४१	५०	५९	८	१८	२६	३६	४६	५५	४	१४	२३	११	०
४८	१२	१८	३	४८	१२	१८	४२	०	१८	४२	००	१८	८	७

❀ विवाहादि मंगल कार्यों में जहां पड्वर्ग शुद्धि देखना हो वहां इसमें लिखे जैसे मेष के २१ अंश (०।२०) के विषुव घटी ५ पल ४७ से पर पांचवर्ग ६ शुद्ध मिलेंगे। वृषभ के १४ अंश [१।१४] के विषुव घ. ९ प. ४७ पर वर्ग ६ शुद्ध मिलेंगे। इस विषुव काल में से लग्नसारणी द्वारा सूर्यांश के विषुव घटी पल कम कर देनेपर सूर्योदय से शुद्धांशातक का इष्टकाल बन जाता है.

सम्पादक,
विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट,
अध्यक्ष पंचांग कमेटी इन्दौर.

पंचांग शोधन कमेटी के सभासदों के अभिप्राय.

आ. नं. ३८ श्री. इन्दौर, तारीख ९ डिसेंबर १९१९.

श्रीमान् प्रोफेसर गोळे साहब का पत्र.

श्री० अध्यक्ष मोहदय पंचांग कमेटी इन्दौर स्टेट.

कृ. सा. न. वि. वि.

आज के सभा को, कुछ जरूरी काम होने से, मैं नहीं आसकूंगा. इसकी क्षमा करें. आप जिस रिपोर्ट पर मेरी सही चाहते हो, वो रिपोर्ट मेरे पास भेज देना तो मैं सही कर दूंगा. जिन बातों में मैं आपसे सहमत हूं वह सब बातें मैंने गत सभामें आपको निवेदन कर दी थीं. अब तिथि और पाक्षिक पचांग के बारे में मेम्बर महाशयों नें आप आपने भिन्न मत लिख देना ऐसा ठहरा था. उसके अनुसार मेरा मत मैं नीचे लिखता हूं.

ग्रहलाघवीय याने " स्थूल तिथि " और " सूक्ष्म तिथि " ऐसे दोनों कालम पंचांग में देना. बाकी नक्षत्र, योग, करण, वगैरा शुद्ध तिथि के अनुसार देना. अब रिमार्क कालम में जो व्रत, उपोषण, छुट्टीयां (जैसे दीपावली, दसेरा, डोलग्यारस, गणेशचतुर्थी, प्रदोष, एकादशी, वगैरे) बतलाना, उसमें अगर स्थूल तिथि और शुद्ध तिथि के मान से फरक आता हो तब यह तत्व पर चलना के, जब दिन निर्णय, वह तिथि कोई मर्यादित कालविभाग में व्याप्ति करती है या नहीं, इस बात पर अवलम्बित हो, तब स्थूल तिथि से निर्णय लगाकर रिमार्क कॉलम में बतलाना. और जब दिन निर्णय यह बात पर अवलम्बित हो की चंद्रमा कालके कोई विवक्षित क्षण में (जैसे सूर्योदय क्षण, अथवा चंद्रोदय क्षण) कितने अंश पर है, तब सूक्ष्मतिथि से निर्णय बतलाना इत्यलम्. भवदीय नम्र

विश्वनाथ गोपाळ गोळे

प्रोफेसर होलकर कॉलेज.

श्रीमन्त राज ज्योतिषी पंडित बाळकृष्ण जोशी के पत्र.

आ. नं. ३९ ता. १८-११-२९ ई.

वेदमूर्ति राजमान्य राजेश्री. श्रीमान् विद्याभूषण दीनानाथजी शास्त्रीजी चुलेट इनकी सेवामें.

साष्टांग नमस्कार विनंती विशेष. आपके तरफ से जावक नंबर २१ ता. १०-११-२९ ई. का " हमारे सिद्धांत ग्रंथों के मूलांको में कितना बीज संस्कार दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुवे जिसके द्वारा दृग्गणितैक्य हो जाय " वगैरा मजकूर का आने से सविनय प्रार्थना है कि.

अपने यहां सिद्धांत ग्रंथ तो बहोत से हैं व उनके मुलांको में फरक करना यह भी सोचने की बात है. जूनी सिद्धांतोक्त आमनाय वैसी ही रख के मध्यम ग्रहों में अभी जितना अंतर आता होय उतना बीज संस्कार कमेटी में जो ठहरे व वेधोपलब्ध करने

की जो क्रिया आगे लिखी है वो करने से वेधतुल्य आवे ऐसा करना ठीक होगा. कारण हमारी जूनी आमना बदलना मायने उनके मुलांको में गडबड करना कोई भी उचित नहीं समझेगा. वो आमनाय चली आई हुई चलाना यही तो मुख्य सिद्धांतो का हेतु है. सिद्धांतरीत्या मध्यम ग्रह बने बाद उसमें संस्कार करना योग्य है. ऐसे मंदफल संस्कृत रविचंद्रो पर से पंचांग बनना भी युक्त है पचांग के लिये छायातुल्य ही सूर्यचंद्र होना. किंवा वैसे करे हुवे पंचांगों के समान होना यह भी अवश्य नहीं ऐसी सिद्धांतकारों की मनशा मालूम पडती है.

छाया तुल्य ग्रहों पर से जो जो कार्य लेना सिद्धांतकारों ने ठहराया है वही कार्य दृग्प्रत्ययतुल्य ग्रहों से होना ठीक है. और जो संस्कार किया जाना कमेटी में ठहरे वो सर्वमान्य होना भी अवश्य है. सो विदित किया है. यह विनंती. ता. १८ माहे नवंबर सन १९२९ ई.

बालकृष्ण केशव जोशी.

श्रीमंत होममिनिस्टर एवं डेप्युटी प्राइम् मिनिस्टर साहब के सामके श्रीयुत बालकृष्णजी ज्योतिषी इन्दौर का कहा हुआ वृत्तांत ।

तारीख ९-२-३० ई.

पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि जहांतक सिद्धांत ग्रंथ के मूलांक में कितना बीजसंस्कार करने से दृक्तुल्य ग्रह आवेंगे यह मुद्दा था और उसपर वाद विवाद भी हुआ परंतु उसका निर्णय नहीं हुआ । पंडित दीनानाथजी के कहने में आया कि सभी सिद्धांतों में अंतर पडता है उसपर मेरा निवेदन है कि सिद्धांत ग्रंथ को हात लगाना याने मूलांकों में फरक करना हमारे प्रकृति के बाहर है । जो उसमें हम फरक करेंगे तो हमारी जूनी सिद्धांत आम्नाय बिगड जावेगी. उसका पठन पाठन व्यर्थ हो जायगा। वास्ते सिद्धांत के मध्यम ग्रह साधन करे उपरांत बीजसंस्कार देना योग्य है वो कितना दिया जाय सोभी आकांक्षा में दिखा दिया जाय कि उस रीति से स्पष्ट ग्रह करे उपरांत दृक्प्रत्ययतुल्य करने की आगे जो क्रिया लिखी है वह करे बाद दृक्प्रत्यय बराबर आवे; वह संस्कार सर्वमान्य होवे उसकी रचना (अभीतक) कमेटी में नहीं हुई. तारीख ९-२-३०

प्रस्फुट पत्र और कमेटी के सभासदों के अभिप्राय।

उपरोक्त सूक्ष्म गणित पद्धति के एवं विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री के बनाए हुए सिद्धान्त प्रभाकरोक्त गणित के आधारपर ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मंगलजी जोशी के बनाये हुए संवत् १९८७ शाके १८५२ के पंचांग को कमेटी में तपासने के लिये श्रीमंत सरकार के तरफ से आया हुआ पत्र । [पेज १४६ में देखिये]

श्रुति सम्मत

(ज्योतिषाचार्य विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट के बनाये हुए सिद्धांत प्रभाकर के अवलोकन एवं अभिप्राय के लिये

संपादक ज्योतिर्कुलभूषण ज्योतिषतीर्थ पं० नीलकंठ मंगलजी

स्वस्ति श्री संवत १९८७ शके १८५२ चैत्र शुक्लपक्षः । उदगयनम्

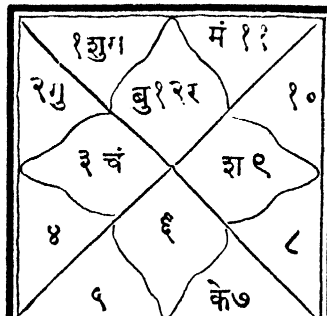
ति	वा	घ	प	न	घ	प	या	घ	प	क	घ	प	दि	र उ	र अ	मु	इं	चंद्र
१	चं	१३	१४	रे	१८	१३	ऐं	१६	५	ब	१३	१४	३०/४०	६/२३	६/३९	२९	३१	१८/१३ मेष
२	मं	१२	५४	अ	१९	३८	वै	१३	५२	कौ	१२	५४	४३	२३	४०	१	१	मेष
३	बु	११	४०	भ	१९	५०	वि	९	४७	ग	११	४०	४७	२२	४०	२	२	३४/४४ वृषभ
४	गु	९	३१	कृ	१९	२७	प्री	५	१०	वि	९	३१	५०	२१	४०	३	३	वृषभ
५	शु	६	४१	रो	१८	१५	आ	०/५४	३/९	बा	६	४१	५३	२०	४१	४	४	३९/१३ मिथुन
६	श	२/५८	५०/१४	मृ	१६	११	शो	४७	१७	तै	२/३०	५०/५२	५६	१९	४१	५	५	मिथुन
८	र	५४	१०	आ	१३	४१	अ	४१	५५	वि	२६	३२	३१/०	१८	४२	६	६	५६/२३ कर्क
९	चं	४८	३७	पु	१०	३६	सु	३३	५५	बा	२१	२३	३०	१७	४२	७	७	कर्क
१०	मं	४२	४७	पु	६	३०	धृ	२६	२४	तै	१५	४२	६	१६	४२	८	८	कर्क
११	बु	३६	३२	आ	२/५७	१२/४३	शू	१८	१२	व	९	५०	९	१५	४३	९	९	२/१२ सिंह
१२	गु	३०	०	पू	५२	५६	गं	९	५४	ब	३/३०	२७/०	१३	१४	४३	१०	१०	सिंह
१३	शु	२३	१०	उ	४८	१५	वृ	१/५४	५९/१०	तै	२३	१०	१६	१३	४३	११	११	६/४६ कन्या
१४	श	१७	१२	ह	४४	२७	व्या	४६	५८	व	१७	१२	१९	१२	४४	१२	१२	कन्या
१५	र	११	३५	चि	४१	४०	ह	४०	३९	ब	११	३५	३१/२२	६/१९	६/४४	१३	१३	१३/३ तुल

गोचरग्रहाः

र	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	२	१०	११	१	०	८	०
२२	१६	२२	२७	१९	७	१८	११
३९	४६	३०	३३	४६	१	४९	१
११	३३	३६	३६	१२	४८	१२	४०
५९	७६२	४१	१०९	१०	७४	१	३
२	४८	४२	५४	३०	१८	३६	११

चैत्र शुक्ल ८ रवौ.

अयनांशाः २२°।५१'।४७"



यशवंत पंचांगम्.

आधार पर बनाए हुये पंचांग में का चैत्र शुक्ल पक्ष का एक पृष्ठ संपूर्ण विद्वानों के प्रकाशित किया जाता है।)

महाराजा होलकर राज्याश्रित ज्योतिषी इन्दौर.

वसंतऋतुः । एप्रील सन १९३०

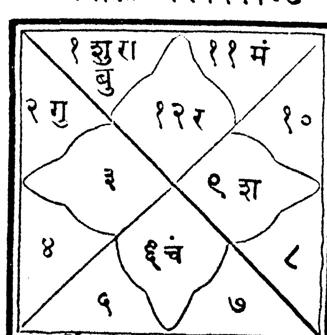
सूर्य	
११ १६ ४४ २१	ध्वजारोपणं वत्सरारंभः घटस्थापनं चंद्रदर्शनं मेषे भृगुः १८।२३
११ १७ ४३ ३७	मत्स्यजयंति जिल्काद ११ एप्रील ३० अमृत १९।३८
११ १८ ४२ ४७	भ प्र ४०।३५ गौरीपूजनम् मन्वादि दग्ध ११।४० पू.भा.यांभौमः २३।२५
११ १९ ४१ ५६	भ. नि ९।३१ यमघंट १९।२७ कल्पादि
११ २० ४१ ६	यमघंट १८।१५ प.
११ २१ ४० ९	भ. प्र. ५८।९४ रामानुजावतारः
११ २२ ३९ ११	भवान्युत्पत्ति भ. नि. २६।३२ दुर्गा ८ १३।४१ नं. अशोक क.प्र.
११ २३ ३८ १३	श्रीराम जयन्ती मेषे बुधः १९।५०
११ २४ ३७ १२	
११ २५ ३६ ११	भ. प्र. ९।५० भ. नि. ३६।३२ कामदा ११ दोलोत्सवं
११ २६ ३५ ६	प्रदोषः दमनोत्सवं
११ २७ ३३ ५४	अनंगव्रतं × दमना रोपणं भरण्यां भृगु ६।१०
११ २८ ३२ ४६	भ. प्र. १७।१२ भ. नि. ४४।१५ ज्योतिर्लिंग यात्रा यमघंट ४४।४७
११ २९ ३१ ३४	अश्विनां मेषेर्कः २९।२८ हनु. ज. मन्वादि वै. स्ना. रं. सर्वत्रैव ×

मध्यम सूर्योदये गोचर ग्रहाः

र	चं	मं	बु	गु	शु	श	रा
११	५	१०	०	१	०	८	०
२९	२६	२८	११	२०	१५	१७	१०
३१	४०	०	५९	५९	४०	५६	३९
३४	४०	०	२४	२४	४८	२४	२५
५८	८२३	४१	१०१	१०	७४	१	३
४८	३६	४२	४२	४८	१२	०	११

चैत्र शुक्ल १५ रवौ.

अयनांशाः २२°।५१'।४८"



·रिपोर्ट पेज १४३ के आगे— होम ऑफिस इंदौर.

नंबर ७८९४ ता. १९ अक्टोबर सन १९२९ ई.

राजमान्य राजश्री पंडित दीनानाथ शास्त्री एलिचपुरवाले
प्रेसिडेंट साहेब पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इंदौर.

राम राम विनंती विशेष पंचांग संशोधन के संबंध में यहां से आपके तरफ खत नंबर ५५९७ ता १०-८-२९ ई. का भेजा गया उसीके सिलसिले में आपको विदित किया जाता है किः—

पंडित नीलकंठ मंगलजी जोशी इन्होंने जो पंचांग बनाया है उसका भी विचार आप कमेटी में करें. यह विनंती.

A. Eduljee,
होम सेक्रेटरी.

प्रस्तुत पंचांग को प्रकाशित करने की कमेटी की सिफारिश.

रा० रा० सेक्रेटरी साहेब,
होम ऑफिस इन्दौर.

सप्रेम आशिर्वाद पश्चात निवेदन किया जाता है कि तारीख १०-८-२९ के नंबर $\frac{५५९७}{७००एचर२८}$ पत्र द्वारा और तारीख १९-१०-२९ नं. $\frac{७८९४}{१९२९}$ पत्र द्वारा श्रीयुत बालकृष्ण जोशी–एवं. ज्योतिषतीर्थ नीलकंठजी ज्योतिषी इन दोनों के पंचांगों को सरकार की आज्ञा के मुताबिक शोध करने पर कमेटी के अंदर पास हुवे प्रस्ताव के अनुसार ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषी इनका बना हुआ 'श्री–यशवन्त पंचांगम्' नामक सूक्ष्म पंचांगही चालू करना ऐसी कमेटी की राय है। क्योंकि श्रीयुत बालकृष्ण जोशी जिन आधार पर पंचांग तयार करते हैं वह ग्रहलाघवी मान को सब सदस्यों ने अयोग्य बताया है इससे इनका पंचांग त्रुटियुक्त है। इसका खुलासा इसी पत्र में आगे खुलासे वार लिख दिया है अत: दोनों पंचांगों के सारासार विचारों को तोलते हुये पंचांग प्रकाशित करोगे ऐसी उम्मीद है। इतिशम्. तारीख १३-१-३० ई०

भवदीय,
विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.
विश्वनाथ गोपाल गोळे.
नीलकंठ मंगल जोशी.

जा. नंबर ४७ पंचांग प्रवर्तक कमेटी तारीख ११-१-३० ई.

पंचांग प्रवर्तक कमेटी के सभाओं की संक्षिप्त रिपोर्ट.

हिज हाइनेस महाराजा होळकर्स गव्हर्नमेंट का प्रथम आज्ञा पत्र (रा. रा. होम सेक्रेटरी साहेब का पत्र नं. $\frac{५५९७}{७७० H २८}$ का) प्राप्त होने पर पंचांग प्रवर्तक कमेटी का कार्य ता. २५-९-२९ को प्रारंभ किया गया। कुल १९ मीटिंग्स हुई.

पहिली मीटिंग्स के प्रारंभ में अध्यक्ष महोदय ने सम्माननीय होळकर सरकार की ओरसे प्राप्त हुए पत्र का महत्व समझाते हुए यह बतलाया कि आज भारतवर्ष में सूक्ष्म पंचांग की कितनी आवश्यकता है और इसी पंचांगवाद से इस देश के अनेक धार्मिक कार्यों में बाधा उपस्थित होरही है तथा इसी विषय का निर्णय करने के लिये ऑनरेबल् प्राइममिनिस्टर साहेब ने यह "पंचांग प्रवर्तक कमेटी" कायम करके इस गुरुतर कार्य को यथा योग्य रीति से पूर्ण करने की आज्ञा हम लोगों को कृपा पूर्वक प्रदान की है; ऐसी अवस्था में हमारा यह प्रधान कर्तव्य है कि इस कार्य को हम धर्मशास्त्र एवं ऋषिप्रणित ग्रंथों के आदेशानुसार निर्णीत करके दृक्प्रत्यययुक्त शास्त्रसिद्ध सिद्धांतानुसारी पंचांग निर्माण करने का मार्ग सरल बना देने का प्रयत्न करें। इस जगह यह बात खासतौर से ध्यान देने योग्य है कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य का प्रभाव देश में सर्वत्र होने की संभावना है; और यह भी निश्चित है कि अन्य राज्यों में भी इस नूतन शोध के प्रचार का प्रयत्न होगा। मुझे आशा है कि आप महानुभाव बिना किसी दुराग्रह या पक्षपात के सत्य का अनुसंधान कर इस परमोपयोगी कार्य को शीघ्र ही पूर्ण कर उस श्रेय को प्राप्त करेंगे; जिसे प्राप्त करने का सुअवसर ऑनरेबल् होळकर गव्हर्नमेंट ने हम लोगों को प्रदान करने की कृपा की है। इसलिये इस दुर्बोध्य विषय को सर्वसाधारण के समझने योग्य सरल बना देना चाहिये।

इसके पश्चात् कमेटी के विषयों का योग्य रीति सेनिर्णय होने के लिये अध्यक्ष महोदय ने चार मुद्दे उपस्थित किये *। उन चारों मुद्दों में से प्रत्येक मीटिंग में एक एक मुद्दा हल करने की सूचना की जो सर्व सम्मति से स्वीकार की गई। एवं उसी क्रम से आगे काररवाई आरंभ हुई।

---

* तारीख २५-९-२९ ई. की पहिली मीटिंग का प्रोसिडिंग तथा इस रिपोर्ट का पेज २३-२४ देखिये।

पहिला मुद्दाः—इस मुद्दे के संबंध में दूसरी, तीसरी, और चवथी मीटिंग तक प्रश्नोत्तर होते रहे; जिसमें कमेटी के सब सदस्यों से इन्दौर शहर का सूक्ष्म गणितानुसार रवि का उदयास्त और दिनमान का गणित मंगाया था। परंतु वह गणित कोई भी तैयार करके नहीं लाया। "पंडित रामसूचितजी से नहीं पूछा जा सका क्योंकि वे यहां नहीं थे। क" प्रचलित पंचांग में जो रवि का उदयास्त दिनमान इत्यादि छपना है वह सूक्ष्म गणित द्वारा जाँच करने पर ग्रह लाघव पद्धति त्यागकर बनाया हुवा पाया गया। इस संबंध में पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि "गणित ग्रहलाघवादि है फक्त स्टँडर्ड टाइम के अनुसार से दिया है और यह आज से नहीं है। पहिले लोकल टाइम लेते थे।" परंतु इसमें भी अध्यक्ष द्वारा निर्मित पत्र नं. १६ वाली सारणी के सूक्ष्म मानों से भी ३-४ मिनिट तक का अंतर पडता है यह प्रो. गोळे साहेब व अध्यक्ष ने गणित करके स्पष्ट दिखा दिया। * जब यह तय होगया कि प्रचलित पंचांग में उदयास्त दिनमान सूक्ष्म होना चाहिये; तब अध्यक्ष द्वारा निर्मित रवि के उदयास्त और दिनमान की सारणी के विषय में यह प्रस्ताव हुवा कि:– (१) "पंचांग में जो सूर्य का उदय-अस्त और दिनमान दिया जाता है वह सूक्ष्म चरपलों से अति परिश्रम के साथ अध्यक्ष द्वारा बनाया हुवा दिया जावे।" इस संबंध में "पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि हम जो उदयास्त देते हैं वह अशुद्ध नहीं हैं जितना सूक्ष्म होवे उतना अच्छा है। पंडित दीनानाथजी ने जो दिया है उससे भी सूक्ष्म हो सकता है। मध्यान्ह को दश पल पूर्व और दश पल पीछे निकला है इसलिये हमारा करा हुवा जास्त सूक्ष्म है।" ख

२ दूसरे मुद्दे के विषय में वादविवाद के पश्चात्- इसी चौथी मीटिंग में सर्व सम्मति से निश्चित हुवा कि § :–

"पंचांग में जो लग्न सारणी और भावसारणी दी जाती है; वह सूक्ष्म चरपलादि से शाके १८५२ की स्वयं अध्यक्ष महोदय के द्वारा निर्मित पत्र नं. १६ में उपस्थित है। उसीको कमेटी स्वीकार करती है और साथ ही साथ सिफारिश करती है कि प्रतिवर्ष पंचांग में यही प्रसिद्ध होती रहे।"

"पंडित बालकृष्णजी के मतानुसार दोनों में विशेष अंतर नहीं है।" ग

३ तीसरा मुद्दाः—तीसरे मुद्दे के विषय में वाद विवाद होने के पश्चात् अंत में तारीख १६-११-२९ की आठवीं मीटिंग में सर्व सम्मति से जो प्रस्ताव पास हुवा वह निम्नांकित है:–

क ख और ग यह कथन श्रीमन्त होम मिनिस्टर साहेब के सामने कहा गया है।

* तारीख १६-१०-२९ की चौथी मीटिंग का प्रोसिडिंग देखिये।

(१) तारीख १६-१०-२९ की ,, ,, ,, ,,

§ तारीख १६-१०-२९ की मीटिंग ४ थी देखें।

" सूर्यचंद्रादि के ग्रहण, ग्रहों के उदय अस्त, चन्द्रशृंगोन्नति, ग्रहयुति, चतुर्थी एवं कालाष्टमी का चन्द्रोदय इत्यादि २ गणित सूक्ष्म पद्धति से किया जाय। "

४ चौथा मुद्दाः—इसी प्रकार कई प्रकार के वादविवाद होने के पश्चात् यह प्रस्ताव बहु सम्मती से पास हुवा किः—

" पंचांग में दिये जाने वाले तिथि, वार, नक्षत्र, योग और, करण, इन पांचों अंगों का साधन सूक्ष्म गणित के ग्रंथों से भूमध्य दृश्य होना चाहिये। जिससे पंचांग की बातें दृक् प्रत्यय युक्त होसकें। "

इस प्रस्ताव में " अनुकूल (१) पंडित दीनानाथजी (२) पंडित नीलकंठ मंगळजी जोशी (३) प्रोफेसर गोळे ; विरुद्ध (१) पंडित रामसूचितजी सिद्धांतानुसार चाहते हैं (२) पं. रामकृष्णजी शास्त्री धर्मशास्त्रानुकूल होवे तो लेना। (३) पंडित बाळकृष्णजी के मन से यह हो नहीं सकता। पंचांग ग्रह-भूमध्यस्थ को ही स्पष्ट ग्रह कहते हैं और उसी से पंचांग साधन लिखा है। " घ (इस प्रकार बहुमतसे प्रस्ताव पास हुआ)

५ पांचवामुद्दाः—धर्मशास्त्राध्यापक पंडित रामकृष्णजी शास्त्री " सांठे " महोदय ने अत्यंत ही आग्रह के साथ मीटिंग में यह प्रस्ताव उपस्थित किया किः—" आपके मतानुसार तिथि में १० घडी का क्षय होवे तो धर्मशास्त्रानुसार श्राद्धादि कार्यों में बाधा आती है क्या। वास्ते इसका निर्णय होना आवश्यक है। "

इस प्रस्ताव के समर्थन में ज्योतिषाचार्य पंडित रामसूचित त्रीपाठी कहने लगे कि– "यदि पंचांग के सब ही विभाग दृक् प्रत्यय से बनाना चाहते हैं तो आर्ष सिद्धांतका विरोध होने से, धर्मशास्त्र का विरोध होता है; इसलिये मुझे मान्य नहीं है। " इत्यादि २ बातें लिखकर लेखी पत्र नं. २३ पेश किया। इसी सिलसिले में श्रीयुक्त सांठे शास्त्रीजी कहने लगे कि– " बाण वृद्धि रसक्षयः " में बाधा आती हो तो हमें ऐसी शुद्धि मान्य नहीं "

इस प्रमाण के संबंध में उनसे प्रार्थना की गई कि प्रमाण के साथ कृपया ग्रंथ का नाम, प्रकरण, पृष्ठ, पंक्ति और वक्तव्यानुसार प्रसंगपूर्ण उदाहरण सहित विवरण लिखकर दीजिये। सांठे शास्त्रीजी के पत्र नं. २९ से स्पष्ट हो जाता है कि " बाण वृद्धि रसक्षयः- " यह वचन किस ग्रंथ का और कहां पर है इसे वे प्रमाणित नहीं कर सके।

" घ " यह कथन श्रीमन्त होम मिनिस्टर साहब के समक्ष कहा गया है।

इस प्रश्न को महत्व देने का दूसरा यह भी कारण है कि यही मुद्दा बंबई, पूना, आदि की अनेक सभाओं में उपस्थित किया गया था, तथा कुछ ग्रंथों में इसका अस्तित्व बतलाने का प्रयत्न किया जाने पर भी उन सभाओं में इस प्रश्न की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। अत: इसके संबंध में शास्त्रीय रीत्यानुसार अन्वेषण होजाने से कई वर्षों से उलझन में पडे हुए विवादग्रस्त प्रश्न का भी निर्णय होजायगा।

अध्यक्ष (पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट) महोदय ने अपने हिन्दी पत्रों में इसी मुद्दे पर वास्तविक प्रकाश डालने के लिये वैदिक काल से लेकर श्रुति, स्मृति, भारत, पुराण और अनेक कालमाधवादि शास्त्रीय ग्रंथों के प्रमाणों से निर्णय कर यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया कि " वैदिक काल से लगाकर आज तक ऐसा ही पंचांग बनाया जाता था " जैसा शुद्ध पंचांग निर्माण करने की योजना यह कमेटी कर रही है।

(" इसके नीचे का मजमून पं. रामसूचितजी त्रिपाठी ज्योतिषाचार्य और श्रीयुत सांठे शास्त्रीजी के मतानुसार शास्त्र सिद्ध नहीं है।) " च

क्योंकि बोधायन आदि ऋषियों के द्वारा बतलाये हुए तेरह और सत्रह दिन के पक्ष को देखते " बाण वृद्धि रस क्षय: " के स्थान में " अंकवृद्धिर्दस क्षय: " ही निस्सन्देह सिद्ध होता है।

इस संबंध में " पंडित बालकृष्णजी का कहना है कि " १३ दिन का पक्ष ज्योतिषशास्त्र में शुभकार्य के लिये वर्ज्य है। १७ दिन का पक्ष २-३ हजार वर्ष में भी देखने में नहीं आया। " छ

" किन्तु बोधायन और आपस्तंब आदि आर्ष ग्रंथों में १३ और १७ दिन का पक्ष अन्वाधान में निषिद्ध लिखा है वह सूक्ष्म गणित के पंचांगों में मिलेगा। स्थूल गणित के पंचांगों में नहीं। " ऐसा पंडित दीनानाथजी ने कहा।

इत्यादि २ विवादों के निर्णय में सभा की ९, १०, ११, १२, १३, १४, वीं सभा हुई। [इन सभाओं में निर्णीत विषयों पर शास्त्र के आधारों के लेख अध्यक्ष, साठे शास्त्री और त्रिपाठीजी के हस्ताक्षर सहित रिपोर्ट में ज्योंके त्यों अंकित हैं] इसके पश्चात अध्यक्ष महोदय ने संस्कृत और हिन्दी में एक बडा पत्र निकाल कर इस विषय का स्पष्टी करण विस्तार पूर्वक कर दिया है।

साठे साहेब का यह प्रस्ताव २ विरुद्ध मत से वैसा ही रह गया। पश्चात् प्रो० गोले साहेब ने यह उप सूचना उपस्थित की कि;

" च " और " छ " यह कथन श्रीमन्त होम मिनिस्टर साहेब के समक्ष कहा गया है।

यद्यपि सूक्ष्म गणित से ' अंक वृद्धिर्दसक्षयः ' ही का मान आता है और इसी प्रकार जो सूक्ष्म तिथियां आवें वह पंचांग में देना जरूरी है; तो भी ग्रहलाघव की स्थूल तिथि का फिल हाल (जब तक की मध्यम तिथि के एक सुलभ क्यालेंडर की योजना न होसके तब तक) कालम देदिया जावे।

(प्रोफेसर साहब की सूचना)

तिथि के विषय में आपने एक अति महत्व की उप सूचना करी कि (जैसा कोर्ट में मुकदमे की तारीख लगाने, या (पगार) तनखा बांटने की तारीख मुकर्रर करने, अथवा हुंडी चिठ्ठियों का ठीक दिन के हिसाब से व्याज जोडने आदि) कई दिनांतर जन्य कार्योंमें अभी हमारा पंचांग क्यालेंडर (Calender) की तरह आसान-उपयोग; तिथियों के लिये नहीं पहुंच सकता।

यदि महिनों के सिर्फ नामाभिधान के लिये मध्यम चंद्र से निकली हुई; यानि जिसमें ० वृद्धि और ० क्षय हो और उसमें सूर्य और चान्द्र मास का मेल मिलाने के लिये किसी निश्चित तिथि का (महिने के आरंभ या अंत में) क्षय; प्राति दो दो मास के हिसाब से नियम बांधकर उसी तरह निश्चित किये लीप वर्ष (Leap year) की तरह (समान) कोई आसान व पूर्व निश्चित व सर्व साधारण को गम्य ऐसी योजना कर दी जावे तो मुझे विश्वास है कि समस्त भारतवर्ष में अपनी यह योजना; आदर्श रूप धारण कर लेवेगी।

इस योजना को गणित से उत्तम प्रति की बैठाने के लिये, हमारे विद्वान गणितज्ञ अध्यक्ष महाराज एवं कमेटी के अन्य सभासद बना सकते हैं; अतः होल्कर की माननीय सरकार ऐसे उपयुक्त तिथि मान को कमेटी द्वारा बनवाने पर ध्यान पहुंचावेगी। ऐसी आशा रखता हूं।

उपरोक्त पांच मुद्दों का निर्णय और प्रो गोले साहब की उप सूचना लिखाई है। और आदि से अंत की मीटिंग तक का समस्त ब्योरा प्रत्येक सभाओं के अनुक्रम से रखा गया है। जो साथ में प्रेषित है। " ज

ज " उपरोक्त मजमून हाजर सभासदों को पढकर सुनाया गया और उन्होंने जो कुछ कहा वैसी सुधारणा प्रश्नों प्रश्नोत्तर से लिखी गई। यह ज्योतिषी बालकृष्णजी के पास भेजा जावे और उनकी भी अनुमति सामिल करली जावे " (माधवकृष्ण किबे) ज्यो० "बालकृष्णजी की अनुमति उनके पत्रोंके साथ सामिल करली गई है।" सम्पादक—

उपरोक्त मुद्दों का सूक्ष्म रीति से विवेचन करके निम्नांकित निर्णय किया गया।

सभापति का किया हुआ अंतिम निर्णय

१. जबकि प्रो. गोळे साहेब स्पष्टतया मान्य कर रहे हैं कि:—* '**काल गणना के मूल मान जोकि आरंभ स्थान, अयनांश, और अयन गति, परम फल, तथा परम क्रांति इत्यादि बातों में मैं आपसे सहमत हुं**' तिथि मान किस गणित से लेना इसमें मेरा कहना नहीं वह चाहे किसी भी मान के हों किंतु होवे दृक् प्रत्यय युक्त।

२. वैसेही ज्योतिषाचार्य पंडित राम सूचितजी त्रिपाठी स्पष्ट कह रहे हैं कि + **ग्रह लाघव बहुत स्थूल होने से उस पर से पंचांग योग्य नहीं।**

३. इसी अनुसार तीसरे सभासद पं. बालकृष्ण जोशी प्रचलित पंचांग कर्ता भी इस बात को स्पष्ट तया मान्य कर रहे हैं कि:-× "**मध्यम ग्रहों में अभी जितना अंतर आता हो उतना बीज संस्कार कमेटी में जो ठहर जाय वह वेधोपलब्ध करने की क्रिया आगे लिखी हो वह वेधतुल्य होने से ठीक होगा।**"

४. इसी प्रकार पं. ज्यो. नीलकंठ शास्त्री ज्योतिषतीर्थ अंतः करण पूर्वक मान्य कर रहे हैं कि § **पचांग स्थित ग्रहों को दृक् कर्म संस्कृत करके बार बार वेधोपलब्ध करते रहना, पंचांग कर्ता को आवश्यक है। और उस मुताबिक होते रहना ही शास्त्रोन्नति का मार्ग है**

५. इसी प्रकार पांचवे सभासद धर्मशास्त्राध्यापक पंडित रामकृष्ण शास्त्री साठे के दिये प्रमाणों से ही जबकि अंकवृद्धिर्दस क्षयः ही का मान सिद्ध होता है।

ऐसी समस्या में कमेटी के सभी सभासदों का मत इस ओर एक साथ ही झुक रहा है कि प्रचलित ग्रहलाघवीय पंचांग स्थूल है। और उस स्थूलताको शीघ्राति शीघ्र शुद्ध और सूक्ष्म बनाने की आवश्यकता का ताजा नमूना यह है कि प्रचलित पंचांग कर्ता ने ग्रहलाघवीय मान के रवि का उदयास्त और दिनमान को त्याग कर गत पांच वर्षों से जो

---

* तथा प्रो० गोळे साहब का पत्र नंबर ३८ पृष्ठ १४१ देखो.

\+ पत्र नं. ४२ पृष्ट ३६ पंक्ति ७ देखें.

× पत्र नं. २४ पृष्ट १४२ ज्यो० बालकृष्णजी के पत्र पृष्ठ १४२।४३ देखें.

§ अभिप्राय ज्यो० ती० नीलकंठ जोशी का ता० ९।१२।२९ का पत्र पृष्ठ ६० पंक्ति १४।१५ में पत्र नं. ३८ देखें.

सूक्ष्ममान के दिनमान आदिका स्वीकार किया है; इतना ही प्रमाण पंचांगशुद्धताकी परमावश्यकता बताने के लिए पर्याप्त है। अतः इस विषय में मेरी नम्रभाव से सूचना है कि केवल रवि के उदयास्त और दिनमान ही को ठीक जोड देने से काम नहीं चल सकता। इसालिये हम को तो सर्वांग ही सूक्ष्मगणित का पंचांग बनाना चाहिये।

क्योंकि उत्तम समय में किये धर्मानुष्ठान तीर्थ, वृत, उपवास, जन्म, उपनयन, विवाहादि संस्कार व श्राद्धादि कुल बातें (ठीक ठीक समय में होने ही से) योग्य फल की सिद्धि को प्राप्त कर सकती हैं। अन्यथा नहीं। इसलिये कमेटी के पास सरकार की आज्ञा से 'पं० नीलकंठ शास्त्री का तयार किया पंचांग' जो पेश हुवा है वह चुलेटकृत प्रभाकर सिद्धांत के आधार पर बना होने से वह श्रुति सम्मत है। और अपने को जितनी शुद्धियां आवश्यक हैं, वे सब पूर्ण कर पंचांग सर्वांग परिपूर्ण कर दिया है। और वह कॉपी बिलकुल तैयार (कंप्लीट) है अतः-

शास्त्रीय दृष्टिसे एवं कमेटी के बहुमत से संवत् १९८७ शके १८५२ से सूक्ष्म गणित का चुलेटकृत प्रभाकर सिद्धांत के आधार पर बना हुआ श्रुति सम्मत पंचांग ही प्रतिवर्ष छापना अवश्य है। ऐसी हमारी पूर्ण राय है।

भवदीय,

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.
अध्यक्ष पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर

विश्वनाथ गोपाळ गोळे.
नीलकंठ मंगलजी जोशी.

पं. कमेटी जा. नं. ९० श्री. ता. १३-१-३० ई.

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट का परिशिष्ट (अ)

प्रोफेसर साहब का अंतिम निवेदन.

लेखक रा० रा० प्रोफेसर विश्वनाथ गोपाळ गोळे.

इन्दौर दरबार नियुक्त पंचांग कमेटी के अध्यक्ष महोदय श्रीयुत पं० दीनानाथ शास्त्री चुलेट इन्होंने कमेटी का रिपोर्ट पेश करते हुवे कमेटी के सब सभासदों का तथा अन्य सज्जनों का अभिनंदन किया है यह योग्य ही है। किन्तु कमेटी के कार्य में भारी परिश्रम खुद अध्यक्ष महोदय ने ही किया है इसलिये कमेटी के सब सभासदों के ओर से उनका अभिनंदन इस पत्रद्वारा करने में मुझे बहुत हर्ष होता है। प्रत्येक सभासद जो जो शंका

अगर पृच्छा करते रहे उसका पूर्णतया और विद्वत्ता पूर्वक समाधान करना, बने जब तक सबको अपना अपना मत प्रतिपादन करने की संधि देना, उनमें एक वाक्यता करने का प्रयत्न करना, इत्यादि बहुमूल्य गुण जो अध्यक्ष महोदय ने अपने बर्ताव में दिखाये हैं उनके लिये मैं उनको धन्यवाद देता हूं।

किन्तु यह बडी खेदकी बात है कि हम सब सभासद एक मत से रिपोर्ट पर सही न कर सके। अध्यक्ष महोदय ने अपना मत समझाने में कोई बाकी न रखी। मगर मुझे अफसोस के साथ लिखना पडता है कि बाकी के सभासदों ने न तो दिलचस्पी से उनका मत समझा. और न उनके मतका जोरसे विरोध करके अपना कोई निश्चित मत प्रतिपादन कर सके वैसेही उन बातों के पुष्ठ्यर्थ न वे सूक्ष्म दृष्टप्रद गणित करके अन्य सभासदों को समझाने की कोशिस कर सकें।

अन्त में इन्दौर दरबार से मेरी यह प्रार्थना है कि आज करीब करीब पांच महीने से अध्यक्ष महोदय पंडित दीनानाथ शास्त्रीजी ने दिनरात परिश्रम करके जो क्लिष्ट गणित के सैंकडों कागज तयार करके सभामें पेश किये हैं, और साथ में सभा के रिपोर्ट का एवं कुल सभाओं का प्रोसिडिंग व पत्र व्यवहार का एवं लेखन कार्य का बोझा सिरपर उठाया है उसका आर्थिक मोबदला आशा है दरबार उन्हें जरूर दिलावेगी।

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट में बताई हुई यथायोग्य निर्णीत शुद्धियां और उसका उपयोग अब आगे पंचांग में सरकार मान्य करेगी ही यदि न भी करी तो अभी तक उन्होंने जो दरबार के हुकुम से अत्यन्त परिश्रम के साथ कमेटी की इतनी सभायें बुलाकर प्रतिदिन करीब करीब पांच-छ घंटे का अपना अमूल्य समय इस कार्य में लगाया है उसका यथायोग्य पारितोषिक; प्रति सभाके हिसाब से (चाहे बाकी के सभासदों को कुछ भी न दिया जाय तोभी) अध्यक्ष महोदय को मिलना बहुत न्याय है।

क्योंकि जोभी प्रत्यक्ष पंचांग साधन गणित में मैं अनभिज्ञ हूं तोभी इसमें मुझे संदेह नहीं है कि शुद्ध और सूक्ष्म पचांग बनाने का समस्त गणित अध्यक्ष महोदय ने (अपने सुपुत्र पंडित गोपीनाथजी की सहकारिता से) स्वयं अपने ही पद्धति से किया हुवा है (Original and not copied) और रिपोर्ट के साथ जोडे हुऐ बहुत से कोष्टक सारणी व आलेख्य (figures, tables and graphs) ऐसे हैं कि केवल इन्दौर के लिये ही नहीं वरन उसके छपजाने से वे समस्त भारतवर्ष में बहुत उपयोगी होंगे। इसलिये अध्यक्ष महोदय को हार्दिक धन्यवाद देते हुवे सविनय निवेदन करता हूं कि मेरा यह पत्र भी रिपोर्ट के साथ दरबार में भेज दिया जावे तारीख १३ जनवरी १९३० ई.

भवदीय नम्र

विश्वनाथ गोपाळ गोळे

इंदौर. ता. १३-१-३० ई. प्रोफेसर, होळकर कॉलेज.

जा. नंबर ४९ पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर. ता. १३-१-३०

पंचांग प्रवर्तक कमेटी की रिपोर्ट का परिशिष्ट (ब)

कमेटी के कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन।

(लेखक विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.)

१ अत्यंत हर्ष का विषय है कि आज उन्नतिशील संसार के उत्क्रान्ति युग में **श्रीमंत महाराजा होलकर की माननीय सरकार** की दृष्टि पंचांग शोधन की **ओर** आकर्षित हुई है। इसके लिये कमेटी माननीय होलकर सरकार को शतशः **धन्यवाद** देती है।

२ इसके अनंतर कमेटी के आरंभ के ता. २५-९-३१ ई. के दिन से अंतिम सभा ता. ९-१२-२९ की पंदरवीं सभा तक हमारे प्रभाकर कार्यालय के सेक्रेटरी चिरंजीव **पंडित गोपीनाथ शास्त्री चुलेट** ने प्रत्येक सभा के सदस्यों के बाद विवादों का संक्षिप्त ब्योरा (प्रोसिडिंग) लिखने गणितादि व लेखादि में कई प्रकार की सहकारिता पहुंचाने; एवं कमेटी के स्फुट कार्य करने तथा वृतान्तों को व्यवस्थित लगाने आदि के कामों में सेक्रेटरी की भांति सुचारु रूप से काम किया है। इसलिये सभा की तरफ से उनको धन्यबाद देते हैं।

३. इसी प्रकार रा. रा. मल्हार गोपाळ सुरिन्टेन्डेन्ट साहेब रि. ए. व चारिटेबल ने इस कमेटी को आवश्यक स्टेशनरी सामान प्रदान आदि कार्य करने की जो कृपा की है; उसके लिये यह कमेटी उनको सहर्ष धन्यवाद देती है।

४. इसी तरह इस कमेटी के पहिले सदस्य **श्रीमान् होल्कर कॉलेज के प्रो. रा. रा. विश्वनाथ गोपाळ गोले**- ने प्रत्येक गणित के विषय को जिसको कि वे अच्छी तरह जानते थे ऐसे विषयों के हर रीति से जानने की एवं बार बार समयानुसार हमसे गणित रीत्या समझ ने में अभिलाषा दिखाने की कृपा की है। और उसको नाटिकल-चेम्बर्स टेबल-इत्यादि साधनों से जांच जांच कर प्रस्तावों पर सम्मति प्रदान करने की कृपा की है। इसलिये यह कमेटी उनके जांचने के परिश्रम की तारीफ करते हुए गोले साहब को हार्दिक धन्यवाद देती है।

५. इसी अनुसार दूसरे सदस्य ज्योतिष विद्यालय के अध्यापक **श्रीमान् ज्योतिषाचार्य** पं. रामसुनिनजी त्रिपाठी ने ज्योतिष के संबंधी ग्रहगति-मन्दफल-अयनांश-वर्षमान अयनगति इत्यादि विषय गणित के कई प्रकारों से समझने की एवं उसका व्यर्थ आग्रह छोड अंत में सत्य को स्वीकार करने की कृपा की एतदर्थ यह सभा उनका गौरव करती हुई सहर्ष धन्यवाद देती है.

६. इसी प्रकार तीसरे महानुभाव चालू पंचांग कर्ता **पं. बालकृष्ण केशव जोशी** ने पांच वर्ष से स्थूल मानके रवि के उदयास्तकी स्टँडर्ड टाइम् और दिनमान को बनाना त्याग कर सूक्ष्मता का अवलंब किया है। इसके लिये यह कमेटी उन्हें बधाई देती है। और समय समय पर ग्रहगणित इत्यादि के मानोंको तथा हमारे बनाए हुए प्रभाकर सिद्धान्त के परिमाणों को भी जाँचते रहे इसलिये यह सभा उन्हें प्रेम पूर्ण धन्यवाद देती है।

७. इसी तरह चौथे सदस्य सूक्ष्म पंचांग के कर्ता **ज्योतिर्कुल रत्न पं. नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषतीर्थ** ने गहरा परिश्रम कर हमारे प्रभाकर सिद्धान्त के आधार पर एक सूक्ष्म पंचांग बनाकर कमेटी में प्रदान किया है, और सूक्ष्मता के मान जैसा कि अयनांश वर्षमान इत्यादि सूक्ष्म ही मान्य करने की कृपा की है। अतः यह कमेटी प्रेमान्तःकरण से उन्हें धन्यवाद प्रदान करती है।

८. इसी रीति से पांचवे सदस्य धर्मशास्त्राध्यापक **श्रीमान् रा. रा. पण्डित रामकृष्णजी साठे** ने धर्मशास्त्र के आधार से आज कल सूक्ष्म पंचांग के तिथि में लोगों की क्या मनोभावना होती है; इसका विचारमय प्रस्ताव खडा करने की कमेटी पर बडी अनुकंपा करी है। क्योंकि यह पांचवा प्रस्ताव खडा न करते तो संभव था लोगों की समजूत होजाती कि कमेटी ने, तिथि के ओर ध्यान ही नहीं दिया किंतु इन्होंके मुद्दा खडा करने ही कि कृपा हुई की इतना महत्व का मुद्दा हल होगया। क्योंकि जो कार्य अन्य मुबंई-पूना इत्यादि सभाओं में हल नहीं हुवा था वह यहां हल होगया। अतः कमेटी की ओर से हम उन्हें अन्तः करण पूर्वक सहर्ष धन्यवाद देते हैं।

९. इसी प्रकार मऊ निवासी **पं. मूलचन्द्रजी शर्मा** एवं हमारे होनहार विद्यार्थी **पं. हरिराम शर्मा** यह प्रत्येक मिटिंग में बराबर आते रहे इतना ही नहीं वरन मेरे लिखे गणित के कोष्टक सारणी आदि की नकल करने, और पत्र आदि को समय समय पर कमेटी के सदस्यों के समीप पहुंचाने लाने का कार्य, अत्यंत उत्साह पूर्वक किया, इसलिये यह सभा इनको धन्यवाद देती है।

१०. इसी प्रकार मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिती के उपमंत्री **पंडित शिवसेवकजी तिवारी** ने अपने अमूल्य समय को व्यय करके इस कार्य में जो बहु मूल्य सहायता अंतिम रिपोर्ट के हिन्दी भाषा संशोधन में दी है; एतदर्थ यह सभा उनको धन्यवाद देती है।

भवदीय,

दीनानाथजी शास्त्री चुलेट.
विश्वनाथ शास्त्री गोळे.
नीलकंठ मंगलजी जोशी.

जा. नं. ४८ पंचांग प्रवर्तक कमेटी. ता. १३-१-३०

श्रीमन्त होलकर सरकार की सेवामें भेजा हुआ धन्यवादयुक्त अंतिम निवेदन.

रा. रा. सेक्रेटरी साहब होम डिपार्टमेंट,

होलकर सरकार इन्दौर.

प्रिय महाशय !

अनेक राम राम के पश्चात आपका पत्र नं. $\frac{५५९७}{७०००\ H\ २८}$ ईसवी का प्राप्त होने पर रा. रा. माननीय होम मिनिस्टर साहब की सेवामें उपस्थित करने के लिये निवेदन है कि:—

आज्ञाऽनुसार कमेटी का कार्य सम्पन्न करके उसके निष्कर्ष की रिपोर्ट साथमें प्रेषित है। उसके अवलोकन से ज्ञात होगा कि लोकप्रिय श्रीमान् प्राइम् मिनिस्टर साहब के मनोनीत किये हुए कमेटी के विद्वान सदस्यों ने बडी तल्लीनता और गंभीरता के साथ वाद-विवाद करके, अन्त में इस निर्णयपर पहुँचे हैं; कि प्रचलित पंचांग के सुधार की आवश्यकता है। और उसके सुधार के लिये सूक्ष्मगणित का आश्रय लेना आवश्यक है। तथा उस के लिये आगे सूचित किये जाने वाले साधनों की भी अत्यन्त आवश्कता है।

मुझे यह लिखने में बडी प्रसन्नता होती है, कि होलकर राज्यकी अनेक विशेषताएं भारत में ही नहीं वरन समस्त जगत में प्रसिद्ध हैं, और उस राज्य से अब तक पंचांग का प्रकाशित होना भी एक विशेषता ही है; परन्तु उसकी त्रुटियों के सुधार के लिये इस समय के पश्चिमीय विकाशों की चकाचौंध में भारतीय शास्त्रियों को गणित ऐसे क्लिष्ट विषय में श्रेय देने के लिये जो कृपा की गई है, उसके लिये भविष्य बतलावेगा कि माननीय " होलकर सरकार " महाराजा जैसिंह की भांति वेधशाला आदि स्थापन कर ज्योतिष के शोध से सदा यशस्वी रहेगा। अस्तु

आजकल जो पंचांग बनाए जाते हैं वह तथा इस राज्य से प्रसिद्ध होने वाले प्रस्तुत पंचांग; ग्रहलाघव के आधार पर स्थूल मान से बनाए जाते हैं। स्थूल शब्द ही बतलाता है कि उस गणित में पूर्ण वास्तविकता नहीं है, और थोडी देर के लिये मान भी लिया जावे तो ग्रह लाघव जो शके १४४२ में बना था कितना पुराना ग्रंथ है। और ग्रह लाघव के पढने से ही स्पष्ट हो जाता है कि पुराने ग्रंथों के आधारपर किये गए गणित में जब अन्तर पडने लगा, तो ऋषि प्रणित ग्रंथों के आधार पर ही पडनेवाले अन्तर को दूर करके सूक्ष्म गणित करने की इस ग्रंथ में योजना की गई है। और इस के देखने से यह भी पाया जाता है कि, ग्रह लाघव बनाने वाले गणितज्ञ शिरोमणि, गणेश दैवज्ञ को कुछ वर्षों के पश्चात् अनुसन्धान करने पर ग्रहगणित में पुनः अन्तर ज्ञात हुआ था, जो उन्होंने स्वयं लिख देने की कृपा कर दी है। ऽ

(रिपोर्ट पृष्ठ ११ कलम २१ देखिये)

अब विचार करने की बात यह है कि, जब श्री गणेश दैवज्ञ के समय में ही अन्तर आगया था तो अब तो ग्रह लाघव को बने ४०९ वर्ष के निकट हो गए हैं, तब अन्तर पडना संभव ही नहीं, आवश्यक है। और प्रसन्नता की बात है कि इस बाबत भारतवर्ष में जहां तहां उद्योग भी हो रहा है।

हमारे ऋषियों ने प्रत्येक शास्त्रों को इस विधि से पूर्ण करने की कृपा की है, कि उसके आदेशानुसार हम उस शास्त्र में समयोचित सुधार करते जावें, तो किसी प्रकार अन्तर न पडे।

इसी नियमानुसार इस कमेटी में पांच प्रस्ताव पास किये गए हैं कि जिसके अनुसार शास्त्र शुद्ध सूक्ष्मगणित का दृक्प्रत्यय कारक श्रीमन्त महाराजाधिराज श्री सर तुकोजीराव महाराज द्वितीय के आदेशानुसार पचांग बन सके * और वह धर्म शास्त्र सम्मानित होवे।

एक ही साल का पंचांग शोधन करना और बात है किंतु इस कमेटी ने ऐसा महत्व का कार्य करके बताया है कि इस पद्धति से साधारण ज्योतिषी भी इसमें के कोष्टकों के सहारे केवल ग्रहलाघव पर से भी शुद्ध पंचांग बना सके।

सूर्य सिद्धान्त को चालन और सिद्धान्त प्रभाकर के अनुसार ग्रहलाघव को भी चालन देकर शुद्ध सूक्ष्म पंचांग बनाने के समीकरण (सारणी) कोष्टक वगैरे मैने ही कुल काम किया है लेकिन इस काम को करने का अवकाश सभी सभासदों को एवं विशेषतया ज्योतिःशास्त्राचार्य और धर्मशास्त्राचार्यजी को मिलने के लिये-" **हमारे सिद्धान्त ग्रंथों के मूलांकों में कितना बीज संस्कार दिया जाय कि वह हमारे धर्मशास्त्र से विरुद्ध न होते हुए जिसके द्वारा दृग्गणितैक्य हो जाय** " × ऐसा प्रश्न तारीख १०-११-२९ के प्रथम पत्र में ही मैने लिख दिया था। और इस विषय मे प्रोफेसर गोळे साहब + ज्यो. ती. पं. नीलकंठ जोशी A और रा. ज्यो पं. बालकृष्ण जोशी B इन्होंने अपनी सम्मति भी देदी है। किंतु ज्योतिःशास्त्राचार्य पं. रामसुचित्तजी त्रिपाठी और धर्मशास्त्राचार्य पं. रामकृष्णजी साठे महोदयों का ओघ केवल विरोध के तर्फ ही झुका हुआ A देखकर फिर दूसरी बार सूचित किया कि " **ग्रहण इत्यादि में भी क्यों न हो ! किंतु क्या बीज संस्कार उसमें देना इस आषय का जो ता. १६-११-२९ को प्रश्न भेजा था उसका शीघ्र ही उत्तर**

* रिपोर्ट पृष्ठ १७ कलम ३३ में संवत् १९६० के साल के पंचांग की प्रस्तावना देखिये
× रि. पृष्ठ १४२ में श्री राजज्योतिषी पं. बालकृष्णजी के पत्र के आरंभ की कालम देखिये
+ रि. पृ. १५४ पंक्ति ५-१० में प्रोफेसर साहब का अभिप्राय देखिये।
A रि. पृ. ६२ पंक्ति १९-२४ में ज्यो. ती. पं. नीलकंठ जोशी का पत्र देखिये।
B रि. पृ. १४३ पंक्ति ४-१० में रा. ज्यो पं. बालकृष्ण जोशी का पत्र देखिये।
A रि. पृ. २४, २८-३२, ४३-४७ में शास्त्री द्वय के पत्र देखिये।

लिख भेजें।" + तथापि अन्यान्य प्रश्न करने के अतिरिक्त सभा के अंत तक भी 'कितने अंकों का किसमें किस प्रकार बीज दिया जाय, इसका उत्तर न आया। तथापि इनके प्रश्नों के उत्तर देने में ज्योतिःशास्त्रीय S व धर्मशास्त्रीय हिन्दी पत्र + पृष्ठ ३१ का संस्कृत पत्र A और करीब ९० पृष्ठ मे पंचांग शोधन के मूलतत्व B आदि लेख लिखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसमें यह अत्युक्ति न होसकेगी कि आज तक भारतवर्ष में हजारों रुपिये लगाकर कई सभाएं हुईं कई रुपियों के पारितोषिक की घोषणा की गई किंतु किसी भी सभा में मूल सिद्धांत ग्रंथों की अपेक्षा ग्रहलाघव कितना शुद्ध है और उसमें कितना चालन देने से उसके द्वारा सूक्ष्म दृक्प्रत्यय गणित का पंचांग बन सकता है यह कार्य निश्चित रूप से एवं धर्मशास्त्रीय वैदिक ग्रंथों के आधार से आज तक कहीं भी पूर्ण न होसका था वह कार्य विद्याविलासी इन्दोर सरकार की कमेटी ने पूर्ण करके दिखा दिया है यह हमारे सरकार की कुछ थोडे गौरव की बात नहीं है।

किंतु इतने से ही पंचांग वाद मिट नहीं सकता उक्त कार्य तो नमूना मात्र है अभी इसके लिये सूर्य सिद्धान्तादि १८ सिद्धांत ग्रंथों की सदृश प्रत्यक्ष वेधसिद्ध मान से मिलता हुआ (१) सिद्धान्त ग्रंथ, (२) करण ग्रंथ और सारणी ग्रंथ (टेबल बुक Tables Book) यह तीन ग्रंथों के निर्माण की बडी आवश्यकता है। यदि ये बनवा लिये जावें तो केवल इन्दौर के ही पंचांग को शुद्ध करने के लिये नहीं वरन समस्त भारत वर्ष के लिये अत्यन्त उपयोगी होंगे।

मेरा तो नम्रता पूर्वक यह भी दावा है कि हमारे ग्रंथों के आधारसे बने पंचांगमें दो मिनिट तक का अंतर न होते हुए उक्त ग्रंथों का मान जगत् प्रसिद्ध ग्रिनिव्हिच की वर्तमान वेधशाला से बने हुए नाटिकल आल्मनाक से ठीक ठीक मिल सकेगा। इतना ही नहीं तो भारत के उन ऋषियों की योग्यता का भी अनुमान हो सकेगा कि जो हजारों लाखों वर्ष से प्रत्यक्षदर्शी की भाँति किस प्रकार के उत्तम पंचांग बनाते आए हैं।

माननीय होलकर सरकारने हमारे परिश्रम के लिये विचार करने का भी आपके पत्र द्वारा आश्वासन दिया है।

+ रि. पृ. २७ में विशेष सूचना देखिये।

S रि. पृ. २५-२७ व ३३-३५ सभापति का ज्योतिःशास्त्रीय उत्तर देखिये।

+ रि॰ पृष्ठ. ३७-४३ व ४७-५४ सभापति का धर्मशास्त्रीय उत्तर देखिये।

A रि. पृ. ६३-९३ सभापति का संस्कृत पत्र देखिये।

B रि. पृ. ९४-१४१ में पंचांग शोधन के मूलतत्व देखिये।

जिस लोक प्रिय होलकर सरकार का इतने आवश्यक कार्य के लिए ध्यान आकर्षित हुआ है, उससे हमारे लिये आश्वासन की भी आवश्यकता न थी। हम ऐसों का सम्मान सदा से ही धर्म प्रिय और गुण ग्राही राज्यों से ही होता आया है।

विशेष बातें आपको मेरी रिपोर्ट और तत्संबंधी पत्रों से ज्ञात होगी।

अन्तमें निवेदन केवल इतना ही है, कि उपरोक्त महत्व पूर्ण तीनों ग्रंथ सुयोग्य विद्वानों द्वारा ही तयार कराए जावें। इस अनुपमेय कार्य के लिये मैं अपनी और कमेटी की ओर से माननीय होलकर सरकार का अभिनन्दन करता हूं।

मैं यह निवेदन कर देना भी आवश्यक समझता हूं कि कमेटी के विद्वान सदस्य की भांति मुझे प्रभाकर कार्यालय के सेक्रेटरी ज्योतिर्भूषण पं. गोपीनाथ शास्त्री चुलेट से भी बहुमूल्य सहायता मिली है। सच बात तो यह है, कि यदि पं. गोपीनाथ चुलेट से पर्याप्त सहायता न मिलती तो मैं अकेले इतने शीघ्र यह कार्य समाप्त न कर सकता। शुभमिति।

भवदीय,

विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री,

" अध्यक्ष पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर. "

परिशिष्ट

अर्थात्

पंचांग शोधन संबंध के लेख और पत्र व्यवहार,

जो लेख व पत्र व्यवहार उक्त पंचांग कमेटी के सभाओंके अंतर्गत हुआ नहीं है। किन्तु पंचांग शोधन कार्य से उसका संबंध है। और उसके प्रकाशन से पंचांग वाद के ऊपर प्रकाशडाला जासकता है। ऐसे लेख पत्रों को छपवाकर उक्त रिपोर्ट के साथ परिशिष्ट में प्रकाशित करने की आज्ञा श्रीमन्त सरदार ऑनरेबल होम मिनिस्टर साहब द्वारा प्राप्त होने से यह परिशिष्ट जोडा गया है।

पत्र नंबर १

सायन मेषार्क के समय के छायार्क से सांप्रतीय सूर्यसिद्धांतोक्त सूर्य का अन्तर रूप अयनांश साधन के लिये ज्योतिषतीर्थ नीलकंठ मंगलजी जोशी का श्रीमन्त माननीय होम मिनिस्टर साहब की सेवा में भेजा हुआ पत्र.

(सम्पादक चुलेट.)

अयनांश संबंध में पत्र.

छायार्क वेध स्थान इंदौर राजवाडा.

लेखकः – श्रीमंत महाराजा होलकर राज्याश्रित ज्योतिर्कुलभूषण ज्योतिष तीर्थ पं० नीलकंठ मंगलजी ज्योतिषि.

स्वस्ति श्री विक्रम संवत १९८४ शके १८४९ फा. कृ. ३० सोम्यघस्रे ता. २१-३-१९२८ ई०

अहर्गण:– ७१४४०१३३४८८

१ **कल्प सौर वर्षगणः–४३२००००००**

२ **कल्प सौर मासगणः–५१८४ ००००००**

३ **कल्प अधिक मासाः–१५९३३३६०००**

४ कल्प चांद्र दिवसाः—१६०३०००८००००

५ कल्प क्षयाहाः—२५०८२२५२०००

६ कल्प सावन दिवसाः—१५७७९१७८२८०००

कल्पसौर गताब्दाः— १९७२९४९०२८

— सृष्टि वर्षगणः —१७०६४०००

१९५५८८५०२८ सृष्टि गताब्दाः

× १२

२३४७०६२०३३६

\+ ११

२३४७०६२०३४७ गत सौर मासाः

\+ इष्ट अधिक मासा: + ७२१३८४७२८

२४१९२००५०७५ गत चांद्र मासा:

× ३०

७२५७६०१५२२५०

\+ २९

७२५७६०१५२२७९ चांद्राऽहर्गण:

— ११३५६०१८७९१ क्षयाहा:

७ ४४०४१३३४८८ =इष्टाहर्गण:

$$\frac{\text{क अधि मा} \times \text{इ सौ मा}}{\text{क सौ मा}} = \frac{१५९३३३६००० \times २३४७०६२०३४७}{५१८४०००००००} = ७२१३८४७२८ \text{ लब्धाधि मासा:}$$

५१८४००००)३७३९६५८४३४१२·७५९२(७२१३८४७२८ लब्धाधि मासाः

३६२८८००००

११०८५८४३४

१०३६८००००

७१७८४३४१

५१८४००००

१९९४४३४१२

१५५५२००००

४३९२३४१२०

४१४७२०००

२४५१४१२०७

२०७३६००००

३७७८१२०७५

३६२८८००००

१४९३२०७५९

१०३६८००००

४५६४०७५९२

४१४७२०००

४१६८७२९२ = अधि शेष.

१५९३३३६

× २३४७०६२०३४७

११,५३३५२

६३७३३४४

४७८०००८

०००००००

३१८६६७२

९५६००१६

००००००

१११५३३५२

६३७३३४४

४७८०००८

३१८६६७२

३७३९६५८४३४१२०७५९२

$$\frac{\text{क अ व भ × इ चां दि}}{\text{क चां दि}} = \frac{\text{२५०८२२५२ ००×७२५७६०१५२२७१}}{\text{१६०३००००८००००}} = \text{११३५६०१८७११ लब्ध}$$

क्षयाहाः

१६०३००००) १८२०३६९९०३१०२०२५२२०८ (११३५६·१८७६१

१६०३०००८०

२१७३६९९८२३१

१६·३०००००८०

५७०६९८१५१०

४८०९०००२४०

८९७९८१२७०२

८०१५०००४००

९६४८१२३०२०

९६१८०००४८०

३०१२२५४०२५

१६०३·०००८०

१४·९२५३९४५२

१२८२४·००६४०

१२६८५३८८९२३

११२२१०० ५६०

१४६१३८७५६३०

१४४२७००००७२०

२१६८७४९१०८

१६०३००००८०

५६५७४९०२८ क्षय शेष

२५·८२२५२

× ७२५७६०१५२२७१

२२५७४०२६८

१७५५७५७६४

५·१६४५०४

५० ६४५०४

१२५४११२६०

२५०८२२५२

०००००००००

१५०४९३५१२

१७५५७५७६४

१२५४११२६०

५०१६४५·४

१७५५७५७६४

१८२०३६९९०३१०२०२५२३०८

सिद्धान्त रित्याकल्पादि तो गणितागताऽर्क साधनेन्यासः

अहर्गणः - ७१४४०४१३३४८८

$$\frac{\text{क र भ × इ सा दि}}{\text{क सा दि}} = \frac{\text{४३२०००००००० × ७१४४०४१३३४८८}}{\text{१५७७९१७८२८०००}}$$

भगण. रा.

= १९५५८८५०२८ । ११ । ५° । ४' । "३९ = मध्य रात्र कालिको मध्यमो रविः

त्रिंशत घटि चालनेन मध्यान्ह कालिको मध्यमो रविः = ११ । ५° । ३४' । १५" ।

सिद्धांत सिद्धं रवि मंदोच्चं = भगण २१९ रा. २ । १७° । ५८' ।

रवि मंद केन्द्रं = ३ । १२° । २३' । ४५" । रमंके भु = २ । १७° । ३६' । "१५ = ७७ । ३६' । १५" ।

र मं के भुजज्या ३३५६ । परिध्यन्तरं ०° । २०' ।

$$\frac{\text{परिध्यन्तर} \times \text{इ भुज्या}}{\text{त्रिज्या}} = \frac{(०।२०) \times ३३५६}{३४३८} = १९'।३१''। = \text{इष्ट परिध्यन्तर}$$

१४°। ०'। ०''।
— ०। १९ । ३१।
११ । ४० । २९ ।= स्पष्ट परिधि.

$$\frac{\text{इ भुज्या} \times \text{इ प अं}}{\text{भांशप}} = \frac{३३५६ \times ११।४०।२९}{३६०} = १२७'।२८''।४४''' = \text{ज्यात्मकं मंद फलं।}$$

मध्यम रविः ११ । ५° । ३४' । १५''
\+ मंद फल + २ । ७ । २८ । ४४
११ । ७ । ४१ । ४३ । ४४ = स्पष्ट रविः अत्र चराभावः

सिद्धान्त सिद्ध कल्पादितो स्पष्ट रविः ११ । ७° । ४१' । ४३'' । ४०'''

छायाऽर्कसाधनेन्यासः छाया चित्र नं.२

स्वस्तिश्री विक्रम संवत १९८५ शके १८४९ फा. कृ. ३० सौम्य घस्रे ता.२१-३-२९ ई.

सू. सि. त्रि. श्लो. १४--१९

१ शंकु द्वादश अंगुल कोटिः
२ शंकु छाया अं. ४।५९ भुजः
३ छाया कर्ण अं.१२।५९।३६ कर्णः

$$\text{को}^2 + \text{भु}^2 \text{ कर्ण} = (१२)^2 + (४।५९)^2 = १४४ + (२४।५०।१) = १६८।५०।१ = \text{कर्ण}^2$$

$$\sqrt{\text{कर्ण}^2} = \sqrt{१६८।५०।१} = \text{कर्ण} = १२।५९।३६$$

$$\frac{\text{छा भु} \times \text{त्रि कर्ण}}{\text{छा क}} = \frac{(४।५९) \times ३४३८}{१२।५९।३६} = १३१८।५४ \text{ रविनतज्या}$$

१३१८।३४ अस्यधनुः रविनतांशाः=२२°।३४' रविनतांशाः

इन्दौर अक्षांशाः २२°।४२' – रविनतांशा २२°।३४' = रवि उत्तरा क्रान्तिः ०°।८'

$$\frac{\text{त्रि भु} \times \text{इ क्रां. ज्या}}{\text{परम क्रान्तिज्या}} = \frac{३४३८ \times ०°।८'}{१३९७} = ०।०।१९।४१ = \text{रवि भुजज्या।}$$ प्रथम पदे स्थितिः अतो अयमेव स्पष्ट सायन रविः = ०।०°।१९'।४१'' = लब्ध छायाऽर्कः ०।०°।१९'।४१''

गणितागत अयनांश साधनेन्यासः

सूर्य सिद्धांतोक्त प्रकारेण अयनांश साधनार्थं महायुगादितोऽहर्गणः ११८५२७५२३२

शकादौ महायुगादितो गतब्दाः ३२४११७९+शकाब्दाः १८४९ सौर गताब्दाः ३२४५०२८

सौ व ३२४५०२८×१२+११ = गत सौर मासाः३८९४०३४७

$$\frac{\text{यु अधि मा × इ सौ मा}}{\text{यु चां मा}} = \frac{\text{१५९३३३६ × ३८९४०३४७}}{\text{५१८४००००}} = \text{११९६८५६ अधि मासाः}$$

अधिशेष ४१६८७५९२

$$\frac{\text{यु क्ष दि × इ चां दि}}{\text{यु चां दि}} = \frac{\text{२५०८२२५२×१२०४११६११९}}{\text{५१८४००००}} = \text{१८८४०८८७=लब्ध क्षयाहाः}$$

क्षय शेषः ५६५७४९०२८

ग सौ मासाः ३८९४०३४७+अधिक मासाः ११९६८५६ = चांद्र मासाः= ४०१३७२०३

चां मा ४०१३७२०३ × ३० + २९ = १२०४११६११९ चांद्रऽहर्गणः

चांद्रऽहर्गण = १२०४११६११९ – क्षयाहाः १८८४०८८७ = सावनऽहर्गणाः

= ११८५२७५२३२ = इष्ट सावनऽहर्गणः ११८५२७५२३२

$$\frac{\text{यु अ प न भ × इ कु दि}}{\text{यु कु दि}} = \frac{\text{६००० × ११८५२७५२३२}}{\text{१५७७९१७८२८}} = \text{भगण ४५० । ७५° । २६' । ३''}$$

अत्रभुजानुपातेन $$\frac{\text{७५° । २६' । ३'' × ३}}{\text{१०}} = \text{२२° । ३७' । ४९''} = \text{लब्धाः गणितागतायनांशाः}$$

छाया गणितागतार्कयोरन्तरम् अयनांशतुल्यं भवति अतः

छायार्कः = ० । ० । १९' । ४१'' । ०'''
गणितागतार्क = ११ । ७ । ४१ । ४३ । ४४

० । २२ । ३७ । ५७ । १६ = वेधोप लब्धायनांशाः

वेधोप लब्धायनांशाः २२° । ३७' । ५७'' । १६''' गणितागतायनांशाः २२ । ३७' । ४९''
उभयोर्मध्ये ८'' । १६''' अन्तरम् । इदं गणितावयवशेषेण तदपि स्वल्पम् ।

सौराकायनांशनिर्णये क्रोड पत्रम्.

लेखकः—विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट.

हेतुः= " स्फुटंदृक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्वये ॥ प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणा गते ॥ " इति सूर्यसिद्धांतो (३·११) क्ते अयनद्वये कर्क मकरे, विषुवद्वये मेष तुलार्के सायने स्फुटं उदयादिना स्पष्टतया दृक्तुल्यतां गच्छेदन्यदिनेषु अग्रादिना नतांशछायया वा छायार्क करणा गतार्कांतरं अयनांशा भवेयुरित्यतः—

स्टष्टितोऽहर्गणः मध्यम सूर्योदयार्थे १५ घटी युतः कार्यः ७,१४,४०,४१,३३,४८८ तः ७,१४,४०,४१,३३,८५७ पर्यंतम्

प्रस्तुत वर्षस्य कोष्टकः

क्रमात्	संवत् १९८४–८५ शके १८४९–५०	सूर्यसिद्धांतोक्तः सूर्यः				इन्दौर नगरे छायार्कः				अंतरम् स्थूलायनांशाः			सूक्ष्म गणितादंतरं		दृग्गणित शुद्धायनांशाः		
दिन	पंचांगोक्तावधिः	रा.	अं.	क.	वि.	रा.	अं.	क.	वि.	अं.	क.	वि.	क.	वि.	अं.	क.	वि.
४८८	फा. कृ. ३० बुधे	११	७	२८	२३	०	०	८	५३	२२	४०	३०	+ ९	५१	२२	५०	२१
५०३	चैत्र शु. १५ गुरौ	११	२२	१७	१४	०	२५	६	२४	२२	४९	१०	+ १	१३	२२	५०	२३
५१८	,, कृ. ३० शुक्रे	०	६	५८	१	०	२९	४२	३१	२२	४४	३०	+ ५	५५	२२	५०	२५
५३२	वैशाखे १५ शुक्रे	०	२०	३२	१७	१	१३	१९	१७	२२	४७	०	+ ३	२७	२२	५०	२७
५४७	,, ३० शनौ	१	४	५८	१६	१	२७	४७	१७	२२	४९	४१	+ ०	४८	२२	५०	२९
५६२	ज्येष्ठे १५ रवौ	१	१९	१७	१४	२	१२	११	५५	२२	५४	४१	− ४	१०	२२	५०	३१
५७६	,, ३० रवौ	२	२	३६	४२	२	२५	३४	५१	२२	५८	९	− ७	३६	२२	५०	३३
५९२	आषाढे १५ भौमे	२	१७	४६	४२	३	१०	५०	४३	२३	४	१	−१३	२६	२२	५०	३५
६०६	,, ३० भौमे	३	१	३	३१	३	२४	११	४१	२३	८	१०	−१७	३३	२२	५०	३७
६२१	अधि श्रा. १५ बुधे	३	१५	१९	२९	४	८	३१	२६	२३	११	५७	−२१	१८	२२	५०	३९
६३५	,, ३० बुधे	३	२८	४२	१९	४	२१	५६	४५	२३	१४	२६	−२३	४५	२२	५०	४१
६५१	श्रावणे १५ शुक्रे	४	१४	६	२८	५	७	२६	१५	२३	१९	४७	−२९	४	२२	५०	४३
६६५	,, ३० शुक्रे	४	२७	४१	५१	५	२०	५७	३७	२३	१५	४६	−२५	१	२२	५०	४५
६८०	भाद्रपदे १५ शनौ	५	१२	२३	२४	६	५	३८	२२	२३	१४	५८	−२४	११	२२	५०	४७
६९४	,, ३० शनौ	५	२६	१३	४९	६	१९	२७	२	२३	१३	१३	−२२	२४	२२	५०	४९
७०९	अश्विने १५ रवौ	६	११	११	४५	७	४	२२	१६	२३	१०	३१	−१९	४०	२२	५०	५१
७२४	,, ३० सोमे	६	२६	१७	१९	७	१९	२४	४१	२३	७	२२	−१६	१९	२२	५०	५३
७३९	कार्तिक १५ भौमे	७	११	२८	५१	८	४	३३	२१	२३	४	३०	−१३	३५	२२	५०	५५
७५४	,, ३० बुधे	७	२६	४६	५३	८	१९	४६	४५	२२	५९	५२	− ८	५५	२२	५०	५७
७६८	मार्गशीर्ष १५ बुधे	८	११	६	१०	९	४	०	५५	२२	५४	४५	− ३	४६	२२	५०	५९
७८३	,, ३० गुरौ	८	२६	२७	४४	९	१९	१९	१८	२२	५१	३४	− ०	३३	२२	५१	१
७९८	पौषे १५ शुक्रे	९	११	४७	२९	१०	४	३५	३५	२२	४८	६	+ २	५७	२२	५१	३
८१३	,, ३० शनौ	९	२७	२	५५	१०	१९	४८	४२	२२	४५	४७	+ ५	१८	२२	५१	५
८२७	माघे १५ शनौ	१०	११	१२	३३	११	३	५६	३७	२२	४४	४	+ ७	३	२२	५१	७
८४३	,, ३० सोमे	१०	२७	१५	२८	११	१९	५८	५५	२२	४३	२७	+ ७	४२	२२	५१	९
८५७	फाल्गुने १५ सोमे	११	११	१०	५३	०	३	५४	१६	२२	४३	२३	+ ७	४७	२२	५१	११

सभापति का क्रोड पत्र.

—प्रकृत कोष्ठकस्य रचना कृता ।

अयनांश निर्णय: उपरितने कोष्ठके केंद्रीय वर्षानुसारेण कालान्तरजन्य संस्कारसंस्कृतोच्च २।१७।°५८ स्थानेन, प्राक्कालीन परिध्यया १४° चलच्चफलस्य मध्यमार्के संस्कार साधितार्कस्य दृप्रत्ययशुद्धाच्छायार्कादंतरभागेषु स्थूलायनभागेषु नाक्षत्र वर्षसाधितवास्तविकमध्यमार्कोच्चफलजन्यसूक्ष्मगणितांतरसंस्कारात् साधिता श्चरमपंक्तौ शुद्धा अयनांशाः । शुद्धायनगति युताःलिखिता संति ! अन्यथातु स्थूलमानेन भिन्न भिन्न दिनेषु छायार्कात्करणागतार्कान्तरस्य भिन्नत्वे त्रिभिन्नायनांशोपलंभादस्तोदये, याम्योत्तरलंघने, अग्रायां, नतांशदिगंशाभ्यां शंकुच्छाया, छायाकर्ण भुज कोटि साधनाविधौ अनवस्थाप्रसंगः स्याल्लग्न, दशम, चर, क्रांति, विषुवकालऽसाधने पिस्थूलत्वमनिवार्य एव । करणागतार्क स्यस्थौल्यातरसाधितायनभागागत सायनार्कस्य स्थूलत्वात् ।

कोष्ठकोक्ताःशुद्धायनांशाः इत्यतश्चरम पंक्ति पठिता श्चैत्रादिमासपर्वणां सूर्यसिद्धान्तागम शुद्धाश्चैत्रीयकरणागतार्का च्चित्राभिमुखारंभाच्च शुद्धा अयनांशाः प्रभाकरसिद्धान्त तुल्या एव संतीतिजानीते ।

विनीत वशंवदो

दीनानाथ शास्त्री चुलेटः ।

(लेखमें पत्र नंबर २९ पं ४ इतिविवेकः इसके आगे पढा जावे.)

तिथिकौस्तुभ — स्वदेशोचित निर्बीजग्रहैःपंचांगसाधनं ॥ सबीजैर्ग्रहणादीनां

सूर्य सिद्धान्त वासना-भाष्य — पुण्यकर्मणिशस्यते मुनिभिरपितथैवोपदिष्टं प्रत्यहं तिथिनक्षत्र योगस्यानयनेविधुः ॥ अबीज संस्कृतोग्राह्यो ग्रहणादौसबीजकः ॥२॥

यंत्रदीपिका व्याख्यामे लल्लाचार्यः — शृंगोन्नतौ ग्रहयुतौग्रहणे तथास्ते छायानिरीक्षण विधावुदयेचदेयं ॥ बीजंफलं तिथिभयोग विधौस्वदेयं चन्द्रे प्रदेयमखिलंक्षिति जादिकेषु ॥ ३ ॥

श्रीपदेवाये — दृकसिद्धग्रह कालेन ग्रहादि तिथिनिर्णयम् ॥ शास्त्र सिद्धग्रहगतिःअदृष्टार्थेषु कर्मसु ॥ आगमो बाधते चक्षुर्निर्दुष्टो दोष दूषितम् ॥ ४ ॥

कमलाकरः — अदृष्टफल सिध्यर्थं निर्बीजार्कोक्त मेवहि ॥ प्रमाणं श्रुतिवत् ग्राह्यं कर्मानुष्ठान तत्परैः ॥

धर्मसार — रवींदु मंदसंसिद्धात्तत्त तिथ्यादि भोगतः ॥ स्यातां तत्कालबीजोत्थौ बाण वृद्धि रसक्षयौ ॥ १ ॥ अतःपैतृक कर्मादौ तत्काल चर बीजकैः ॥ बाण वृद्धिरस क्षीणा ग्राह्या नान्यातिथिःक्वचित् ॥ २ ॥

गणकानन्दे — कर्तव्या पंच संस्कारामध्यखेटेषु सर्वदा पूर्वं ध्रुवःप्रथमतास्त्रिगुणाद्स्ततःपरं ॥ देशान्तरं बीजफलं बाहोःफलमिति क्रमात् । सूर्यज्ञयो बीजफल मनुक्तंशास्त्रकर्तृभिःचन्द्रोच्चस्य तथाराहोःचन्द्रार्क ग्रहणादिषु ॥ आवश्यकत्वात्कर्तव्यं नतिथ्यानयनादिषु ॥

कालार्के — मांदैक कर्म संसिद्धस्पष्टार्केदुत्पादितातिथिः ॥ श्राद्धादिषुपरिग्राह्या ग्रहणादौ तु बीजयुक्त

कमलाकर — वेलाहीनेतरं यत्तत् बीजंमत्वैवकालजं । कर्मार्हं खेचरंशुद्धं नाशयंत्यधमावलात् ॥

तत्वविवेके — रविणारूपांतरंत्यक्तं तद्बीजं विधिनादृतम् यंत्रैश्चबहुभिःतज्जस्फुटखेटो दितौचये ॥ दृष्ट्यर्थं निर्णयादेशौ अदृष्टार्थं नतौद्यतः ॥ अदृष्टफलसिध्यर्थं यथार्कोत् गणितंकुरू ॥ गणितंयदिदृष्टार्थंतत् दृष्ट्युद्भवतःसदा ॥ १ ॥

शाकल्य संहिताया खचर दर्पणे — तिथ्यादिसाधनेक्वापि नार्कैंद्रोर्बीजयोगिता ॥ अन्यथा सायनार्कस्य राशि संक्रम संभवे

ग्रहणग्रहोदयास्तशृंगोन्नातिखचरयोगकालेषु । दृकसिद्धेंदुःसाध्यः स्यादेवंनेतर क्रिया सुबुधैः ॥

भगवानव्यासः — सारोपनिषदेवाद्यकल्पे त्वस्मिन्सनातनीयामादित्यंस्वयं प्राह मयाथपरिपृच्छते ॥ कालज्ञानंतुतत्सिद्धं शिशुत्वंनान्यदुच्यते ॥ तद्विद्धन्तुयत्सर्व अपरिग्राह्यमेवतत् ॥

करणोत्तमतंत्रे — इन्दोस्तिथ्यर्क्ष योगादेरन्य चेष्टा चलक्रिया ॥

केरलीयतंत्रग्रंथे — ग्राह्योयमेवभूस्थानां द्रष्टणां चंद्रमाःसदा ॥ तिथिनक्षत्रयोगादौ-नैवचान्योविधियते ॥ १ ॥

सिद्धान्ततत्वे — मान्दकमैक्यमर्केंदो कुर्यात्तिथ्यादिसाधने ॥ चतरत्रउदयास्तादौग्रहणे पंचसंस्क्रयः ॥ १ ॥

सिद्धांतभूषणे — एकेनमांदेनतुकर्मणातौस्फुटौभवेतांतिथि योग योग्यौ ॥ १ ॥

भार्गवः — सूर्यांशपुरूषेणोक्तं तंत्रंतिथ्यादिसंमतं ग्रहणादौ तुवक्ष्यामि सविशेष मथोशृणु

स्कांदेकलिमहात्म्य वर्णनप्रसंगे पार्वती प्रतिहंसरोक्ति — दृक्सिद्ध खेटग्रहसाधितासु कुर्वीत केचित्तिथिषुप्रमादात् । श्राद्धादिकं तत्पितृणां

पतन्ति पुण्यक्षयं दुर्गतिमाप्नुवन्ति ॥ तथापिसंतो बहवोत्र धार्मिकाःपुरातनाः चारम

थजर्हतः ॥ सूर्यांश जोक्ता र्जितेकालएव कर्माणिकुर्वन्ति सुखं लभन्ते ॥ १ ॥

ज्योतिसिद्धान्ते बजिधिकारे तत्रैव स्फुटादिकारेपत्र १५५ — चंद्रार्कशशितुंगानां बीजं तिथ्यादि साधने नकर्तव्यंतु कर्तव्यं चन्द्रर्क ग्रहणादिषु ॥

शीतांशुश्चरबीजेन संस्कृतो दृक्समोभवत् ॥ दृक्सिद्धेंदुसमानीतं तिथ्याद्यं नैव युज्यते ॥ वैदिकेष्ववगीतेषु हव्यकव्यादिकर्मसु ॥ आस्तिकैः शास्त्र शरणैर नुष्ठानेषुसम्मतं ॥ १ ॥

करणोत्तमतंत्रे — व्यर्केंदोस्तितिथ्यर्धे गृहाद्धान्यनुपाततः ॥ विष्कंभाद्यारविन्द्वैक्या तदाद्यंतौ स्वभुक्तितः ॥ इन्दोश्राद्धादिकेन्यत्र भूमध्येष्टा स्फुटक्रिया ॥९॥

खचर दर्पणे	मांदैककर्म संस्कृत चंद्राकौंतिथिभयोग करणानां योग्यैस्यातान्ग्रहणे चंद्रोन्यैःसंस्कृतोग्राह्य.
व्रतमहोदधोनारदः	यथाश्रुतेन सिद्धान्त वर्त्मनासाधितग्रहैः पंचांग कर्मणिग्राह्यं स्वस्वदेशेद्विजोत्तमैः ॥ सार्धत्रयोदशैर्देशो योजनैर्भुविगण्यते । गणकास्तत्र तत्रस्युस्तत्कृतं कर्म नेतरत् दृग्साम्येपि खेटानांकिंचिन्युनातिरेकतां । त्यक्त्वा मूलोक्तमार्गेणकालं कर्माणिसाधयेत् । इत्येषां ज्ञानदृक्प्रोक्ता वेदवेदांगसम्मता चर्मचक्षुभवंज्ञान सहोपकरणं चदक् । लौकिकीसापरिज्ञेया देशारिष्टादिशांतये ग्रहणग्रहयुद्धादिहेतुभिःफलसूचने ॥ ग्र ह्यःसबीजदक्सिद्धःग्रहजःसमयेबुधैः
व्याकल्य शठितावां	ग्रहणेग्रहयोगेच कालभा लग्न साधने शृंगोन्नत्युदयास्तेषु ग्रहेबीजंविधीयते
विष्णुधर्मोत्तरे	यंत्र वेधादि नाज्ञातं यद्दीनं गणकैस्ततः ॥ ग्रहणादिपरीक्षित नातिथ्यादिकदाचन
ज्योतिर्विदाभरणे तिथि वृद्धिक्षयनियम। तंत्र संग्रह व्याख्यायां;	वृद्धिक्षयोस्तःपरमौतिथौसदा व्यधारसासांग्रिसाश्वनाडिका विधुरयमुपराने खेचराणांच योगे निजत नुसितमानाद्यगुलादि प्रसंगे कुतल गजनवर्यैं रग्रगण्योप्यगण्यःसकलतिथि भयोग स्यापिवृद्धयादिकेषु
सिद्धान्तशिरोमणौ	तिथ्यन्तनाडी नत बाहुमौर्व्यालघ्मार्क शीतांशुफले विनिघ्ने ॥ क्रमेणभक्तेन खगोसमुद्रैः कङ्गानिवेदैः फलहीनयुक्तः ॥ १ ॥ प्राक्पश्चिमस्थस्तरणेर्विधुः प्रागृणेफलेयुक्तश्तोऽन्यथोनः मुहुः स्फुटातोग्रहणेरवीन्द्वोस्तिथिस्त्विदं जिष्णुसुतोजगाद.

ज्यो. पं. **रामसुचित त्रिपाठी.**

टिप्पणी= यद्यपि पं० त्रिपाठीजी का यह तीन पेज का लेख सन १९३२ में आया है जब रिपोर्ट का पूर्वार्ध भाग छप गया था. किंतु यह वही प्रमाण है कि जिनकी समालोचना मेरे संस्कृत पत्र में की गई है । और इस लेखमें कुछ विशेषता नहीं है ।

भवदीय.

सम्पादक=झुलेट शास्त्री.

The Panchang Committee's

REPORT.

VOL. II

शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी, इन्दौर की

रिपोर्ट का परिशिष्ट ४

उत्तरार्ध भाग.

अयनांश वाद निर्णय का शंका समाधानरूप शास्त्रार्थ, भारतीय शास्त्रों की प्रामाण्यता, खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति का शोध, रवि परम क्रांति की चक्रगति दर्शक प्रमाणों का संग्रह, ज्योतिःशास्त्रीय गणित के शतशः प्रमाणों के आधारपर तीन लाख वर्ष पूर्व का वैदिक एवं भारतीय इतिहास काल की पूर्व मर्यादा का निश्चय, वेदों का निर्माण एवं मानव जाति मात्र की उत्पत्ति भारतवर्ष में हुई है एवं संसार के अन्य धर्म ग्रंथ वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं।

अर्थात्

गणितोपयोगी कोष्टक, नकशे, खगोलीय चित्रों समेत

शास्त्रीय पद्धति से

समस्त वेद पुराणादि और संसार के धर्म ग्रंथोक्त प्राचीनतम गूढ बातों का सरलता पूर्वक

अर्थ लगाने की नई प्रणाली का शोध

सम्पादकः– कमेटी के अध्यक्ष

ज्योतिषाचार्य और वेदार्थ-तत्व-प्रतिष्ठापनाचार्य

वेदकाल निर्णय, युगपरिवर्तन आदि ग्रंथों के कर्ता

विद्याभूषण पं. दीनानाथ शास्त्री चुलेट–गौड

प्रकाशक

माननीय श्रीमन्त हुलकर गव्हर्नमेन्ट की आज्ञा से

मुद्रक

श्रीमन्त हुलकर गव्हर्नमेन्ट प्रेस, इन्दौर.

संवत् १९९१ ईसवी सन १९३४.

[मूल्य ३ रुपये]

रिपोर्ट के उत्तरार्ध भाग परिशिष्ट ४ की

विषय-सूची.

अ. नं. विधान संख्या

सहायक ग्रंथोंकी सूचना.

अभीतक वैदिक मंत्रों का जो अर्थ एवं वैदिक काल व स्थल बताया जाता है इसके संबंध में ' वेद काल निर्णय (ओरायन), आर्टिक होम दि वेदाज, ऋग्वेद इंडिया, भारत का प्राचीन इतिहास आदि पुस्तकें छपी हैं उन सबकी समालोचना करते हुए हमने (तत्व· ज्ञान संचारक मंडल एलीचपुर बरार द्वारा) कई पुस्तकें निर्माण की हैं उनमें प्रकाशित पुस्तक ये हैं:-" वेदकाल निर्णय " कि जिसमें १० लाख वर्ष पूर्व तक के विभिन्न काल के एशिया खंड के नकशे ४ और चित्र १६ देकर वैदिक विभाग के अन्यान्य ग्रंथों का तीन लाख वर्ष पूर्व तक का काल ऐतिहासिक रीति से बताया गया है।

" युगपरिवर्तन " में:-ज्योतिः शास्त्र के आधार से वैदिक मंत्रों का सरल अर्थ बताया है। काल ज्ञान के लिये सुपर्ण चिति आदि पंचांग कैसे बनाए जाते थे सो भी स्पष्ट करके बताये हैं। संपादकः-दीनानाथ शास्त्री और गोपीनाथ शास्त्री चुलेट के पते से यह पुस्तक मिलती है।

परिशिष्ट ४

अयनांशवाद निर्णय.

प्राक्कथन

इस (शुद्ध पंचांग प्रवर्तक कमेटी इन्दौर) की चौथी मीटिंग (ता. १६-११-२९ ई.) में–" शाके १८५० के आरंभ के अयनांश२२°-५०′-२५″, अयनगति–५०·″२३५७२ और नाक्षत्र सौर वर्षमान ३६५·२५६३७४ दि.,=३७१·०६२४१४ ति." इत्यादि परिमाण सर्व सम्मति से पास किये गए हैं। किंतु बिना वाद प्रतिवाद के अयनांश वाद रूप जटिल प्रश्न का इससे पूर्ण निर्णय नहीं होसकता इसलिये इस कमेटी के सभापति पं. चुलेट शास्त्री ने श्रीमंत सरदार किबे साहब से प्रार्थना की। तदनुसार श्रीमंत महोदय ने योग्य योजना करके इस कमेटी की सोलहवीं मीटिंग श्रीमंत के सरस्वती निकेतन में करवाई। उसमें उज्जैन के श्रीमान् प्रिंसिपल गोविंद सदाशिव आपटे साहब बुलवाए गए थे। आपने सहर्ष झीटा पक्ष की ग्राह्यता व समर्थन करना और विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट ने चित्राभिमुख रेवत्यंतबिन्दु से गिने हुए अयनांशों की ग्रहलाघवादि ग्रंथोक्तों से एक वाक्यता को प्रमाणित करते हुए इनकी ग्राह्यता तथा झीटा की अग्राह्यता को सिद्ध करना स्वीकार किया।

भाग १ =आरंभिक वाद–विवाद.

१

प्रश्न प्रिं. प. आपटेः–' यदि यह गणित इतने बडे अहर्गण से प्राचीन सिद्धांत की सत्यता स्थापित करने की इच्छा से किया होतो उसमें नव्याविष्कार का मिश्रण व्यर्थ ही किया है। '

उत्तर. वि. भू. चुलेटः–' व्यर्थ नहीं वह दृक्प्रत्यय में लाने के लिये–कालान्तर जन्य-संस्कार रूप है। नव्य ग्रंथों में तो सौ पचास वर्ष में ही बीज देने से क्या मिश्रण होता है तब प्राचीन ग्रंथों में हजार पांच सौ वर्षों में योग्य संस्कार या बीज देने से शुद्धमानों के अतिरिक्त वह मिश्रण रूप कैसे हो सकता है.

२

प्रिं. प. आपटेः—'ग्रह लाघव का मध्यम रवि सूर्यसिद्धान्त के रवि से २ विकलाके अंतर से आता है। यह गणित कर मैंने देखा है; फिर १२ अंकों का अहर्गण लेने की आवश्यकताही क्या थी.'

वि. भू. चुलेटः—'स्मृति ग्रंथों में कहे प्रकार कल्पादि में शून्यक्षेप बतानेकी आवश्यकता थी क्योंकि शून्यक्षेप से शुद्ध ग्रह साधन करने वाले ग्रंथही सिद्धान्त कहाते हैं किंतु थोडा क्यों नहो ग्रह लाघव में अंतर क्योंकर है। क्या आपने इसके संबंध में कुछ सोचा है।'

३

प्रिं. प. आपटेः—'रव्युच्चके भगणों से उच्च लाकर उससे मंद केंद्र साधन करना चाहिये था इस गणित की रीति इस न्यास में शामिल नहीं है.'

वि. भू. चुलेटः—'ग्रंथोक्त भगणोंद्वारा रव्युच्च वहांतकही लाया गया है कि शुद्ध केंद्रीय और शुद्ध नाक्षत्रमान अलग २ नहीं किये गए थे। यदि गणित करके देखें तो आपको ज्ञात होगा कि वह प्रस्तुत न्यास में शामिल है।'

४

प्रिं. प. आपटेः—'मंदफल अंशादि १।५९।५२ एकदम कहां से लाया गया ज्ञात नहीं होता है।'

शास्त्री चुलेटः—'यह वास्तविक कक्षा ऱ्हास से परिधिअल्प करके लाया है जोकि सूक्ष्म मानसे मिलता है।'

५

प्रश्नः—क्रांत्या नयन के लिये सायन सूर्य लानेमें सिद्धान्तानुसार बडी भूल कीगई है। वह भूल २२°।४३'।४६" अयनांशों की है।

उत्तरः—उक्त अयनांश लाने में भूल नहीं है। वह तो संपूर्ण ज्योतिष के ग्रंथोक्त प्रमाणों की जिस तत्वपर एक वाक्यता होती है उस दृक्प्रत्यय शुद्ध मानसे लाये गये हैं। जोकि हमारे बनाये हुए सिद्धान्त प्रभाकर के आधार से केंद्रारत्न बने हैं। उसका संस्कार +७'।२६" करने पर शुद्ध नाक्षत्र मान के आयनांश २२°।५१'।१२" यहां की कमेटी में पास हुए प्रस्तावानुसार हैं।

६

प्रश्नः—"अयनगति किस ग्रंथ के आधार पर अवलंबित है."

उत्तर:—" उक्त अयनगति शुद्ध नाक्षत्र मान से बनाई गई है । सभी सिद्धांत ग्रंथों से शुद्ध अयनगति इतनी ही आती है । इसका स्पष्टीकरण इस रिपोर्ट (पृष्ट १०४) में किया गया है ।

७

प्रश्न:—' इससे आपके-गणित में पुराण ग्रंथों का वह महत्व-जिसे आप रक्षित करना चाहते हैं-जाता रहा और इसमें नवीन प्रकार का एक छींटा व्यर्थ ही लगाया गयाः '

उत्तर:—यह आपका कथन असंगत है क्योंकि हमने छींटा नहीं सिद्धान्तोक्त मूलांकों में कालान्तर संस्कार देकर दृक्तुल्य किया है । इससे इतने दिन की आई हुई विसंवादता को दूर कर प्राचीनों के शोधों को उपयोगी बनाने से उनका महत्व गया नहीं बढाया गया है.

८

प्रश्न.—' यह प्राचीन और नवीन के मिश्रण की खिचडी तो सर्वथा त्याज्य है । '

उत्तर:—' नाक्षत्र वर्षमान में जो केंद्रीय भाग मिश्रित था उसको सिद्धान्तोक्त भगणों में मिला घटाने से शुद्ध केंद्रीय मान और शुद्ध नाक्षत्र मानों को अलग २ शुद्ध करने से खिचडी के दाल चांवलों के भाँति अलग २ शुद्ध परिमाण के कर दिये गए हैं । तब भी क्या प्रिं. साहब की दूर दृष्टि इस ओर पहुंची नहीं है । या प्राचीन प्रमेयों का इस प्रकार से उत्कर्ष होना आपको असह्य मालूम होता है ?

९

प्रश्न:—' जब स्पष्ट रवि सूर्यसिद्धान्तानुसार कल्पादि से **अहर्गणसिद्ध है । तब** अयनांश भी उसी ग्रंथ के अनुसार लाना उचित है ।

उत्तर:—' हां उसी अनुसार " प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते " (सू. सि. ३·११) से लाया गया है । '

१०

प्रश्न:—' सूर्यसिद्धान्त के अ. २ श्लो, १० में " **तद्दोस्त्रिघ्ना दशांशाः** " इत्यादिरीति स्वयं सूर्य ने प्रगट की है । उसके लिये पूरा आदर प्रगट होता है. '

उत्तर:—पूरा आदर तो " **यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः** " (**अ. २ श्लो. १४**) इस आज्ञाको माननेसे ही हो सकता है । जो कि प्रत्यक्षमें सूर्य के वेधद्वारा हमें ज्ञात हुआ है । किंतु हमें मालूम नहीं कि इसमें आपकी इतराजी क्यों है ।

११

प्रश्न:—' जिस वस्तु को (आप) सम्हालना चाहते हैं। उसी को दूसरी ओरसे गिराना अनुचित है। '

उत्तर:—' प्राचीन ग्रंथोंका योग्य उपयोग करना आपको अनुचित दिखना स्वाभाविक है क्योंकि आकाश के बिना देखेही नाटिकल आल्मनाक से ग्रहस्थिति माळूम हो ही जाती है। लेकिन प्राचीन प्रमेय पर्याप्त होते हुए भी इस प्रकार परावलंबी होना अनुचित है।

१२

प्रश्न:—पूनामें ग्रहलाघव पंचांग मंडलने शके १८५१ का पंचांग प्रकाशित कर प्रसिद्ध किया है। और १८५२ से १८५६ तक पांच वर्ष के पंचांग की एक पुस्तक भी प्रकाशित की है। उसके प्रस्ताविक कथन में दी हुई चर्चा देखने योग्य है। " किर्लोसकर थिएटर चे समोर बुधवार पेठ पुणें शहर " इस प्रकार इस ग्रहलाघव पंचांग मंडल का पता है। के० ना० भवालकर शास्त्री इस मंडल के संचालकसे माळूम होते हैं। बहुत कर आपने यह चर्चा देखी होगी। न देखी हो तो देखें देखने योग्य है।

उत्तर:—यह तो देखी नहीं। किंतु इसी मंडल के अधिवेशनमें शिटापक्ष के समर्थन के लिये बातों की भर्ती के सिवाय सिर्फ एक जो आपने जातकार्णव का प्रमाण शब्द कल्प द्रुमसे उधृत कर के दिया है। उसी ग्रंथमें ग्रंथ निर्माण कालिक अयनांश १९° लिखे हुयोंको दबाकर (शब्द कल्पद्रुम शाके १८०८ में छापेगया है) मानो उक्त अयनांश आपकी सेवा के लिये गतिस्तंभ होकर जैसे के वैसे शाके १८४८ में प्रगट हो गये हों और अयन गति कलांभी लेने में साठ देनेमें पचास के तुल्य चाहे जहां चाहे जैसा मनमाना अर्थ करते हुए देखे हैं। " पंचांगैक्य मंडल पूना रिपोर्ट पेज ९७ पता चित्रशाळा प्रेस पुणें "—पुस्तक सिर्फ ।||) में मिलती है।

१३

प्रश्न:—' सिद्धान्तोक्त परममंद फल व परमक्रांति आज कल वेधोपलब्ध नहीं मिलते हैं। तो भी सिद्धान्त ग्रंथ का महत्व रखने के लिये गणितमें उन्हीं का अंगीकार किया है तो सिद्धान्तोक्त अथवा ग्रहलाघव के अयनांशों का अनादर क्यों किया। '

उत्तर:—जिस अयनांशों के लेने से भारतीय कुल ज्योतिष ग्रंथों के गणितागत आरंभ स्थान की शुद्ध नाक्षत्र व केंद्रीय मान से एक वाक्यता हो जाती है उन्हीं शास्त्रशुद्ध अयनांशों के साधन में परम मंदफल और परम क्रांति वेधोपलब्ध ही ली गई है। इससे सिद्धान्तोक्त ग्रहलाघवादि कुल ग्रंथों का उपयोग होने से उनका आदर बढाया है.

१४

प्रश्नः—सद्यादिक् साधन करना यह यदि साध्य है तो प्रत्यक्ष मानों को स्वीकार करना चाहिये ?

उत्तरः—हमने शंकु यंत्र से शुद्ध दिक् साधन किया है तभी उसके द्वारा लाई क्रांति अन्य वेधोपलब्ध मानों के तुल्य है। क्योंकि हमने सभी प्रत्यक्ष मानों का अंगीकार किया है और वही प्राचीन ग्रंथों से अविरुद्ध ही नहीं; युक्त हैं।

१५

प्रश्नः—छाया प्रवेश के समय नॉटिकल से जो प्राप्त होती है वह क्रांति-४°।१७'। ४४·"५। छाया निर्गम क्रांति-४°।१३'।५०"·९ इसमें अंतर-०°।३'।५४" है.

उत्तरः—यह अंतर छाया प्रवेश निर्गमकाल के दिन गत्यंतर के तुल्य है। तब हमारे वेधसिद्ध परिमाण नाटिकल के तुल्य मिल जाने से आपने उसकी प्रशंसा करनी चाहिये।

१६

प्रश्नः—आपका प्रयत्न स्तुत्य है। दृक्‌सिद्ध उपकरणों का अंगीकार करना यही शास्त्रोन्नति का मार्ग है.

उत्तर—आपका कथन स्तुत्य है; किंतु प्राचीन ग्रंथों को ही योग्य चालन देकर दृक्‌सिद्ध करने में ही भारतीय शास्त्रोन्नति का मार्ग है न कि उसे छोडकर परावलंबन में।

भाग २ = लेखी शास्त्रार्थ प्राक्कथन

इस अयनांश निर्णय संबंध के शास्त्रार्थ में प्रथम विधान और अंतिम प्रत्युत्तर रूप समाधान के लेखक प्रस्तुत कमेटी के सभापति विद्याभूषण दीनानाथ शास्त्री चुलेट हैं और परीक्षण के लेखक प्रिंसिपल गोविंदरावजी आपटे साहब हैं।

पहला विधान (अ)

१ (अ) मैंने अब तक जो ग्रंथ देखे हैं—और मैं नम्रतापूर्वक यह निवेदन करने का साहस कर सकता हूं कि; मैने करीब २ सब ग्रंथ देखे हैं- उनके अनुसार किसी सिद्धान्त या करण ग्रंथ में रेवती योग तारे का भोग शून्य अंश एवं शून्यशर नहीं माना है।

परीक्षण.

१ (अ) हें विधान साफ खोटें आहे। कारण—(१) सिद्धांत शिरोमणि भग्रह युत्यधिकारांत लिहिलें आहे कीं " **सभामराः खमिति यांत खं म्हणजे शून्य अंश हा रेवती**

भोग होय.(२)प्रला."**खं दत्तायन दक्कृया**" यांतील खं म्ह. शून्य अंश हा रेवती भोग होय. (३,४) ब्रह्मगुप्त सिद्धांत, द्वितीय आर्य सिद्धान्त यांत ही रेवती भोग शून्य लिहिला आहे. (५,६) दामोदरीय सिद्धान्त सुंदर सिद्धान्त, यांत ही रेवती भोग शून्य मानिला आहे. (७) गोलानन्द "**रेवती योग तारातु सदा मीनाज संधिगा**" यांत ही रेवती योगताराभोग शून्य मानिला आहे. हे सात ठळक शास्त्राधार रेवती भोग शून्य असल्या बद्दल दिले आहेत. शिवाय आणखी आधार ही धुंडल्यास सापडतील. रेवतीचा शर शून्य असल्या बद्दल सर्वच ग्रंथांची साक्ष आहे. काहीं उदाहरणें देतो.

१ सि. शि. "**त्रिभागोजिना उत्क्रांति खं**" यांत खं=० हा रेवती शर होय. २ ग्र. ला. "**कर्णास्त्रिंशदरित्रयः ख जिनभाऽभ्रं**" यांत अभ्रं=० हो रेवती शर होय. ३ सू. सि. ४ द्वि. आर्य सि. ५ ब्रह्मगुप्त सि. ६ सार्वभौम सि. ७ ग्र. ला ८ ब्र. सि. ९ पितामह सि. १० सू. सि. ११ सोम सि. इत्यादि सर्व ग्रंथांत रेवती शर शून्य सांगितला आहे.

भा. ज्यो. पृ. ३३९ " ब्रह्मगुप्त आणि त्या पुढील लल्लाखेरिज बहुतेक ज्योतिषी रेवती भोग शून्य मानितात. " तसेंच पुढें पृ. ४५७ वर लिहिलें आहे कीं " सर्वांच्या मतें रेवती योग तारा शर शून्य आहे; **भोग ही शून्याजवळ आहे.** तेव्हां **रेवती योग तारे विषयीं मत भेद नाहीं.** "

असे ढळढळित आधार असतां दीनानाथजी सकल ग्रंथावलोकन करून ही असले विधान [१ अ] करण्याचें साहस करितात याचें आश्चर्य वाटतें.

समाधान.

उपर्युक्त प्रिं. साहब का परीक्षण प्रमाण विहीन एवं असंगत है। आश्चर्य तो यह है कि जो प्रमाण परीक्षण के पुष्टि में बतलाए गये हैं वे सब परीक्षण के नितान्त विरुद्ध हैं क्योंकि उक्त विधान के लेख से लिखे संबंध का यहां प्रश्न नहीं हो कर ग्रंथकारों के मानने का है। और उक्त ग्रंथकारों ने जो ध्रुवक कहे हैं वह तारे के उपलक्ष्य में न हो कर गणितागत आरंभ बिन्दु के अर्थ में हैं। क्योंकि इनका गणितागत आरंभ स्थान अलग २ होते हुए भी बिन्दु के ही अर्थ में सब की एक वाक्यता हो सकती है। तारे के अर्थ में अनेक रेवती योग तारे माने बिना; शून्य का लिखना निरर्थक हो जाता है। तथा अनेक तारे शून्य भोग शर के हो नहीं सकते। इतनाही नहीं तो उक्त ग्रंथकारों ने नक्षत्रों के साथ युति के प्रसंग में उल्लिखित नक्षत्रों के ध्रुवकों को स्थूल (आसन्नमान के), अस्फुट और गणितागत को मुख्य कहा है अर्थात् उक्त ग्रंथकारों ने रेवती योग तारे का शून्य भोग शर नहीं माना है।' इस कथन का स्पष्टीकरण नीचे लिखे अनुसार है।

आपने जो पहले १ से ७ संख्या तक के प्रमाण बताए हैं सो ब्रह्मगुप्त और द्वितीय आर्यभट्ट मूलक करण ग्रंथ होने से वस्तुतः इनके ही नक्षत्रों के ध्रुवक उनमें कहे गए हैं। उसमें ब्र. सि. मूलक सि. शि. (गोलाध्याय दृक्कर्म प्र०) में-"**ब्रह्मगुप्तादिभिःस्वल्पान्तरत्वान्नकृतःस्फुटः ॥ स्थित्यर्धं परिलेखादौ गणितागत एवहि ॥ ११ ॥ नक्षत्राणां स्फुटाएव स्थिरत्वात्पठिताः शराः ॥ दृक्कर्मणायनेनैषां संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः ॥ १२ ॥** अर्थात्= " ब्रह्मगुप्तादि सिद्धान्तकारोंने स्वल्पान्तर के कारण स्फुट (दृक्प्रत्यय में गणितागत के तुल्य) ध्रुवाभिमुख स्पष्ट करके नक्षत्रों के ध्रुवक नहीं कहे हैं; इसलिये युति कालीन स्थित्यर्ध के परिलेखादि लिखने में ग्रंथोक्त गणितागत ग्रह ही लेना चाहिये ॥ ११ ॥ क्योंकि नक्षत्रों के शर; स्थिर प्राय होने के कारण ध्रुव सूत्रीय स्पष्ट ही हैं। किंतु उनके साथ २ दृक्कर्म और अयन भागोंसे युक्त ही उनके ध्रुवक पढे गए हैं। " पुनः इसी का स्पष्टीकरण (भग्रह युत्यधिकार में) किया गया है कि:- "**इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मका ध्रुवाः ॥ कथिताश्चस्फुटा बाणाः सुखार्थं पूर्वं सूरिभिः ॥ १७ ॥ अयनांशवशादेषा मन्यादृक्त्वंच जायते ॥ शरज्या अस्फुटाः कार्याः स्फुटीकृति विपर्ययात् ॥ १८ ॥ ताभिरायन दृक्कर्म मुहुर्व्यस्तं ध्रुवेष्वथ ॥ अयनांश वशात्कार्यं तद्दृक्कर्म यथोदितम् ॥ १९ ॥ एवंस्यु ध्रुवकाः स्पष्टाः शरज्याश्च ततः स्फुटाः ॥ २० ॥ ततो भग्रह योगादि स्फुटं ज्ञेयं विजानता ॥ इत्याधिक्येऽयनांशाना मल्पत्वेत्वल्पमन्तरम् ॥ २१ ॥** " **यदा तैः पठितास्तदाप्रायस्तेषामयनांशानामाभावः संभाव्यते ये पाठ पठितास्तेस्थूलाः ॥ अत्रायनांशाना मल्पत्वेऽल्पमन्तरं कृतेऽपि तस्मिन् कर्मणि भवति । बहुत्वेतु बहु ॥** " " **अथ च येवा तेवा भगणा भवन्तु । यदायेंशानिपुणै रुपलभ्यन्ते तदा सएव क्रांतिपातः** "

इस प्रकार भास्कराचार्यने नक्षत्रों के ध्रुवकों की अपेक्षा गणितागत आरंभ स्थानको मुख्य माना है। उसी के अनुसार शके १०७२ के पूर्व ११ अयनांश और ७७ रव्युच्चको-तथा इसी के ध्रुवक ग्र. ला. में लिखे गए हैं। और उसमें शाके १४४२ के अयनांश १६°।३८' एवं रव्युच्च ७८ कोलिखकर जो ग्रहोंके भगणारंभ स्थान कहे गए हैं उनसे स्पष्ट है कि शून्य भोगशरवाले किसी भी तारेका उससे संबंध रहताही नहीं है।

अब द्वि. आ. सिद्धान्त भग्रहयुत्यधिकार में क्या लिखा है सो भी सुन लीजियेः-" **योगः-प्रायोदृश्योऽदृश्यत्वे नाग्रहः कार्यः ॥ तदुदीरयामि गोले नो साम्यं हेतुना येन ॥ ९ ॥ नार्यव्यर्थोऽध्यायो यस्माद्ग्रह योगजेऽहि शुभकर्म ॥ नेष्टंखगादिक् स्थितिजं फलं निरुक्तंच गर्गाद्यैः ॥ १० ॥ रजनीकरसंयोगाज्ज्ञेयाः स्पष्टा महीजाद्याः ॥ पाराशर्यादि मते विवरं नेच्छति दृष्टिफले ॥ ११ ॥** " अर्थात् " नक्षत्रों के लिखे हुए ध्रुवकों के अनुसार ग्रहों की युति कभी तो दृश्य होती है कभी नहीं होती। यह हम गोलाध्याय में कहेंगे कि किस कारण भग्रह युति ठीक ठीक नहीं मिलती ॥ ९ ॥ यदि यह कहें कि ऐसे नक्षत्रों के स्थूल

ध्रुवकों से ग्रह युति का यह अध्याय व्यर्थ ही क्यों कहा गया ? किंतु यह ध्रुवक इतने स्थूल नहीं हैं कि जिसमें दिनों का अंतर हो जाय। और गर्गादि ऋषियों ने ग्रहयुति का दिन * (पूर्ण नक्षत्र १३° । २०′) ही शुभ कार्य में वर्ज्य एवं युति की दिक्स्थिति से फलित कहा है ॥ १० ॥ यदि किसी को नक्षत्रों के साथ ग्रहों की दृश्य युति को देखनी हो तो गणितागत चंद्र के नक्षत्र भोग से भौमादि स्पष्ट ग्रहों की युति देखें क्योंकि पाराशरोक्त करणागत ग्रहों के दृक्प्रत्यय में अंतर नहीं रहता यह सर्व सम्मत है" ॥ ११ ॥ तथा आगे गोलाध्याय में स्पष्ट कह दिया है कि " **दिनगण भगणाः स्पष्टा यदि तज्जाता ग्रहाःस्फुटा न कुतः ॥ ९६ ॥** " अर्थात्:—"गणितागत दिनगणों से शुद्ध किये भगणों (योग ताराओं) के स्पष्ट होने पर स्पष्ट ग्रह के युति कालादि शुद्ध (दृग्गणितैक्ययुक्त) कैसे नहीं होंगे ? "

इस प्रकार बडे बडे देदीप्यमान ताराओं के ध्रुवक भी युतिदिन दर्शक मात्र स्थूल (आसन्नमान के) कहे गए हैं; तब निःसंदेहरूप एक तारा नक्षत्रों के अतिरिक्त आंखों से पहिचानने में नहीं आने वाले; छोटे छोटे ३२ ताराओं के पुंज (झुंड) में से एक (भगणांत रूप रेवती) योगतारे के भोगशर के संबंध में वह खं ख=शून्य=बिन्दु नहीं कहें तो क्या कहें ?

जबकि इसी आर्य सिद्धान्त के ध्रुवक दामोदरभट्टतुल्य सि० सुंदर करण और गोलानंद में-कहे गए हैं। इससे तथा उक्त गोलानंद के " सदा " के कथन से; बिंदु के अतिरिक्त तारेके संबन्ध का अर्थ हो नहीं सकता ! क्योंकि मीन और मेष राशिके दृश्य तारका पुंजके संधिमें बिन्दुही सदा रह सकता है ताराओं के ध्रुवक दृक्कर्म संस्कृत होने से अयनभागोंसे एवं निजगतिसे इधर उधर हटे बिना सदा स्थिर नहीं रह सकते।

कोष ग्रंथों में भी " **खं शून्ये, बिन्दौ, मुखे, ॥ इति हैमः** " ऐसा लिखा होनेसे यहां बिन्दु और मुख यानी आरंभस्थान के अर्थ में " खं " शब्द कहा गया है। ऐसा पूर्व कथनसे सिद्ध होता है। क्यौंकि यदि रेवती तारे के अर्थमें कहा होता तो उक्त ग्रंथों के गणितागत भगणारंभस्थान से उसकी एक वाक्यता होनी चाहिये थी। या रेवती तारे के द्वारा भ (नक्षत्र) गणोंका मेल कर लेना लिखा होता किंतु ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है।

उक्त ग्रंथों के गणितागत(भगणों) द्वारा रेवत्यंत बिन्दु का स्थान शास्त्र शुद्ध सूक्ष्म-गणित के नाक्षत्रमान के तुल्य ही निश्चित होता है सो उनमें से १ सि. शि. भास्करा-

---

* **यस्मिन्धिष्ण्ये भवेच्चंद्रोग्रहस्तत्रयदाभवेत् ॥ युति दोषस्तदाज्ञेयः ॥ १ ॥ इति ज्योतिर्निबन्धेगर्गः** । मु. चिं. पीयूषधारा आदि में क्रूरा क्रांत व युति दोष में भी पूर्ण नक्षत्र नेष्ट कहा है।

चार्य के एवं (२) प्र. लाघव के उच्च और अयनांश बताए गए हैं; उनसे और (३) ब्रह्मगुप्त के शक ५८७ अधि चै. ३० शनिवार अर्ध रात्रि के म. रवि ०।°०।३२'।२२" में उसी के उच्च व परम फलांतर +१°५१'।९" का संस्कार करने पर म. रवि ११।२८।४१।१३ हो जाने आदिसे, (४) आर्य भट के शक ८७५ में अयनांश ७°।८' उच्चांतरों २°।६' द्वारा शुद्धायनांश ९।१४ और अब्दप ५।४३।३५ ति. शु. ६.८७ होनेसे, (५) आर्य भट तुल्य दामोदर के शक १३३९ चै. शु. ४ रवाविष्टं ४९।१४ अयनांश १४।४०, (६) ज्ञानराज सि. सुंदर करण के श. १४२५ में म. रवि ११।०।१४।१७ आदि क्षेपकों द्वारा म. मेषार्क चै. कृ. १३ गुरौ १२।२८ अयनांश १६।२, (७) चिंतामणि दीक्षित कृत सू. सिद्धांतानुसारी गोलानंद करण के श. १७१३ चै. शु. ७ भौमे ३३।३७ के क्षेप व अयनांश २०।४३, इन सब का शुद्ध नाक्षत्र मान के आरंभ स्थानसे मेल हो जाता है।

इतनाही नहीं तो म. म. सुधाकर द्विवेदी कृत प्रि. ला. की टीकामें तीनों सिद्धान्त ग्रंथों के कहे हुए सभी ग्रहों के भगणों से प्रस्तुत आरंभ स्थान की एक वाक्यता तथा हमारे वेदकाल निर्णय पृष्ठ ८० में; इनसे बने हुए नक्षत्रों के शुद्ध कदंबाभिमुख भोग शर आदि एवं प्रस्तुत पंचांग कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ ९५-१०३ में उच्चान्तर जन्य मंद केंद्रीय संस्कार के कारणको देखेंगे तो विधान साफ खोटा है या परीक्षण बिलकुल गलत है सो गोविंदरावजी को स्वयं मालूम हो जायगा।

अब रहा भा. ज्यो. पृ. ३३९. के दीक्षित कथन का सारांश जो कि प्रि. साहब की लिखी पंक्ति के ही आगे इस प्रकार लिखा है:- **परंतु त्यांचे आरंभ स्थान रेवती योग तारेशीं कधींच नव्हतें व असणार नाहीं. साम्प्रतच्या सूर्य सिद्धांताचें स्पष्ट मेष संक्रमण होण्याचा वेळीं प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योग तारेशीं (झिटापिशियमशीं) कधीं होता हें काढून पाहतां असें वर्ष शक १७७ येतें.** किंतु प्रि. साहेब बहादुर ने इस कथन को छुपा (लुका) कर ऊपर तो शून्य भोग बताना; फिर उसी कालम के नीचे "भोग ही शून्या जवळ आहे" ऐसे आसन्नमान को स्वीकारना मानों हमारे ही विधान का प्रमाणों में समर्थन और बताने में परिक्षण करते हुए उक्त ग्रंथों में से ही नहीं वरना भारतीय कुल सिद्धांतादि ग्रंथों में से एक के भी भगण या अयनांशों से आपकी स्वीकृत (झीटा) रेवती को तनिक सा भी आधार नहीं बताते हुए मेरे सकल ग्रंथावलोकन के ऊपर एक कलम की फटकार से पानी फेरने के प्रयत्न करने में एवं यथार्थ कथन को साहस बतादेने में ही गोविंदरावजी की बहादुरी का आश्चर्य है।

विधान १ (आ)

किन्तु रेवती पुंज के ३२ तारों में से एक तारा आसन्न भोग शर का माना गया है।

परीक्षण.

(आ) रेवती पुंजांत सर्वांत दक्षिणे कडे असून क्रांति वृत्तावर स्थित असलेला जो तारा तोच रेवती योग तारा होय. " **भरण्या म्रेय पित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा** " असें सू. सि. सोम. सि. लिहिलें आहे. " **तथैव भरणी पित्र्य रेवतीनांच दाक्षिणा** " असें वृद्ध वसिष्ठ सिद्धांतांत ही लिहिलें आहे या वरून हें अवश्य लक्षांत ठेविले पाहिजे कीं रेवती पुंजांतील सर्व तारे क्रांति वृत्ताच्या उत्तरेसच असलें पाहिजेत- व ते सर्व रेवती योग ताऱ्याच्या पश्चिमेसच मानले पाहिजेत. त्यां पैकीं कांहीं तारे क्रांति वृत्ताच्या दक्षिणेसही आहेत असें कोणी म्हणेल तर तें चुकीचें आहे. अशीच चूक शं. बा. दीक्षित यांनी केली आहे. (पुणे शके १८४७ च्या पंचांग सभेचा रिपोर्ट पृ. ८९–९० व १०७ पाहा. The conjunotiom star of the groups रेवती is said to be its southern-most memcer. अर्थात खरा विचार करताना आपण ही चूक टाळली पाहिजे. व्हिटने-चेही मत महत्वाचें आहे. (सदर रिपोर्ट पृ. ८९ पाहा.)

समाधान १ (आ)

इस परीक्षण की तो हँसी आती है। क्यौंकि जिस गलतीको समझकर ज्यो. दीक्षित जी की गलती बताई गई है वहां उनकी गलती न होकर यहां जो प्रिं. साहब ने भा. ज्यो. शा. पृ. ४९४–९५ में की रेवती के भोग को लुकाकर उसके शरकी पंक्ति उध्दृत की हैं उसमें उत्तर की जगह दाक्षिण लिखा जाने से) हो स्वयं आपही गलती खागए हैं। देखिये– " (१) सू. सि. अ. ८ श्लो. ९, (२) सोम सि. पृ. २१ श्लो. ८, (३) वृद्ध व सिष्ठ सि. ८-८ पृ. ४७, उदग्दिशस्ते चशराः सपूष्णम्, (४) द्वि. आर्य सि. पृ. ११९ श्लो. ८, (५) सि. शि. पृ. २१९ श्लो. ६ उत्तरा शेषभानाम्, (६) ग्र. ला. (७) ब्रह्मगुप्त, (८) सार्वभौम सि., (९) पितामहसि, 'रेवतीनामुत्तरः' और (१०) ब्रह्मसि. पृ.३९" इत्यादि सब ग्रंथों में पुष्य और मघा की तरह रेवती का शर शून्य लिखा होते हुए भी उसकी उत्तर दिशा बतलाई है। तब जिस प्रकार पुष्य की ४'४' और मघा की २७'६' उत्तर शर कला हैं। उसी प्रकार रेवती की योग तारा भी क्रांति वृत्त के उत्तर में कुछ तोभी कलाओं से अंतरित होनी चाहिये। अन्यथा उत्तर शर के संबन्ध में सभी ग्रंथों की एक वाक्यता हो नहीं सकती।

किंतु प्रिं. साहब महानुभाव की कल्पित [झीटा] रेवती बहुतही छोटी तारा होते हुए भी क्रांति वृत्त से १२'०० कलांतरित दक्षिण शर वाली है इसलिये वह रेवती की योग तारा हो नहीं सकती। बाकी आरंभ स्थान से संबंध रखने वाली क्रां. वृ. के उत्तर में कुछ कलांतरित दूसरी कुछ बडी तारा नहीं है अर्थात् बहुत छोटी हैं इसलिये और " **इति ताराग्रहाणांस्युध्रुव संख्यानमेवाहि ॥ प्रयोजनविशेषोऽस्ति न जाने तत्र कारणम् ॥ १२ ॥**

['न जाने तत्र गण्यते ' इत्यपि मुद्रित पुस्तके पाठः] इस सोमसिद्धान्त (पृ. २१) के एवं " दृश्यते यस्य तस्यापि न स्वप्नेऽपि शिवस्मृतिः ॥ १६९ ॥ इस ब्रह्मसिद्धान्त [पृ. ३२] के कथन से तो स्पष्ट हो जाता है कि धुवकों में कहे हुए कई तारे निजगति से इधर उधर हो गए हैं, कई एकों की प्रति छोटी हो गई है, जिनके स्थानों की ठीक २ स्मृति भी नहीं है-इसलिये अब हमने उसे बिन्दुरूप कहा है। क्योंकि इतनी छोटी तारा वेध लेने में निरुपयोगी है।

प्रो. व्हिटने के कथन का खंडन (भा. ज्यो शा. पृ. ४२८ में तथा पृ. ४९४-५१८ में " युरोपियनांचे अभिप्राय " तथा " वरील मतांचे परीक्षण " में]-किया गया है इस पिष्टपेषण की यहां कुछ आवश्यकता नहीं है।

विधान २

२ मेरे इतने लिखने से प्रिं. साहब का समाधान न होगा इसलिये मैं विस्तार पूर्वक लिखता हूं वह इस प्रकार है कि;— सोमसिद्धान्त में ३५९°, ३′० ब्रह्मसिद्धान्त और सूर्य सिद्धान्त में ३५९°।५०′, वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त में ३५९।० इत्यादि प्रकार से आरंभ स्थान से १ अंश कम तक रेवती की योग तारा कही गई है। और सूर्यसिद्धान्त तथा अन्य ग्रंथों में इसके शरके संबंध में कई जगह " खं " अर्थात् कुछ नहीं ऐसा लिखा हुआ है और कई जगह अन्य तारों के शर कहकर रेवती शर के संबंध में कुछ लिखा भी नहीं है।

परीक्षण २

रेवती भोग ३६० न मानणारे ग्रंथ थोडे आहेत ब्रह्मगुप्तानंतरच्या सर्व ग्रंथकारानी रेवती भोग ० मानला आहे. यास फारतर १ किंवा २ अपवाद सांपडतील. रेवती शर शून्य तर सर्वांनाच सम्मत आहे. (भा. ज्यो. पृ. ४५० पाहा) एखाद्या ठिकाणीं दिला नसल्यास तो शून्या शिवाय काहीं आहे असे मानता येत नाहीं. कारण ज्यांनीं दिला आहे त्यांनीं शून्यच दिला आहे. " खं " म्हणजे शून्य ही परिभाषा तर प्रसिद्धच आहे· " **पैत्रर्क्ष पुष्यान्तिम वारुणानाम् क्षद्वयं नेमिगतं यथास्यात् ॥** " अशा रीतीनें चक्र यंत्र धरावें म्हणजे तें क्रांतिवृत्ताच्या पातळींत (धरातलांत) येतें असें सि. शि. त. लिहिलें आहे. त्यावरून रेवती शर शून्य हें स्पष्ट आहे.

समाधान २.

बडी आनंद की बात है क्यों कि:—पर्याय से क्यों न हो आपने स्वीकार कर लिया है कि ब्रम्हगुप्त के पहले के कुल ग्रंथों में तथा बाद के एक दो ग्रंथों में रेवती का शून्य भोग

नहीं लिखकर आसन्नमान कहा है। और सि. शि. के " पैत्र्यर्क्ष० " श्लोक के भावार्थ से यह भी अर्थ निकलता है कि वेध लेने में रेवती मुख्य न होकर पुष्य, मघा और शतभिषक् की योग ताराओं के ऊपर यंत्र रखने पर उस यंत्र के रेवत्यंत विभागपर जो तारा दिखे सो रेवती तारा है। लेकिन उक्त तीनों नक्षत्रों की ताराओं के शून्य शर लिखे होते हुए भी सूक्ष्म गणित से कुछ कलारूप इनका जैसा शर उक्त दिशा में है ऐसा रेवतीका भी ग्रंथोक्त उत्तर दिशा में शर चाहिये इसका विचार आपने नहीं किया है। अब यदि आप इसे तारा मानते हैं तो चित्रा के १८० अंश के क्रांति वृत्त के कुछ उत्तर दिशा में एक छोटी तारा आकाश में दिखाई देती है जोकि सात आठ प्रति के सूक्ष्मताराओं के पुंज दर्शक बडे तारों के एटलासोंमें भी लिखे गई है। और यदि बिन्दु मानते हैं तो " बिन्दौ ख रोहिते " इति हैमः। " खं " का अर्थ बिन्दु भी होता है।

विधान ३. (क)

गोल बन्ध में रेवती तारे को वेधकर उसे आरंभ स्थान में मानकर उसके द्वारा दृश्य ज्योतिः का गणिता गत से ऐक्य कहां भी नहीं बताया गया है।

परीक्षण ३. (क)

(१) वस्तु स्थिती याच्या उलट आहे. सि. शिरोमणींत भास्कराचार्य लिहितात कीं " रात्रौ गोल मध्यग चिन्ह गत या दृष्ट्या रेवती तारां विलोक्य क्रांति वृत्ते यो मीनान्तस्तं रेवती तारायां निवेश्य—मध्यगतयैव दृष्ट्या अश्विन्यादेर्नक्षत्रस्य योगतारां विलोक्य तस्योपरि वेध बलयं निवेश्यम्। " मध्यमाधिकारामध्यें ही हेंच वचन दिलें आहे. मल्लारीने प्र. ला. टीकेंत ही हेंच वचन उध्दृत केलें आहे. सू. सि. सुधावर्षिणी टीकेमध्यें ही पं. सुधाकरजीं नीं ही तेंच घेतलें आहे. असें हे मोठ्या विद्वानांना संमत असलेलें वचन पं. दीनानाथ कसें नाकबूल करूं शकतात ? हें वचन व गोलानंदांतील वचन " रेवती योग तारातु सदा मीनाऽजसंधिगा ॥ विध्वांताशकले नाथ विध्योद् दास्त्रादिभान्यपि ॥ " (रिपोर्ट पृ. ८९) या वरून रेवती तारे पासूनच वेध घ्यावेत असें स्पष्टपणें सांगितलें आहे. रंगनाथानें ही रेवती तारा सान्निध्याचा उल्लेख केला आहे. (सू. सि. अ. ८ टीका)

समाधान. (क)

यह परीक्षण बिलकुल असंगत और प्रमाण शून्य है। क्योंकि आपने (१) सि. शि. (२) मल्लारि (३) सुधाकर द्विवेदी (४) गोलानंद और (५) रंगनाथादि टीकाकारों के अपूर्ण वाक्य उध्दृत करके रेवती से उस समय वेध लिया जाता था ऐसा बताने का प्रयत्न

कर वस्तुस्थिति को उलटी बताई है। लेकिन वस्तुतः आपकी ही समज उलटी है। भास्कराचार्य और आर्य सिद्धान्त के कथन से (समाधान १ में) बताया गया है कि ब्रह्मगुप्त के इधर के ग्रंथोक्त ध्रुवको में अयनभाग मिश्रित हाने से व: स्थूल और केवल नक्षत्र विभाग दर्शक मात्र होगए हैं। किंतु सूर्य, सोम, पराशर, वृद्ध वसिष्ठ और ब्रह्म सिद्धान्त एवं वराहोक्त प्राचीन ग्रंथों में शून्यायनांश कालिक ध्रुवक व भोग लिखे हैं । उनमें भी आपकी झीटा रेवती से वेध नहीं लिया जाता था। उदाहरण सू. सि. का ही लीजिये '**गोलं बध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं स्फुटम्.** (८-१२) इस कथन में रेवती द्वारा अन्य ध्रुवकों को जाँचना नहीं लिखकर गणितागत से ध्रुवकों को जाँचना ध्वनित किया है। अतएव रंगनाथ ने (आपके उध्दृत वाक्य के आगे) "**अश्विन्या दे योग तारां विलोक्य तस्या उपरि तद्वेध वलयं निवेश्यम्** " "**कदंब प्रोत वेधवलयेन वेधेतु सदास्थिरा ध्रुवका आयन दृक्कर्मा संस्कृताः। परन्तु कदंब तारयोरभावादशक्यमिति** " रेवती को आसन्न कहकर अश्विनी के ध्रुवक ८ अंश से उसका मेल करना लिखा है। झीटा से अश्विनी का सापेक्ष अंतर १०°।५१'.२ होने से ग्रंथोक्त से + २°।५१.२' आगे है। किन्तु इनही ग्रंथोमें लिखे हुए चित्राभिमुख बिन्दु से अश्विनी भोग७°।४३' होने से वह सिर्फ-१७' कला न्यून (स्वल्पान्तर तुल्य) आज है। इससे स्पष्ट मालुम हो जाता है कि उस समय में झीटा को रेवती नहीं मान कर उसके निकटवर्ती बिन्दु से ८ अंशपर अश्विनी योग तारा को मान कर अन्य ताराओं का वेध लिया जाता था यह आपके ही प्रमाणों से सिद्ध होता है।

तथा आपके पांचों प्रमाणों के गणिता गत का झीटा को रेवती मानने से मेल न हो कर चित्रा के सन्मुख बिन्दु से मेल मिलता है। (१) शाके १०७२ में भास्कराचार्य ने अयनांश ११°, (२) शा. १५२४ में मल्लारिने रव्युच्च ७७°।५६'।४१" व अयनांश १८°।२३'। (३) म. सुधाकर द्विवेदीने दिङ्मीमांसा (पृष्ठ ११) में चित्रा के १८°०, अश्विनीके ८° ध्रुवक तथा ग्र. ला. टीका में शक १४४२. के अयनांश १६°।३८' उच्च ७८°, और यही परिमाण (४) गोलानंद में लिखे हैं एवं शाके १५१३ चै. शु. ९ शानिवारेष्ट घटी ४९ का म. रवि ११।१७°।५६'४१" उच्च ७८° अयनांश १८।१२' आदि लिखे हैं। सो शुद्ध नाक्षत्र मान के अयनांश १८°।८'।१६" के सिर्फ- ३'।४४" स्वल्यान्त से तुल्य हैं। किंतु झिटा से गिनने में करीब ३।४ अंशों का अंतर सभी परिमाणों से है। इससे चित्राभिमुख बिन्दुरूप रेवती की सार्थकता और झिटातारारूप रेवती की निरर्थकता स्वयं निश्चित हो जाती है।

परीक्षण. (ख)

(२) रवीच्या उच्चाच्या उपपत्तीचें उपपादनांत सि. शि. कार भास्कराचार्य लिहितात कीं "मिथुनस्थे रवौ कस्मिंश्चिद्दिने रेवती तारको दया द्यावती भिर्घटिकाभीरविरुदितस्ताव

तीभिर्मीनान्ता लग्नं साध्यम्" या वचनांत ही नक्षत्रारंभस्थानीं रेवती योगतारा असल्या बद्दल स्पष्ट उल्लेख आहे-

समाधान. (ख)

(२) यह उल्लेख झीटा के संबंध में बिलकुल नहीं है। किंतु क्रांति वृत से कुछ कलांतरित उत्तर शरवाली रेवती तारा के उपलक्ष्य में है जोकि-समाधान २ के अंतिम पंक्ति में बताया गया है।

लेकिन इस प्रकारके वेध के कथन; केवल वाचनिक हैं। जैसाकि भास्कराचार्य ने ही स्वयं कहा है:-"**मंदोच्चानांतु वर्षशतैरनेकैः॥ अतोनायमर्थः पुरुषसाध्य इति अतएवाति प्राज्ञागणकाः सांप्रतोपलब्ध्यनुसारिणं " कमप्यागम मंगीकृत्य ग्रहगणितभात्मनो गणितगोलयोर्निरतिशयं कौशयं दर्शयितुं " ग्रंथान् रचयंति। यथात्रग्रंथे ब्रह्मगुप्तस्वीकृतागमोंगीकृत इति।** ' ' **तस्योच्चस्य चलनं वर्षशतेनापि नोपलक्ष्यते। किंत्वाचार्यैश्चंद्रमदोच्चवदनुमानात् कल्पितागतिः। सा चैवम्। यैर्भगणैः साम्प्रताहर्गणाद्वर्षगणाद्वा एतावदुच्चं भवति तेभगणा युक्त्या कुट्टकेन वा कल्पिताः** " इसमें सांप्रतिक अहर्गण या वर्ष गण से उच्च का निश्चय कर लेना कहा है। उनके भगण तो अनुमान कल्पित हैं। यदि झीटा से उच्च गिना जाता तो ८० अंश १७ कल. कहना था लेकिन वह तो ७७।५५' कहा गया है। जोकि केंद्रीय भाग निकाल देने पर ७३° १७' के करीब आता है। और उसकी चित्राभिमुख बिन्दुरूप रेवती से एक वाक्यता होती है।

परीक्षण. (ग)

(३) भा. ज्यो. पृ. २०१ मध्यें असें स्पष्ट लिहिलें आहे कीं-" शके ४९६ च्या सुमारास रेवती योग तारा संपातीं होती हें खरें. " यांतहीं तो तारा आरंभस्थानीं मानल्याचा स्पष्ट उल्लेख आहे.

समाधान. (ग)

(३) उक्त परीक्षण बिलकुल गलत है। क्योंकि ऊपर जो वाक्य लिखा है सो अधूरा (अपूर्ण) है। इसी कालम में इस कथन के विरुद्ध लिखा है जैसाकि; " हें खरें. वत्याप्रमाणे त्या वर्षीं अयनांश शून्य मानावें असें ह्मणतात. परन्तु भारतीयांनी शक ४४५ च्या सुमारें शून्य मानलें तेंच त्यांच्या पद्धतीस अनुसरून बरोबर आहे असें पुढें अयन चलन विचारांत दाखविलें आहे. " इस कथन में सूर्य सिद्धान्तादि के मंदकेंद्रीयमान के मेषार्क काल संबंध के शून्यायनांश शक वर्ष ४४५ में कहे गये हैं।

झीटा तारे के रेवती संबंध में तो (भा. पृ ३३८-३९) में ऐसा लिखा है:- "छायेवरून सूर्याचे भोग काढण्याची रीति सूर्यसिद्धान्तांत त्रिप्रश्नाधिकारांत १७ पासून १९ पर्यन्त श्लोकांत दिलेली आहे. आणि तो रवि सायन होय हे निर्विवाद आहे. या वरून सायन रवि आणि ग्रंथाकरून आलेला रवि यांचे जें अंतर ते अयनांश असें अयनांशाचें लक्षण आमच्या ग्रंथांत आहे."

" वरील विवेचनावरूनच आणखी असें दिसून येईल कीं रेवती योग तारेशीं **अयनांशाचा किंवा अयनगतींचा कांहीं संबंध नाहीं**. या विषयीं थोडासा जास्त विचार करूं. सांप्रतच्या सूक्ष्म शोधावरून नाक्षत्र सौर वर्षाचें मान ३६५ दि. १५ घ. २२ प. ५३ विपळें १३ प्रति विपळें आहे. इतकें जर आमच्या ग्रंथांतलें वर्षमान असतें तर रेवती योत तारेचा किंवा दुसरी एकादी तारा आरंभस्थानीं धरली असती तर तिचा अयनगतीशीं संबंध असता. **म्हणजे रेवती योग तारा (झिटापिशियम) हें आरंभस्थान धरिलें तर ती तारा शक ४९६ मध्यें संपातीं होती म्हणून तें वर्ष शून्या यनांशाचें मानलें पाहिजे होतें. व पुढें रेवती योग तारेचें संपाता पासून जें अंतर ते अयनांश मानले पाहिजे होते.** परंतु आमचें वर्ष मान वर सांगितल्या इतके नाहीं. या मुळें तें नक्षत्र सौर आहे असें अगदीं खात्रीनें ह्मणवत नाहीं. तसेंच रेवती योग तारा हें आरंभस्थान म्हणावें तर सूर्यसिद्धन्तांत आणि लल्लाच्या ग्रंथांत तिचा भोग शून्य नाहीं.

आर्यभट आणि वराहमिहिर यांनीं योग तारांचे भोग दिलेच नाहींत. ब्रह्मगुप्त आणि त्यापुढील लल्लखेरीज बहुतेक ज्योतिषी रेवती भोग शून्य मानितात; **परंतु त्यांचे आरंभ स्थान रेवती योगतारेशीं कधींच नव्हते व असणार नाहीं. सांप्रतच्या सूर्यसिद्धान्ताचें स्पष्ट मेष संक्रमण होण्याच्या वेळीं प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योगतारेशीं (झिटापिशियमशीं) कधीं होता हें काढून पाहतां असें वर्ष शक १७७ येतें.**

आणि तेव्हां पासून दर वर्षास सूर्यसिद्धान्ताचें आरंभस्थान रेवती योग तारेच्या पूर्वेस ८।५१ विकला जात आहे....म्हणजे आमच्या ग्रंथांतील वर्षमान निराळें असल्यामुळें परिणाम तसा होत नाहीं. आणखी असें कीं झिटापिशियम असे नांव युरोपियन ज्योतिषी जिला देतात **व जी रेवती योगतारा असें कोलब्रूक इत्यादि युरोपियन विद्वानांनीं ठरविलें आहे, ती तारा फार बारीक आहे.** ताऱ्यांचे महत्व आणि तेजस्विता यांवरून त्यांच्या प्रती ठरल्या आहेत, चित्रा, स्वाती, रोहिणी, ह्या फार ठळक तारा पहिल्या प्रतीच्या आहेत. रेवती तारा ४ थी आणि ५ वी प्रत यांच्या मधील आहे. कोणी ती सहाव्या प्रतीची देखील मानितात. हिच्या बरोबरीच्या किंवा हिच्याहून लहान तारा २७ मध्यें दोन तीनच आहेत. सांप्रत ती आकाशांत दाखविणारे जुने जोशी क्वचित् सांपडतील.

सारांश ती इतकी लहान आहे कीं वेधाच्या कामीं तिचा उपयोग होण्याचा संभव फार थोडा, अयनांश काढण्याकरितां तर तिचा उपयोग करीत नाहींत. हें वर (पृ.१३८) दिलेल्या भास्कराचार्योक्ती वरून व सू. सि.तील वाक्यांवरून स्पष्ट आहे आमच्या ज्योतिष्यांनीं अयनगतीचा संबंध रेवती तारेशीं ठेविला असता तर ह्मणजे तिचें संपातापासून चलन एका वर्षांत सुमारें ५०।५ विकला होतें; तितकी वार्षिक अयनगति मानली असती आणि इष्टकालीं संपातापासून तिचें जें अंतर तितके अयनांश मानिले असते तर परिणाम कसा चुकीचा झाला असता याचें एक उदाहरण दाखवितों.

शके १८०९ **मध्यें** आश्विन **शुक्ल** ७ शुक्रवारीं तारीख २३ सप्तंबर १८८७ रोजीं प्रात: स्पष्ट रवि ग्रहलाघवावरून ५।७।५।२७ येतो. या वर्षी **अयनांश** २२।४५ **आहेत.** ते त्यांत मिळविले म्हणजे सायन रवि ५।२९।५०।२७ झाला. म्हणजे सूर्योदयानंतर सुमारें ९ घटिकांनीं सायन तुळा राशीचा झाला. आणि त्यामुळें त्याच दिवशीं विषुव दिन झालें आणि त्याच दिवशीं ३० घटिका दिनमान ग्रहलाघवि पंचांगांत आहे. केरोपंती पंचांग, सायन पंचांग, त्यांत या दिवशींच ३० घटी दिनमान आहे. यावरून ग्रहलाघवी पंचांगांतलें दिनमान बरोबर आहे हें उघड आहे. केरोपंती (पटवर्धनी) पंचांगांत या सुमारास अयनांश १८°।१८′।१३″ आहेत. आणि हे रेवती तारेचें संपातापासून जें अंतर तितके आहेत हें अयनांश वरील ग्रहलाघवागत रवींत मिळविले, तर सायन सुमारें ४।५ दिवसांनीं ३० घटिका दिनमान होईल. परंतु तें चुकीचें होय. तेव्हां छापादिकावरून काढलेला रवि आणि ग्रंथागत रवि यांचे जें अंतर ते अयनांश आणि तदनुसार अयन गति आमच्या ज्योतिष्यांनीं मानली तेंच योग्य केलें असें सिद्ध होतें."

इस प्रकार समग्र लेख के पढने से स्पष्ट होता है कि; जिस दीक्षित ने **झीटाके रेवतीपन का सर्वस्वी खंडन कर दिया है; ऐसा होते हुएभी प्रिं० साहब ने इसकाही आधार बताना मानो 'इसके सिवाय अब हमें झीटाके निराधारता के और दूसरे प्रमाण ढूंढने की आवश्यकताही क्या है ' ऐसा बतला दिया है। जैसे जल में डूबता हुवा मनुष्य घबराकर** काई (सेवाल) का तभी आश्रय लेना चाहता है कि जब उसको अन्य कोई तिनके का भी आधार नहीं मिलता हो।

यहां अब मुझे कहनेमें संकोच नहीं कि जो आपने "यांतही तो तारा आरंभस्थानीं मानल्याचा स्पष्ट उल्लेख आहे" ऐसा उसमें उल्लेख नहीं होते हुए भी बिलकुल **असत्य** परीक्षण करके आपकी और आपके अंगीकृत पक्षकी अपनी आप हंसी कराते हुए इससे झीटापक्ष को झूटापक्ष या शुद्ध पंचांग प्रचार में भेदोत्पादकपक्ष कहलवा देना सरीखा होता नहीं तो क्या है ! !

परीक्षण ३ (घ)

भा. ज्यो. पृ. ३३२ वरून हें लक्षांत येईल कीं " सूर्यादि पंच सिद्धांताच्या मतें सम्पाताची पूर्ण प्रदक्षिणा होत नाहीं. तो रेवती तारेच्या पूर्वेस व पश्चिमेस २७ अंशापर्यन्त जातो आणि दुसऱ्या आर्य सिद्धान्ताच्या मतें तो रेवतीच्या पूर्व पश्चिमेस २४ अंशा पर्यंत मात्र जातो " असें जें दीक्षितांनीं लिहिलें आहे त्यावरून रेवती योग ताराच नक्षत्र चक्रारंभीं मानिली आहे. हें स्पष्ट आहे, व याच ताऱ्यावरून इतर नक्षत्र ताऱ्यांचे वेध घ्यावेत या बद्दल ही वचनें वर दिलींच आहेत.

समाधान (घ).

यह परीक्षण भी निराधार, निरर्थक और असत्य है। क्योंकि दीक्षित ने तो:— " संपात विलोम गतीनें सर्व नक्षत्र मंडळांत फिरतो असें मुंजालाचें मत आहे. तसेंच संपाताची पूर्ण प्रदक्षिणा होते अशा अर्थाचें वसिष्ठ सिद्धांतकार विष्णुचंद्र यांचें एक वाक्य.... पृथूदक.... नृसिंह यांनीं दिलें आहे. " " संपाताची पूर्ण प्रदक्षिणा होते असा अर्वाचीन युरोपियन ज्योतिषांचा सिद्धांत आहे. हें प्रसिद्धच आहे. " इत्यादि लिखकर दीक्षितने संपात की पूर्ण प्रदक्षिणा को ही सिद्ध किया हैं। फिर किस आधार से आप "त्यावरून रेवती योगताराच नक्षत्र चक्रारंभी मानिली आहे " इत्यादि असत्य लिखते हैं। और झीटा (रेवती) के वेध से गणितागत आरंभ स्थान का मेळ कोई एक भी ग्रंथ से नहीं मिलाकर केवल निराधार व निरर्थक बातों की भर्ती कर रहे हैं। किंतु इससे कोई मतलब नहीं निकलता है.

विधान ४ (अ)

(अ) नक्षत्रमान का सांपातिक मान से अंतर मोजने का मुख्य साधन जो अयनांश है उसका साधन भी ग्रंथोक्त गणितागत सूर्य का छायार्क के अंतर से ही निम्न लिखितानुसार बताया गया है:— " छायार्क साधन (सूर्यसि. अ. ३ श्लो. १७-१९) में '**मध्यान्हेऽर्कः स्फुटो भवेत्**' और उस सूर्य से मध्यमार्क साधन '**बाहुफलं मध्यो दिवाकरः।**' में रेवती तारेका संबंध नहीं रखा है। आगे अयनांश साधन मे भी—

सूर्यसिद्धान्त–प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात् करणागते ॥

सोमसिद्धान्त्–प्राक्चक्रं चलितं हीना च्छायार्कात्करणागते ॥

वृद्धवसिष्ठसि.–छाया गणितागतयोर्भान्वोर्विवरंचलांशकास्तेवा ॥

सि. शिरोमणि–छायातोऽप्रातो वा भानुः संक्रांतिपातएवरस्यात् ॥

पातोनः स्फुटभानुःस्फुटभानूनोभवेत्पातः ॥ १ ॥

इस प्रकार गणितागत भगणारंभका छायार्कसे अंतरका अयनांश कहे हैं । रेवतीसे कहे नहीं ।

परीक्षण ४ (अ)

हें विधान टिकूं शकत नाहीं " छायार्कात्करणागते " हे वचन (सू. सि. अ. ३ श्लो. ११ मध्यें आहे. या वरील टीकेंत रंगनाथ म्हणतो कीं–"अत्रोपपत्तिः । छाया तो वक्ष्यमाण प्रकारेण सूर्योवर्तमान संपाताद्गणितागतस्तु रेवती योग तारासन्नाद्यावधितोऽतस्तयोरंतरमयनांशाः " म्हणजे रेवतीच्या जवळच्या दशकलान्तरित स्थानापासून जो गणितागत रवि असतो तो व संपातस्थानापासून जो छायार्क येतो त्यांचेमधील अंतर ते अयनांश असे स्पष्ट आहे. सूर्य सिद्धांतांत रेवती तारेच्या पूर्वेस १० कलांचे अंतरावर आरंभ स्थान आहे म्हणून 'रेवतीयोगतारासन्नाद्यावधि' असें म्हटले आहे. अर्थात् उक्त अनेक ग्रंथांत रेवती योगताराच आरंभस्थानीं मानिला आहे. त्यांच्या संबंधीं "रेवती योगताराद्यावधितः" असेच म्हणावे लागेल व तसेंच स्पष्टपणें भास्कराचार्यांनीं पर्यायाने म्हटले आहे तें असें भग्रहयुतींत " क्रांतिवृत्तेयोमीनान्तस्तं रेवती तारायां निवेश्य " म्हणजे आशय हा कीं रेवती ताऱ्यावर त्यांनी मीनान्त किंवा मेषादि सांगितला आहे. यावरून भास्कराचार्यांनीं जेथें जेथें निरयण मेषादि सांगितला आहे तेथें रेवती ताराच समजावयाचा यांत शंका नाहीं. गोलबन्धाधिकार श्लोक १७ चे वासना टीकेंत म्हटलें आहे कीं " येऽयन चलन भागाः प्रसिद्धास्तएव विलोमगस्य क्रांतिपातस्य भागाः । मेषादेः पृष्टतस्तावद्भागान्तरे क्रांति वृत्ते विषुवद्वृत लग्न मित्यर्थः । " यावरून अयनांश निश्चयांत रेवती तारेचा संबंध वाचनिक प्रमाणानें सिद्ध होतो. तसा चित्रा तारेचा किंवा इतर कोणत्याही तारेचा संबंध दर्शित ही केलेला नाहीं.

समाधान ४ (अ)

इस परीक्षण में दो प्रमाण लिखे गए हैं उनसे जो आपने निष्कर्ष निकाला है सो बिलकुल गलत है । वस्तुतः उलट उनसे दो बातें निश्चित होती हैं=(१) 'रेवती तारा और संपात इनमें जो अंतर वह अयनांश' ऐसी व्याख्या को बतलाने वाला कोई भी ग्रंथका-वाचनिक या औपयोगिक-प्रमाण नहीं है, और (२) झीटापिशियम यह रेवती की योग तारा न होकर चित्राभिमुख बिन्दु ही भगणका आरंभ स्थान है । क्योंकि विधान में बताए प्रमाणों में रेवती योग तारे का उल्लेख ही न होकर उसके जगह

करणागत आरंभ स्थान का उपयोग बताया गया है। किसी प्रकार उसका खंडन न होता देख आपको विवश होकर उसके मंडन करने वाले रंगनाथ की टीका का आश्रय लेना पडा है। **रेवत्या एकोनाशीतिः** ३५०।५०′ रेवती को आरंभ स्थान से १० कला कम होने से राशिचक्र के आरंभस्थान के आसन्न की और **चित्रायाश्चत्वारिंशत** चित्रा को ठीक भार्ध में राशिचक्र के ठीक २ मध्य की सूर्यसिद्धान्त और ब्रह्मसिद्धान्त में लिखे भभोगों से इसी रंगनाथ ने सिद्ध किया है। तब जो चित्रा के १८० अंश से दस कला कम हो और उसका करणागत भगणारंभ स्थान से मेल होता हो उसके अर्थ में रंगनाथ ने रेवती कहा है। इसीलिये प्रस्तुत अयनांश साधन में **छायार्कात्= "मध्याह्न छायातो वक्ष्यमाण (सू. अ. ३ श्लोक १७-१९) प्रकारेण सूर्यः साध्यस्तस्मात्.।"** **करणागते=" प्रागुक्त (अ. १ श्लो. ५३) प्रकारेणानीतः स्पष्टः सूर्यस्तस्मिन्."** **न्यूने=अंतरांशैः सूर्ययोरंतरांशैश्चक्रं क्रांतिवृतंप्राक्पूर्वस्मिन्श्चलितमिति"** रेवती का संपात से अंतर नहीं बताकर केवल करणागत के अंतरांशों को अयनांश कहे हैं। और शाके १५१३ में अयनांश १८°।११′ व उच्च ७८° कहकर भगणमध्यवर्तीचित्रा के वाचनिक को औपयोगिक बतला दिया है।

भास्कराचार्यने तो नक्षत्रों के ध्रुवकों के संबंध में **ये पाठ पठितास्ते स्थूलाः** कहकर विधानोक्त श्लोक में गणितागत स्फुटभानु का उपयोग किया है। वहां '**युक्तायनांशोऽश शतं १०० शशीचेदशीति ८० रर्कः** (पाताध्याय) चंद्र १००°−११°=८९° अंश और सूर्य ८०°−११°=६९° अंश इसमें ११ अयनांश कहनेसे नतो झीटा रेवती हो सकती है और न इसमें रेवती तारे का संबंध रहता है।

विधान ४ (आ)

उससे चित्रा नक्षत्र के क्रांति वृत्तीय बिन्दू के सन्मुख राशि चक्र का आरंभ बिन्दु मानकर ग्रहों के भगणारंभ कहे गए हैं।

परीक्षण ४ (आ)

(१) चित्रेच्या समोरच्या बिन्दूपासून ग्रहांचे भगण सांगितले आहेत हें विधान अगदींच निराधार आहे. तो एक कल्पना तरंग आहे; हें सिद्ध करण्याची फारशी गरज नाहीं. कोणाही ग्रंथकारानें एखाद्या काल्पनिक निस्तारक बिन्दूपासून भगण सांगितलें असतील असें कधींही कोणासही पटणार नाहीं कोणत्याही ग्रंथांत किंवा टीकेंत अयनांशा करितां चित्रेचा उपयोग किंवा आरंभ स्थानाकरितां चित्रेपासून मोजदाद सुचविलीं नाहीं या संबंधांत चित्रा समर्थनार्थ जितका पुरावा येत आहे तो मारून मुटकून आणलेला व हसूं येण्यासारखा आहे।

समाधान ४ (आ)

(१) यह परीक्षण गलत है। जबकि सूर्य सिद्धान्तादि संपूर्ण ग्रंथों में जोभी भगणों के आद्यन्त के संबंध में '**मेषादौ**' **पौष्णान्त** लिखा है किंतु ठीक उनके कला विकला रूप भोग नहीं लिखकर चित्राके ही १८० अंश शून्य कला शून्य विकला स्पष्ट लिखे हैं। टीकाकार रंगनाथ ने भी '**अश्विन्यादेर्योगतारोपरि वेधवलयं निवेश्यम्**' '**स्पष्ट्यादौ क्रांतिवृत्ते रेवती योग तारा सन्नाग्रिमस्थानं आद्यंतरूपं**।' अश्विनी आदि और रेवत्यंत के निकट वा बिन्दु भगणारंभ बिन्दु है। ऐसा अर्थ करके चित्रा को १८० पर कही है। सोम सिद्धान्तादि में चित्रा को भगण के ठीक ठीक मध्य में कहा है। इतना ही नहीं तो वर्तमान कालीन कुल पंचांगोक्त ग्रहों के भगणों के मध्य; चित्रा भोग से मिलते हुए हैं। इतने पुष्ट प्रमाण होते हुए भी गोविंदरावजी के यह नजर में नहीं आना आश्चर्य है।

परीक्षण ४ (इ)

(२) कृत्तिका, पुनर्वसु, मघा, चित्रा या ताऱ्यांमधील हल्लीं वेधोपलब्ध अंतरें चित्रेचे १८० मानणाऱ्या ग्रंथांत दिलेलीं असती तर त्या पैकीं कोणत्याही तारे पासून आरंभस्थान एकच आलें असतें पण तसें नाहीं. उदा० चित्रेपासून १८० अन्तरावरील स्थान मघापासून १२६ अंतरावर असलें पाहिजे कारण त्याचे अंतर ५४ आहे। परंतु सू० सि० तांत मघाचित्रांतर १८०° ४८′–१२९°=५१° ४८′ असल्या कारणानें या दोन्ही ताऱ्यांवरून येणारी आरंभस्थानें भिन्न येतात व तीं २° १२″ इतकीं अंतरित असतील यामुळें ताऱ्यांच्या भोगावरून आरंभ स्थाना कडे जाणें युक्ति युक्त नाहीं.

समाधान ४ (इ)

(२) यह कथन भी असंगत है। ताराओं की निज गति के तथा योगताराओं की भिन्नता के कारण कालावधि होने से सभी ताराओं के भोग में एक दो अंशों का अंतर पडना स्वाभाविक बात है लेकिन चित्रा की निजगति अत्यल्प (एक हजार वर्ष में एक कलामात्र) होने से इसमें विशेष अंतर पडा नहीं है। और वैदिक काल से ही चित्रा को क्रांति वृत में के ठीक मध्य में मानते आए हैं (ऋग्वेद निविद अध्याय में संपूर्ण नक्षत्रों की गणना चित्रा से ही की गई है.) इसलिये चित्रा को ठीक क्रांति वृत के मध्य में मानकर नक्षत्रों के वर्तमान वेधोपलब्ध अंतर भा. ज्यो. पृष्ठ ४५२-४५५ में सन्मत (दीक्षित का मत) की पंक्ति में, नक्षत्र विज्ञान (कोष्टक ६) में ज्योतिर्विद् केतकर ने और वेदकाल निर्णय (पृष्ठ ८०) में मैने योगताराओं के भोग शर लिखे हैं।

नक्षत्र तारा	भोग		चित्रांतर	
	°	°		
कृत्तिका	३६	९	१४३	५१
पुनर्वस	८९	२४	९०	३६
मघा	१२६	०	५४	०
चित्रा	१८०	०	०	०

इसमें को ही भी तारे से आरंभ स्थान एक ही आता है। और वह भी तेजस्वी निःसंदेह तारों से।

लेकिन यहां आपने ग्रंथोक्त और आधुनिक वेधोपलब्ध में जो भिन्नता दर्शाकर तारों के भोग पर से आरंभ स्थान को निश्चित करना युक्त नहीं कहा है। उसमें आज हजारों वर्षों का अंतर होते हुए भी ताराओं की दृश्य निजगति का विचार तक नहीं करना आश्चर्य ही नहीं भ्रमोत्पादक है।

परीक्षण ४ (ई)

(३) विशेषत: आरंभ स्थानीं सांगितलेल्या रेवतीताऱ्याचे भोगशर जर उपेक्षणीय मर्यादेंत झीटातारेशीं जुळत आहेत तर वरील द्राविडी प्राणायामाची गरजच काय ? शिवाय भगणारंभ रेवती ताऱ्यापासूनच सांगितले आहेत ही गोष्ट कित्येक वचना वरून ही सिद्ध होत आहे. पण ज्या ग्रंथांचें या गोष्टीला प्रमाण आहे त्याग्रंथांत रेवती पासून चित्रेचे अंतर १८३° ४८′ आहे, १८०° नाहीं. सि. शि. त मेषादि रेवती तारा हें वर दाखविलेंच आहे. यावरून मध्यमाधिकारांत वासना टीकेंत " **चंद्रार्क योर्मेषादिस्थयोश्चैत्रस्य शुक्ल प्रतिपदादिः प्रतिपत्** । अतोऽधोः सितादेर्दिनानां सौरादिमासानां वर्षाणां युगानां मन्वतराणां कल्पस्यच तदैव प्रवृत्तिः । " असें जे विवरण केले आहे. त्यांत रेवती ताऱ्या पासून भगणांचा प्रारंभ केलेला आहे व तो चित्रासन्मुख निस्तारक बिन्दुपासून केलेला नाहीं हें उघड आहे.

समाधान. ४ (ई)

(३) जबकि झीटा के भोग से किसी भी तारे के भोगशर दो तीन अंशों से कम मिलते ही नहीं हैं उससे यदि कोई कम है सो तारा भेद से है। कोई भी ग्रंथोक्त गणितागत से इसमें ३।४ अंशों का अंतर रहता है। ऐसी स्थिति में झीटा से भगण मिलाना मानों भारतीय ग्रंथो का उच्छेद करना है।

आप लिखते हैं कित्येक वचनों से सिद्ध होता है किंतु अभी तक फिजूल बातों की भर्ती के सिवाय आपसे मुद्देयुक्त एक भी आधार बताया गया नहीं है।

आप समझ रहे हैं भास्कराचार्यादि के चित्राभोग को १८३°।४८′ बतानेवाले ध्रुवक आधार हैं किंतु (समाधान १ में) सिद्ध किया गया है कि भास्कराचार्य ने इन्हें **"स्थूल"** और आर्यभट ने भग्रह युति की व्यर्थता को मिटाने के लिये युति दिन दर्शक मात्र ही इन

ध्रुवकों को बताये हैं। इस प्रकार झीटा का न तो गणितागत से मेल है। न वाचनिक है। इसलिये आपको विवश होकर चित्रायुक्त पौर्णिमावाले चैत्र मास के आरंभ के साथ मेषादि के वचनों का आश्रय लेना और बिना प्रमाण बताये ही अश्विनी के स्थल में रेवती का झूँटा नाम कहना पडा है। क्योंकि आपके लिखे प्रमाण के आगे ही भास्कराचार्य ने "**भान्यश्विन्यादीनि। ग्रहास्तु भगणादावश्विनीमुखे निवेशिताः॥ भचक्रेऽश्विनी मुखे**" इस कथन में ३२ ताराओं में से एक; ऐसी संशयास्पद रेवती से आरंभ नहीं बताकर निःसंदेह रूप ब्र. गु. के समय + १०° शर; निजगति से वर्तमान में भोग १०°। ८' शर + ८। २९ वाली ऐसी बीटा एरेटीस नामक देदीप्यमान अश्विनी की योगतारा मानी है। इसी सि. शि. टिप्पणी में विष्णुधर्मोत्तर वचन लिखा है उसमें भी "**चैत्रादौ। अश्विन्यादौ काल प्रवृत्तिः**" कहा है। तब क्या इस अश्विनी से भगण गणना में निस्तारक भगण माना जासकता है और ग्रंथ में अश्विनी लिखा होकर उसे रेवती कहना और उससे झीटा का झूँटा नाता लगाना क्या असत्य नहीं होता ?

विधान ५

इसके सम्बन्धमें व्यास तंत्र और सिद्धान्त दैवज्ञ कामधेनु (अ.२) में लिखा है कि:—

"**पूर्व्वार्धमुत्तरं गोलमाचित्रा दर्ध मादिशेत्॥ चित्रान्तार्द्धं प्रह्लत्यैव पश्चिमार्धश्च दक्षिणम्॥४॥ पादोनास्तारकाः सप्त पाद इत्यत्र निश्चितः॥ सपादं तारकाद्वन्द्वं राशिरित्यभिधीयते॥५॥ सपादताराद्वन्द्वस्य गुणमेकं समुद्धरेत् शोधयेदपरार्धे तु योजयेत् स रविस्फुटः॥१०॥**" "**गोलोराशिचक्रम्**" (**शद्बकल्पद्रुमभाग १ पृष्ठ ९१.**) '**गोलमध्येतथापराः संक्रांतयः इत्युक्तत्वात्.**'

अर्थात् राशिचक्रके पूर्वार्ध, उत्तरार्ध की मर्यादा चित्रा तारे तक और चित्रा तारे से ही प्रारंभ करके राशिचक्रके पश्चिमार्ध, दक्षिणार्ध की गणना करनी चाहिये॥४॥ इस प्रकार निश्चित किये हुए चित्राभिमुख (१८०°) आरंभ स्थान से (१) = ६॥।, (२)= १३॥, (३)= २०।, (४) =२७ नक्षत्रों के विभागों पर राशिचक्र के चार पाद निश्चित किये जाते हैं। इसी ही चित्राभिमुख= आरंभ स्थान से सवादो सवदो नक्षत्रों की राशियां निश्चित की गई हैं॥५॥ (उदाहरण के लिये–) सवादो नक्षत्रों के गुण को साध कर; पूर्वार्ध में कम करे और अपरार्ध में जोड देवे तो वह स्पष्ट सूर्य होता है॥१०॥ उक्त श्लोकों में गोल शद्ब का अर्थ राशिचक्र = क्रांतिवृत्त. और श्लोकोक्त तारा शब्द का अर्थ = नक्षत्र; मानकर-तात्पर्य निर्णय के सिद्धान्तानुसार–उपरोक्त अर्थ लिखा गया है।

परीक्षण ५ (क)

(१) याचा अर्थ पंडित दीनानाथ यांनीं दिला आहे तो असा "चित्रा नक्षत्र के **अर्ध विभाग पर्यन्त के क्रांति वृत्त के पूर्वार्ध को उत्तर गोल और चित्रा नक्षत्र के अर्ध विभाग**

क्रांति वृत्त के पश्चिमार्ध को दक्षिण गोल कहना चाहिये, " यांत चित्रा विभागाच्या अर्धा पर्यन्त उत्तर गोलार्ध व तदनन्तर दक्षिण गोलार्ध असे सांगितलें आहे. या वरून चित्रा सायन विभागात्मक आहे असें स्पष्ट दिसतें. अर्थात् हा आधार चित्रा पक्षास कोणत्या ही प्रकारें अनुकूल नाहीं.

समाधान ५ (क)

(१) प्रस्तुत विधान में क्रांतिवृत्त के मध्यमें मर्यादारूप चित्रा तारेका स्पष्ट प्रमाण देखकर प्रि. गोविंदराव यहां चकरा गए हैं। और विवश होकर उन्हें क्रांतिवृत्त के मध्यमें चित्रा तारेको मानना पडा है। लेकिन इस विषय में कुछ तो भी भ्रम पैदा करने के लिये " यह चित्रा सायन विभागात्मक है " ऐसा कहकर स्वयं आपही भ्रममें पड गए हैं। क्यों कि सायन और विभागात्मक यह दोनों बातें जुदी जुदी होते हुए भी आपने एक जगह कह दी हैं। तब चित्रा तारे पर सम्पात की स्थिति हुए बिना वह मर्यादादर्शक सायन हो नहीं सकता। और शून्यायनांश वर्ष के बिना अपने विभाग के मध्यमें चित्रा नक्षत्र के सायन भोग का चित्रा तारेसे मेल हो नहीं सकता। अन्यथा चित्रा तारेके व्यतिरिक्त केवल सायन या केवल विभागात्मक विवक्षित होता तो " **पूर्वे परित्यागे मानाभावः** " के अनुसार अश्विनी मेषारंभ आदि का नाम छोडकर चित्रा को क्रांति वृत्त के ठीक २ मध्यमें कहने का प्रयोजनही नहीं रहता है।

जब कि चित्रा यह एक अचल तारा है। इसको सायन और विभागात्मक में मुख्य कहने से; इसपर संपात की स्थिति विवक्षित होती है। ऐसी स्थिति- [वेदकाल निर्णय पृष्ठ १५१ पंक्ति १९ देखिये सूक्ष्म अयनगति के गणित से शक पूर्व १३१९१ वर्ष में या शारद संपात शाके २०८ वर्ष में; अथवा स्थूल मान से] शाके २१३· वर्ष में आती है। किंतु दैवज्ञ कामधेनु ग्रंथ शाके ११६३ में बनाया गया है। ऐसा उसकी भूमिका में स्पष्ट लिखा है। तब प्रस्तुत श्लोकद्वारा ९५० वर्ष पूर्वके सायन मानको यह अपने काल में चित्रा तारासे भचक्रको निश्चित करने बाबत कहे ऐसा कदापि हो नहीं सकता।

वस्तुतःसायनमानमें तो संपात ही आरंभ बिन्दु होने से; वहाँके-अर्ध. तुरीय, ऋतु अंशादि विभाग-अंकात्मक कहे जाते हैं। उसमें उपर्युक्त २।४।१२ विभागों को बतलाने के लिये; कोई भिन्न अवधि=सीमा बताने की आवश्यकता रहती नहीं है। और उसका आरंभ समाप्ति बिन्दु वसन्तसंपात तथा मध्यबिन्दु शरद संपात रहता है। किंतु यहां तो प्रस्तुत श्लोकांतर्गत (१) आङ् उपसर्ग के विधानसे चित्रातारेको मर्यादारूप, (२) प्रहृत्य शब्द के विधानसे चित्राको ही राशिचक्र का आरंभस्थान दर्शक, और (३) एव, अव्यय के कृत्स्नावधारणार्थ रूप विधानसे क्रांतिवृत्तीय पूर्वापर और दक्षिणोत्तर गोलार्धों की तथा तदंतर्गत राशिनक्षत्रादिकों के विभागों की सीमाको निश्चित करनेवाली मुख्य सामान्य चित्राको ही कहा है। इससे यह कथन सायन या विभागात्मकरूप हो नहीं सकता।

क्योंकि व्युत्पत्ति शास्त्रसे श्लोकोक्त तीनों विधानों का अर्थ और आचित्रात् पदकी शुद्धता इसी प्रकार सिद्ध होती है। जैसे:—(१) आङ् मर्यादाभि विध्यो: (पा. २.१.१३) आङित्येतन्मर्यादायामभिविधौच वर्तमानं पञ्चम्यन्तेन सह विभाषा समस्यते, अव्ययी भावश्च समासोभवति 'अव्ययी भावश्च' (पा. २.४.१८) अव्ययी भावश्च समासो नपुंसकलिङ्गो· भवति। ते न चित्रांमर्यादी कृत्येत्याचित्र तस्मादाचित्रादिति व्युत्पत्त्या मर्यादा रूपायाश्चित्रा तारकाया: सकाशादर्धं राशिचक्रं पूर्वार्धं उत्तरार्धंच आदिशेत् निर्दिष्टमर्यादा नुसारेण कथयेदित्यर्थ: आचित्रादाविशेदिति निर्वचनाभ्यामनुरोधेन राशि नक्षत्रादीनामपि भोग विक्षेपादि विभागाद्य मूह्यमिति एकान्ततश्चित्राया एवोपदेशात्। किंचात्राङ् मर्यादायां नाभिविधावित्यनेन चित्रा ताराया विम्बार्ध व्यासोऽपि पूर्वापरराशि चक्रार्द्धाच्छिन्न दिग्भवो गोलार्धभागे १८० अग्राह्य:। प्रविकला मात्रमपि चित्रा बिंबार्धं उक्त गोलार्धा द्वाहिर्गतत्वात्, प्रहृत्येति विधानाच्च। (२) 'अथारंभे ॥ आरभते प्रस्तौति प्रक्रमते चाप्युपक्रमते ॥ उपनयति ढौकयत्युपहृतौ" इतिक्रियाकलाप (अ. ३ श्लो. ७ पृ. १९) निर्देशात् – चित्रान्तादर्धं चित्रान्तार्धं गोलं = राशिचक्रं प्रहृत्य आरभ्य (३) एव दक्षिणं पश्चिमार्धंच निर्दिशेत्। इत्यत्र "एवौपम्ये परिभव ईषदर्थेऽवधारणे ,, इत्यनेन अवधारणार्थरूपस्य एवाव्ययस्य बलात् आचित्रादादिशेदिति मर्यादार्थीय आङ्निर्वचन सामर्थ्याच्च आचित्राच्चित्रान्तादारभ्य च कृत्स्नस्य राशि चक्रस्य विभागादिगणना कुर्यादिति निष्कृष्टोर्थे संपद्यते। गोले प्रहर्क्षादीनां भागविक्षेपादि गणना कुर्यादित्यर्थ:। गोलशब्देन मण्डल, चक्र, वृत्तादय: शद्बपर्यया: क्रांतिवृत्तार्थे ज्ञेया: एकान्ततोनिश्चल तारकाणां मध्ये अत्यल्पनिजगतिमत्याश्चित्रातारकाया एवात्रोपदेशात्."

इस प्रकार चित्रा तारे के बिंबार्ध को उपलक्ष्य में रखकर उसके आगे पीछे के क्रांतिवृत्त पर १८०°।१८०° अंश के समान दो भाग उक्त श्लोकों द्वारा बताए हैं। इस प्रकरण से राशिचक्र का आरंभस्थान चित्राभिमुख १८०° बिन्दु निश्चित होकर वहीं से ९०।९० अंश के चार चक्रपाद और ३०।३० अंशों की मेषादि बारह राशि तदनुसार १३°।२०' के अश्विन्यादि २७ नक्षत्र और ३°।२०' के नक्षत्रपाद आदि कुल परिमाण चित्रा से ही बताए गए हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह सब शुद्ध नाक्षत्र परिमाण हैं। **अन्यथा** वास्तविक चक्र भोगसे रवि का **आौषिक भगण** (३६०°+ ११·९" = ३६०°।११·९") **अधिक होने से** तथा **सायन भगण** (३६०°–५०·२" = ३५९°। ५९'।९·२") **कम होने से** वह उक्त श्लोकों में कहे चक्रभोग से शुद्ध नहीं हैं।

इतना भी होकर क्षणभर के लिये मान भी लें की श्लोकोक्त गणना सायन विभागात्मक चित्रा बिन्दु से है, तोभी सायन मान से पूर्वापरार्ध व दक्षिणोत्तरार्ध दोनों परिमाण एकही बिन्दु से परिगणित नहीं हो सकते हैं। क्योंकि " **गोलौस्त: सौम्ययाम्यौ क्रिय धट रसभे खेचरेऽथाय ने ते नक्रा कर्कोच षड्भे** ॥ (**प्र. ला. स्प. श्लो. २२**) पूर्व **पश्चिम गोल** की

गणना सायन मेष तुलारंभ से और उत्तर दक्षिण की गणना अयन नाम से सायन मकर कर्कारंभ से की जाती है सारांश इसमें रवि के परम क्रांति के तीर्यक्त्र की अपेक्षा रहने से गोल से अयन में ठीक ९० अंशों का फासला रहता है ।

उक्त श्लोक में जो पूर्वापर गोल शब्द कहा गया है वह क्रांति वृत्त के अर्थ में है और दक्षिणोत्तर गोल शब्द कहा गया है वह कदम्बाभि मुख शर के * अर्थ में है । विषुवांश-क्रांति या (सायन) गोलायन विभाग के अर्थ में नहीं हैं । इसी लिये मैंने विधान में **" गोलो राशिचक्रम् "** एक उदाहरणरूप प्रमाण बता दिया है । तथा राजमार्तंड [पृ. ११० श्लो. ८२] में **" गोल मध्य गताः परा: "** विष्णुपदाव्हया: (वृ. मि, सिं. क, वृ. ध, कुं. मी.) संक्रांतियां गोल मध्यगत = क्रांति वृत्तान्तर्गत कहाती हैं । सारांश: — गोल=मण्डल= वृत्त वर्तुल=चक्र आदि शब्द पूर्वापर व दक्षिणोत्तर के भेद से शुद्ध नाक्षत्र भोग और कदंबाभिमुख शर के यानी क्रांति वृत्त के अर्थ में कहे गए हैं। इसी लिये पूर्वापर व दक्षिणोत्तर गोलों की एक स्थल से गणना नाक्षत्र मानसे ही हो सकती है सायन मान से नहीं ।

तथा इस ग्रंथ में जहां सायनमान का प्रयोजन आया है वहां **' विषुवन्मण्ड लादूर्ध्वम् '** विषुवान या छायार्क शब्द आदि का प्रयोग करके नाक्षत्र मान से उसकी भिन्नता बता दी है + इतनाही नहीं तो जिस ग्रंथ में:— मंद फल साधन के लिये उच्च व मंद केंद्र का, शर साधन में पात व पातोन ग्रह का, चर छाया लग्नादि साधन में अयनांश एवं सायन ग्रह का; अलग अलग उपयोग किया गया है । पौर्णिमान्त काल की नक्षत्र प्रयुक्त चंद्र स्थिति के सन्मुख (१८०) सूर्य का साधन × लिखा है. उस ग्रंथ के अन्दर अश्विनी आदि २१

---

* " इन्द्रानिलादिसब्रह्मसौम्ये शाकी हि वारुणः ॥ चित्राश्च याम्यगोला: स्युः शेषाश्चोत्तर गोलका: ॥ १४॥" [का० पृ० १४·१४] ।

\+ " आश्विनी तारकांगच्छेदुत्तरस्यां दिवाकरः ॥ दक्षिणस्यान्तु संक्रांतमन्तरालं **दिवांशकम्** ॥ २० ॥ [दस्रौ यमोऽनलो धाता····पूषाच दिनदेवता पृ० १३·१० इत्यनेन एक नक्षत्र मितं १३°।२०' संक्रांतमंतराल मेवायनांश।इत्यर्थ:] विषुवन्मण्ड लादूर्ध्वमधस्ता-याम्यसौम्ययोः ॥ चतुर्विंशतिभागान्ते प्रवृत्तमपमण्डलम् ॥ २१ ॥ मेषादि त्रितये संज्ञा मध्यसूत्रा दुदीक्रमु ॥ २५ ॥ कोणतो विनिवृत्तिः स्यादयनं नाम भास्वत: ॥ लंघनं मध्यसूत्रस्य गोलोच्चलन मुच्यते ॥ २८ ॥ " तथा सायन सूर्य को छायार्क या छाया [पृष्ठ १ श्लो. २२] कहा है.

× **विधाय पद्मनीबन्धोः स्फुटं विघटिकामयम्** ॥
भाजयेज्ज्ञान गंभीरैर्यद्दिनै कोऽपि लभ्यते ॥ २७ ॥

नक्षत्रों के तारों का; गणना में मुख्य उपयोग नहीं कहकर, केवल एक चित्रा तारे के सन्मुख के बिन्दु को अश्विनी मेषारंभ-राशिचक्र का आरंभ स्थान कहा है। उस राशिचक्र को केवल एक गोल शब्द की भ्रांतिमय कल्पना से सायन विभागात्मक कह देना कदापि सत्य नहीं हो सकता।

सायन मान के गोलायन विभागों में तत्कालीन नाक्षत्र मान के पूर्व पश्चिम व दक्षिणोत्तर गोलार्धों की उपपत्ति एवं एकवाक्यता दर्शक—चित्र नंबर १, २, ३ देखिये। उनके द्वारा टिप्पणी में लिखे कामधेनु के श्लोकों का भाव सरलता से मालूम हो सकता है। और सिद्ध होता है कि चित्राभिमुख बिन्दुही राशिचक्र एवं गणितोक्त भगणों का आरंभ स्थान है। और यही शुद्ध नाक्षत्र मान कहाता है। क्योंकि संपूर्ण भारतीय ग्रंथो के गणितागत भगणों के आरंभस्थान इसी मान से बराबर मिलते हैं।

परीक्षण ५ (ख)

हा दैवज्ञ कामधेनू ग्रंथ छापलेला असून फार अशुद्ध आहे. त्याची रचना शके ११९३ साली अनवदर्शी स्थविर यांनी लंकेंत केलेली आहे. व्यासतन्त्र व विशेषतः वराहमिहिर यांचे ग्रंथाधारें हा लिहिलेला आहे. उपरी निर्दिष्ट श्लोकांत "**चित्रात्**" हें पद अशुद्ध आहे. दैवज्ञ कामधेनुमध्यें ही इतरत्र "**चित्रायां**" "**चित्रया**" असेच स्त्रीलिंगी प्रयोग आहेत.

समाधान ५ (ख)

प्रि. साहबने इस कामधेनु ग्रंथ को बहुत अशुद्ध कह दिया है। और उसका कारण बताया गया है कि "चित्रात्" यह पद अशुद्ध है। किंतु इस तरह के अनर्गल प्रलाप से साहब बहादुर की विद्वत्ता और सत्यता चौडे आगई है। वस्तुतः न तो वहां केवल "**चित्रात्**" पद लिखा गया है और जो "**आचित्रात्**" लिखा गया है वह व्युत्पत्ति शास्त्र से बिलकुल शुद्ध है। क्यौंकि यह समासान्त पद है। मर्यादा के अर्थ में आङ् अव्यय चित्रा के पूर्व में होने से अव्ययी भाव समास के कारण "**आचित्रात्**" ऐसा नपुंसकलिंगी प्रयोग बना है। जैसे "**आमुक्तेः संसारः**" तथा दूसरे प्रयोग '**पारे गंगात्**' '**मध्ये गंगात्**' बनते हैं। किंतु प्रि. साहब के मतसे '**आमुक्त्याः**' '**पारे गंगायाः**'

[उत्तरायनगोमध्य सूत्रादन्तं प्रवर्तते ॥ यद्ये कोलभ्यते भानुस्तदा याम्यायनोन्मुखः ॥२८॥ लब्धं दिगादिकं भानोस्तत्तत्सूत्रादपेयुषः ॥ ३२ ॥ [दै. कामधेनु अ. २] मध्यमस्यच शुद्धस्य स्फुटस्यच यदन्तरम् ॥ तदर्धीकृत्य संशोध्यमुभयो रधिकान्तयोः ॥ १ ॥ शुद्धंच लोचतस्त्यक्त्वा शेषं····ग्रहगतिर्भवेत् ॥ २ ॥ [पृष्ठ ३१ ग्रहगतिसाधन प्र०]

' मध्ये गंगायाः ' ऐसे स्त्रीलिंगी प्रयोग होने चाहिये। मानो आपका स्त्रीलिंग के विषय में इतना प्रेम है कि ' अव्ययीभाव समास करने परभी आप उसका नपुंसकलिंगी रूप नहीं होने देते ! आश्चर्य है !! ऐसी मनमानी स्थिति में विचारी कामधेनु की क्या कथा; व्याकरण कार महर्षि पाणिनिकोभी भ्रष्ट अशुद्ध कह देना या इस तरह नितांत असत्य परीक्षण कर देना साहब बहादुर के लिये क्या बडी बात है।

यदि देखा जाय तो:—' इस ग्रंथ के कोई भी परिमाण न तो आपने देखे हैं; यदि देखे हैं तो न उनका अर्थ समझे हैं तब आप इसके शुद्धाशुद्ध का निर्णय कैसे कर सकते हैं। इस ग्रंथ को तनिकभी समझते तो क्या आप शुद्ध नाक्षत्र मान के ग्रह साधन करने में अनेक जगह गोल शब्द का उपयोग वर्णन किया होते हुए भी उसे सायन विभागात्मक कदापि नहीं कह सकते थे। तथा प्रत्यक्ष मानों के तुल्य शुद्ध गणित का (कामधेनु) ग्रंथ होते हुए भी उसको अत्यन्त अशुद्ध बताकर आगे इस तरह असत्य कथनरूप अपना उपहास कदापि नहीं करा सकते थे। अस्तु.

यह ग्रंथ कैसा शुद्ध और कितना उपयुक्त है इसको बतलाने के साथ साथ गोलादि शब्दों का ग्रह साधनादि में कैसा उपयोग किया गया है उसका यहां दिग्दर्शन कराता हूं। जैसे:– " **तदिहार्धीकृतं गोलवशादंतस्य मध्यमे** ।। (अ. ४ श्लो. ९ पृ. ३८ **भौम साधन प्रकरणे**) **विद्याद्गोलपदं तथा ।। तदप्यर्धी कृतं गोलम् ।। ७ ।। गोलक्रम विलोमतः ।। १० ।। निशार्धे चंद्रगोलज्ञः** (२१·३) **विक्षेपमाहुः शशिनस्त- त्तद्गोलाख्यया श्रुतम् ।।** (५१·२६) **गोलपादविधिम् ।। २९ ।। शेषे गोलपदम्** (अ. २·४) **पूर्वापरार्धयोः** (अ. २·५३-५७) **गोलवित्** [पृ. ५१] " ऐसा केवल राशिचक्र के अर्थ में गोल शब्द कहा गया है।

सायन गणित के उपयोग में- " **विषुवद्व्यंगुले नाथ दक्षिणोत्तर गोलयोः** (**अ. २ श्लो. ४८**) **विषुवन्मंडलादूर्ध्वमधस्ताद्याम्यसौम्ययोः** (२·२१) " इस प्रकार विषुवत् विशेषण लगाकर चर-दिनमान, छाया-पलभा, लग्न भावादि साधन योग्य गणित से बताया गया है। सूक्ष्म गणित से उस समय [शाके ११६३ में] अयनांश १३°।१५'२ थे और कामधेनु में [**अंतरालं दिवांशकं**] एक नक्षत्रमित १३°।२०' अंतराल= अयनांश; सिर्फ ५ कला के अंतर से शुद्ध है। ऐसे ही ग्रहों के भगण, उच्च, पात, मंद शीघ्र परिधि आदि सिद्धान्त ग्रंथों के तुल्य नाक्षत्रमान के कहे गए हैं। भुजको **नागालयाख्य** कहा है। विभागात्मक नक्षत्रों को तारा नाम से कहकर उनके ताराओं की संख्या और पुंज के शर की दिशा " **शिखिगुणरसेंद्रियानल ।। द्वात्रिंशश्चेतितारकामानम् ।। क्रमशोश्विन्यादीनां वराहमिहिरेण निर्दिष्टम् ।।** [पृ. १३·१२] वराहोक्त श्लोकों से ही बताई है।

दृग्गणितैक्य शुद्ध करने के लिये " इदंवाबीजकर्मोक्तं चक्षुसाम्य प्रतीतये [पृ.६·२८] चंद्रार्क दृष्टि नक्षत्रे विलिप्ती कृत्य लिप्तिकाम् ॥ लब्धं नीति विशुद्धं तत् दृष्ट नक्षत्र नाडिका, [पृ. १३·८] रवेर्मध्यमतोहित्वालिप्तायांपौर्णमींततः (९·५३) भानूनेंदुंकली कृत्य प्रतिलब्धा तिथिर्भवेत् ॥ तत् दृष्ट तिथि नाडिका. [१९·१-२] चंद्रमर्केण संस्कृत्य दृष्टो योग उदाहृतः [१९·१] इस प्रकार बीजकर्म और युचरचार के माफक वेध प्रक्रिया उत्तम प्रकार से बताई गई है ।

नक्षत्र ग्रहों की युति के लियेः-प्राजापत्येन संयोगे तस्येन्दुर्दक्षिणेस्थितः (पृ.२५·१) रोहिणी मुत्तरेणेन्दुः स्पृशन्याति यदातदा. (पृ. २६ मध्ये सप्ताष्ट उदाहरणानिसंति) मघानां यदि मध्येन निर्गच्छेल्लोहितस्तदा ॥ १० ॥ भिदन्मघां विशाखांच ॥ भिनत्ति रोहिणींयद्वा ॥ रोहिणीयाम्यगो भौमः (३३·१२) ऋक्षस्योत्तर पार्श्वेण विचरन् बृहतां-पतिः (३८·२४) वस्वादितारांवक्रःस्यात् ॥ आद्यमंशं धनिष्ठायां प्राप्यमाघं यदागुरुः ॥ उदयंयात्यसौ विष्णुयुगे प्रथम वत्सरः (३९·३४-३५) रोहिणी शकटेभिन्ने, शुक्रेण [४४·१७] राहोः । नीचलंबास्तु तारकाः ॥ १८ ॥ राहुलंबाद्रवेस्तंबाकेतोः संशोध्य गोलवित् ॥ ५१ ॥ " इस प्रकार नक्षत्रों की स्थिरप्राय आकृति विशेष से ग्रहों की युति बताई गई है ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दैवज्ञ कामधेनु ग्रंथ तत्कालीन शोध की अपेक्षा बहुत उपयुक्त एवं शुद्ध है । दृष्टि दोष से जैसे अन्य ग्रंथों में थोडी बहुत अशुद्धता क्वचित् रह जाती है इसी प्रकार इसमें हुई तो इतने पर से ' ग्रंथ बहुत अशुद्ध है ' ऐसा प्रिं. साहब का कहना प्रमाणशून्य एवं असत्य है ।

परीक्षण ५ (ग)

" हा श्लोक बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत) अध्याय १०१ श्लोक ३।४ या आधारें लिहिलेला दिसतो. ते मूळचे श्लोक असे आहेत. " सिंहोऽथ मघापूर्वाच फल्गुनीपादः उत्तरायाश्च ॥ तत्परिशेषं हस्तश्चित्राद्यार्धंचकन्याख्यः ॥ ३ ॥ तौलिनि चित्रान्त्यार्धः स्वाति पादत्रयं विशाखायाः ॥ अलिनि विशाखा पादस्तथानुराधान्विताज्येष्ठा ॥ ४ ॥ " यांत ' चित्राद्यार्धं, चित्रान्त्यार्धं ' असे व्याकरण शुद्ध प्रयोग आहेत. ते शब्द येथें दैवज्ञ कामधेनु पुस्तकांत अपभ्रष्ट झाले आहेत.

समाधान ५ (ग)

यह परिक्षण असत्य और भ्रामक है । क्योंकि कामधेनुके उक्त श्लेक में:— १ मर्यादार्थ दर्शक " आङ् " उपसर्ग, २ प्रारंभार्थ दशक " प्रहृत्य " शब्द, और ३ एक

चित्रा तारेसे ही राशिचक्र के अवधारणार्थ में प्रयोजित " **एव** " अव्ययका प्रयोग होते हुए भी मानों उक्त श्लोकमें इनका अस्तित्वही नहीं है; ऐसी चलाखी करके प्रिं. साहब चित्रा के महत्वको उडाना चाहते हैं। तथा प्रस्तुत श्लोकमें जबकि आङ् प्रहृत्य, एव शब्द प्रयुक्त हैं; तब व्युत्पत्ति शास्त्र के आधार से इन शब्दों के साथ जो श्लोक का वास्तविक अर्थ होता है उसे (पक्षपात से हो या अज्ञता से) अन्त तक आपने छुआ तक नहीं है। इतना ही नहीं तो वराहमिहिर प्रोक्त शुद्ध पदों का '**चित्राद्यर्ध**' का '**चित्राद्यार्ध**' और '**चित्रान्त्यार्ध**' का '**चित्रान्त्यार्ध**' इस प्रकार अशुद्ध किंतु निष्कारण कल्पित पाठ बनाकर कामधेनु में के शुद्ध पदों को भ्रष्ट बताकर आपने इनके यथार्थ अर्थ करने में एक प्रकार का भ्रम पैदा कर दिया है।

वस्तुतः वराहमिहीरने पंच सिद्धान्तिका (१४.३७) में "**चित्रार्धास्रभभागे**" भभाग= राशि चक्र के "**अर्धास्र**" आधे पहलूपर यानी ठीक ठीक मध्य भाग में चित्रा के तारेको ही मर्यादादर्शक=मुख्य माना है। तदनुसार अनवदर्शीने कामधेनु में "**आचित्रादर्धमादिशेत्**" के द्वारा "**पूर्वास्र**" का "**चित्रान्तार्द्धप्रहृत्य**-एव के द्वारा "**अपरास्र**" का, "**पादोनास्तारकाः सप्त**" के द्वारा क्रांतिवृत्तीय "**चतुरस्र**" भाग का और "**सपादं तारकाद्वन्द्वं**" के द्वारा मेषादि राशि "**द्वादशास्र**" विभाग का निश्चय चित्राके तारे को क्रांत्तिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानकर ही किया है।

जबकि इन दोनों ग्रंथों के उपर्युक्त प्रमाणों से चित्राभिमुख बिन्दु १८०° ही राशि चक्र का एकान्तरूप आरंभ स्थान सिद्ध होता है तब इनके ही कहे हुए राशिविभागाध्याय में "**अश्विन्योश्च भरण्यां बहुलापादश्च कीर्त्यते मेषः**" इत्यादि विभागात्मक सर्वसाधारण गणना में बारह राशियों के नामों के साथ साथ सत्तावीस नक्षत्र नामों के वर्णन प्रसंग में "चित्रा के दो पाद कन्या में और दो पाद तुला राशि में" कहे जाने के कारण एवं चित्राभिमुख बिन्दु द्वारा राशिगणना क्रम से चित्रा का तारा अपने नक्षत्र विभाग एवं (विकला रूप क्यों न हो) अपने बिंब विभाग के भी ठीक ठीक मध्य में निर्धारित होती है। इसीलिये राशि चक्र के ठीक मध्य भाग में कहे हुए चित्रा तारे के संबंध में अनेक ग्रंथों के अनेक प्रमाणों की एकवाक्यता हो जाना ही स्वाभाविक एवं युक्तियुक्त है। क्योंकि राशिचक्र की सीमा एक चित्रा के तारा द्वारा ही अंकित होने से अश्विन्यादि २७ नक्षत्रों के और मेषादि १२ राशियों के; क्षेत्र, चित्रा के ही द्वारा सीमित हैं। अतएव वह गौण हैं। इसलिये क्रांतिवृत्तीय गणना के कार्य में; वराह मिहिर और अनवदर्शी आदि वेधज्ञ ग्रंथकारों ने; चित्रा के सिवाय अन्य किसी नक्षत्रादि का इस संबंध में उल्लेख ही किया नहीं है। इतना ही नहीं तो; इसी गणना से ही इन ग्रंथों के गणितागत भगणों के आरंभ स्थान की एक वाक्यता होती है। अन्य किसी रीति से नहीं।

इस प्रकार शास्त्रशुद्ध परंपरागत व गणितागत रीति से सिद्ध होते हुए भी उक्त नाक्षत्र गणना पद्धति को प्रि० साहब चाहे सायन कहें या केवल नक्षत्र विभागात्मक समझें तथा कामधेनु ग्रंथ को अत्यन्त अशुद्ध कहें या भ्रष्ट बतलावें किंतु उपर्युक्त प्रमाणों के आधार से यह निःसंदेह रीति से सिद्ध हो चुका है कि "भारतवर्ष में तो अत्यंत प्राचीन काल से चित्रा के देदीप्यमान तारेको क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानने की परंपरा प्रचलित है जो कि वराहमीहिर के कथनानुसार व्यक्त की गई है। तथा भारत के उपद्वीप लंका में भी जिस समय केवल ताराओं के वेध द्वारा "लघुकालिक" अहर्गण से ग्रहसाधन किये जाते थे उस प्राचीन काल में भी तुला (काँटे) की मध्य डोर के तुल्य=क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा के तारे को मानते थे ऐसा दैवज्ञ कामधेनु के उक्त निर्वचनों से निःसंदेह सिद्ध हो गया है।

विधान ६.

वराहमिहिरने पंचसिद्धांतिका (अ. १४) में ताराओं के साथ चंद्रमा की युतिका काल बताने के उद्देश्यसे नक्षत्रों के कदम्बाभिमुख क्रांतिवृत्तीय भोगश कहे हैं।

"बुद्ध्या शशिविक्षेपं दृष्ट्वा ताराशशाङ्कविवरं च ॥ संसाध्यैवं वाच्यः पश्चात्तारासमायोगः ॥ ३३ ॥ बहुलाषष्ठांशान्ते सार्द्धे हस्तत्रये च भगणोदक् ॥ रोहिण्यष्टदलान्ते दक्षिणतश्चार्धषष्ठेषु ॥ ३४ ॥ हस्तेऽष्टमेऽष्टमेंशे पुनर्वसौ (सोः) दक्षिणोत्तरे तारे ॥ अर्द्धचतुर्थे हस्ते पुष्यस्योदक् चतुर्थेंशे ॥ ३५ ॥ दक्षिणतारा हस्ते सार्पस्यांशे तथोत्तरा तारा ॥ पित्र्यस्य स्व (छे) क्षेत्र षष्ठे वांशे समायोगः ॥३६॥ चित्राधांस्व (म) भभागे दक्षिणतः संस्थिते त्रिभिर्हस्तैः *

---

* टिप्पणी और टीका के पाठ भेद तथा संशोधित पाठः— बहुला षष्ठाशाते= 'शान्ते'। रोहिण्यष्टद 'लात्ते=' 'लान्ते'। पुनर्वसौ दक्षिणोत्तरे =पुनर्वसोर्दक्षिणोत्तरे। 'पुष्यस्योदक् 'चतुर्थेशे '=चतुर्थेशे वा ' स्वतुर्यान्ते '। 'सार्पस्याशे='सार्पस्यांशे ' वा **सार्पेद्व्यंशे** ' पित्र्यस्य-' स्वछेत्रे ' = ' स्वक्षेत्रे ' वा ' स्वक्षेत्रे '। षष्ठ ' वांशे ' = ' चांशे ' वा ' षष्ठे वा+अंशे=षष्ठ' वांशेसमायोगः। टिप्यणपांच ' पित्र्यस्य स्वष्टेचत्र षष्ठे ' संशोधित पाठः ' पित्र्यस्यस्वाष्टाऽर्द्धे। द्विवेदी स्वीकृत पाठः— चित्रार्द्धाष्टमभागे **मूल पुस्तकस्थपाठः चित्राधांस्व** भभागे इसमें ' म अक्षरको छंदाधिक्यसे कम करके शुद्ध पाठ लिखा गया है.

निम्नलिखित कोष्टक में उपर्युक्त श्लोकों का अर्थ स्पष्टतया बता दिया है।

नक्षत्र. संख्या.	नक्षत्र योग ताराओं के आर्य नाम	ग्रीक नाम	शुद्ध नाक्षत्र मान के भोग		शर			शतभाजित भभोग कला	वेधतुल्य शुद्ध गणितागत विभाग की ग्रंथोक्त परिमाणों से एकवाक्यता
नंबर	पौर्वात्य नाम	पाश्चात्य नाम	०	'		०	'	कलाः १००	विवरण
१	कृत्तिका	ईटाटारी	३६	९	उ.	४	२	५·६९	षष्ठां शान्ते=षष्ठां शस्यांतिमभागे.
२	रोहिणी	आल्डिबरान्	४५	५७	द.	५	२८	३·५७	अष्ट दलस्य चतुर्थस्यांतिमभागे.
३	द. पुनर्वसु	प्रथा नं. ४६६	९२	०	द.	१५	५१	७·२०	अष्टमेंशे दक्षिण तारा पुनर्वसौ मध्ये.
४	उ. पुनर्वसु	पोलक्स	८९	२४	उ.	६	४१	५·६४	१·३६ भागोनाष्टमेंशे उत्तर तारा पुनर्वसौ मध्ये.
५	पुष्य	A नं. ५१७	१०१	३४	उ.	१	३४	४·०४	चतुर्थेंशे=चतुर्थ भागस्य सामीप्ये.
६	द. अश्लेषा	आल्फा कांक्री	१०९	४८	द.	५	५	१·८८	प्रथमांश सामीप्ये दक्षिणाश्लेषा.
७	उ. अश्लेषा	नं. B ५५९	१०९	१९	उ.	५	२६	१·५९	प्रथमांश सामीप्ये उत्तराश्लेषा.
८	मघा	रेग्यूलस	१२६	०	उ.	०	२८	३·६०	षष्ठे वा अंशे (चक्र ३६० भागे)
९	चित्रा	स्पायका	१८०	०	द.	२	३	४·००	अर्धान्तभभागे (चक्रमध्ये)

अर्थात् सूक्ष्म गणित के निरयण भोगों की उक्त तुलना करनेसे सिद्ध होता है कि; वराहमिहिर के बताए हुए तारों के विभाग ठीक ठीक मिल गए हैं। इसलिये पंच सिद्धांतिका का चंद्र और ग्रहोंके भगणों के आरंभ स्थान इन की चित्रा तारे के १८० अंश स्थानीय बिन्दु से एकवाक्यता हो जाती है। अर्थात् चित्रा का तारा क्रांतिवृत्त के ठीक २ मध्यमें माना गया है। इसी कारण ग्रंथोक्त (गणितागत) भगणों के मध्य बिन्दु की चित्रा तारे के बिंबार्ध बिन्दु से एकवाक्यता हो जाती है। सिर्फ गणितैक्यता सम्पादन के लिये उनमें मिश्रित हुए केंद्रीय भागको निकाल कर उनको शुद्ध नाक्षत्रमान के कर लेना चाहिये.

परीक्षण ६ (अ)

पुढें ३८ वा श्लोक असा आहे:-" विक्षेयात्सप्तदशापनीयातिथि संगुणात् कृताग्न्यंशः॥ विद्यादंगुलमानं कालं दिन भोग विवरेण॥ ३८॥ वरील विधानाचे प्रास्ताविक वाक्यामध्यें " वराह मिहिरोक्त भोगशर कदम्बाभिमुख क्रांतिवृत्तीय आहेत " असें सपशेल असत्य लिहिण्याचें धाडस पं. दीनानाथ यांनीं केलेलें पाहून आश्चर्य वाटतें. पूना कमेटी रिपोर्ट पृ. १४६ वर त्यांनींच लिहिलें आहे की हेचभोग ध्रुवसूत्रीय आहेत व तें खरें आहे. चित्रा पक्षाच्या मुख्याधारासंबन्धी अशी ढळढळीत चलाखी करण्याने तो सर्वस्वी निराधार व अप्रमाण आहे हीच गोष्ट पुनः सिद्ध होत आहे.

समाधान ६ (अ)

मुद्दे के अनुसार प्रमाण मिलता हो चाहे न मिलता हो या प्रतिपाद्य विषय का समर्थन होता हो चाहे न होता हो उससे कुछ मतलब नहीं किंतु योग्य कार्य में कुछ तो भी पत्थर फेंक देने के बाबत तो प्रि० गोविंदराव का हात हतखंडा है उसी का ताजा उदाहरण यह श्लोक है। यह (श्लोक ३८) आपके प्रतिपाद्य विषय के सर्वथा विरुद्ध है तो भी उसे देखे कौन? अज्ञ जनता को तो मालूम हो सकता है कि साहब बहादुरने एक प्रमाण बताया है। फिर क्या है कोई पंडित इसका यथार्थ अर्थ भी बता देगा तो उसे पक्षपाती कहकर हटा सकते हैं। बस इस हेतुसे यह स्वसमर्थनहीन श्लोक भी लिखा गया है। क्योंकि वराहोक्त नक्षत्रों के भोगशरों को आप तो ध्रुवसूत्रीय बताना चाहते हैं और कहते हैं कि वराहमीहिर ने इस संबंध में कुछ लिखा ही नहीं है। किंतु वराहमीहिर के ही इस श्लोक से कदंबाभिमुख सिद्ध होते हैं।

वह इस प्रकार से सिद्ध होते हैं कि प्रस्तुत चारों श्लोक ताराचंद्र युतिकाल के निर्णय करने के उद्देश्यको लेकर कहे गए हैं। उसी के अनुसार * उसके गणित की प्रक्रिया

* वर्तमान के सूक्ष्म गणित के ग्रंथों में भी ताराचंद्रयुति काल निर्णय के संबंध में ऐसी ही गणित प्रक्रिया की जाती है। जैसे:-" **युतिकाले भभोगेन तुल्यः स्यात्स्पष्ट**

श्लोक ३३ में बताई गई है, जिसकी टीका (म. द्विवेदी ने) इस प्रकार लिखी है कि:— **" चंद्रस्य विक्षेपं शरं बुध्वा ज्ञात्वा तथा ताराचंद्रयोरन्तरं च दृष्ट्वाऽर्थात् वेधेन प्रथमं सर्वं निश्चित्य ततइष्टकाले गणितयुक्त्या तत्सर्वं संसाध्य पश्चाच्चन्द्रेण सह तारासमायोगो वाच्यः "** अर्थात् " चंद्र और ताराका शर तथा भोगान्तर को वेध द्वारा देखकर गणितागत से उसकी एकवाक्यता एवं ' यह युति किस समय होगी ' गणित द्वारा उसका निश्चय करके बाद में चंद्र के साथ तारा के युतिकाल को कहना चाहिये, " इस कथन में स्पष्ट चंद्र से ही तारा का अंतर देख लेना कहा है।

करणागत ग्रह सदाही कदंब सूत्रीय बनाए जाते हैं तदनुसार स्पष्ट चंद्र के भोग शर भी कदंब सूत्रीय ही रहते हैं तथा वह अंश कलात्मक होने से एवं नक्षत्रों के भोग भी अंशात्मक कहे जाने के कारण सजातीय से इनकी साम्यता कब होगी सो गणित से अंतर नाप सकते हैं किंतु नक्षत्रों के शर अंशकलात्मक नहीं कह कर अंगुल हस्तात्मक कहे गए हैं। तब अंगुलात्मक परिमाण से कलात्मक का समीकरण प्रस्तुत श्लोक में बताकर दोनों शरों को सजातीय कर लेना कहा है। उसकी टीका इस प्रकार है:— **" अथ शशांकस्य चंद्रस्य मध्यात्केन्द्राद्याविक्षेपकलास्तदन्तादङ्गुलात्मकः शरः कृतः। कथमङ्गुलात्मकः शरः करणीयस्तदर्थं प्रकार लिखति ग्रंथकारः। विक्षेपात् शरात् सप्तदशायनीय त्यक्त्वा पंचदशगुणाच्छेषाद्यः कृताग्न्यंशश्चतुस्त्रिंशदंशस्तदेवाङ्गुलमानं विद्याज्जानीयात्। तथा दिनभोगविवरेण कालं च विद्यात्। अर्थादभीष्टदिने चन्द्रतारयोरन्तरं विज्ञाय चन्द्रस्य दिनगत्या युतिकालोज्ञेय इति ॥ अत्रोपपत्तिः। उपलब्धिरेव। उपलब्ध्या योगताराणां याः शरकला उपलब्धास्तदगुंलानि ३८ श्लोकयुक्त्या संप्रसाध्य चतुर्विंशत्यगुंलैरेकोहस्त इति शरो हस्तात्मकः कृतः ॥ अंगुलसाधने तु नक्षत्राणां याः शरकला उपलब्धास्ताभ्यश्चन्द्रबिम्बदलं १७ विशोध्य चन्द्रबिम्बपरिधिप्रान्तस्य नक्षत्राबिम्बस्य चान्तरकलाः साधितास्ततोऽनुपातो यदि चतुस्त्रिंशत्कलाभिः पंचदशांगुलानि लभ्यन्ते तदा शेषकलाभिः किमित्यनुपातेनांगुलीकरणं स्फुटमुपपन्नमिति ॥ युतिकालसाधनेऽपि चन्द्रः स्वगत्या प्राग्गच्छन् नक्षत्रमेति यतोनक्षत्राणां दिनात्मिका गतिर्नास्ति तत इष्टसमये चन्द्रनक्षत्रा-**

चंद्रमाः ॥ नक्षत्र भोगश्चंद्रश्चराहुः सूर्यस्तथैव च ॥ अयनांशयुता ग्राह्याः प्रस्तुते गणिते सदा ॥ १ ॥ यथाहि सायन चित्राचंद्रौ २०२° १३,०', चित्राशरः–२° २·७' । चंद्रशरः– २° ३.' ९ इत्यादि. " ज्योतिर्गणित (पृष्ठ ३१२) इस में (पृ. २३२) के कोष्टक ३ के अनुसार चित्रा सायन भोग और पंचांग साधित सायन चंद्र ऐसे दोनों परिमाण (सायन क्यों न हो) कदंब सूत्रीय कहे गए हैं। और वराहमिहिर ने बृहत्संहिता (अ. ५) आदि में शुद्ध नाक्षत्र मानके कहे हैं। अतः दोनों भी परिमाण कदंबसूत्रीय हैं। ध्रुव सूत्रीय नहीं हैं।

न्तरकला विज्ञाय ताभिश्चन्द्रगत्या चानुपातोयदि चंद्रगतिकलाभिः षष्टिघटिकास्तदाऽन्तर· कलाभिः किमित्यनेन कालश्चसिध्यति परन्तु शशांकगतेः प्रतिक्षणंविलक्षणत्वात्पुनस्तात्कालिकं चन्द्रं कृत्वा युतिकालः साध्य एवमसकृत्कर्मणा स्फुटोयुतिकालो भवतीति।"
सारांश—नक्षत्रों की शरकला में चंद्रबिंबदल—१७' कम करके शेष बिंब प्रान्तान्तर कला १४ के = १५ अंगुल इस हिसाब से दोनों के अंगुलमान करके सजातीय परिमाणोंसे चंद्र के साथ तारा के युति काल का गणित कहा है। किंतु इसमें यदि नक्षत्रों के भोगशर ध्रव प्रोतीय लिखे होते तो जैसे कलात्मक शरका अंगुलात्मक करने का (समीकरण) लिखा है उसी प्रकार कदंब प्रोतीय चंद्रभोगको नक्षत्र भोग के तुल्यही ध्रुवसूत्रीय कर लेना भी कह देते किन्तु यहां तो कदंबप्रोतीय स्पष्ट चंद्रभोग के तुल्य नक्षत्रों के भोग शर भी कदंबप्रोतीय कहे होने से दोनों का आपस में (सजातीय रीति से ही) अंतर कर लेना कहा है। और ऐसा ही मैंने पूना कमेटीमें निर्णय दिया है।

तब जबकि तारा चंद्र युति काल के साधन के उक्त श्लोकों में ही ऐसा स्पष्ट रीतिसे लिखा होते हुए भी उसको न समझने से या समझें हों तो भी उसे लुकानेसे विधान को सपशेल (नितांत) असत्य कहने की धुनमें उक्त परीक्षण ही नितांत भ्रमपूर्ण एवं असत्य प्रलापमात्र कहा गया है जिसका वर्णन ऊपर सविस्तर रीतिसे किया गया है।

परीक्षण ६ (आ)

तथापि पं. दीनानाथ यांच्या समजुतीकरितां ते भोगशर कदंबाभिमुख आहेत असें समजून त्यांनी काढलेल्या अनुमानांचे परीक्षण करूं. या उताऱ्यांतील मुख्य वचन चित्रे संबन्धाचें. तिचे स्थान " अर्धा श्रमभागे " असें लिहिलें आहे. आश्रम याचा अर्थ नक्षत्रचक्र असें कोठेंच नसल्याकारणाने त्या वचनाधारें चित्रेचा भोग १८० मानणें चुकीचें आहे.

समाधान ६ (आ)

जो भी मूल पुस्तक का शुद्ध पाठ "चित्रार्धास्त्रभभागे" है तोभी जब कि पं. सुधाकर द्विवेदीने प्रकाशित किये हुए पुस्तक (पेज ४२) की पहली कालममें " चित्रार्धाश्रम भभागे " टिप्पणीमें " चित्राद्वाष्टभाभे " और दूसरे कालम में आपने संशोधित पाठ " चित्राद्वाष्टमभागे " प्रकाशित किया है। इनके द्वारा चार प्रकार के पाठ होते हुए भी उन सबों से निम्न लिखितानुसार एकही सिद्धान्त रूप अर्थ निश्चित होता है कि चित्राकी योग तारा क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्यमें है।

१. 'चित्रार्धास्रभभागे पाठ (पहली कालम में के छंदाधिक्य के कारण 'म' अक्षर निकालकर दंती 'स्र') से अर्थ निष्पन्न होता है कि:— "चित्राया अर्धास्रे भभागे 'अस्र कोणे शिरसिजे' इति विश्वात् त्र्यस्र चतुरस्र वदत्रभानां नक्षत्राणामर्धास्रोभागोमण्डलार्धस्तस्मिन् शिरसिजे पूर्वपश्चिम गोलार्धमध्यमर्यादारूपे मुख्ये भागे क्रांतिवृत्तस्यार्धभाग इत्यर्थः।" अर्थात् त्र्यस्र चतुरस्र पहलू के तुल्य भभाग=क्रांति वृत्त के अर्धास्र आधे पहलू पर यानी क्रांति वृत्तके ठीक ठीक मध्य में चित्रा के तारे की स्थिति है।

२. "चित्रार्धाश्र्य भभागे" पाठे तु 'पाल्यश्रिकोटय' इत्यमरोक्त्या अश् व्याप्तौ (स्वा० आ० से०) अश्रिकोणैकदेशयो 'रिति धरणिधरात् भभागे चित्रा नक्षत्र विभागे अर्धाश्रि, यस्यास्तीति अर्धाश्र्यस्तस्मिन्नर्धाश्र्यभभागे स्वविभागमध्य एव चित्राया योगतारास्तीति बोध्यम्" अर्थात् चित्रानक्षत्र के ठीक ठीक अर्ध विभाग में चित्रा के योग तारे की स्थिति है।

३. 'चित्रार्धाश्रमभागे' पाठे 'तु' चत्वारोऽब्धिश्रुतियुगकृताऽश्रमचतुष्टयाः' इति चतुष्टय संख्याज्ञापकेभ्यः। 'चतुष्टये॥ आश्रमोऽस्त्रीः' इत्यमरात्। चत्वारोऽवयवायस्य। 'संख्याया अवयवे तयप् (पा.५।२।४२) चतुरवयवसमुदाये आश्रमः॥ आश्रमो ब्रम्हचर्यादौ वानप्रस्थे वने मठे इति मेदिन्याः कथनेन च आश्रमाश्चत्वारः। आश्रमाणां चतुर्णामर्धभागोऽर्धाश्रमभागस्तास्मिंश्चित्राया अर्धाश्रमभागे द्वितीय भागान्ते स्वमठमध्ये स्वक्षेत्रमध्येच चित्राया योगतारास्तीति बोध्यम्॥

अर्थात् 'चार, अब्धि, समुद्र, श्रुति, युग, कृत, आश्रम, चतुष्टय आदि शब्दों से ज्योतिषिक रीति से चार की संख्या का ग्रहण होता है, अमरकोष में चार के अर्थ में आश्रम शब्द तथा मेदिनी में मठ के अर्थ में भी आश्रम शब्द कहा गया है। इससे चित्रा नक्षत्र के चार पादों मे से अर्ध में यानी दूसरे पाद के अंत में अथवा स्वक्षेत्र विभाग के मध्यमें चित्रा के योग तारे की स्थिति है।

४ 'चित्रार्धाष्टभभागे' इति टीकाकारेणोक्तेन पाठेनाऽपि रोहिण्यष्टदलान्त इति चान्यत्र विधानात्कात्यायनशुल्बसूत्र (७९) कर्कभाष्येऽपि आग्नेग्निरर्धाष्टम पुरुषप्रमाणः। प्रपदोच्छ्रिते चतुर्हस्तप्रमाणकमित्यर्थः। 'तत्तदिभांशकाः॥ शवोयूका च लीक्षा च बालाग्रं चैवमादयः॥' 'राशिलिप्ताऽष्टमोभागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते' [सू. सि. २१९] इति सर्वेषु ग्रंथेषु राशिनक्षत्रांगुलादीना मष्टाष्टमविभागस्यैवोपादानात्। नक्षत्रभभोगानां ८०० कलाप्रमितत्वात्तेषामष्टमोभागः शतकलामितो गणितसौकर्यायात्रा-

चार्येणोक्तः । तेन भभोगाष्टमभाग (१°।४०′) एव अंशत्वेन वेदितव्यः । इत्यताश्चित्राया अर्धाष्टमभागे । अर्धं नपुंसकम् (पा. २।२।२) समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे सप्राग्वदित्यनेन अर्धं अष्टमभागः । अर्धाष्टमभागः समांशकश्चतुर्थोभागस्तस्मिन् स्वभोगस्यार्धभागे समांशकमध्ये भागे, त्रिभिर्हस्तैरंतरिते=२° ४३′·२ विक्षेपे " क्रांतिवृत्तार्धाद्दक्षिणतो योगताराऽस्तीति " टीकाकारसूचितोऽर्थोलिखितः ॥ किं च चतुर्भिः पाठभेदैरेकएवार्थोनिष्पद्यत इत्युपपन्नमिदम् ॥ अर्थात् नक्षत्रविभाग के समान आठ भाग में से अर्ध में=चौथे विभाग में यानी चित्रा विभाग के ठीक ठीक मध्य में । यहां महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी लिखते हैं कि " क्रांति वृत्तार्द्ध के दक्षिण में २°।४३′·२ शर वाली चित्रा की योगतारा स्थित है.

प्रथम प्रकार से चित्रा की स्थिति क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में कही गई है। और २, ३, ४ प्रकारों में चित्रा की योगतारा उसके नक्षत्र विभाग के ठीक ठीक मध्य में कही गई है, उससे भी इसमें गत नक्षत्र भोग मिला देने पर १३×१३° । २०′=१७३° । २०′+६° । ४०′=१८०° । ०′) क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में ही आती है । ऐसे चित्रा की स्थिति चारों प्रकारों से क्रांति वृत्तार्द्ध में सिद्ध होती है यह योग्य ही है । और यही शिरस्थानीय मुख्य निर्धारित होने से संपूर्ण नक्षत्रों की योगताराओं के भोग इसी को मध्य में मानकर कहे गए हैं । ऐसा होते हुए भी इन्हें प्रिं. गोविन्दरावजी ने अशुद्ध, निरुपयोगी व असत्य कहा है, सो प्रमाण शून्य एवं व्यर्थ है । इसका विस्तृत विवेचन समाधान (६ अ) में किया गया है.

परीक्षण ६ (इ)

तसा तो मानिला तरी तो ध्रुव सूत्रीय आहे. हे भोग कशा प्रकारचें आहेत हें जरी वराहमिहिरोक्त सूर्यसिद्धांतांत सांगितले नाहीं तरी " शास्त्रमाद्यंतदेवेदंयत्पूर्वंप्राह भास्करः " असें जें या सूर्यसिद्धान्तासंबन्धी साम्प्रत सूर्यसिद्धांतांत लिहिले आहे त्यावरून हें स्पष्ट आहे कीं सांप्रत सू. सि. मध्यें जसें ध्रुव स्फुट भोग सांगितले आहेत तसेंच मूळच्या सूर्यसिद्धांतांत सांगितले आहेत व तसे ते असल्याचेंही दीनानाथजींनीं पुणें येथील शके १८४७ च्या सभेच्या रिपोर्टांत लिहिलें आहे हें वर दर्शविलेंच आहे.

समाधान ६ (इ)

बिना कोई पूर्वापर संबंध के सोचे विचारे या प्रमाण के बिना बताए उक्त नक्षत्र भोगों को ध्रुव सूत्रीय बताने का प्रयत्न किया है. यहां आपने यह तो सोचना था कि करणागत स्पष्ट चंद्र सदा ही कदंब प्रोतीय बनता है । उस स्पष्ट चंद्र का भोग जबकि १८० अंश

होवे तब उक्त चित्रा के शर के तुल्य शर हो तो भेदयुति (अन्यथा स्थानयुति) कही गई है। तब यह ध्रुव प्रोत्तीय कैसे हो सकती है. माल्रम होता है आपने इसी बात को छुपाने के लिये वराहमिहिरने इसके संबंध में कुछ कहा नहीं ऐसा असत्य कहकर; इसे सूर्यसिद्धांत के तुल्य बताने के लिये वराहोक्त सूर्य सिद्धांतीय के नाम से इन्हें कह दिये हैं। सो यह दूसरी ताजा झूठा है। क्योंकि पंचसिद्धांतिका में सूर्य सिद्धांत प्रोक्त सिर्फ ९। १०। १६। १७ अध्याय ४ में वर्णन है। यह भभोग तो वराहमिहिर प्रोक्त अध्याय १४ में कहे गये हैं। इतना भी होकर क्षणभर के लिये मान लेवें तो भी बाद के बने ग्रंथ की बातें पहले ग्रंथ में कैसे आसकती हैं। तथा प्रत्यक्ष में दिखता है कि वर्तमान सूर्य सि. के युगमान भगणादि से विलक्षण मान प्राचीन सू. सि. में हैं। और आपने वर्तमान सू. सि में भी नक्षत्रों के ध्रुवक इस कारण कदंब सूत्रीय न होकर ध्रुवसूत्रीय हैं ऐसा प्रमाण या आधार हेतु बताना था किंवा पंचांगैक्य मंडल पूना सभा में दिये हुए मेरे निर्णय में कहां, किस उद्देश से, कैसे, किस प्रमाण से ध्रुव सूत्रीय लिखे होते तो वही बताना था किंतु वह कुछ नहीं लिख कर जिसका प्रस्तुत प्रकरण में तनिकसा भी प्रसंग या अर्थ नहीं ऐसा " शास्त्रमाद्यं " श्लोक लिख दिया है। इससे निश्चित होता है कि आपके कथन को कोई आधार ही नहीं है अतएव आपका लिखना व्यर्थ एवं स्वसमर्थन हीन वितंडा मात्र है.

परीक्षण ६ (ई)

" या विधानांतील उताऱ्यांच्या विवरणांत प्रत्येक नक्षत्रभोगाचे ८ विभाग मानले आहेत त्यास अंश अशी संज्ञा दिली आहे. ह्मणजे प्रत्येक अंश १०० कलांचा पडतो. अशा प्रकारचे अंश या उताऱ्यांत विवक्षित आहेत असें समजून पं. दीनानाथजींनें विवरण केलें आहे. त्या त्या नक्षत्र विभागांत चित्रापक्षीय भोग कितव्या अंशांत आहेत ते यांत सांगितलें आहे असें दाखविण्याचा प्रयत्न केला आहे. कृत्तिका विभागांत कृत्तिका चित्रापक्षीय भोग ३६।९ आहे. तसेंच रोहिणी भोग ४५° ५७′ यांतून कृत्तिकांता पर्यन्तचे ४०° वजाकरून बाकी ३५७ कला राहतात. ह्मणजे रोहिणी तारा आपल्या विभागांत ३. ५७ अंशावर आहे. अष्टदल =४. "

समाधान ६ (ई)

कृत्तिका और रोहिणी इन दो ताराओं के शुद्ध नाक्षत्र भोगों का उल्लेख करते हुए भी प्रिं. साहब इनका खंडन नहीं कर सके इतना ही नहीं तो उक्त मेरे विधानों का परीक्षण में योग्य समर्थन किया गया है। तथापि अन्य पाठकों को प्रस्तुत विषय; विशदरूप से ज्ञात हो जाय इसलिये यह स्पष्टीकरण करता हूं. इसमें कृत्तिका का शर ३॥ हात लिखा है। उसके इसी प्रकरण में कहे प्रकार अशादि ३° १४′.४ होते हैं। वेधोपलब्ध वर्तमान शर

४°।२.३' से इसका अंतर सिर्फ ५१."९ है । कृत्तिका भोग ३६° ९'– (गतर्क्ष २ भोग) २६° । ४०'=९° २९'=५.६९=(षष्ठांशान्ते) षष्ठ अंश के अंतिम भाग में ही कृत्तिका की स्थिति आती है किंतु झीटा पक्ष से कृत्तिका भोग ४०° ७' होने से वह (तारा) कृत्तिका विभाग को लांघकर रोहिणी विभाग मे चला जाता है । सो यह वराहकथित मान से बरना भारतीय कुल ग्रंथों के विरुद्ध है क्योंकि रोहिणी विभाग में कृत्तिका के योग तारा का जाना कोई भी ग्रंथ में लिखा नहीं है । ऐसे ही रोहिणी का ६॥ हात = ५° ५१.'६ द. शर कहा है. वेधोपलब्ध शर – ५° २८'·१ से अंतर + २५' मात्र है रोहिणी भोग ४५°।५७' ४०° गतर्क्ष शेष =५° ५७' = ३·५७ भाग में तारा होने से (रोहिण्यष्ट दलान्ते) रोहिणी की योगतारा अपने चतुर्थ विभाग के अंत्यार्ध में स्थित है । किंतु झीटागणना से ५.९५ विभाग ग्रंथोक्त से २ भाग आगे होने से अयुक्त है ।

परीक्षण ६ (उ)

(३) ' पुनर्वसू दक्षिण तारा प्रश्वा प्रोसियान मानिला आहे परंतु याचा शर १५°–५१' दक्षिण आहे. हा उत्तर पुनर्वसु (पोलक्स) ताऱ्याचाशर ६।४१ उ. याच्या दुपटी पेक्षां मोठा आहे. परंतु या दोन्हीं ताऱ्यांचा शर भिन्न दिशेंत ८ हस्त= $\frac{८\times२४}{५}\times\frac{३४}{६०}$ =७° १५'·२ आहे. (पुढें श्लो. ३८ पाहा) [१ हस्त=२४ अंगुलें व १५ अंगुलें=३४ कला] असें सांगितलें आहे. या वरून प्रश्वा हापुनर्वसूचा दक्षिण तारा मानता येत नाहीं. तथापि तसा तो मानिला तरी त्याच्या भोगातून म्हणजे ९२ अंशातून पूर्वीच्या ६ नक्षत्रांचे भोग वजा जातां बाकी शत कलात्मक अंश ७-२० येतात ते ८ व्या अंशांत आहेत; परंतु पुनर्वसु उत्तर तारा पोलक्स याचा भोग ८९।२४ हा ५-६४ अंशावर येतो हा विसंगत आहे ।

समाधान ६ (उ)

(३) पुनर्वसुके दो तारे क्रांतिवृत्त के दक्षिणोत्तरमें शर ८ हात=७°।१५·'२ के कहे हैं । और भारत में भी पुनर्वसु के २ तारे " तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वत: ' रथाभ्याशे चकाशेते चंद्रस्येव पुनर्वसू ॥ १ ॥ सशरचंद्र के दोनों पार्श्वी (कर्ण पर्व अ. ४९) में कहे हैं । इनमें पहला उत्तर पुनर्वसु (पोलक्स) का उत्तर शर ६।४०·५ सिर्फ—३४·७ कला कम है । सो करीब में मिलता है । इसका भोग ८९°।२४' और यह ५·६४ अपने छठे विभागमें है । यद्यपि यह अष्टमांशभाग – २·३६ कम है तोभी इसके सिवाय यहां कोई दूसरा बडा तारा नहीं है । किंतु झीटापक्ष से देखें तो इसका भोग ९३।२२ होनेसे यह पुनर्वसु को लांघ कर पुष्य विभाग में चलाजाता है इस कारण ग्रंथोक्तसे झिटा का मेल न होकर चित्रा गणनासे ही यह मिथुनांत (९०° से सिर्फ ३६'

क्रम) में मिलता है सो युक्ति युक्त है । दूसरा । दक्षिण पुनर्वसु शर १९° ५१′ द. है । यद्यपि यह ग्रंथोक्तसे १०° ३६′ अधिक है तथापि उ. पुन. के प्रति का क्रांति वृत्त के. दक्षिण में दूसरा तारा न होनेसे इसे पुनर्वसु माना है; और इसके संबंध मैं भी " त्रिसंगत दिखता है" के अतिरिक्त कोई दूसरे तारे के नाम को सूचित आप नहीं करसके हैं । इसका भोग ९२°।०′ और यह अपने ७·२० अष्टम विभाग में स्थित है । इस लिये यह ग्रंथोक्तसे मिलता है । झीटा पक्षसे तो यह पुनर्वसुको लांघकर पुष्य के-१·९८ विभागमें चला जानेसे उस का ग्रंथोक्तसे तनिक संबंध भी रहता नहीं है । अतःझिटा गणना मिथ्या है.

परीक्षण ६ (ऊ)

(४) पुष्य भोग १०४° ९३′ यांतून गत नक्षत्रांचा भोग ९३।२० वजा जातां बाकी ११° ६३′ म्हणजे शतकलात्मक अंश ३·९३ येतो. चवथे अंशांत येत नाहीं. दीना-' नाथजीनीं पुष्याचा भलताच तारा घेण्याचें कारण असें दिसतें कीं त्याचा भोग १०१° ३४ येतो व तो शतकलात्मक ४·९४ अंशांत म्हणजे ५ वे अंशांत येतो. तरी सुद्धां ४ थे अंशांत येत नाहीं. दीनानाथजींनी तेवढ्या करितां मूळपाठ " चतुर्थेऽशे " असा असतांना तो बदलून " स्वतुर्यान्त्ये " असा पदरचा पाठ घातला आहे. मूळ ग्रंथांत पाठांतर म्हणून सुद्धां हा पाठ दिलेला नाहीं. मनमानेल तसे पाठ बनवून दुसऱ्यास फसविण्याची युक्ति दीनानाथजींनी अंगीकारली ही मोठी खेदाची गोष्ट आहे.

समाधान ६ (ऊ)

ग्रंथ में पुष्यका शर ४॥ हात = ४°।४′·८ उ० और शतकलात्मक ४ अंश में योग तारा कहा है । इस संबंध में यद्यपि ' एसैकांक्रै ' का भोग ९९°।०′ होनेसे वह ग्रंथोक्त मानसे पुष्यके चतुर्थ भाग में आता है तथापि ग्रंथोक्त शर से उसका शर ४ अंश अधिक है । ऐसे ही ' डेल्टाकांक्रै ' का शर चार अंश कम है । इस लिये इन दोनों को छोडकर इनसे कम शरांतर–(–३ ३०′·८)–वाली ईटाकांक्रै को मैंने पुष्यकी योग तारा मानी है । इसका वेधसिद्ध भोग १०१° ३४′, शर+१° ३४′ होनेसे यह ४·९४ विभाग में आती है । सो ग्रंथोक्त चतुर्थांश के निकट स्वतुर्यान्त्ये (स्वकीयतुर्य भागस्यान्ते) में आती है जोकि ' चतुर्थेशे ' के सामीप्यार्थ में सप्तमी प्रयोग से स्वल्पान्तर से उक्त +·९४ भाग के तुल्य है । पुनर्वसुके तुल्य पुष्यकी दो तारा न होने से इसके शर के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रस्तुत परीक्षण के उत्तर में लिखना पडता है कि ' बने जिस प्रकार गलती बताने की धुन में लगे हुए गोविंदरावजी की दृष्टि पहले मूल पाठ और शर के ऊपर नहीं पहुंच कर वह हमारे संशोधित पाठ को देखकर चौक पडे हैं । किंतु जहां शर ४°।९′ वाली कोई वहां दुसरी तारा नहीं है इससे स्पष्ट है कि यह तारा निजगति से ९४ कला १४२३ वर्षों

में हट जाना स्वाभाविक बात है। तथा सिद्धान्त गंथों में तो पुष्यकी योग तारा का शर शून्यांश लिखा रहने के कारण डेल्टाकांक्री को पुष्प तारा मानते हैं सोभी पुष्य के ६.९३ सातवें विभाग मे ही रहती है। किंतु यदि झीटा पिशियम से गणना करके देखें तो ईटा कांक्री ७.३२ पुष्प के आठवें विभाग में जाती है। जिसका वराहोक्त से (९° ! ३२') कला का महदंतर हो जाता है। तथा डेल्टा कांक्री तो पुष्प विभाग को ही लांघकर आश्लेषा के (१.३१) दूसरे विभाग में चले जाती है। ऐसे दूसरे विभाग में चली गई हुए तारा को भी पुष्प के विभाग की कहकर दूसरों को धोके में डालना नहीं तो क्या है।

परीक्षण ६ (ए)

५ आश्लेषा तारेसंबंधी ही असाच पाठ बनविला आहे. " सार्पस्यांशे " असा मूल पाठ बदलून " सार्पस्यांशे " " सार्पद्वयंशे " असा पदरचा पाठ घातला आहे. मूल ग्रंथांत पाठांतर म्हणून सुद्धा हा पाठ दिलेला नाहीं. आश्लेषा भोग १०९।४८ म्हणजे त्याचा आपले विभागांत शतांशात्मक दुसरा अंश येतो. त्याकरितां या वाम मार्गाचा अवलंब केलेला आहे. नवीन पाठांत सार्पे अशी सप्तमी घातली आहे. परंतु सर्व ठिकाणीं नक्षत्राचें नांव प्रथमांत किंवा षष्ठ्यन्त आहे. इकडे लक्ष नगेल्याकारणांने आपली सप्तमी झटदिशीं ओळखूं येईल याचें त्यांना भान राहिलें नाहीं.

समाधान ६ (ए)

" आश्लेषा के संबंध में म. पं. द्विवेदीजी ने संस्कृत टीका में लिखा है कि " सार्पस्य आश्लेषाया अंशे प्रथम भागे हस्त एक हस्तान्तरे क्रांतिवृत्ता दक्षिणतो योगतारोत्तरतश्चैका योगतारा।" ऐसा अर्थ-" सार्पस्पांशे " मूल पाठ का " सार्पस्यांशे " शोधित पाठ मानकर किया गया है। अतः मूल पाठ में हस्त या विभाग संख्या बताई नहीं सिर्फ अध्याहार लिया गया है किंतु इस प्रकार एक हस्त के=१४.४' शरवाले क्रांतिवृत्त के दोनों तर्फ तारे न होकर आल्फाकांक्री व सायकांक्री नामक तारे ५°।५' द. और ५।२६ उ. के हैं जो कि ६ हात के फासले से मिलते हैं। इनके उक्तानुक्रम से भोग १०५°।४८' और १०९°।४८'।०' होने से वह दोनों तारे १.८८ व १.५९ विभाग २ में आते हैं। इसलिये मालूम होता है कि जबकि केवल हस्ते के कथन में ६ हात शरवाले ताराओं की ही समानता मिलती है। किंतु वह पहले अंश में न होकर उसके निकट के दूसरे अंश में मिलती है, तो मूल पाठ जो 'सार्पस्यांशे' लिखा है वह सार्पेद्वयंशे या [सार्पस्य द्वंशे =] सार्पद्वंशे होना युक्तियुक्त बताया गया था। खैर गोविंदरावजी के सूचित टीकाकारोक्त सार्पस्यांशे पाठ से भी औपश्लेषिकादि षट्विध अधिकरण में " वटे गावः शेरते " के तुल्य सामीप्यकार्थ में सप्तमी होने से " पहले अंश के निकट अर्थात् जो दूसरे अंश को लांघी न हो ऐसा अर्थ होकर

उस का ग्रंथोक्त से मेल ही रहता है। लेकिन झीटा गणना से यहाँ तारे ४·२६ पंचम भाग और ३·९७ चतुर्थ भाग ऐसे भिन्न भाग में आकर ग्रंथोक्त के निकट भी यह भाग नहीं रहते हैं। ऐसी स्थिति में " सार्पेसमायोग: " की सप्तमी विशेषण वा विचार न करते हुए मुख्य मुद्दे को छोड दिया है किन्तु ऐसे व्यर्थ निरर्गल प्रलापों से अब झीटा गणना की पोल खुले बिना छुपी नहीं रह सकती है।

परीक्षण ६ (ऐ).

मघासंबन्धी सुद्धां " पित्र्यस्यस्वाष्टार्धे " असा पदरचा पाठ घातला आहे. " पित्र्यस्य स्वक्षेत्रे " असा मूळ पाठ आहे. मघा भोग १२६।० हा शतकलात्मक ३·१० म्हणजे चवथे अंशांत येतो. त्या करितां हा पाठ बदलला आहे. या प्रमाणें आपले पदरचे पाठ बनवून ते मूळ ग्रंथांतले आहेत असें भासविणें म्हणजे शास्त्रीय वादाची थट्टा करणें होय, ही गोष्ट त्यांनी लक्षांत आणली नाहीं. ही खेदाची गोष्ट आहे. याच वचनांत पुढें " षष्ठेचांशे या मूळ पाठाचे जागीं " स्त्रीयेचांशे " असा आणखी एक पदरचा पाठ घातला आहे. पण त्याचा अर्थ दिला नाहीं.

समाधान ६ (ऐ)

पंचसिद्धान्तिका में मूल पाठ " **पित्र्यस्य स्रछे (क्षे) त्रे, षष्ठे वांशे समायोग:** " लिखा है। और इसकी टीका करनेवाले म. द्विवेदीजी ने-" **पित्र्यस्य स्वक्षेत्रे षष्ठे चांशे समायोग:** " ऐसा शोधित पाठ लिखा है। उसका व्युत्पत्ति शास्त्र से अर्थ होता है कि

(१) " **पित्र्यस्य मघाविभागस्य स्रज्=समन्तात्समांशवाच्यर्धभागोन्नतस्थानरूप=मध्यभागक्षेत्रे क्रांतिवृत्त एव चंद्रस्य समायोगोयुतिर्भवति। सृज्यते सृजति विभागं वा स्रक् ' सृजविसर्गे ' [तु. प. अ.] ' ऋत्विग् ' [३।२।५९] इति किन् ' माल्यं मालास्रजौ मूर्घ्नि ' इत्यमरोक्त्या मध्यभागे धृतायाः मालायाः स्रङ्नाम। स्रग्वत्क्षेत्रे=मघाविभागमध्यभूतक्षेत्रे क्रांतिवृत्त इत्यनेन शतकलात्मकचतुर्थविभागे युतिर्भवतीत्यर्थः।** " अर्थात्-मघा विभाग के मध्यभाग धृत माला के तुल्य क्रांति वृत्त में चंद्र की युति होती है

(२) " **पित्र्यस्य मघायाः स्वक्षेत्रे ' स्व स्वजनाः समा ' इत्यमरात्-समे क्षेत्रे=समक्षेत्रे स्वकीय विभाग मध्ये क्रांति वृत्ते च समायोगो भवतीतिबोध्यम्। षड्विधेष्वधिकरणेषुसमांशवाच्यर्धरूपौपचारिकार्थे सप्तमी प्रयोगाच्च।** " अर्थात् " मघा नक्षत्र के अपने विभाग मध्य के अन्तर्गत ही क्रांतिवृत्तपर चंद्र की युति होती है। "

इस प्रकार दोनों पाठभेदों से श्लोक के पूर्वार्द्ध का अर्थ बताया गया है कि प्रस्तुत शत कला विभाग ८ के मध्य ४ में चंद्र की मघा के तारे के साथ युति होती है। यही

बात लल्लसिद्धान्त में भी " **प्राजापत्यदले स्थितस्तु हिमगुर्याम्यै शरांशैस्त्रिभिवित्र्यंशैः शकटं भिनत्ति विदलैस्तैः पंचभी रोहिणीम् ॥ सौम्यैः पंचभि ५ रंशकैश्चसदलैस्तारां मघामध्यमां, विक्षेपेण विवर्जितश्च गुरुभं पौष्णं तथा वारुणम् ॥ १ ॥** " इस प्रमाण से शकट, रोहिणी, मघा, पुष्य, रेवती और शततारका इनकी मध्य भाग में=शतकलात्मक चतुर्थ भाग में यानी षष्ठिकलात्मक (६° । ४०′) भाग में योगतारा की स्थिति कही है । इसलिये मघा की तारा रेग्यूलस लेने से वह शतकला विभाग ३.६० चतुर्थ में आने से ग्रंथोक्त के तुल्य है । झीटागणना से वह शतकला विभाग से ५.९८ छठे भाग में षष्ठिकला से (९° ५८′) दसवें अंश में चली जाने से ग्रंथोक्ति से तथा लल्लोक्ति से उसकी साम्यता मिलती नहीं है.

इसी श्लोक के उत्तरार्ध में ग्रंथकार ने वैकल्पिक रीति से मघा के तारे का भोग " **षष्ठे वा अंशे समायोगः** " प्रकारान्तर से यानी षष्ठि कलात्मक अंश विभाग से अपने विभाग के छठे अशं में कहा है । अर्थात् मघाविभागारंभ के छठे अशं पर = (१२०°+६° = १२६ अंश में चंद्र) आने पर मघा के साथ युति कही है ।

(३,४) अथवा " **पित्र्यस्य मघायाः स्वक्षेत्रे षष्ट्युत्तर शतत्रयांशानां स्त्रग्रूपे=माल्यरूपे क्षेत्रे राशिचक्रे एव षष्ठे वा अंशे वैकल्पिक सामर्थ्या दुपक्रामितशतकला-विभागांशाद्भिन्न प्रकार के षष्टि कलारूपे षष्ठे अंशे = (१२०° +६°=१२६°) युतिकालो बोध्यः । द्विवेदीप्रोक्तपाठस्तु मूलपुस्तकपाठाद्भिन्नत्वा दग्राह्यस्तथापि 'चः पादपूरणे, पक्षान्तरे, हेतौ, विनिश्चय ' इति त्रिकाण्डशेषात्पक्षान्तरेण = च षष्ठे अंशे समायोगोभवती त्यूह्यमिति चतुर्भिःपाठभेदैरेक एवार्थोनिष्पद्यते.** " प्रकारान्तर से अर्थ किया जाता है कि = ३६० अंशों की मालातुल्य मघा विभाग के छठे अंश (१२६°) पर मघा की योगतारा है । इस प्रकार चारों भी पाठ भेद से एकही अर्थ निश्चित होता है ।

बाकी गोविंदरावजी ने जो कुछ लिखा है सो अनर्गल रूप एवं गलत है । यह मुख्य मुद्दे को छुपाने के लिये कुछ तोभी " **शेषं कोपने पूरितः** " के कथनानुसार आलाटाली, सुनी अनसुनी कर रहे हैं सो यह शास्त्र और न्यायपथानुगमन का उपहास नहीं तो क्या है ?

परीक्षण ६ (ओ)

यावरून कृत्तिका व रोहिणी सोडून बाकी सर्व ताऱ्यांच्या ठिकाणीं दीनानाथजीची अर्थ करण्याची नवीन तऱ्हा फसली आहे. कृत्तिका व रोहिणीसुद्धांसहावे व चवथे अंशाचे शेवटी पाहिजेत ते त्या त्या अंशात येतात म्हणजे त्यांचे संबंधांत सुद्धां ही पद्धति निरुपयोगी ठरते. व मुख्य तारा चित्रा इचे १८० दाखविण्याकरितां तर हिचा उपयोग मुळींच केलेला नाहीं अतएव ती त्याज्य आहे.

समाधान ६ (ओ)

इस प्रकार विधान और समाधान द्वारा सिद्ध किया गया है कि वराहमिहिर प्रोक्त ९ ताराओं के भोगशर में से (१) उत्तर पुनर्वसु −१.३६,(२)पुष्य+०.९४, (३) दक्षिणाश्लेषा +०.८८, और (४) उत्तराश्लेशा +०.५९यह चार तारे सामीप्यकाधिकरणोक्त सप्तमी प्रयोग को देखने तथा ताराओं की निजगति कला व दिगंशों के और शरकी आसन्नता का विचार करने से ज्ञात होता है कि उक्त चारों योग ताराओं का परिमाण ग्रंथोक्त के तुल्य ही है। तथा इनके आपस के अंतर को (+.९४+.८८+.५९=+२.४१−१.३६=१.०५÷४=+०.२६ कला) इस प्रकार धनर्ण करने पर चारों तारों में सरासरी अंतर २६ कला मात्र करीब १॥ हजार वर्ष में होजाना स्वाभाविक एवं गणितसिद्ध बात है। (५) कृत्तिका, (६) रोहिणी (दक्षिण पुनर्वसु) यह तो ग्रंथोक्त विभाग के अंतर्गत ही हैं। करीब १॥ हजार वर्ष में भी यह अपने विभागों के बाहर नहीं गए। इससे इनकी निज गति बहुत कम है ऐसा सिद्ध होता है। तथा (८) मघा, (९) चित्रा तो ग्रंथोक्त परिमाण के अंशकलासाम्य ठीक ठीक तुल्य मिल गई है; अतः इन दोनों तारों की निज गति अत्यन्त ही अल्प है। उसमें भी चित्रा एक तारा नक्षत्र, देदीप्यमान व निःसंदेह रूप होनेसे संपूर्ण भारतीय ग्रंथकारोंने इसे सत्ताईस नक्षत्रों में मुख्य और क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में मानी है।

यदि यही परिमाण झीटा गणना से देखना चाहें तो "उक्त अनुक्रम से पहले चार तारे (१) उत्तर पुनर्वसु + १°०२, (२) पुष्य + ३°३२, (३) द. आश्लेषा + ३°२६, (४) उत्तराश्लेषा + २°९७, = +१०° ५७÷४= +२°६४ कला) से अंतरित होने से उनकी सरासरी ४°४ अंश की आती है। (५) कृत्तिका की योग तारा तो अपने विभाग को लांघकर रोहिणी विभाग में चली जाती है, (६) ग्रंथोक्त चौथे भाग को छोडकर रोहिणी छटे विभाग में और (७) द. पुनर्वसु की तारा तो अपने विभाग को लांघकर पुष्य में चली जाती है (८) मघा की तारा +३°५८'.१ तथा (९) चित्रा की तारा +३°५८'.१ अधिक हो जाने से"— ग्रंथोक्त से किसी प्रकार भी झीटा का मेल मिलता नहीं है। अतएव यह कपोल कल्पित है।

परीक्षण ६ (औ)

हे सर्व भोग ध्रुव सूत्रीय आहेत हे पूर्वीच दाखविलें आहे तथापि तसें ते लिहिण्याचें आणखी एक कारण सि॰ शि॰ ग्रहयुत्यधिकारांत दिलें आहे. आयन दृक्कर्मदत्त भोग लिहिण्याने युतींचे ज्ञान चांगलें होतें " एवं कृते द्विविचरौ ध्रुवसूत्रसंस्थौ स्यातां सदा वियती सैव युतिर्निरुक्ता ॥ दृक्कर्मणायनभवेन नसंस्कृतौ चेत्सूत्रे तदा त्वपमवृत्तजयाम्यसौम्ये ॥५॥ ". या वरून पंचसिद्धान्तिकोक्त सूर्यसिद्धांतांत लिहिलेला चित्रेचा भोग घटकाभर १८० लिहिला

आहे असें मानिलें तरी तो ध्रुवाभिप्रायानें असल्यामुळें कदंबाभिप्राय १८०°। ४८' येतो या करितां दीनानाथजींचें हे सर्व विवेचन व्यर्थ जाहलें आहे; शिवायचार ठिकाणीं पदरचें पाठ घालण्याचा निंद्य यत्न त्यांना करावा लागला तो वेगळाच शरासंबंधी त्यांनीं अशी कांहीं शकल लढ़विली नाहीं हें आश्चर्य आहे.

समाधान ६ (औ)

उक्त परीक्षण गलत और भ्रामक है। क्योंकि यह पहले बताया गया है कि उक्त योग तारों की युति स्पष्ट चंद्र के साथ कही गई है। स्पष्ट चंद्र सदाही कदम्ब सूत्रीय होता है। यदि उक्त भेम ध्रुवसूत्रीय होते तो चंद्र को भी ध्रुवसूत्रीय बनाना लिखा होता। वैसा करना वराह मिहिरने लिखा नहीं है। जैसा कि आपके लिखे भास्कराचार्य के ग्रह ग्रह युति के प्रमाण में ही कहा गया है कि;"दृक्कर्म कृत्वा यनमेव भूयः साध्येति तात्कालिकयोर्युतिर्यत् ॥४॥" वासना 'यद्य कृते दृक्कर्मणि युतिः साध्यते सापि भवति। तदा तौ ग्रहौ क्रांति वृत्तात् तिर्यक् सूत्रे। तदा कदंबोपरि नीयमानं सूत्रं ग्रहद्वयोपरिगतं भवतीत्यर्थः। कदंब प्रसिद्ध तारयोरभावाद् द्रष्टुः प्रतीतिर्नोत्पद्यत इति ध्रुवसूत्रे युतिः कथिता। युतिर्नाम यदाकाशे द्वयोरल्पमन्तरं तत् प्रायः कदम्बसूत्रस्थयोरेवभवति।" (सि. शि. ग्रह ग्रहयुति श्लो. ४-६) अर्थात् ,'करणागत ग्रह कदंबसूत्रीय रहते हैं उनको ध्रुवसूत्रीय करने के लिये आयन दृक्कर्म का संस्कार करना पडता है। नहीं भी करे तो यह युति क्रान्तिवृत्तानुसार ध्रुव के तारे से तिरछी रहती है ध्रुवादि तारों के समसूत्रीय के बिना एवं कदंबाभिमुख ध्रुवस्थानकी प्रसिद्धी के बिना इसमें देखने वाले की प्रतीति कम होती है इसलिये स्पष्ट ग्रहों को ध्रुवसूत्रीय बनाकर युति कही है। वस्तुतः युति तो ग्रहों के आपस में अल्पान्तर से होती है और वह बहुत करके कदंबसूत्रीय ही होती है अर्थात् ध्रुवसूत्रीय नहीं." ऐसा भास्कराचार्य ने कहा है।

यह कथन आपके कथन के विरुद्ध होते हुए भी आपको उसका भाव समझा नहीं-वह भी अम्मरेवड़ी के प्रिंसिपल को-आश्चर्य है। किंतु उससे भी बडा दूसरा आश्चर्य ये है कि भास्कराचार्य ने अपने नक्षत्रों के ध्रुवकों को 'कृतदृक्कर्म का ध्रुवाः' ध्रुवाभिमुख कहने से उनके द्वारा कदंबसूत्रीय युति ठीकशिर नहीं दिखेगी इसलिये भास्कराचार्य ने ग्रह ग्रह युति के तुल्य ही भग्रह युति को बताने के लिये; करणागत कदंबसूत्रीय स्पष्ट ग्रहों को; दृक्कर्मद्वारा ध्रुव सूत्रीय करके ध्रुवसूत्रीय युति और दृक्कर्म नहीं करते ग्रहों के आपस में कदंब सूत्रीय युति; कही है। किंतु वराहमिहिर ने तो स्पष्ट चंद्र के ही योग से "दृष्ट्वातारा शशाङ्कविवरंच' तारा के अंतर को नापकर जो युति कही गई है वह स्पष्ट रीति से कदंबसूत्रीय ही कही गई है। ऐसा होते हुए भी शाके १०७२ में कहे हुए भास्कराचार्य के कथन से शाके ४२७ में कहे हुए वराहमिहिरोक्त युति का आगे से पीछे

की ओर ६४५ वर्ष विलोम गति से ले जाकर बादरायण संबंध लगाना वह भी केवल चित्रा के भोग में सिर्फ +४८ कलाके अंतर को असत्य रीति से बताने के लिये—ऐसा निन्द्यकार्य करना महदाश्चर्य है।

तथा तीसरा आश्चर्य अभी बाकी है वह इस प्रकार है कि आपने प्रस्तुत वराहमिहिर के कथन को प्राचीन सूर्यसिद्धांन्त का कह दिया है। वस्तुतः पंचसिद्धान्तिका में कुल अध्याय १८ हैं। इनमें से (१) अध्याय १२ में-पितामह सिद्धान्त, (२) अध्याय २ में-वसिष्ठसिद्धान्त, (३) अ. ८ में-रोमक सिद्धान्त, (४) अध्याय ३।६।७।१८ में-पालिश सिद्धान्त, और (५) अध्याय ९।१०।१६।१७ में सूर्यसिद्धांत इस प्रकार ग्यारह अध्याय में पांचों सिद्धान्त लिखे गए हैं। तथा अध्याय १।४।५।११।१३।१४।१५ में वराहमिहिरने स्वतः का (करण ग्रंथ और सिद्धान्तोपकरण रूप) कथन लिखा है। उसमें प्रस्तुत युति के श्लोक छेद्यक यंत्राध्याय १४ में लिखे हुए हैं। किंतु गोविन्दरावजी उसे सूर्य सिद्धान्त के कहकर सर्व साधारण जनता को भ्रम में डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। ताकि वह लोग चित्रा की शास्त्र शुद्ध उपादेयता को समझ न सकें।

किंतु ऐसे असत्य एवं भ्रमोत्पादक विरोध के घर्षण से चित्रा की शास्त्र शुद्धता एवं उपादेयता सुवर्ण के भांति और भी झलक उठती है। जैसे कि वराहमिहिर ने कदंब प्रोतीय स्पष्ट चंद्र से उक्त ताराओं की युति में चित्रा का भोग १८० अंश कहा है इतना ही नहीं तो "चित्रार्धास्त्रभभागे" इस कथन से चित्रा की योगतारा को त्र्यस्त्र, चतुरस्त्र के भांति क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्य में निर्द्धारित कर देने से चित्राभिमुख बिन्दु ही राशि चक्र का आरंभ स्थान निश्चित हो जाता है। और उसी आरंभ स्थान से निश्चित किये हुए आठ ताराओं के वराहमिहिरोक्त विभागों की एक वाक्यता सिद्ध की गई है. तब ऐसे शास्त्र सम्मत, सत्य पक्ष को त्याग कर शुद्ध नाक्षत्र गणना को नाम शेष करने के लिये सिद्धान्त पक्ष में फूट फैलाने के उद्देश्य से अशास्त्रज्ञ सूचित, स्वकपोल कल्पित निरर्थक आधार बताकर केवल प्रो. छत्रे के बाद जिसका प्रादुर्भाव किया गया है ऐसी भ्रामक कल्पना रूप झीटा के पक्ष का आप सदृश विद्वान् पुरुष ने अवलंब करना अति आश्चर्य है।

विधान ७

इसी प्रकार (१) सोमसिद्धान्त, (२) शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धान्त, (३) विष्णुधर्मोत्तर पितामह सिद्धान्त, (४) वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त, (५) सूर्यसिद्धान्त और (६) पराशर सिद्धान्त में चित्रा भोग १८० अंश लिखा है। इससेः—

अयनांश = चित्रा सायन भोग — १८० अंश।

आरंभ स्थान=चित्रा निरयण भोग—१८० अंश ।

मानकर सभी ग्रंथों में भगणों का आरंभ किया गया है। इसलिये अब हमें सूक्ष्म अयनगति द्वारा मालूम हो सकता है कि शाके २१२ में आरंभ स्थान पर अयनसम्पात की स्थिति थी। अर्थात् वह शून्यायनांश वर्ष है।

परीक्षण ७ (अ)

कोणत्या ही ग्रंथाच्या आधारें चित्रा निरयण भोग (कंदबाभिमुख) १८० अंश येऊ शकत नाहीं या करितां दिलेले समीकरण चुकीचें आहे, चित्रे संबंधी आतां पर्यंत जें विवेचन जाहलें आहे त्यावरून ही गोष्ट स्पष्ट होत आहे.

समाधान ७ (अ)

विधान में कहे हुए सिद्धान्त ग्रथों के प्रमाणों के संबंध में आपने मौन धारण कर लिया इसलिये वह प्रमाण अकाट्य हैं तदनुसार चित्राभोग १८० के लिखे हुए पांच प्रमाण भी पर्याय से आपको सम्मत होते हैं। क्योंकि दैवज्ञ कामधेनु व व्यास तंत्र तथा वराह-मीहिर के कहे हुए नक्षत्रों के भोग जिस प्रकार उन २ ग्रंथों के अंदर लिखे हुए प्रमाणों के आधार पर कदंबसूत्रीय निश्चत होकर चित्रा भोग के संबंध में उक्त समस्त ग्रंथों की एक वाक्यता होगई है उसी प्रकार इन ५ सिद्धान्त ग्रंथों के अंदर कहे हुए नक्षत्रों के ध्रुवक भी कदंबसूत्रीय हैं ऐसा इन ग्रंथों में लिखे प्रमाणों से ही सिद्ध करके बताते हैं।

मालूम होता है: ध्रुवकों में कहे जाने वाले ध्रुव शब्द के बहाने आप इनको ध्रुवसूत्रीय बताकर चित्रा भोग में ४८ कला का फर्क बतालाना चाहते हैं। किंतु यह आपका कथन बिलकुल भ्रमोपादक है। और यह उक्त ग्रंथों के ही प्रमाणों से गलत सिद्ध हो जाता है। वस्तुत: " **शाश्वतस्तु ध्रुवोनित्यसदातनसनातना:** " **इत्यमरोक्त्या क्रांतिसंस्कारयोग्य विक्षेपायन संस्कृत ध्रुवक योरयनांशवशादस्थिरत्वाद् ध्रुवसूत्रीयाणामशाश्वतत्व मसनातनत्वंचावधार्य भभ्रहयुत्यादौ यथा कदंबसूत्रीया: शाश्वताग्रहा: प्रोक्ता: तथैवभध्रुवका-अपि कदंबसूत्रीया: शाश्वता नित्याएवपठिता: । तथाचोक्तं वृद्ध वशिष्ठ सिद्धान्ते ' नक्षत्राणा मथोवक्ष्ये स्वराशिवलये स्थितिम् ॥ १ ॥ ' क्रमशोऽश्विभादेर्भागा निरुक्ता: कमलासनेन ॥ २ ॥ '** (अ. ७ श्लो. ७) **इत्येताभ्यां वचनाभ्यां राशिवलये क्रांतिवृत्ते ग्रहवन्नक्षत्राणामपि कदंबसूत्रीया स्थितिरुक्ता। कमलासनेन ब्रह्मणा अश्विभादेर्भागा-श्चनिरुक्तास्त एवसृष्ट्यादौ कथिताभागा अन्यान्य ग्रंथनिर्माणकालेपि पठिता: सन्तीत्यतो ध्रुवसूत्रीयेषु कालान्तरे विभिन्नत्वंस्यादेव। किंचात्रोक्तेषु पंचसु ग्रंथेषु नक्षत्राणां योगतारकाभेदंविना भोगशरस्यविभिन्नत्वं नोक्तत्वान्नक्षत्राणां निजगत्यायतन सूक्ष्मगणित साधित**

कदंबसूत्रीय भोगशरेभ्यस्तेषां साम्यत्वोपलंभाच्च ग्रंथोक्ता ध्रुवकाः सदा स्थिरा निश्चिताः कदंब प्रोतीया एव सन्तीति निष्पद्यते । " इस प्रकार कदंबसूत्रीय भोगशर ही अविकृत शुद्ध रहने से ध्रुवक नित्य कहा सकते हैं । और ध्रुवसूत्रीय भोगशर तो आयनदृक्कर्म संस्कृत होने से वह भिन्न भिन्न काल में अविकृत रह सकते नहीं ' ऐसा गणित शास्त्र से सिद्ध है ।

कृतयुग के अन्तमें सूर्यसिद्धान्त, त्रेतायुगके अंतमें ब्रह्म सिद्धान्त, द्वापरयुग के अन्तमें सोमसिद्धान्त और कलियुग के कुछ वर्ष बीतने पर पितामह और वृद्धवसिष्ठ सिद्धान्त ग्रंथ बनाए गए ऐसा उन ग्रंथोंमें लिखा है । * तब इन ग्रंथों के परस्परमें त्रेता, द्वापर और गत कलियुग का अंतर होते हुए भी उक्त सब ग्रंथोंमें चित्राभोग १८० अंश ही लिखा है । तब यदि यह भोगशर कृतायन दृक्कर्मक=ध्रुवसूत्रीय होते तो भिन्न भिन्न अयनांश वश दृक्कर्म में भिन्नता आये बिना नहीं रहती । अतःजब कि इसमें भिन्नता न होकर पांचों ग्रंथों की एक वाक्यता है तब निःसंदेह है । कि यह ध्रुवक अकृतायन दृक्कर्मक यानी कदम्बसूत्रीय हैं । इसीलिये योग ताराकी भिन्नता के अतिरिक्त और अत्यन्त निजगति मान् स्वाती के बिना; सम्पूर्ण नक्षत्रों की योगताराओं के भोगशरों के संबन्धमें सभी ग्रंथों की एक वाक्यता मिलती है । अतएव वासिष्ठ सिद्धान्तमें **' राशिवलये स्थितिम् '** क्रांति वृत्तमें नक्षत्रों के ध्रुवकों की स्थिति कही गई है ।

पितामह सिद्धान्त (उपकरणाध्याय) में :— " **अश्विन्या दीनां ध्रुवका राश्याद्याः ॥ भौमादीनां वक्र केंद्राणिच राश्यादीनि ॥** " लिखा है कि जैसे भौमादि ग्रहों के वक्र और अस्तोदय (लोप दर्शन) के केन्द्रांश राश्यादि प्रमाणसे कहे हैं । ऐसेही अश्विनी आदि नक्षत्रों के ध्रुवक भी राशि आदि प्रमाणसे कहे गए हैं । सो कदंबसूत्रीय हैं । इन्हीं के द्वारा ग्रहों की युति बताई गई है । इससे स्पष्ट होता है कि यह ध्रुवसूत्रीय न होकर कदंबसूत्रीय हैं ।

ब्रह्मसिद्धान्तमें कहा है कि:—" **दस्रादीनां स्फुटं नास्ति स्फुटं तारा ग्रहस्यतु ॥ इन्दोरपि समीपत्वा न्नैवं स्याद्बिंब योजनम् ॥** (पृष्ठ ३५ श्लो. २०४) " अर्थात् " न तो अश्विनी आदिनक्षत्रों के ध्रुवक (भोगशर) स्फुट (ध्रुवसूत्रीय) हैं और न ग्रहों के भोगशर स्फुट हैं । इसलिये भौमादि ग्रहों के बिंब अत्यल्प होनेसे ताराओं के साथ इनकी भेद युति तो कहांसे हो सकेगी बरना इतने बडे बिंबवाले चंद्र की भी तारों के साथ भेद

---

* इस विषयका विशेष स्पष्टीकरण देखना हो तो हमारे युग परिवर्तन नामक ग्रंथ (पृष्ठ ८३) में देखिये उसमें सूर्यसिद्धान्तादि ग्रंथों के निर्माण काल के शक वर्ष और भिन्न भिन्न रीतिसे युगों के परिमाण बताए गए हैं ।

युति दृक्प्रतीतिमें आ नहीं सकती " । सोमसिद्धान्त (पृ. २०१२२) में भी ग्रहों के भांति ध्रुवकों का दृक्कर्म करना कहा है:—

" **तारा ग्रहाणा मन्योन्यं युद्ध वाथ समागमः ॥ समागमं चंद्रधिष्ण्यैः सूर्येणास्तमयः सह ॥ १५ ॥ मंद शीघ्राधिकानेता संयोगे गतगम्ययोः ॥ १६ ॥ 'तद्दृक्कर्म' ॥ १७ ॥ ॥ १९ ॥ सार्कबं सत्रिभक्रांति क्षेप घ्नाक्षिज्यया हृताः ॥ षट् कृत्याप्ता ध्रुवः स्वर्ण भदि शोभिन्न तुल्ययोः ॥२०॥ द्वितीय मेतद् दृक्कर्म केचिन्नेच्छन्ति सूर्यः ॥ समलिप्त्योः पुनः कार्या वेतौ दृक्कर्म युग्मही ॥२१॥ भागाढ्यं परितोऽध्यत्राऽश्विवृत्तांशा विरश्मयः ॥ २३ ॥** " अर्थात् इस प्रकार भग्रह युति साधन में ग्रहों के साथ साथ नक्षत्र ध्रुवकों को ध्रुवसूत्रीय बनाने के आयन व आक्ष दृक्कर्म करना कहा है। दूसरा जो आक्ष दृक्कर्म कहा है उसे कई आचार्य नहीं मानते हैं। और वह अश्विवृत्त = क्रांतिवृत्त से यांनी कदंब सूत्रीय से ही युति को कहते हैं। " इत्यादि कथन से स्पष्ट होता है कि यदि नक्षत्र भोग ध्रुवसूत्रीय होते तो उन्हें ध्रुवसूत्रीय करने की आवश्यकता ही क्या थी। अतः यह कदंब सूत्रीय हैं।

सूर्य सिद्धान्त (अ ८) में भी ऐसा ही लिखा है:—"**ग्रहवद्द्युनिशेभानां कुर्याद् दृक्कर्म पूर्ववत् ॥ ग्रह मेलक वच्छेषं ग्रहभुक्त्या दिनादि च ॥१४॥**" भानां नक्षत्राणामपि ग्रहवत् द्युनिशे पूर्ववत् पूर्वोक्तवत् दृक्कर्म च कुर्यात् । कदंबसूत्रीयस्य ध्रुवसूत्रीयंसाधयेत् । ग्रहभुक्त्या नक्षत्रभोगेन चान्तरंविज्ञाय दिनादिकालंनिश्चित्य शेषं ग्रहमेलकवत् ग्रह ग्रह युतिवत् सर्वं गणितं कुर्यादित्यर्थः । यत्तु रंगनाथेन ' अत्र नक्षत्र ध्रुव के पर्वते नायन दृक्कर्माप्युदाहरणं कृतं तदयुक्तम् । तस्य ध्रुवके स्वतः सिद्धत्वात्' । एवमेव '**नक्षत्र ग्रहयोगेषु**' '**दृक्कर्मादाविदं स्मृतम्**' (अ॰ ७ श्लो॰ ११) 'अत्र नक्षत्र ध्रुवकाणामायन दृक्कर्म संस्कृतानामेवोक्तत्वादायनं दृक्कर्म नकार्य मितिध्येयम्' ' अत्राक्ष दृक्कर्मार्थ केवलंशरः साध्यः । नतुदिनमानरात्रिमाननतोन्नते साध्ये । क्षितिज संबन्धेन दृग्ग्रहरूपो दयास्त लग्नस्या वश्यकत्वेन क्षितिजातिरिक्त नतपरिमाणस्य व्यर्थत्वात् । ' इत्युक्तं तदसत् प्रमाणाभावात् । तथाच दिनमान साधन प्रसंगे '**विक्षेपाप क्रमैकत्वे क्रांतिर्विक्षेप संयुता ॥ दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथागता ॥** (अ॰ २ श्लो॰ ९८) **विक्षेप युक्तोनितया क्रांत्या भाना मपिस्वके** (अ. २ श्लो॰ ६३) यथा स्पष्ट ग्रहाणां मध्यमा क्रांतिः कदंबसूत्रीया स्फुटशर संस्कृतापि स्वल्पान्तरत्वात्स्पष्टा क्रांतिरुक्ता तथैव भानां नक्षत्राणामपि ज्ञेया तयैव स्वके दिनरात्रिमाने चरासवैः साध्येत्युक्तत्वात् ।

ननु " **प्रोच्यन्ते लिप्तिका भानां स्वभोगोऽथ दशाहतः ॥ भवन्त्यतीत धिष्ण्यानां भोगलिप्तायुता ध्रुवाः** " ॥ (अ. ८ श्लो १) यद्यप्यत्र " भोग " शब्देन ग्रह भोगवन्नक्षत्र योगताराणां भोगाः क्रांति वृत्तीया सूचिताः किंच "**गोलं बध्वापरीक्षेत विक्षेपं ध्रुवकं**

स्फुटम्." (८. १२) इत्यत्र स्फुट शब्देन ध्रुव सूत्रीयाणा मेवोक्तानां दृक्प्रतीत्या परीक्षा करणी येति रंगनाथेन ध्वनितंतन्न । मूलेतु गोलं बध्वेत्युक्तत्वात् । गोलबन्धेतु यथा "स्वाहोरात्रार्ध कर्णैश्चतत्प्रमाणानुमानतः ॥ क्रांति विक्षेप भागैश्च दाळिते दक्षिणोत्तरैः ॥ स्वैः स्वैः पक्रमैस्तिस्त्रामेषादीनामप क्रमात् ॥ (अ. १३ श्लो ५-६) स्पष्टै भगण संचरात् ॥ क्षेत्राण्येव मजा दीनां तिर्यग् ज्याभिः प्रकल्पयेत् ॥ (अ १३ श्लो. १०-११) उक्तं तथैव ध्रुवकोक्त भोगा नामपि स्वाहोरात्रासत्रैर्यत्रे तिर्यक्त्वेन कदंब सूत्रीयस्य स्पष्टग्रहस्य वेधवद् ध्रुवकाणामपि परीक्षा करणीया इत्यर्थो निष्पद्यते । अतएव एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः ॥ विपर्ययाद्वक्रगते ग्रहेज्ञेयः समागमः (८. १९) इत्यनेन स्पष्ट ग्रह भोगेन सह ध्रुवकेभ्योयः समागमः प्रोक्तस कदंब सूत्रीय एव ससंस्कृत भध्रुवकयो ध्रुवसूत्रीययोर्युतिस्तु 'ग्रहवद्युनिशेभानां कुर्यात् दृक्कर्म पूर्ववदित्यनेन पूर्व मेवोक्ता । यच्चपश्चाऽपि रंगनाथेन "युतिकालस्यगतैष्य त्वमसंभ्रमार्थं प्रनराह" त्युक्तं तदयुक्तं । प्रकारान्तरेण विना पुनरुक्त दोषापत्तेः मूलपाठेससंस्कृत ग्रहस्योल्लेखा भावाच्च । यथाहि दृक्कर्म संस्कारेण कदंबसूत्रीययो स्पष्ट ग्रह नक्षत्र भोगयो ध्रुवसूत्रीयत्वं संसाध्य ताभ्यां ध्रुवसूत्रीयाभ्यां युतिकाल श्चोक्तस्तथैवात्रानुक्तत्वा त्केवलं कदंबसूत्रीययो युतिकाल एव प्रकारान्तरा द्विवक्षित इत्यर्थः सःपर्वत नार्मदसम्मत इति जानीते । '

अर्थात् ' ग्रहग्रह युत्यधिकारमें जैसे दोनों ग्रहोंके अंतर द्वारा कदंबसूत्रीय युतिकालको और दोनोंको दृक्कर्म संस्कार करके ध्रुवसूत्रीय युतिकालको भी कहा है; ऐसे ही भग्रहयुत्य धिकारमें ग्रह के संस्कार के तुल्य भध्रुवकको संस्कृत करके उसके अंतर द्वारा ध्रुवसूत्रीय युतिकालको और दोनों के केवल स्पष्ट भोग द्वारा कदंबसूत्रीय युतिकालको भी कहा है । ' इस प्रकार अर्थ करनेवाले पर्वत के कथनको और आर्द्रा भोग के प्रसंगमें नार्मद के कथनको यद्यपि रंगनाथने अयुक्त कहा है । किंतु उपरोक्त संस्कृत लेखमें सुप्रमाण सिद्ध करके बता दिया है कि रंगनाथ का कथन निराधार है । इसलिये निश्चित होता है कि यदि यह ध्रुवक अशाश्वत अनित्य यानी कालान्तरमें विभिन्न होनेवाले ध्रुवसूत्रीय होते तो इन्हें कृत दृक्कर्मक कहदेते सो वैसा कहांभी कहा नहीं है । इतनाही नहीं तो अनेक स्थलमें कदंबसूत्रीय स्पष्ट ग्रह भोग के तुल्य इनको भी ध्रुवसूत्रीय करने के लिये संस्कार कहा है अतएव सिद्ध होता है । कि यह भध्रुवकों के भोग शर अविकृत नित्यरूप कदंबसूत्रीय हैं ।

तथा द्वि० आर्यसि० (भग्रहयुत्यधिकार श्लो. ९-११) में कहे प्रकार पराशरोक्त करणागत स्पष्ट ग्रहों के भगणारंभ स्थान को वर्तमान कालीन सूक्ष्मगणितागत चित्राभिमुख आरंभ स्थानसे एक वाक्यता होती है इसलिये विभागोक्त (१८० अंश चित्राभोग कदंबसूत्रीयही सिद्ध होता है । ध्रुवसूत्रीय नहीं ।

झीटा निरीक्षण कोष्टक १.

सूर्यसिद्धान्तोक्त ध्रुवकों से झीटागणना के नक्षत्र भागों में तुलनात्मक अंतर.

अनुक्रमांक.	नक्षत्रों के नाम.	ध्रुवसूत्रीय परिमाणों से तुलना.				कदंबसूत्रीय परिमाणों से तुलना.			
		सूर्य सिद्धांतोक्त	ज्योतिगणितोक्त.	अंतर.	परमान्तर.	सूर्य सिद्धांतीय अंक.	ज्योतिगणितोक्त.	अंतर.	परमान्तर.
		° '	° '	° '	° '				
१	अश्विणी	८	१० ५२	+२ ५२	+२ ५२	११ ५९	१४ ६	+२ ७	+२ ७
२	भरणी	२०	२४ ५९	४ ५९	७ ५१	२४ ३५	२९ २०	३ ४५	५ ५२
३	कृत्तिका	३७ ३०	३९ ११	१ ४१	९ ३२	३९ ८	४० ७	० ५९	६ ५१
४	रोहिणी	४९ ३०	५० ४६	१ १६	१० ४८	४८ ९	४९ ५५	० ४६	७ ३७
५	मृगशीर्ष	६३	६४ ३५	१ ३५	१२ २३	६१ ३	६३ ५०	२ ४७	१० २४
६	आर्दा	६७ २०	६९ १२	१ ५२	१४ १५	६५ ५०	६८ ५३	३ ३	१३ २७
७	पुनर्वसु	९३	९४ २९	१ २९	१५ ४४	९२ ५२	९३ २२	−० ३०	१२ ५७
८	पुष्य	१०६	१०८ ५२	२ ५२	१८ ३६	१०६ ०	१०८ ५१	२ ५१	१५ ०८
९	आश्लेषा	१०९	११२ २०	३ २०	२१ ५६	१०९ ५९	११३ ४६	३ ४७	१८ ५५
१०	मघा	१२९	१३० ८	१ ८	२३ ४	१२९ ०	१२९ ५८	० ५८	१९ ५३
११	पूर्वा फाल्गुन	१४४	१४७ ४०	३ ४०	२६ ४४	१३९ ५८	१४३ ३३	३ ३५	२३ २८
१२	उतरा फा.	१५५	१५७ ९	२ ९	२८ ५३	१५० १०	१५१ ४५	१ ३५	२५ ३
१३	हस्त	१७०	१६८ १५	−१ ४५	२७ ८	१७४ २२	१७३ ५५	−० २७	२४ ३६
१४	चित्रा	१८०	१८३ ९	३ ९	३० १७	१८० ४८	१८३ ५८	३ १०	२७ ४६
१५	स्वाती	१९९	१९६ ३८	−२ २२	२७ ५५	१८३ २	१८४ २२	१ २०	२९ ६
१६	विशाखा	२१३	२१० ३६	−२ २४	२५ ३१	२१३ ३१	२११ ८	−२ २३	२६ ४३
१७	अनुराधा	२२४	२२२ १८	−१ ४२	२३ ४१	२२४ ४४	२२२ ४२	−२ २	२४ ४१
१८	ज्येष्ठा	२२९	२२९ ८	० ८	२३ ५१	२३० ७	२२९ ५४	−० १३	२४ २८
१९	मूला	२४१	२४२ ३३	१ ३३	२५ २४	२४२ ५२	२४३ ०	० ८	२४ ३६
२०	पूर्वाषाढा	२५४	२५४ ५१	० ५१	२६ १५	२५४ ३९	२५४ ४२	० ३	२४ ३९
२१	उतराषाढा	२६०	२६३ २	३ २	२९ १७	२६० २३	४६२ ४७	२ २४	२७ ३
२१	अभिजित	२६६ ४०	२५९ २१	−७ १९	२१ ५८	२६४ १०	२६५ २६	१ १६	२८ १९
२२	श्रवण	२८०	२७६ ५	−३ ५५	१८ ३	२८२ २९	२८१ ५३	−० ३६	२७ ४३
२३	धनिष्ठा	२९०	२८७ ५६	−२ ४	१५ ५९	२९६ ५	२९७ ३१	१ २६	२९ ९
२४	शततारका	३२०	३२१ ५२	१ ५२	१७ ५१	३१९ ५०	३२१ ४२	१ ५२	३१ १
२५	पूर्वाभाद्रपदा	३२६	३२५ ११	−० ४९	१७ २	३३४ २५	३३४ ४०	० १५	३१ १६
२६	उ. भाद्रपदा	३३७	३४२ २४	५ २४	२२ २६	३४७ १६	३५४ २६	६ १०	३७ २६
२७	रेवती	३५९ ५०	० ५	० १५	२२ *४१	३५९ ५०	० ०	० १०	३७+३६

* २२°।४१'÷२८=०°·८१ इतना अंतर प्रत्येक तारे में तथा ग्रंथोक्त आरंभर थान से योग-तारे का अंतर १९ कलामित ध्रुवसूत्रीय से रहता है.

\+ ३७।३६÷२८=१·३१ इतना अंतर प्रत्येक तारे में तथा ग्रंथोक्त तारे से आरंभ स्थान का अंतर १० कलामित कदंबसूत्रीय से रहता है.

अर्थात् दोनो भी परिमाणों का झीटा गणना से मेळ मिलता नहीं है. न आरंभ स्थान से रेवती तारे का मेल है.

कोष्टक नंबर ५ (अ)

पांचों सिद्धान्त ग्रंथों में लिखे हुए नक्षत्रों के ध्रुवक=(कदंबाभिमुख) भोग शर. ×

अनुक्रम संख्या	नक्षत्रों के नाम.	सूर्यसिद्धांतोक्त.		सोमसिद्धांतोक्त.		ब्रह्मसिद्धांतोक्त.		पितामह सिद्धांत.		वृद्ध वशिष्ठ सिद्धांत.	
		भोग.	शर.	भोग.	शर.	भोग.	शर.	भोग.	शर.	भोग	शर.
नंबर.	भगणारंभ.	अं. क.	दिक् अं	अंश कला	दिशा अंश	अंश कला	दिशा अंश	अश कला	दिशा अंश	अंश	दिशा अंश
१	अश्विनी.	८	१०	८	+१०	८	+१०	८	+१०	८	+१०
२	भरणी.	२०	उ १२	२०	+१२	२०	+१२	२०	+१२	२०	+१२
३	कृतिका.	२७।३०	उ ५	२७	+ ५	३७।३०	+ ५	३७।२८	+ ५	३७	+ ५
४	रोहिणी.	४९।३०	द ५	४९	− ५	४९।३०	− ५	४९।२८	− ५	४९	+ १
५	मृगशीर्ष.	६३	द १०	६३	−१०	६३	−१०	६३	−१०	६३	− ३
६	आर्द्रा	६७।२०	द ९	७४।५०	− ९	६७।२०	− ९	६७	−११	७५	− ९
७	पुनर्वसु.	९३	उ ६	९३	+ ६	९३	+ ६	९३	+ ६	९३	+ ६
८	पुष्य	१०६	उ ०	१०६	+ ०	१०६	+ ०	१०६	+ ०	१०६	+ ०
९	आश्लेषा.	१०९	द ७	१०९	− ७	१०९	− ७	१०८	− ७	१०९	− ७
१०	मघा.	१२९	उ ०	१२९	+ ०	१२९	+ ०	१२९	+ ०	१२९	+ ०
११	पूर्वाफल्गुनी.	१४४	उ १२	१४४	+१२	१४४	+१२	१४७।५	+१२	१४४	+१२
१२	उत्तराफाल्गुनी	१५५	उ १३	१५५	+१३	१५५	+१३	१५५	+१३	१५५	+१३
१३	हस्त	१७०	द ११	१७०	−११	१७०	−११	१७०	−११	१७०	−११
१४	चित्रा	१८०	द २	१८०	− २	८०	− २	१८०	− २	१८०	− २
१५	स्वाती	१९९	उ ३७	१९९	+३७	१९९	+३७	१९९	+३८	१९९	+३७
१६	विशाखा	२१३	द ०॥.	२१३	− .॥	२१३	− ॥.	२१२।५	−१॥	२१३	−१॥
१७	अनुराधा	२२४	द ३	२२४	− ३	२२४	− ३	२२४।५	− २	२२४	− ३
१८	ज्येष्ठा	२२९	द ४	२२९	− ४	२२९	− ४	२२९।५०	− ३	२२९	− ४
१९	मूल	२४१	द ९	२४१	− ९	२४१	− ५॥	२४४	−८॥	२४१	− ९
२०	पूर्वाषाढा	२५४	द ५॥	२५४	− ५॥	२५४	− ५।	२४९	$-5\frac{1}{3}$	२५४	−४॥
२१	उत्तराषाढा	२६०	द ५	२६०	− ५	२६०	+६०	२६०	+ ५	२६०	−५॥
२१	अभिजित	२६६।४०	उ ६०	२६६।४०	+६०	२६६।४०	+३६	२६५	+६२	२६७	+६०
२२	श्रवण	२८०	उ ३०	२८०	+३०	२८०	+३६	२७८	+३६	२८०	+३०
२३	धनिष्ठा	२९०	उ ३६	२९३।२०	+३६	२९०	− .॥.	२९०	+३०	२९०	+३६
२४	शततारका	३२०	द .॥	३२०	− .॥	३२०	− .॥.	३२०	− ०	३२०	−.॥.
२५	पूर्वाभाद्रपदा	३२६	उ २४	३२६	+२४	३२६	+२४	३२६	+२४	३२६	+२४
२६	उत्तराभाद्रपदा	३३७	उ २६	३३७	+२६	३३७	+२६	३४४।१०	+२६	३३७	+२६
२७	रेवती	३५९।५०	उ ०	३५९।३०	+ ०	३५९।५०	+ ०	अनुक्त	+ ०	०	+ ०

× यह भोग शर प्राचीन ग्रंथों में ब्रह्मप्रोक्त सृष्ट्यारंभ कालीन कहे गए हैं।

कोष्टक नम्बर ५ (ब)

आधुनिक वेधासद्ध मानक ग्रंथोक्त नक्षत्रों के कदंब सूत्रीय भोग शर.

नक्षत्रों के आद्याक्षर.	केतकर के नक्षत्र विज्ञान में लिखे हुए.					दीक्षित के भा. ज्यो. शा. में लिखे हुए.					प्रकारांतर से योग ताराओंके				
	भोग.		शर.		नक्षत्रों के.	भोग.		शर.		नक्षत्रों के.	भोग.		शर.		नक्षत्रों के.
	अंश	कला	अंश	कला	ग्रीकनाम	अंश	कला	अंश	कला	ग्रीकनाम	अंश	कला		कला	ग्रीकनाम
अ	१०	८	+ ८	२९	बीटाएरैटिस	१०	८	+ ८	२९	बीटाएरैटिस	१०	८	+ ८	२९	बीटाएरैटिस
भ	२४	२२	+१०	२७	४१ एरैटिस	२४	२२	+१०	२६	४१ एरैटिस	२२	४९	+११	२४	म्यूएरैटिस
कृ	३६	९	+ ४	२	ईटाटारी	३६	९	+ ४	२	ईटाटारी	३६	९	+ ४	२	ईटाटारी
रो	४५	५७	– ५	२८	आल्डिबरान्	४५	५७	– ५	२८	आल्डिबरान	४५	५७	– ५	२८	आल्डिबरान्
मृ	५९	•२	–१३	२१	लांब्डाओराय.	५९	५१	–१३	२१	लांब्डाओरा.	६०	५५	– १	५०	झीटा२ ओरा.
आ	६४	५५	–१६	३	आल्याओरा	७५	१६	– ६	४५	ग्यामा जैमिनी	७५	१६	– ६	४५	ग्याम जैमिनी
पु	८९	२४	+ ६	४०	पोलक्स	८९	२४	+ ६	४०	पोलक्स	८९	२४	+ ६	४०	पोलक्स
पु	१०४	५३	+ ०	५	डेल्टाकांक्री	१०४	५३	+ ०	५	डेल्टाकांक्री	१०४	५३	+ ०	५	डेल्टाकांक्री
आ	१०९	४८	– ५	५	अल्फाकांक्री	११०	४४	–१०	५९	झीटाहैड्रा	१०८	३१	– ९	२७	इप्सिलान्हैड्रा
म	१२६	०	+ ०	२८	रेग्युलस	१२६	०	+ ०	२८	रेग्युलस	१३२	१३	+ ०	८	रोलिओनिस.
पू	१३९	३४	+ ९	४२	थीटालिओनि.	१३९	३४	+ ९	४२	थीटालिओ.	१४१	४०	+ ६	१	झीटालिओ.
उ	१४७	४७	+१२	१७	डनिबोला	१४७	४७	+१२	१६	डेनिबोला.	१५३	५०	+ ८	१८	ओमिक्रान्व्हर्जि
ह	१६९	३०	–१२	११	डेल्टाकांक्री	१६९	३७	–१२	११	डेल्टाकार्व्ही	१६९	३७	–१२	११	डेल्टाकार्व्ही
चि	१८०	०	– २	३	स्पायका	१८०	०	– २	३	स्पायका	१८०	०	– २	३	स्पायका
स्वा	१८०	२४	+३०	४०	आर्कटयूरस	१८०	२४	+३०	४९	आर्कटयूरस	१८०	२४	+३०	४९	आर्कटयूरस
वि	२०१	१५	+ ०	२१	अल्फालिब्रा	२०१	१४	+ ०	२१	आल्फालिब्रा	२१४	३७	– ‡०	५६	आयोटालिब्रा.
अ	२१८	४४	– १	५८	डेल्टास्कार्पि	२१८	४४	– १	५८	डेल्टास्कार्पि	२२३	५८	– ४	१	सिग्मास्कार्पि
ज्ये	२२५	५६	– ४	३३	अंटारिस्	२२५	५६	– ४	३३	अंटारिस	२२७	४२	– ६	७	टाऊस्कार्पि
मू	२४०	४४	–१३	४७	लांब्डास्कार्पि	२४०	४४	–१३	४७	लॉब्डास्कार्पि	२४०	४४	–१३	४७	लांब्डास्कार्पि
पू	२५०	४४	– ६	२७	डेल्टासाजी	२५२	२८	– २	७	लांब्डासाजी	२५२	२८	– २	७	लां. साजी
उ	२५८	४९	– ३	२७	सिग्मासाजी	२६२	२४	+ १	२७	पायसाजी	२५८	४९	– ३	२७	सिग्मासाजी
अ	२६१	२८	+६१	४४	व्हीगा	२६१	२८	+६१	४४	व्हीगा	२६१	२८	+६१	४४	व्हीगा
श्र	२७७	५५	+२९	१८	आल्टेर	२७७	५५	+२९	१८	आल्टेर	२७७	५५	+२९	१८	आल्टेर
ध	२९३	३३	+३३	२	आल्फाडेल्फि.	२९३	३३	+३३	२	अल्फाडे.	२९०	१३	+२९	५	बीटाडेल्फनी
श	३१७	४४	– ०	२३	लांब्डाआक्वे.	३१७	४४	– ०	२३	लां. आक्वे.	३१७	४४	– ०	२३	लां. आक्वेरि.
पू	३३०	४२	+१९	२४	मार्काब	३३०	४२	–१९	२३	मार्काब	३३०	४२	+१९	२४	मार्काब.
उ	३५०	२८	+२५	४३	अल्फेराट्	३४५	१९	+१२	३६	आल्जेनिब	३४५	१९	+१२	३६	आल्जेनिब
रे						३५६	९	– ०	१३	झीटापिशिय	*				ओमिक्रान-
रे	३५९	१७	– ३	४	म्यूपिशियम्	३५९	१७	– ३	४	म्यूपिशियम्	३५९	४५	+ ०	५	पिशियम

‡, * यह टीप आगे के पृष्ठ ५४ में देखिये।

कोष्टक नंबर ९ (क)

प्राचीन ग्रंथोक्त भोगों की आधुनिक ग्रंथोक्त से परस्पर तुलना.

	उदाहरण १					उदाहरण २				
नक्षत्र.	प्राचीन.	ग्रंथकार का नाम.	आधुनिक	परस्पर.	तुलना.	प्राचीन.	ग्रंथकार का नाम.	आधुनिक.	परस्पर.	तुलना.
	भोग ° '		भोग ° '	अंतर ° '	योग ° '	भोग ° '		भोग ° '	अंतर ° '	योग ° '
अ	८ ०	स	१० ८	+२ ८	+२ ८	८ ०	स	१० ८	+२ ८	+२ ८
भ	२० ०	स	२४ २२	+४ २२	६ ३०	२० ०	प्र	२२ ४९	+२ ४९	४ ५७
कृ	३७ ०	स	३६ ९	−० ५१	५ ३९	३७ ०	स	३६ ९	−० ५१	४ ६
रो	४९ ०	स	४५ ५७	−३ ३	२ ३६	४९ ०	स	४५ ५७	−३ ३	+१ ३
मृ	६३ ०	प्र	६० ५५	−२ ५	+० ३१	६३ ०	प्र	६० ५५	−२ ५	−१ २
आ	६७ ०	के	६४ ५५	−२ ५	−१ ३४	७५ ०	दी	७५ १६	+० १६	−० ४६
पु	९३ ०	स	८९ २४	−३ ३६	५ १०	९३ ०	स	८९ २४	−३ ३६	−४ २२
पु	१०६ ०	स	१०४ ५३	−१ ७	६ १७	१०६ ०	स	१०४ ५३	−१ ७	५ २९
आ	१०८ ०	के	१०९ ४८	+१ ४८	४ २९	१०८ ०	के	१०९ ४८	+० ४८	४ ४१
म	१२९ ०	स	१२६ ०	−३ ०	७ २९	१२९ ०	प्र	१३२ ३३	+३ ३३	१ ८
पू	१४४ ०	प्र	१४३ ४०	−० २०	७ ४९	१४४ ०	प्र	१४३ ४०	−० २०	१ २८
उ	१५५ ०	प्र	१५३ ५०	−१ १०	८ ५९	१५५ ०	प्र	१५३ ५०	−१ १०	२ ३८
ह	१७० ०	स	१६९ ३७	−० २३	९ २२	१७० ०	प्र	१६९ ३७	−० २३	३ १
चि	१८० ०	स	१८० ०	० ०	९ २२	१८० ०	स	१८० ०	० ०	३ १
स्वा	१८० २४	स	१८० २४	० ०	९ २२	१८० २४	स	१८० २४	० ०	३ १
वि	२१३ ०	प्र	२१४ ३७	+१ ३७	७ ४५	२१२ ५	प्र	२१४ ३७	+२ ३२	० २९
अ	२२४ ०	प्र	२२३ ५८	−० २	७ ४७	२२४ ५	प्र	२२३ ५८	−० ७	० ३६
ज्ये	२२९ ०	प्र	२२७ ४२	−१ १८	९ ५	२२९ ५	प्र	२२७ ४२	−१ २३	१ ५९
मू	२४१ ०	स	२४० ४४	−० १६	९ २१	२४१ ०	स	२४० ४०	−० १६	२ १५
पू	२४९ ०	स	२५२ २८	+३ २८	५ ५३	२४९ ०	के	२५० ४४	+१ ४४	−० ३१
उ	२६० ०	दी	२६२ २४	+२ २४	३ १९	२६० ०	दी	२६२ २४	+२ २४	+१ ५३
अ	२६५ ०	स	२६१ २८	−३ ३२	७ १	२६५ ०	स	२६१ २८	−३ ३२	−१ ३९
श्र	२७८ ०	स	२७७ ५५	−० ५	७ ६	२७८ ०	स	२७७ ५५	−० ५	१ ४४
ध	२९० ०	के	२९३ ३३	+३ ३३	३ ३३	२९० ०	प्र	२९० १३	+० १३	१ ३१
श	३२० ०	स	३१७ ४४	−२ १६	५ ४९	३२० ०	स	३१७ ४४	−२ १६	३ ४७
पू	३२६ ०	स	३३० ४२	+४ ४२	−१ ७	३२६ ०	स	३३० ४२	+४ ४२	−० ५५
उ	३४४ ०	स	३४५ १९	+१ १९	+० १२	३४४ १०	स	३४५ १९	+१ ९	+० १४
रे	३५९ ३०	के	३५९ १७	−० १३	−० ०१	३५९ ५०	प्र	३५९ ३६	−० १४	० ०

ग्रंथकारों के संकेताक्षर:— के= केतकर न. वि., दी= दीक्षित भा. ज्यो. प्र= प्रकारांतर स= संपूर्ण.

कोष्टक १ देखिये (झीटीनिरीक्षणमें) साभिजित् २८ नक्षत्रों के ध्रुवसूत्रीय अंतर को परस्परमें धनर्ण करने पर परमान्तर २२.७ अंश रहता है सो $\frac{22.7}{28}$=.८१ अंशांतर प्रत्येक तारेमें होकर ग्रंथोक्त राशिचक्र के आरंभ स्थानसे झीटाका अंतर १५ कला रहनेसे तथा कदंबसूत्रीयसे परमान्तर ३७.६ अंश यानी १.३१ अंशांतर प्रत्येक तारेमें होकर ग्रंथोक्त राशिचक्र के आरंभस्थानसे झीटाका अंतर १० कला रहनेसे झीटागणना किसी भी प्रकार कोई भी मानसे शास्त्रशुद्ध नहीं है।

और कोष्टक २ देखिये (चित्रा समीक्षण में) कदंबसूत्रीयान्तरको परस्परमें धनर्ण करने पर इस गणना में परमान्तर शून्य तुल्य हो जाता है। तथा सूर्य सिद्धान्तादि ५ प्राचीन ग्रंथों में तथा आधुनिक ३ सूक्ष्म गणित के ग्रथों में चित्रा का कदंबाभिमुख भोग १८० अंश लिखा होने से चित्राभिमुख बिन्दु की ग्रंथोक्त राशि चक्र के आरंभ स्थान से एक वाक्यता हो जाने के कारण सिद्ध होता है कि चित्रा गणना ही शास्त्र शुद्ध है।

उपर्युक्त कोष्टक में जो स्वाती का भोग लिखा है वह ब्रह्मा प्रोक्त सृष्ट्यारंभ कालीन नहीं लिखकर शक ४२७ में वराहमिहिर का कहा हुआ लिखा है:—"**समभुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः॥ तस्यासन्नेचंद्रे स्वातेर्योगः शिवोभवति॥** (**बृहत्संहिता अ. २५ श्लो. ४**) "**पंचसिद्धांतियामुक्त प्रकारेण अर्धास्त्रभभागे क्रांति वृत्तार्धे चित्रातारकायाः स्थितिस्तयाः समंउत्तरेणतिर्यक् कृत्वा या तारास्थिता सापांवत्स इति कीर्त्यते कथ्यते। तस्यापांवत्सस्याऽऽसन्ने निकटस्थे चन्द्रेस्वातेर्योगश्चंद्रसंयोगः शिवः श्रेयस्करो भवति॥**" इससे मालूम होता है कि चित्रा चंद्र युति के निकट में ही स्वाती चंद्र की युति का होना कहा है सो स्पष्ट चंद्र के साथ कहने से यह स्वाती का भोग भी कदंबसूत्रीय है क्योंकि स्पष्ट चंद्र सदा ही कदंबसूत्रीय रहता (बनता) है। किंतु इसमें जो चित्रा स्वाती के समसूत्रीय बीच में चंद्र के उ. शर ५ अंश के निकट में जो अपांवत्स की तारा कही है सो तारा वर्तमान में वहां दिखती नहीं है। यद्यपि ज्यो. केतकरने नक्षत्र विज्ञान में थीटाव्हर्जिनिस को अपांवत्स और झीटाव्हर्जिनिसको आपः लिखा है। किंतु इसमें थीटाव्हर्जि. का ध्रुवसूत्रीय १७३°। ३' कदंबसूत्रीय भोग १७४°। २०' उ. शर १। ४५ होने से यह तारा अपांवत्स के वर्णन से अयुक्त और बहुत दूर है। अतः यह अपांवत्स नहीं है। क्योंकि शक ४२७ से आज तक सिर्फ १४२४ वर्षों में यह तारा इतनी हट सकती नहीं।

---

‡ विशाखा की योग तारा—नक्षत्र विज्ञान नकशा २ में डेल्टा बीटालिब्रा के पश्चिम में (विषुवांश १५।१०' शर १ अंश द.) दिखाई देने वाली तारा है। (को. ५ ब देखो)

* रेवती की योग तारा—सूक्ष्मतारों के एटलास (नकशों) में विषुवकाल कलाक १ मिनिट ३०.९ और क्रांति ८°।५५' द्वारा भोग ३५९°। ४५' शर + ०।५ उ० दिखाई देने वाली तारा है। (कोष्टक ५ ब की टीप देखो)

ऐसे ही वृद्ध वसिष्ठ सिद्धांतादि ग्रंथों में और भी कुछ विशेष लिखा है:– " **अपांवत्सापयोर्भार्धे सौम्ये पंच ५ रसाः ६ शराः ॥ निरक्षदेशे सृष्ट्यादौतस्थिति र्ब्रह्मणोदिता॥ (वृ. व. सि. ८·१२) उत्तरांशैरपांवत्सश्चित्रायां पंचभिस्तथा ॥ आपस्ततोधिकः स्वल्पे षण्डिरंशैस्तदुत्तरे ॥ इति ब्रह्मसिद्धान्ते (पृ. ३३ श्लोक १७८) एवमेव सूर्य सोमसिद्धांतादिषुउक्तम् ।** " अर्थात् वराहमिहिरने " **चित्रार्धात्सभभागे** " द्वारा क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा तारे की स्थिति कहकर उसके उत्तर में अपांवत्स और स्वाती की स्थिति कही है। वृद्ध वसिष्ठ सि. में " **भार्धे** " द्वारा क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में अपांवत्स और उसके उत्तर में आपः को कहकर यहां स्वाती की स्थिति नहीं बताई है। और सूचित करदिया है कि यह स्थिति ब्रह्माप्रोक्त सृष्ट्यादि कालीन अर्थात् अत्यन्त प्राचीन है। तथा ब्रह्म, सूर्य, सोम सिद्धांतादि ग्रंथों में " **चित्रायां** " द्वारा क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य की स्थिति सूचित करके उसके समसूत्रीय उत्तर में अपांवत्स और आपः को ही कहा है। यहां भी स्वाती की स्थिति नहीं बताई है।

इससे निश्चित होता है कि उक्त सिद्धान्त ग्रंथों के ध्रुवकादि में जो स्वाती आदि की स्थिति कही है सो अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ परंपरागत लिखी है किंतु आगे कालान्तर में ताराओं के निज गति के कारण वराहमिहिर के समय तक कुछ परिवर्तन हो गया। चित्रा की स्थिति तो स्थिर प्रायरूप होने से वह क्रांतिवृत्त के मध्य में ही रही है। किंतु उसके सम सूत्र उत्तर शर स्थिति में से आपः का तारा खिसक गया और स्वाती का तारा ग्रंथोक्त से खिसकता हुआ उसके निकट में आगया अब तो उसे भी करीब १॥ हजार वर्ष होगए है। इसलिये अपांवत्सादि में भी थोडा २ फर्क होजाना स्वाभाविक ही है। वस्तुतः देखा जाय तो छोटा व्हर्जिनिस तारा आपः की न होकर अपांवत्स की है। इसका भोग २७८।१७ शर ८।३८ उ० है। और आपः की तारा टाऊव्हर्जिनिस है। इसका भोग १८३।२३ शर १२।५२ उ० है। सृष्ट्यादि से आज तक में पश्चिम के तर्फ १°।४३' और उत्तर के तर्फ ३।३८ ' **अपांवत्स** ' का तारा खिसका है। पूर्व के तर्फ ३°।२३' और उत्तर के तरफ १।५२ ' **आपः** ' चलित हो गया है। तथा नक्षत्र विज्ञान (पृ. ३२) में ' **स्वाती** ' की निजगति बहुत होनेसे वर्तमानमें उसकी ध्रुवसूत्रीय उत्तर दिगंश २०९ के तर्फ वार्षिक गति २.२८ विकलामित है। तब यह ब्रह्माप्रोक्त अत्यन्त प्राचीन भोग १९९° शर ३७° उ० से खिसकती हुई वराहमिहिर के समयमें चित्राके यानी भार्धके निकिट आजाना गणित सिद्ध है। अर्थात् ग्रंथोक्त प्राचीन कालसे आज तक में स्वाती का तारा पश्चिम के तर्फ १८.° ६, दक्षिण के तर्फ ६.° २, हटने से उत्तर कदंब से २५१°। ३७' दिगंश में कर्ण रूप १९.° ६ खिसकने में करीब ३१ हजार वर्ष होते हैं। यदि यहां उक्त सूर्य सिद्धान्तादि में लिखे हुए '**यातमेतत्कृतंयुगम्** ' काल से वर्तमान युग पर्यन्त के २१ लक्षादि वर्षों को लेना चाहेंगे तो आकर्षणशास्त्रानुसार निजगति से संपूर्ण ताराओं की अश्वमुखादि

आकृतियां बिगडकर भिन्न रूप हो जाती किंतु जबकि ऐसा परिवर्तन हुआ नहीं है तब निसंदेह है कि उपर्युक्त कालान्तर की वर्ष संख्या पर्याप्त है ।

अत्र जब इस प्रकार विस्तार के साथ वाचानिक व गणित सिद्ध अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध करके बताया गया है कि विधान में कहे हुए ५ सिद्धांत ग्रंथों के भध्रुवक कदंब सूत्रीय हैं । और उन सब में चित्रा का भोग १८० अंश ही लिखा है वर्तमान कालीन शुद्ध गणित के ३ ग्रंथों में भी चित्रा भोग १८० अंश ही लिखा है । इसलिये गोविन्दरावजी का परीक्षण बिलकुल गलत है । क्योंकि २७ नक्षत्रों में अत्यल्प निजगति होते हुए भी देदीप्यमान एक चित्रा ही ऐसी निःसंदेह तारा है । इसलिये भारतीय संपूर्ण ग्रंथकारों ने इसे क्रांति वृत्त के ठीक ठीक मध्यमें मानकर इसी के सन्मुख १८०°पर राशीचक्र का आरंभ स्थान माना है और इसी समाधान में बताया गया है कि झीटा गणना अशास्त्रीय एवं निरर्थक है ।

परीक्षण ७ (आ)

याच आधारा नें काढलेलें शून्यायनांश वर्ष ही चुकीचें आहे. कोणत्याही ग्रंथकारानें याचा पुरस्कार केलेला नाहीं. आपले ग्रथांतील शून्यायनांश वर्ष शक ४२१ किंवा त्यानंतरची आहेत. त्या संबंधीं दिक्षित भा ज्यो. पृ. ३३७ वरम्हणतातकीं आमचे ग्रंथांत शून्यायनांशाचाकाल मानिला आहे तो पुष्कळ सूक्ष्म आहे. शास्त्रकारांनीं शून्यायनांश वर्ष कोणतें किंवा कोणत्या सुमारास मानिलें आहे हें ओळखण्याची एक सोपी युक्ती आहे कीं त्यांनीं आपले ग्रंथांत जे स्फुट ध्रुव दिले आहेत ते कोणत्या काळच्या स्फुटध्रुवाशीं जमतात ते पाहिले म्हणजे झाले. कारण “ **इत्यभावेऽयनांशानां कृतदृक्कर्मकालवा:** ” असें सि. शि. मध्यें स्पष्ट सांगितलें आहे. तेव्हां अयनांश १९ धरून शून्यायनांश समयीं स्फुट ध्रुव काढून सूर्यसिद्धान्तोक्त स्फुट ध्रुवाशीं ते कितपत जुळतात हें पाहिलें पाहिजे. या प्रमाणें गणित करून पुणें सभेच्या रिपोर्टांत पृ. १२१ वर रा. पवार यांनीं अंक दिले आहेत, त्यावरून हें लक्षांत येईल कीं २२ अयनांशा वरून येणाऱ्या शून्यायनांश काळीं म्हणजे शके २१३ ते २२० चे सुमारास येणारे स्फुट ध्रुव सूर्यसिद्धान्तोक्त स्फुट ध्रुवापेक्षां ३, ३ । ४,४ अंशांनीं कमी येतात परंतु १९ अयनांशा वरून येणारे ध्रुवक एक किंवा काहीं ठिकाणीं २ अंशांच्या आंत बाहेर येतात. या वरून हे स्पष्ट आहे कीं सिद्धांतानीं ४२१ किंवा त्यानंतरचेंच वर्ष शून्यायनांश वर्ष मानिले आहे. २२ अयनांशा वरून येणारा चित्रा भोग मात्र पाउण अंशाच्या अंतरानें जुळतो व तसें आर्द्रा व पूर्वा या ताऱ्यांचे ही जुळतात म्हणजे ३ जुळतात व २४ चुकतात व १९ अयनांशा वरून येणारे ५ चुकतात व १९ जुळतात तेव्हां शास्त्र शुद्ध अयनांश १९ आहेत व शून्यायनांश वर्ष ४२१ ते ५०० पर्यन्त येणारेंच शास्त्र शुद्ध होय. तसेंच अयनांश २२ व शून्यायनांश वर्ष २१३ ते २२० शास्त्र शुद्ध नाहीं हें सप्रमाण सिद्ध होत आहे.

समाधान ७ (आ)

उक्त परीक्षण भ्रांत कथन के तुल्य निरर्थक और उपहासास्पद है। क्योंकि न तो आप कोई एक भी भारतीय सिद्धान्त या करण ग्रंथ के प्रमाण से अयनांश या शून्यायनांश वर्ष को निश्चित कर सके हैं। न उससे चैत्री अयनांशों को खंडित या झीटा अयनांशों को मंडित कर सके हैं। उसमें भी उपहासास्पद कहने का कारण यह है कि अभी तक आपको यह भी पता नहीं है कि हमारे सिद्धान्त ग्रंथों के भगणादि परिमाणों में भिन्नता क्यों कर है। और उस भिन्नता को और स्थूलता को निकाल देने पर शुद्ध सूक्ष्मपरिमाण से इन सब की एक वाक्यता कैसे हो सकती है। तथापि अब हम इस विषय को स्पष्ट करके बताते हैं। ताकि आपको मालूम हो जायगा कि प्रस्तुत परीक्षण कैसे निरर्थक, भ्रांतिपूर्ण और विषय प्रतिपादन शैली को छोडकर है।

आज भारतवर्ष में सूर्यसिद्धान्तानुसारी, आर्यसिद्धान्तानुसारी और ब्रह्मसिद्धान्तानुसारी सैकडों पंचांग प्रति वर्ष प्रकाशित होते हैं। उन सब में अयनांश २२°-२३° लिखे रहते हैं। रविसंक्रमणादि काल, और स्पष्ट ग्रहों की चैत्री पंचांगोक्त परिमाणों से एक अंश के अन्तर्गत तुल्यता मिल जाती है। यदि उनको कालान्तर संस्कार या स्थूलता को मिटाने के लिये बीज देकर शुद्ध कर दिये जांय तो इनकी चित्रागणना से एक वाक्यता हो जाती है किंतु जबकि सिद्धान्त और सूक्ष्मगणित के ग्रंथों के वर्षमानादि भिन्न २ हैं। तब निःसंदेह है कि शून्यायनांश वर्ष भी भिन्न २ होने चाहिये। अन्यथा वर्तमान में उन सबकी शास्त्र शुद्ध परिमाणों से एक वाक्यता हो नहीं सकती। अन्यान्य सिद्धान्तों की अयन वर्ष गति इसी रिपोर्ट के (पृष्ठ १०१ (इ) में प्रकाशित की गई है। उसके द्वारा शाके १८०० के आरंभ में तुलना के लिये झीटागणना के अयनांश १८°।१०'।२५"=६५४२५" और चित्रागणना के अयनांश २२°।८'।३३" = ७९७१३" लेकर गणित करने पर निम्नलिखित शून्यायनांश वर्ष निश्चित होते हैं।

सिद्धान्त ग्रंथों के.		अयन की.	झीटागणना से.		चित्रागणना से.	
संख्या	नाम.	वर्षगति विकला.	गत वर्ष.	शक वर्ष.	गत वर्ष.	शक वर्ष.
१	मंदकेंद्रीय.	६२·०८०२	१०५३·२	७४६·१	१२८४·०	५१६·०
२	सूर्यसिद्धान्त.	५८·६८७८	११५४·८	६८३·२	१३५८·३	४४१·७
३	आर्यसिद्धान्त.	५८·४१९०	११२९·९	६८०·१	१३३४·५	४३५·५
४	ब्रह्मगुप्त.	५७·५५६८	११३६·७	६६३·३	१३८१·८	४१८·२
५	शुद्ध नाक्षत्र.	५०·१८८८	१३०३·६	४९६·४	१५८८·३	२११·७

प्रस्तुत कोष्टक में दोनों गणना के अयनांशों को अयन वर्षगति का भाग देने पर लब्धि गत वर्षों को शक १८०० में कम करके अन्यान्य सिद्धान्त ग्रंथों के वर्ष प्रमाणानुसार शून्यायनांशकालिक शक वर्ष लिख दिये हैं। अब आप देख सकते हैं कि झीटागणना के शून्यायनांश वर्ष; नाक्षत्रमान से सूर्यसिद्धान्त तक के शक ४९६ से शक ६८५ तक और चित्रागणना के शक २११ से शक ४४२ तक आते हैं। किंतु हमारे कोई भी सिद्धान्त, करण, जातक, संहिता और मुहूर्त ग्रंथादिकोंमें लिखे हुए या प्रतिपादित किये हुए अयनांशों से शून्यायनांश वर्ष झीटागणना के अंतर्गत न होकर चित्रागणना के अंतर्गत हैं। इस विषय में कई ग्रंथों के उदाहरण पूर्व समाधान में कहे गए हैं। तथापि अब यहां एक सिद्धान्त सम्राट का उदाहरण देकर उक्त कथन का समर्थन करता हूं।

" **दक्षिणोदक् भित्तिसंज्ञं यन्त्रं – उच्यते। अनेनयंत्रेण इंद्रप्रस्थे अक्षांशाः २८°। ३९′ ज्ञाताः। परमक्रांतिश्च २३°। २८′ यवनदेशे अवरख सादिभिर्यवनाचार्यै र्वेधेनोपलब्धा क्रांतिः २३°। ५१′। १९″ पुनर्यूनानदेशे षट्त्रिंशदक्षांशयुते बत्लभ्‌जुषेन वेधेन प्राप्ताक्रांतिः २३। ५१। १९ पुनः समरकन्दे नगरेऽक्षांशैः ३९। ३७ युते उलूकवेगेन वेधेनोपलब्धा क्रांतिः २३°। ३०′। १७″ अस्माभिः शालिवाहन शके १६५१ इंद्रप्रस्थे अनेन यंत्रेण वेधेन प्राप्ता क्रांतिः २३। २८ एवं वेधेन क्रांति ज्ञात्वा तयानुपातेन स्पष्टोरविः कार्यः। " अयं रविः सायनोभवति। ते चायनांशा एकपंचाशदधिकषोडशशते १६५१ शालिवाहन शके सप्तत्रिंशत्कलाधिकैकोनविंशदंशाः १९। ३७ निश्चिताः। पुनरयनांशानां गतिः सप्ततिवर्षैरेकोंशोनिश्चितोऽस्ति। प्रतिवार्षिकी गतिश्च विकलादिः। विकला ५१ प्र. विकला २७ त्रिकला ५० इत्ययनांशगतिः॥ अथेष्टकालेऽयनांशानयनं ' गजाश्वनेत्रै २७८ रहिता शकाब्दाः खसप्त ७० भक्ता अयनांशकाः स्युः॥ प्रत्यब्दजातायनजा गतिस्तु रूपाक्ष ५१ तुल्या विकलाः प्रदिष्टाः'॥ १॥ " सिद्धान्त सम्राट् (यंत्राध्याय)**

इस प्रकार सिद्धांत सम्राट् में दिल्ली के अक्षांश २८। ३९ रवि परम क्रांति २३°। २८′ सूक्ष्मपरिमाणों के तुल्य शुद्ध हैं। इसमें शाके १६५१ के अयनांश १९°। ३७′ अयनवर्ष गति ५१। २७। ५०=५१″·४६४ निश्चित करके इनके द्वारा शून्यायनांश शक २७८ वर्ष कहा है। जोकि चित्रागणना के नाक्षत्र मानके अयनांश २०°। ३′·८ से सिर्फ–२६·८ कलान्तर के तुल्य शुद्ध है। यद्यपि उक्त कलांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र मानसे शून्यायनांश शक २४४ वर्ष आता है। किंतु सूक्ष्मअयनगति ५०·″१८९ की अपेक्षा उक्त गति+१·″२७५ अधिक होने से उक्त थोडा अंतर पडा है। और यह स्थूलता निकाल देने पर शास्त्र शुद्ध अयनांश और शून्यायनांश वर्ष शक २१२ में ही निश्चित होता है।

दूसरा धर्मसिन्धु का उदाहरण देखिये:— " **अयनांशा ज्योतिः शास्त्रे प्रसिद्धाः॥ ते चेदानीं द्वादशाधिकसप्तदशशतसंख्याके शालिवाहनशके १७१२ एक विंशतिरयनांशाः** "

(पूर्वार्धप १) इसमें शक १७७२ के अयनांश २१ कहे हैं। इसमें शुद्ध नाक्षत्र अयनगति का भाग देने पर शून्यायनांश शक वर्ष २०८ आता है। सो कालान्तर संस्कृत सूक्ष्म-गणितागत चित्रायनांश के ठीक ठीक बराबर है। झीटा गणना से तो अभी तक अयनांश २१ हुए नहीं हैं।

इसके साथ दिया हुआ **शून्यायनांशदर्शक आलेख्य** देखिये। उसके द्वारा मालूम हो जायगा कि प्रस्तुत कोष्टकोक्त चित्रागणना के अयनांशों से ही अन्यान्य सिद्धान्तीय अयन-गति से पृथक् २ शून्यायनांश वर्ष होते हुए भी उन सबकी वर्तमान में एक वाक्यता कैसी हो जाती है। तथा यह भी मालूम होजाता है कि यदि शाके ४९६ में शून्यायनांश वर्ष; मानलेवें तो ग्रहलाघवादि में लिखे प्रकार शक ४४४ तथा ४२१ आदि वर्ष तो आते ही नहीं किंतु ब्रह्मगुप्तादि के ६६३,६८०, ६८५ व ७४६ शक वर्ष आने से; उनके करणागत भगणारंभ स्थान में ३° । ५८'१ का अंतर एवं संक्राति में चार दिन का फर्क पड जाता है। ऐसा करने से किसी का किसी से मेल नहीं ऐसी अनवस्था उत्पन्न होकर फलतः भारतीय कृत शोधों के ऊपर पानी फिर जाता है। वस्तुतः देखा जाय तो भारतीय ग्रंथों को कुच काम के (अजागलस्तनवत्) बताने के सिवाय ऐसा करने से न कोई दूसरा अर्थ निकलता है।

आपने जो दीक्षितजी का उदाहरण बतलाया है। वह आपके नितांत विरुद्ध है। क्योंकि भा. ज्यो. में जो अनेक ग्रंथों के शून्यायनांश वर्ष बताए हैं वह उपरोक्त कोष्टक में २ बताए हुए अन्यान्य सिद्धान्तोक्त मानके तुल्य चित्रागणना के अंतर्गत हैं। झीटा के संबंध में तो वहीं लिख दिया है कि " **सांप्रतच्या सूक्ष्म युरोपियन गणिता प्रमाणें रेवती योग तारा शक ४९६ मध्यें संपातीं होती, म्हणून शून्यायनांश वर्ष ४९६ पाहिजें, असें कोणा कोणाचें मत आहे; परंतु ते योग्य नाहीं। या विषयीं विचार पुढें केला आहे.** " इस प्रकार झीटा पक्ष का खंडन करते हुए (भा. ज्यो. ४२६ और ४५२-५६ में) दीक्षितजी ने चित्रापक्ष का मंडन किया है।

आपने जो ध्रुवकों की तुल्यता से शून्यायनांश वर्ष का निश्चय करना कहा है वह भी बिलकुल गलत है। क्योंकि यह तपास (चौकसी) सजातीय एवं निश्चल तारा हो तो हो सकता है। किंतु यहां दोनों बातें भी नहीं है। ताराओं को निजगति है। उसमें भी झीटापिशियम की गति अत्यधिक होकर चित्रा की अत्यल्प है, यह सूक्ष्मदर्शी विद्वान् जानते ही हैं तब झिटा से गणना करने में अचल नाक्षत्रमान के परिमाण शुद्ध कैसे रह सकते हैं। सजातीय ध्रुवक के संबंध में कहा जा सकता है कि भास्कराचार्य गणेश दैवज्ञादि ने जिस प्रकार अपने ध्रुवकों को 'कृतदृक्कर्मकाः' लिखा है ऐसा सूर्यसिद्धान्तादि प्राचीन ग्रंथों में लिखा नहीं है। बरना उन ध्रुवकों को दृक्कर्म करना कहा है। इसलिये सूर्य

सिद्धान्तादिके ध्रुवक कदंबसूत्रीय (शाश्वत नित्य स्थिरप्राय रूप) हैं ऐसा (अ) समाधान में सिद्ध किया गया है। सिर्फ ब्रह्मगुप्तादि ने उन प्राचीन ध्रुवकों में से कोई २ देदीप्यमान तारों के भोगों को सायन भाग से अंतरित हुए देखकर कुछ तारों के ध्रुवसूत्रीय से और तारका भेद से स्वल्पान्तर को देखकर इन कदंबसूत्रीय स्थिर ध्रुवकों को अस्थिर ध्रुवसूत्रीय कह दिये हैं। आगे भास्कराचार्य और आर्यभट्टादिने भी आपके वर्तमान कालिक दृक्कर्म का उनमें संस्कार करके न तो उन्हें दृक्प्रत्यययुक्त शुद्ध ध्रुवसूत्रीय किये हैं। न उनको स्पष्टयादि कालिक प्राचीन माने हैं। किंतु शून्यायनांश कालिक स्थूल कहकर; भग्रहयुति के प्रसंग में भी इनके द्वारा गणितागतका सुधार नहीं कहकर गणितागत को ही मुख्य माना है। और उसके द्वारा इन ध्रुवकों का सुधार कर लेना ध्वनित किया है।

यदि उस समय ब्रह्मगुप्तादि को यह मालूम हो जाता कि नक्षत्र भी अचल नहीं हैं। तो वह उन्हें कृत दृक्कर्मक अस्थिर कदापि नहीं कहते। किंतु यह शोध अब लगा है। वस्तुतः गुरुत्वाकर्षण से विश्व व्याप्त होने से उसमें कोई वस्तु भी स्थिर नहीं रह सकती है। अतएव और नक्षत्रों के भांति हमारा सूर्य भी पृथ्वी आदि ग्रहों के परिवार को साथ लिये हुए अगस्त्य नामक तारे के चौगिर्द; धीरे धीरे घूम रहा है। क्योंकि अगस्त्य का लंबन ·३७ विकला, और उसका व्यास सूर्य के व्यास से १३४ पट है। क्षेत्रफल १८००० तथा घनफल २४२०००० पट है। उसी अगस्त्य का प्राचीन ग्रंथों में भोग ९० व द. शर ८० अंश लिखा है। किंतु वर्तमान में भोग ८१°।८′ व द. शर ७५।५० हो गया है। इससे स्पष्ट है कि अगस्त्य से सूर्य पूर्व के तर्फ ८°।५२′ और उत्तर के तर्फ ४°।१०′ घूम गया है।

इससे विरुद्ध गति स्वाती की है। क्योंकि उसमें अगस्त्यांतर से द्विगुण के करीब में अंतर पड गया है। फक्त चित्रा मघा और व्याध की गति सूर्यानुकूल स्वल्प होने से इन में विशेष अंतर नहीं पडा है। चित्रा मघा की तुलना तो ध्रुवकों में और वराहोक्त भोगों में बताई गई है। ग्रंथों में मृग व्याध का भोग ८०° और द. शर ४०° अंश कहा है। वर्तमान में ८०°।१६′ भोग तथा द. शर ३९°।३५′ है। सो सिर्फ +१६ तथा–२५ कलान्तर बिलकुल स्वल्प है। इससे चित्रागणना ही सिद्ध होती है। झीटागणना से इसका भोग ८४°।१४′ होने से ४°।१४′ बढ जाने से उसका ग्रंथोक्त से बिलकुल मेल मिलता नहीं है।

इस प्रकार शास्त्रीय पतिपादन शैली को त्यागकर अपने भास्कराचार्यादि के कथन का भावार्थ-उनके प्राचीन कालिक ग्रंथोक्त को लगा देना; रा. पवार के अंट शंट अंकों की "अहोरूपं अहोध्वनिः" के तुल्य प्रशंसा करना, तदनुसार निराधार प्रमाण के चित्रागणना में ३।४ अंशों का अंतर बताना, चित्रागणना से सिद्ध होने वाले सिद्धान्तीय शून्यायनांश

शक वर्ष ४२१ को शक ५०० तक बतादेना; आदि आपका परीक्षण मनोराज्य के तुल्य कल्पना तरंग मात्र है। वस्तुत: प्रो. केरो लक्ष्मण छत्रे साहब और उनके बाद के कुछ पाश्चात्यविद्याधीत विद्वानों के भेद युक्त वचनों के अतिरिक्त कोई भी भारतीय ग्रंथ या टीका टिप्पणीकार ने तनिकसा भी झीटा का समर्थन नहीं किया है। ऐसे तारे को रेवती योग तारा बताना आश्चर्य है।

परीक्षण ७ (इ)

हीच गोष्ट रोहिणी शकट भेदी ताऱ्या वरून सिद्ध होते. " **शकटाभिमनक्षत्रस्य ध्रुव एकराशि: सप्तदशांश:** " असें " **वृषे सप्तदशेभागे:** " या. सू. सि. २·१३ च्या टीकेंत सांगितलें आहे. हा योगतारा 'आल्डिबरान' नसून इप्सिलानटारी नांवाचा एक लहानसा आहे. अयनांश २२ वरून या शकट भेदीताऱ्याचा भोग ४४° । २२' येतो, शास्त्रोक्त येत नाहीं. अयनांश १९ वरून याचा भोग ४७ । २१ येतो. हा शास्त्रोक्त भोगाशीं जुळतो।

समाधान ७ (इ)

इसको कहते हैं दो तर्फी प्रलाप ! क्योंकि 'जिस सूर्य सिद्धान्तादि के ध्रुवकों को सिर्फ ध्रुव शब्द के बहाने ध्रुवसूत्रीय कहकर चित्रा भोग में ४८ कला का अंतर बताना और यहां '**ध्रुव एकराशि: सप्तदशांश:**' ध्रुव १। १७ स्पष्ट लिखा होते हुए को कदंब सूत्रीय ग्रह के साथ उसे बिना दृक्कर्म किये ही युति स्थान कह देना यह दो तर्फी प्रलाप नहीं तो क्या है। किंतु देखा जाय तो आपके ही बताए 'ध्रुव' शब्द के उपयोग से सिद्ध होगया है कि उक्त ध्रुवक कदंब सूत्रीय हैं। अन्यथा विजातीय ग्रह के साथ उसे सजातीय किये बिना भेद युति कैसे कह सकते हैं। तथा आपने जो रोहिणी शकट भेद के संबंध में इप्सिलान तारे को शकट भेदी तारा कहा है यह बिलकुल गलत है। क्योंकि यहां कोई तारे के साथ शकट युति का होना ग्रंथ में लिखा नहीं है। और न कोई ताराशकट भेदी हो सकता है। सू. सि. में कहा है कि " **वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशक द्वयात् ॥ विक्षेपोऽभ्यधिकोभिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः** ॥ १३ ॥ रंगनाथ ने टीका में लिखा है– " **वृषराशौ सप्तदशें शे यस्य ग्रहस्य भाग द्वयाधिको विक्षेपो दक्षिण: सग्रहो रोहिण्या: शकटं शकटाकारसान्निवेशं भिन्द्यात् । तन्मध्यगतो भवेदित्यर्थः । तुकाराद्ग्रहविक्षेपो रोहिणी विक्षेपादल्य इति विशेषार्थक: । विक्षेपस्य दक्षिणस्य रोहिणी विक्षेपादधिकत्वे शकटाद्बहिर्दक्षिणभागे ग्रहस्यस्थितत्वेन तद्भेदकत्वाभावात् । अत्र शकटाभिमनक्षत्रस्य ध्रुव एक राशि: सप्तदशांशा: । दक्षिण: शरो भागद्वयमिति वेधसिद्धा स्पष्टा युक्ति:** "

अर्थात् रोहिणी के गाडे की आकृति का भेदकारी वह ग्रह होसकता है कि जिसका ४७ अंश भोग और २ अंश से अधिक दक्षिण में जिसका शर होता हो। इससे '**शकटा-**

कारसन्निवेशं ' शकटाकार आकृति का ही भेद स्पष्ट है न कि कोई इपूसिलान वगैरे तारे का । यदि इपूसिलान तारेका भेद विवक्षित होता तो ' दो अंश से अधिक शर ' ऐसा बहुव्यापक (सामान्य) शब्द नहीं कह कर २ ° ३९ ' शर कह दिया जाता जितना कि इप्सिलान का है । किंतु ऐसा कहा नहीं है । बरना रंगनाथ ने रोहिणी (आल्डिबरान) के शर ५ । २८ से अधिक हो तो शकट भेद नहीं ऐसा इसकी दक्षिण मर्यादा ५॥ अंश के प्रदेश की बता दी है ।

यदि क्षण भर के लिये इसे ताराबिंब भेद युति मान भी लेवें तो झीटागणना से इप्सिलान का भोग ४८° ३९'३ होने के कारण यह ग्रंथोक्त मानसे +१°। ३९'३ तथा इसका शर + ३५।° अधिक है । इससे जब कभी इसकी बिंब भेद युति हुई तो भी वह शकट भेदयुति कहा नहीं सकती क्यौंकि ग्रंथोक्त की तुल्यता से इसके भोग शर ९५'३' व ३९' कलाओं से अधिक हो जाते हैं । इसलिये यहां ' शकटाकार प्रदेश युति ही ' माननी पडेगी. अस्तु

इस गाडे के आल्डिबरान और इप्सिलान् नामक दो तारे बडे प्रति के होने से वाम दक्षिण चक्रस्थीनीय हैं । भारतीय नक्शों में इप्सिलान को **गर्ग** और कोष में **गर्गरी** मंथनपात्र, कुंभकारास्त्र व रथ चक्र के अर्थ में कहा जाने से गर्गरी को ही आगे ऋषि वाचक गर्ग के नाम से कहने लगे । ऐसी गर्ग की व्युत्पत्ति से ही स्पष्ट होजाता है । दूसरे आल्डिबरान का गर्ग नाम न होकर रोहिणी होने का कारण उसका लाल रंग है । जोकि लोहिनी=रोहिणी ऐसा इसका नाम पड गया है । शतपथ ब्राह्मण (३.२.४.१४–१५) में तो इंद्र दैवत्या ज्येष्ठा रोहिणी, सोमक्रयणी रोहिणी और मघा आर्द्रा को भी; रोहित कहा है । क्योंकि; इन के तारे लाल हैं ।

टारी पुंज के थीटा, डेल्टा, ग्यामा नामक जुडे हुए दो दो तारे दमनक (शकट पृष्ठ वर्तीय भाग) हैं । दोनों चाकों की रेखाओं के धुरस्थानीय जोडके 'शकटाग्रिम' तारा 'टाऊ टारी' है उसका कदंबाभिमुख नाक्षत्र भोग ४८°।१९' शर ८°।४३' उ० है । अर्थात रोहिणी शकट के ५ तारे होकर ईशान्याभिमुख क्रांतिवृत्तीय जूडेपर उसके दोनों धुरेका अग्रभाग "टाऊ"पर टिका हुआ है । एटलास में आकृति देखने से एवं ग्रंथोक्त के स्वारस्य की शक्ति से शकटाग्रिम भाग दर्शक तारका "टाऊ" है. और तै. श्रुति व शतपथ ब्रा. के उक्त प्रमाण में ज्येष्ठा व श्रवण के तीन तीन तारोंके मध्यमें योग तारा के अनुसार थीटा+टाऊ के बीचमें आल्डिबरान को ही मुख्य तारा मानने से इप्सिलान वगैरे तारों का पुंज में समावेश होता नहीं है । और शास्त्रीय ग्रंथों में पांच तारों का ही पुंज माना गया है. तथा सभी ग्रंथों में आल्डिबरान को ही रोहिणी के नाम से कहा है. इसलिये अब हमें शकट भेदी प्रदेश

का निश्चय इन मुख्य दो तारेंके मध्य में ही करना चाहिये। आल्डिबरान का भोग °४५। ५७′ शर ५°।२८′ द. है। इसलिये इन दोनों का मध्य निम्नलिखितानुसार निश्चित होता है भोग=४८°।१९′-४५°।५७′=२°।२२′ अर्ध १°।११′:: मध्य४७°।८′ शर=उ१०°।४३′-द५°२८′= ६°।११′अर्ध३°।९′::मध्य द.२°।२३′ अर्थात-भोग ४७°।८′शर द.२।२३ शकटाकार सन्निवेशका मध्य स्थल है। यानी यहां पर ग्रह आनेपर वह रोहिणी शकटाग्र भाग के ठीक मध्य में होने से ही ग्रंथोंमें ४७ भोग व दो अंश के ऊपर दक्षिण शर लिखा है उससे इसकी एक वाक्यता हो जाती है। इसकी व्याप्ति भोग ४५°।५७′से ४७°।८′तक तथा शर =द.५।२८ से २।२३ तक के प्रदेश में है।

क्योंकि उक्त कथन की पुष्टि में लल्ल सिद्धान्त आदि के और भी प्रमाण उपलब्ध होते हैं, जैसे:—

“**प्राजापत्यदले (४६°।४०′) स्थितस्तु हिमगुर्याम्ये शरांशैस्त्रिभिर्वित्र्यंशैः (२।४०) शकठं भिनत्ति विदलैः स्तैः पंचभी रोहिणीम् ॥ सौम्यैः पंचभिरंशकैश्च सदलैस्तारां मघामध्यमां विक्षेपेण विवर्जितश्च गुरुभं पौष्णं तथा वारुणम् ॥ ११ ॥ (लल्लसि. भग्रह युत्यधिकार**) अर्थात्:–रोहिणी नक्षत्र के अर्धविभाग ४६°।४०′ में जब चंद्रकी स्थिति हो और उसका शर २°।४० दक्षिण होवे तो वह चंद्रमा; शकट का भेद करता है। तथा शर ४॥ अंश द. हो तो रोहिणी पुंज की भेद युति करता है। इसी प्रकार मघामध्य १२६°।४०′ स्थित चंद्र का उत्तर शर ५॥ अंश होवे तो मघा नक्षत्र (पुंज) को भेदता है। आगे अपने अपने विभाग के मध्य में शर रहित चंद्रमा (१००°।०′ पर) पुष्य को, (३५३°।२०′ पर) रेवती को तथा (३१३°।२०′ पर) शततारका नक्षत्र की भेद युति करता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि उक्त भेद युति नक्षत्र पुंज प्रदेश के उपलक्ष में कही गई है। न कि कोई तारे के लिये ॥ उसमें भी जो “ दले ” वाक्य में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है वह ‘ **तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य** ’ (**पा. सू.** १।१।६६) इस व्याकरण के कथन के तुल्य मध्य के अंतर्गत अर्थ को द्योतित करता है। तथा इन सातों युति में से [१] सू. सि. के प्रमाण में कही हुई शकट प्रदेश की व्याप्ति (४५°।५७ से ४७।८) के मध्य के ४६।३३ निकट ४६°।४० में लल्लाचार्य ने कही है। [२] यही द. शर ४॥° पर रोहिणी पुंज की भेद युति कहाती है, [३] मघा की योग तारा यद्यपि लिओनिस की अल्फा (रेग्युलस) योग तारा (भोग १२६°।०′ शर ०°।२८′ उ.) है। किंतु यह ‘ **भरण्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा** ’ सू. सि. के कथनानुसार अपने पुंज के दक्षिण तर्फ होने से [२] ईटा लिओनिस (भो. १२५°।४४′ श. ५°।१′ उ.) और [३] ग्यामालि. (भो. १२९°।४७′ श. ८°।४९′ उ.) होने से मघापुंज क्रांति. वृ.

के उत्तर में निश्चित होता है। तदनुसार मघा मध्य (१२६°।४०' भोग और ९॥ अंश शर) पर मघा पुंज की भेद युति; इसी प्रकार पुष्य, रेवती शततारका की भेद युति; पुंज के ही मध्य में कही गई है।

यदि इनके योग ताराओं की भेद युति कहें तो भी झीटागणना से वह अपने विभाग को लांघकर आगे के विभाग में चले जाने से शास्त्रोक्त से मेल रहता नहीं है किंतु चित्रागणना से शास्त्रोक्त की एक वाक्यता होती है। यह निम्नलिखित समीकरण से ज्ञात होगा। और परीक्षणमें बताए हुए अंकों में कितनी गलती है सो भी स्पष्ट मालूम हो जायगी [उदाहरण के लिये ज्योतिर्गणित (पृष्ठ २३३) में गर्ग के विधान युति के संबंध के एवं शाके १८०२ पौषमास के सायन भोग कोष्टक; देखिये.]

रोहिणी शकट भेद के संबंधमें समीकरण (अ)

विवरण (१–२)	झीटा गणना	चित्रा गणना
इप्सिलान टारी याने	अं. क. विकला	अं. क. विकला
गर्ग का सायन भोग	६६।४७।५८.८	६६।४७।५७.८
अयनांश	–१८।१२।४२.३	–२२।१०।५१.२
वेधसिद्ध सूक्ष्मगणितागत भोग;	=४८।३५।१६.५	=४४।३७। ७.६
परीक्षण में कहे हुए	–४७।२२।	–४४।२२।
अंकोंमें इतनी गलती (अंतर) है।	+ १।१३।१६.५	+ ०।१५। ७.६
इसी इप्सिलान टारी के..		
उक्त भोगसे	४८।३५।१६.९	४४।३७। ७.६
लल्लाचार्योक्त	– ४६।३०।	– ४६।३०
(प्राजापत्यदले) का मेल नहीं मिलता है।	+ २। ५।१३.५	– १।५२।५२.४

मघामध्य और अन्य ताराओं की युति के संबंध में समीकरण (ब)

लल्लोक्त मघा मध्यभोगसे	१२६।४०।	१२६।४०
योग तारा (रेग्यूलस) के	–१२९।५८	–१२६। ०
भोग का	+ ३।१८ बहुत अंतर	–०।४८ स्वल्पांतर है

इसलिये झिटागणना से मेल नहीं मिलता है।		और चित्रा से मिलता है
पुष्य के विभागांत्य	१०६।४० मर्यादासे	१०६।४० मर्यादा से
योग तारा से	१०८।५१ तारा	१०४।५३ तारा
चंद्र बिंब की तुलना	+ २।११ विभागो लुंघित	–१।४७ विभागांतर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्तसे अयुक्त है	शास्त्रोक्तसे युक्त है
शततार का विभागांत्य	३२०। ० मर्यादासे	३२०। ० मर्यादासे
योग तारा से	३२१।४२ तारा	३१७।४४ तारा
चंद्र बिंब की तुलना	+ १।४२ विभागोल्लंघित	–२।१६ विभागान्तर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्तसे अयुक्त है	शास्त्रोक्त से युक्त है.
रेवती विभागांत्य	३६०। ० मर्यादा से	३६०। ० मर्यादा से
योग तारासे	३६०। ० तारा	३५६। २ तारा
चंद्र बिंबकी तुलना	०। ० विभागोल्लंघित	–३।५८ विभागांतर्गत
इसलिये यह	शास्त्रोक्त से अयुक्त है।	शास्त्रोक्त से युक्त है।

इस (अ) समीकरण से स्पष्ट रीतिसे मालूम हो जाता है कि इप्सिलानटारी शकट भेदी तारा नहीं हो सकती और रोहिणीकी योग तारा आलिडबरान है। उसका उल्लेक्त युति स्थान से (सिर्फ ३३ कला मात्र अंतर रहने से) मेल मिलता है। झीटा गणना से ३·४ अंशांतर होने से बिलकुल मेल नहीं है। ऐसाही (ब) समीकरण से मघा की योग तारा का सिर्फ ४८ कला मात्र अंतर होनेसे मेल मिलता है। झीटा ग. से ३·३ अंशातर है। बाकी पुष्य शत तारका व रेवती की योग तारा से चंद्र की युति तो झीटा ग. से उस नक्षत्र की मर्यादा (विभाग) को लांघकर आगे के नक्षत्र में चले जाने के कारण शास्त्रोक्त से अयुक्त है। और चित्रा ग. से अपने विभाग में ही रहने से शास्त्रोक्त की इससे एक वाक्यता होजाती है।

परीक्षण ७ (ई)

शिवाय अयनांश १९ प्रमाणें ता. २९-१-३० रोजीं गणितानें रोहिणी शकट भेदी ताऱ्याशी जाहलेली गुरुची युति आकाशांत सर्वांचा दृक्प्रत्ययास आली ही गोष्ट ता. २८-१-३० व १-४-३० या तारखांच्या केसरी मध्यें रा. पवार यांनी प्रसिद्ध केली आहे. व ती कोणांस ही खोडून काढता आली नाहीं. हा एक दृक्प्रतीतीचा अनुभव लक्षांत ठेवण्या सारखा आहे

समाधान ७ (ई)

उक्त कथन अडाणी मनुष्य के कहने के तुल्य हास्यस्पद है। क्योंकि उस समय ध्रुव सूत्रीय हो या कदंब सूत्रीय इप्सिलान टारी के साथ गुरु की युति हुई नहीं है। फिर शास्त्रोक्त रोहिणी शकट भेदतो दूर ही रहा। देखिये ता. २९-१-३०के नाटिकल आल्म नॉक द्वारा

ध्रुव सूत्रीय के लिये समीकरण

विवरण	विषुवांश	क्रांति
इप्सिलान तारे के	६६°।७'.९५	१९°। ११'।४२."५ उ.
गुरु के	६४।३५.७५	२०°।२८'।२२."५ उ.
विषुवांशों में बहुत अन्तर है।	−१।३२.२०	+१।२६।४०.०

अर्थात् तारेसे गुरु इतना=पश्चिम में और उत्तर में रहा है। और परस्पर सरल रेषा कारान्तर २°।६.'५४ होनेमें इनके बिंब प्रान्तोंसे भी २°।६' का अंतर रहता है। इसलिये न तो भेद युति हुई। न समसूत्रीय हुई है।

कदंब सूत्रीय के लिये समीकरण.

विवरण	सायन भोग	शर
इप्सिलान तारेके	६°७।३'०	२°।३४' द.
गुरु के	६६।१८	०।५५ द.
सायन भोग शरों में इतना बहुत अंतर है.	−१।१२	−१।३९ द.

अर्थात् उक्त तारे से गुरु की युति होने के लिये १ अंश १२ कला और चाहिये। ऐसा ही शर में (१°।३९') अंतर होने से उतना गुरु उत्तर में है। और परस्पर रेषाकार अंतर २°।२.'२२ होने से इनके बिंब प्रान्तों में भी२°।२' का अंतर रहता है इसलिये न तो भेद युति हुई न सम सूत्रीय हुई है।

इस प्रकार वेधसिद्ध प्रमाणों के गणित से ध्रुवसूत्रीय या कदंब सूत्रीय (उक्त तारे के साथ) गुरु की युति नहीं होते हुए भी रा. पवार बोआ की (गलती को कौन तपास सकता है। ऐसी घमंड से ; या नहीं समझें हों तो अज्ञता से) गोविंदरावजी प्रशंसा करते हैं आश्चर्य है। वस्तुतः इस समय झीटा गणना के पंचांग से ' **वृषे सप्तदशे भागे** ' में गुरु आकार भी युति के नहीं होने से झीटा का झुटापन यानी अशास्त्रता व निराधारता तो प्रगट होती ही है। किंतु ऐसी असत्य युति के बताने से झीटा पक्षीयों की गणित शास्त्र प्रावीण्यता कितनी है यह चौडे आ जाती है। इसी केसरी में प्रकाशित लेख का खंडन — एलीचपुर वास्तव्य ज्योतिर्भूषण पं. गोपिनाथ शास्त्री चुलेट ने ता. २।३।३० के '**ज्ञानप्रकाश** ' (पुणे के) पत्र में कर दिया है। उसमें तुम्हारे संपूर्ण लेखों के धुर्रे उडा दिये हैं। इसलिये अब आपको यह कहने का अधिकार ही नहीं है कि ' कोणास ही खोडून

काढतां आली नाहीं' यह कहना नितांत असत्य है। (देखिये ज्ञानप्रकाश ता २-३-३० का अंक.) सारांश जो बात प्रत्यक्ष के सूक्ष्म गणित से हल हो गई है। उसको भिन्न कोटी क्रम से समझाना तज्ज्ञ पुरुषों का काम नहीं ; अडाणी का है।

विधान ८.

अब हमें यहां यह प्रश्न हल कर देना समुचित है कि 'उक्त शून्यायनांश वर्ष (शक ११३) से आगे के ग्रंथकारों ने इसके अनुसार अयनांश माने हैं या नहीं। और माने हैं तो किस रूप में माने हैं।' इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि शाके ५०० के करीब में ब्रह्मगुप्त और लल्लाचार्य ने आपके बनाए ग्रंथो में नक्षत्रों के ध्रुवकों के साथ यद्यपि चित्रा के १८३ व १८४ अंश कहे हैं। सो प्राचीन एवं कृतायन दृक्कर्मक समझकर कहे हैं। क्योंकि उनके कालमें यह ध्रुवक स्थूल माने गए थे। अतएव लल्लाचार्य ने 'प्राजापत्यदले' आदि श्लोकों से प्रत्यक्ष वेधसिद्ध युति स्थान को अलग कहा है। और भास्कराचार्य ने भी सिद्धान्तशि. में लिखे हुए ब्रह्म गुप्त के ध्रुवकों के सबंधं में लिखा है कि **"ये पाठपठिता स्ते स्थूलाः। अत्रायनांशानामल्पत्वेऽल्पमन्तरं कृतेऽपि तस्मिन्कर्माणि भवति। बहुत्वे बहु। अतो यदा बह्वो यनांशास्तेदेदं कर्मावश्यं कर्त्तव्यमित्यर्थः।" " ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्नकृतः स्फुटः॥ स्थित्यर्धे परिलेखादौ गणितागत एव हि।"(दृक्कर्म वासना तथा युत्यधिकार श्लो. ११)** अर्थात् यह स्थूल हैं। अभी थोडे अयनांश होने से थोडा अंतर है आगे अधिक अयनांश होंगे तब अधिक अंतर होजायगा। इसलिये युतिकाल के स्थित्यर्ध के परिलेख आदि लिखने में गणितागत भगण के परिमाण ही लिखना चाहिये। इत्यादि कहा है।

तथा" **यहा किलैकादशा ११ यनांशा स्तदा**" शाके १०७२ (सि. शि.) में भूत कालीन अयनांश ११कहे हैं। और शाके ११०५ (करण कुतूहल अ. २ श्लो. १७) में— " **अथा यनांशा करणाब्द लिप्ता युता भवा ११ स्तद्युतमध्यभानोः॥** " इसमें जो केवल अंशात्मक अयनांश ११ कहे हैं। वहां टीका में " **कला विहायात्र भवा एवोक्ताः** " 'कला के अंकों को त्यागकर केवल अंशो को लिखे हैं' इत्यादि भास्कराचार्य के कथन से तात्पर्य निकलता है कि; 'अभीतक ठीक ठीक अयन गति निश्चित हुई नहीं है इसलिये सांप्रतिक वेधोप लब्ध अयनांश लेकर तदनुसार अयन गति को भी निश्चित करलेना चाहिये। ऐसा ही केन्द्रीयमान को साथ लेकर गोल बन्धाधिकार श्लो १७-१९ की वासना में इस विषय को और भी स्पष्ट कर दिया है। जैसे— " **तत्कथं ब्रह्मगुप्तादिभिर्निपुणैरपिनोक्त इतिचेत्। तदा स्वल्पत्वात्तैर्नोपलब्धः। इदानिं बहुत्वात् सांप्रतिकैरूपलब्धः। ....। यतो ग्रहाणां मन्दफलाभावस्थानानि तान्येव मन्दोच्चस्थानानि। यान्येव विक्षेपाभाव स्थानानि तान्येव**

पात स्थानानि। किंतु तेषां गतिरस्ति नास्ति चेति संदिग्धम्। तत्र मन्दोच्चपातानांगतिरस्ति। चंद्रमंदोच्चपातवदित्यनुमानेन सिद्धा। .... । तार्हि सांप्रतिकोपलब्ध्यनुसारिणी कापि गतिरङ्गी कर्तव्या। यदा पुनर्महता कालेन महदन्तरं भविष्यति तदा महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तादीनां समान धर्माण एवोत्पत्स्यन्ते। ते तदुपलब्ध्यनुसारिणीं गतिमुररीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति। " अथ च ये वा ते वा भगणा भवन्तु। यदा येंऽशा निपुणैरुपलभ्यन्ते तदा स एव क्रांतिपात इत्यर्थः। "

इस प्रकार के भास्कराचार्य के कथन से एवं ब्रह्मगुप्तादि के कथन के भाव को और गणितागत परिमाणों को देखते निश्चित होता है कि इनके कहे वर्षमान उच्चमिश्रित याने मंदकेंद्रीय के तुल्य हैं। तथा उच्चाविक्य के कारण उनका संक्रमण दो तीन दिन पहले होने से वह सायन भाग मिश्रित भी हो गया है। कारण की वेधोपलब्ध उच्चस्थान से मंदकेंद्रारंभस्थान और सम्पात से भगणों का आरंभस्थान ठहराने में उच्च और संपात की वास्तविक गति की अपेक्षा रहती है। किन्तु उस समय में उसका पूर्ण शोध नहीं लगा था। इसलिये वेधोपलब्ध केंद्र और अयनांशों का उपयोग करना ' ऐसा भास्कराचार्य के लिखने का आशय है।

परीक्षण ८ (अ)

हें विधान स्पष्ट नाहीं यांत अन्योन्याश्रय संबंध गर्भित आहे. म्हणजे ' अयनांश का भेद मालूम न होने से दृश्य अयनभाग के तुल्य सायन कहे हैं ' हें शब्दजाल काय उद्देशानें लिहिलें हें लक्षांत येत नाहीं. अयनांश ज्ञात नसताना दृश्य अयनांश तुल्य सायन भोग कसें लिहितां आले हें गूढ उकलत नाहीं. हें केवळ शाब्दिक अवडंबर आहे ? याला आधार काय तर अस्फुट शरांना स्फुट करून ब्रह्म गुप्तादिकांनीं कां लिहिलें नाहींत, हें ज्या श्लोकांत भास्कराचार्यांनीं दाखविलें आहे तो श्लोक यांत धडधडीत वडाची साल पिंपळाला लाविली आहे. असें लिहिण्यामुळें लिहिण्याऱ्यांचे अज्ञान तरी व्यक्त होतें किंवा जाणून बुजून भलतीच वचनें भलतीकडे लावून लोकांच्या डोळ्यांत धूळ टाकण्याच्यां आरोपात तरी यांना फसावें लागतें.

समाधान ८ (अ)

बडी आश्चर्य की बात है कि प्रस्तुत विधान इतना स्पष्ट होते हुए भी यह गोविंदरावजी के चस्में से बराबर दिखता नहीं, अन्योन्याश्रयरूप दिखता है। खैर इस संबंध में ज्यो. वि. दीक्षित का कथन तो भी आपको शब्दजाल नहीं दिखेगा। वह यह है:-" मला निश्चयानें वाटतें कीं सायन रवीचें मेषसंक्रमण तेंच त्यानें (ब्रह्मगुप्तानें)

मानलें. सिद्धान्तांत तो म्हणतो-" यदिभिन्नाः सिद्धान्ता भास्कर संक्रांतयोऽपिभेदसमाः।। सस्पष्टः पूर्वस्यां विषुवत्यर्कोदयेयस्य ।। (ब्र. गु. सि. अ. २४, श्लो. ४) " ' जर सिद्धान्त भिन्न असतील तर सूर्याच्या संक्रांति ही (भिन्न) त्या भेदाप्रमाणें झाल्या पाहिजेत. परंतु तो सूर्यतर विषुवदिवशीं पूर्वेस सूर्योदयीं स्पष्ट दिसतो. ' याचें तात्पर्य इतकेंच कीं, आकाशांत सूर्यसंक्रमण भिन्न भिन्न कालीं दिसावयाचें नाहीं. यांत विषुवदिवशींच्या सूर्योदयकालचा उल्लेख आहे. यावरून तो सायन सूर्यच होय. आणि प्रत्यक्ष वेधानें ब्रह्मगुप्तानें ही गोष्ट दिली हें स्पष्ट आहे। ब्रह्मगुप्तास अयनगति माहित नव्हती. त्याच्या पूर्वी ती माहित असेल तर त्यानें ती विचारांत घेतली नाहीं, यांत तर संशय नाहींच. यामुळें त्याच्या दृष्टीनें सायनसूर्य आणि ग्रंथागत (नाक्षत्र) सूर्य हा भेद नाहींच. सायनसूर्य तोच सिद्धान्तावरून निघेल असें त्यानें केलें. सिद्धांतानंतर ३७ वर्षांनीं त्यानें खंडखाद्य ग्रंथ केला. आणि त्यांत वर्षमान मूल सूर्यसिद्धांताचें घेतलें आहे. भास्कराचार्यानें " कथं ब्रह्मगुप्तादिभिर्निपुणैरपि (क्रांतिपातो) नोक्तः " असें म्हटलें आहे. यावरून ब्रह्मगुप्ताच्या ग्रंथांत मूळचें असलें अयनगतींविषयीं कांहीं नाहीं असें दिसतें. " (भा. ज्यो. पृ. २१९-२० पहा) " उच्चें आणि पात यांची गति फार सूक्ष्म आहे, इतकें आमच्या ग्रंथकारांच्या लक्षांत आलें होतें. हा पण त्यांच्या गुण घेतला पाहिजे. "-(पृष्ठ २०७-८) इसलिये कहा गया है कि ब्रह्मगुप्त को अयनांश का भेद मालूम नहीं होने से दृश्य अयनभाग के तुल्य (जैसाकि ब्र. गु. ने ऊपर विषुवदिनका सूर्य कहा है सो) सायन कहे गये हैं. अब तो शब्द जाल का आडंबर न रहा.

जबकि गोविंदरावजी कबूल करते हैं कि भोग शरों में से ब्रम्हगुप्त को अस्फुट (कदंबसूत्रीय) शरोंको ध्रुवसूत्रीय कहते नहीं बने तब अस्फुट भोग भी ध्रुवसूत्रीय स्फुट कैसे और कहांसे हो सकते हैं। भास्कराचार्य नें ' ये पाठपठितास्तेस्थूला ' ऐसा जो कहा है; सो केवल शर के संबंध में ही कहा होता तो ' पातोनस्फुट भानुः स्फुट भानूनो भवेत्पातः ' नहीं कहकर स्फुट भोगों के सायनांतर से वह क्रांतिपात को कह सकता था। और चित्राभोग १८३ से उस समय (शक १०७२) में अयनांश ८ या ९ कहना था किंतु भास्कराचार्य ने प्रस्तुत भोगों को स्थूल मानने के कारण अयनांश ११ कहे हैं। यह भी पूर्व कालीन कहे हैं। क्या इससे बडकी छाल पीपल को लगाना कोई तनिक भी ज्ञान रखनेवाला कह सकता है; कदापि नहीं। फिर सामान्य पाठकों के आंखों में निराधार औन्मात्तिक प्रलापों द्वारा धूल कौन फेंक रहा है। इसका शांत चित्तसे गोविंदरावजी ने ही विचार करना चाहिये।

विधान ८ (आ)

उपर्युक्त भास्कराचार्य के कथन से एवं सब ग्रंथों की परंपरा प्रामाण्य से यह बात निःसंदेह सिद्ध होती है कि हमारे सिद्धान्त ग्रंथकारों ने ग्रहोंके उच्चस्थान और पात स्थानों

का तथा ब्रह्म गुप्त व लल्लाचार्य के अतिरिक्त ग्रंथ कारोंने अयनांशों का वेध द्वारा-कुछ स्थूल क्यों न हो निर्णय कर-पता लगा लिया था. किन्तु उक्त परिमाणों का एक चक्र पूर्ण होने में हजारों-लाखों वर्ष लगने से उसकी गति का यथार्थ निश्चय उस समय में नहीं हुआ था । अब हो गया है इसलिये कुछ थोडा केंद्रायन भाग वर्षमान में और फल साधनों में मिल जाने के कारण; हमें उनकी कही हुई अयनगति के आधार पर शून्यायनांश वर्ष आदिको नाक्षत्र वर्ष मान लेना अयोग्य है । क्योंकि वह मंद केंद्रीय वर्ष हैं । अत: यदि कक्षा केंद्रच्युति के अनुसार मंद परिधिद्वारा फलान्तर और केंद्रान्तर का संस्कार करें तो ग्रंथ कारों के कहे शून्यायनांश वर्षों से भी वही अयनांश आकर उन से उक्त गणित का एकवाक्यता हो जाती है ।"

परीक्षण ८ (आ)

हें विधान भ्रामक आहे व असत्य आहे. भास्कराचार्यांनीं ब्रह्मगुप्ताचा आशय स्पष्ट केला आहे. त्यानीं मेषादि म्हणजेच रेवती तारा व मेषादि व वसंत संपात या मधील अंतर तेच अयनांश असें स्पष्टपणें सांगितलें आहे. या वरून रैवत भोगाचा अयनांश साधनांत उपयोग केला आहे यांत तिळमात्र संशय नाहीं असें पूर्वीच [विधान ४ चे परीक्षणांत] सिद्ध करून दाखविलें आहे. ग्र. ला. कारांनींही रेवती भोग ० दिल्या कारणानें त्यांचा ही आशय अशाच प्रकारचा आहे हें स्पष्ट आहे.

समाधान ८ (आ)

परीक्षण में कही बातें बिलकुल झूट हैं । न तो परक्षिण ४ में अनर्गल प्रलापों के सिवाय आप कोई ग्रंथ का प्रमाण देकर कुछ सिद्ध कर सके हैं. तथा थोडा कुछ कहा है. समाधान में उसके धुर्रे उडा दिये गये हैं । क्योंकि भास्कराचार्य ने **' भान्यश्विन्यादीनि । ग्रहास्तु भगणादावश्विनी मुखे निवेशिता: । भचक्रेऽश्विनी मुखे १** (सि. शि. श्लो. १४ पृ. ६) भगणारंभमें अश्विनीको कहा है. । तथापि अश्विनी योग तारा से भगणारंभ की गणना नहीं करके अयनांश साधन में **' यस्मिन्दिनेसम्यक्प्राच्यां रविरुदितोदृष्टस्तद्विषुवं दिनम् तस्मिन्दिने गणितेन स्फुटो रविः कार्यः । तस्यरवेर्मेषादेश्चयदन्तरं ते यनांशाज्ञेया: । यदा किलैकादशायनांशास्तदागोलसन्धि: (११।१९) (५।१९)** (सि. शि. पाताधि पृ. २२६ श्लो २) गणितागत मेषादि के सिवाय रेवती का नाम निर्देशतक किया नहीं है) ऐसे ही ग्र. ला. कारने **" वेदाब्ध्यध्यून: खरसहृत: शकोऽयनांशा: "** (ग्र. २०७ पृ. ८४) शक १४४२ में अयनांश १६° ३८' को लाने के लिये उपरोक्त श्लोक से साधन किया है । दोनों ने भी भध्रुवकों का उपयोग बिलकुल किया नहीं. इसी से स्पष्ट हो जाता है कि ध्रुवक स्थूल हैं. तब रेवती की तो बातों ही क्या रही वह तो निरुपयोगी स्वयं सिद्ध हो गई है.

विधान अयनगति ९ (क)

नक्षत्रों से अयनांशों के निश्चय में केंद्र फलांतर वगैरे के संस्कार की कोई आवश्यकता रहती नहीं है। केवल नक्षत्रों के निजगति के कारण थोडा फरक पडता है किंतु २७ नक्षत्रों में एक चित्रा का ताराही अत्यल्प निजगति का है, कि उसके द्वारा साधन किये हुए अयनांश शुद्ध अयनगति के आविकला साम्य आते हैं। इसको उदाहरण देकर स्पष्ट करतां हूं। ज्योतिर्गणित पृष्ठ ६४ में शक १८०० के मेषार्क कालिक आयनांश २२।८।३३ लिखे हैं वहां से शाके १८४७ पौष व० २ ता० १।१।२८ पर्यंत के गताब्द ४७।८ की [ज्यो. ग. पृ. ८६ प्रोक्त] शुद्धायन गति की सारणी से अयन गति ४०'।१"२७ और संस्कार ०"२६ इनका जोड ४० कला १५.३ यानी २ विकला इस को शाके १८०० के अयनांशों में मिला देने पर [२२°।८'।३३"] + [४०'।२"] =[२२°।४८'।३५"] शाके १८४७'८ के अयनांश हुए। इसमें चित्रा का भोग १८० अंश मिला देने पर चित्रा का सायन भोग २०२°।४८'।३५" हुआ है। तथा दूसरे प्रकार से इस समय के नाटिकल अल्मनाक [ता० १-१-२६] से चित्रा [स्पायका] के विषुवांश २००°।१९'।२२"।६९ क्रांति + १०°।४६'।३१"७२ रवि परम क्रांति २३।२६।५१'५३ द्वारा

(चि=चित्रा) तारे से अयन गति (ख).

चि. क्रांति छाया घातांक	९'२७९४७७६	चि. क्रांति कोटीज्या	९.९७२०८४९
चि. विषुवांशभुज्या ,,	९'५४०७१९१	,, विषुवकोटीज्या	९'९९२२७३९
अंतर=परम क्रांतिछाया ,,	९'७३८७५८५	जोड ब कोटीज्या	९'९६४३५८४
परम क्रांति	२८°।४३'।१७"।४६	ब	२२°।५३'।४७"।२२
रवि परमक्रांति	९३।२६।९१'९३	ब भुजज्या (घातांक)	९.५९००२८२
अ=	५।१६।२५'९०	अ भुजज्या ,,	९'९६३३९२५
ब छाया (घातांक)	९'६२५६६९८	जोड=शर भुजज्या ,,	९'५५३४२०७
अ कोटीज्या ,,	९'९९८१५७५	शर: (दक्षिण)	२°।२'।३९"५०
जोड=भोग छाया ,,	९'६२३८२७३	(क)=चि. सा. भोग	२०२°।४८'।३५"
चित्रा भोग:	२२°।४८'।३४".७२=	(ख)=चि. सा. भोग	२०२।४८।३५

अर्थात दोनोभी समयकी शुद्ध अयनगती एवं सायन भोगांतर गति बिलकुल आविकलासाम्य मिलती है। इसीलिये शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान और सूर्य चित्रा युतिरूप वर्षमान एवं अयनांश इन सब की आपस में शास्त्र शुद्धता रहती है। इससे भास्कराचार्य के [११।२०] तथा ग्रहलाघव के (१६।२८) अयनांश और वर्षमानादि में केंद्र फलांतररूप संस्कार करने

पर उन सब कि चित्रा गणना से ही एक वाक्यता होती है। अन्य ताराओं में उनकी निजगति का संस्कार करने पर उनके अयनांशादि परिमाणों की भी चित्रा से ही एक वाक्यता होती है। अतएव चित्रा गणना सर्व श्रेष्ठ एवं शास्त्र शुद्ध है।

परीक्षण ९ (अ)

विधानांत सांगितलें आहे की त्यांनीं निश्चित केलेले अयनांशाचे चित्रा सन्मुख बिंदुपासून काढलेल्या अयनांशाशीं आविकल साम्य आहे. हें खरें नाहीं, हें सिद्ध करण्याकरितां योजिलेली युक्ती वाटेल त्यांस उपयोगांत आणितां येईल परंतु या युक्तीनें रैवत पक्षाचे ही अयनांश येऊं शकतात असें त्यांना सहज कळून येईल. लागर्तम वगैरेचा उपयोग करून चित्रा ताऱ्यावरून जसें अयनांश दीनानाथजींनीं काढून दाखविले आहेत तसेंच ज्यो. ग. पृ ३९१।३९२ वर रेवती तारे पासून (झिटा पिशीयम) रैवत पक्षाचे अयनांश तशाच लागर्तमाच्या रीतीनें काढलेलें आहेत ते पहावें।

समाधान ९ (अ)

उक्त परीक्षण हास्यास्पद है। क्यौंकि यह तो कोई भी गणितज्ञ स्वीकार नहीं करेगा कि 'चाहे जिस अंकों से उपरोक्त पद्धति से शास्त्र शुद्ध अयनांश आ सकते हैं। न कोई ग्रंथकार ने गोविंदरावजी के कथन के तुल्य अयनांश बताए हैं। वस्तुतः आर्ष ग्रंथोक्त पद्धति से जितने प्रकार के अयनांश बताए गये हैं वह सब चित्र गणना के निकट में हैं। उन में योग्य संस्कार देने पर सूक्ष्ममान से उनकी एकवाक्यता होजाती है। फक्त एक आपने ज्योतिर्गणित का उदाहरण देखने का कहा किन्तु गोविंदरावजी के दैव की बात है कि उसी ग्रंथकार ने इस के संबंध का भ्रम निवारण प्रकाशित कर दिया है। और वह इस प्रकार है:—

पुणें केसरी ता। १९-२-२१:—" केसरीच्या ता. २९-१-२१ च्या अंकांत ज्योतिर्गणितांतील शेवटच्या दोन श्लोकांचा पंचांगप्रवर्तन कमिटीच्या सेक्रेटरी नी जो अर्थ केला आहे तो आमच्या अभिप्रायाला फारच सोडून आहे. त्यांच्या प्रमाणें इतर वाचकजनांची गैर समजूत होण्याचा संभव दिसून आल्यामुळें जेणें करून आमचें मत असंदिग्धपणें वाचकांच्या लक्षांत येईल अशी सुधारणा करून तयार केलेलें त्या दोन श्लोकांचे रूपांतर आम्हीं पुढें दिले आहे, तिकडे वाचकांनीं लक्ष द्यावें।

" शाके षड्गोब्धि (४९६) तुल्ये सति विषुवमभूद्रेवतीतारकायां, चंडांशौ सौरवर्षे सदलवसु (८॥) विनाड्युन्मिताधिक्यभावात् ॥ मन्दं मन्दं पुरस्तास्थलमयति

सदा रेवतीतो युगांशैः , चित्रायाः सन्मुखं संप्रति भवति पुनर्निसरादग्रत श्च ॥ १ ॥ तस्मा द्वर्षप्रवृत्तिं पुनरपि हि सदा रेवतीतारकायां इच्छद्भ्यः स्वैरबुध्या प्रचरविरहितो रैवतः पक्ष उक्तः ॥ इच्छेत्तुं नोरहेरन् सुचिरपरिचितां वर्तमानां प्रवृत्तिं तेभ्यः सद्भ्यो मयांगी कृतविषयपर श्चैत्रपक्षो निबद्धः ॥ २ ॥ पुणे ता. २-२-२१—वेंकटेश बापूजी केतकर. "

परीक्षण ९ (इ)

पं. दीनानाथ यांनीं शके १८४८ मध्यें चित्रे वरून अयनांश २२ । ४७° । ३४" ७२ काढिले आहेत व भास्कराचार्योक्त १०३६ पासून १८०० पर्यंत वर्षें ७६४ यांस ५०."२३५७ यांनीं गुणून संस्कार ०."०००११२८९× (७६४) लावून व यांत ११ । ३० अयनांश मिळवून २२ । ४८ । ३५ दाखविलें आहेत ह्मणजे भास्कराचार्यांनीं शके १०३६ मध्यें अयनांश ११ । ३० मानिले ही खोटी असलेली गोष्ट गृहीत धरली आहे हे उघड आहे. या करितां चित्रे वरून काढलेले अयनांश खोटे आहेत. रेवती ताऱ्या पासून अयनांश साधन अशा वाम मार्गानें न जातां सरळ मार्गानें दाखवितां येतें. तें असें. शके १८०४ पौष या वेळचे अयनांश काढून दाखवितो. (१८०४.७५-४९७=) १३०६.७५×५०.२३५७ यांत अयनगती संस्कार ०.०००११२८९×(१३०६.७५)२ युक्त करून अयनांश १८।१४।२२.४ येतात हे लागतमानें काढलेल्या रीतीशीं आविकलांत जुळतात.

समाधान ९ (इ)

इसको कहते हैं धूर्तता जो कि भास्कराचार्य के कहे हुवे भूतकालीन अयनांशों की सूक्ष्ममानसे तुलना करके बताई सो तो कोई भी प्रमाण बताए बिना (मानसे उन अंशों को भास्कराचार्य के वर्तमानकालिक मानने पर अधिक से अधिक एक अंश के अंदर ही कुछ कलाओं का अंतर होने मात्र से) गोविंदरावजी ने कह दिया है कि यह अयनांश खोटे हैं किंतु आपने खोटे शून्यायनांशवर्षलेकर खोटीअयनगतिसे भास्कराचार्यके कहे अयनांशों का उससे कुछ मेल नहीं बताकर शके १८०४ के भलते ही [असत्य] अयनांशों को बता देना यह न्यायनीति और गणित शास्त्र का छल है। क्योंकि कोई भी भारतीय ग्रंथ में शाके ४९८ को शून्यायनांश वर्ष कहा नहीं है इसलिये हमने उसे खोटे कहे हैं। और नाक्षत्र वर्षमान के अतिरिक्त वर्षमानों की शुद्ध अयनगति जोकि (इसी रिपोर्ट के पृष्ठ १०१ में) बताई गई है तदनुसार भारतीय ग्रंथों के वर्षमान नाक्षत्र न होते हुए उनकी गणना में शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान की अयनगति बेमेल होने से उसे हमने खोटी कही है। उदाहरण भास्कराचार्य का लीजियेः— (शके १०७२-४९८=) ५७४×५०."२३५७

इसमें अयनगति संस्कार ०'०००११२८९ × (५७४)² युक्त करके अयनांश ८°। १'। १२'''५ भास्काचार्य के समय के आते हैं सो भास्काचार्योक्त ११ अयनांशों से ३ अंश कम होने से गलत हैं। क्योंकि मंदफल की भिन्नता के कारण अंतर पडे तो एक अंश से अधिक अंतर नहीं पड सकता है। जैसा कि शक १०७२ में शुद्ध नाक्षत्र मान से अयनांश ११°। ५८' होते थे और भास्कराचार्य ने कलाओं को छोडकर ११ अंशमात्र मात्र कहे हैं।

शाके १८०४ में मार्गशीर्ष शुद्ध १० गुरुवार को इष्ट घटी पल ५२-२३ पर सांपातिक मकर संक्रमण हुआ है। और पौष शुद्ध ४ शुक्रवार को इष्ट घटी पल ब्रह्मसिद्धांत से २९।० आर्य सि. से. ३२।१० सूर्य सि. से. ३६।४३ और शुद्ध नाक्षत्र (चित्रा) मानसे ३९।५६ पर मकरार्क संक्रमण हुआ है। इससे अब्दप द्वारा अयनांश २२।१२।२८ आते हैं। और परिमाणों से भी कुछ कलांतर से यही अयनांश आते हैं। इसके तर्फ गोविंदरावजी ने तनिक भी ध्यान नहीं देकर आपने चार अंशों के अंतर से अयनांश बताए दिये हैं। वह बिल्कुल खोटे हैं। न तो कहां शाके ४९८ से अयनांश लाना कहा है। न कोई भारतीय ग्रंथोक्त से छायार्क द्वारा आसकते हैं तथा गोविन्दरावजी गणित (१८°। १४'। २२. ४") में भी गोता खागए हैं:—१३०६'७५ = लाग्रतम

विवरण.	अयनगतिः	संस्कार.
वर्ष गुणक	३'११६१९२५	६'२३२३८५०
गति	१'७०१०१२७	६'०५२६५५५
संकलन (से गुणन)	———·———	————————
अयनांशाः	४'८१७२०५२	२'२८५०४०५

१८°।१७'।१८"'३ = १८ अं, १४ क, ५'५३ वि, + ३ कला, १२'७७ वि. क.

दूसरा उदाहरण ग्रहलाघव का देखिये। महदंतर के कारण- झीटागणना से मेल मिलता नहीं है।

न्यास = क.

प्रमेयों का विवरण	ग्रह लाघवोक्त परिमाण		तत्कालीन महदंतर		झीटागणना से परिमाण
	रा. अं. क. वि.		अं. क. वि.		रा. अं. क. वि.
मध्यम रविः-	११।१९।४१।०	+	३।९।३	=	११।२२।५०।३
उच्च व नीचः-	८।१८। ०।०	+	३।२८।४१	=	८।२१।२८।४१
स्पष्ट रविः-	११।२१।५१।४१	+	२।५५।१९	=	११।२४।४७। १
यनांशः-	+।१६।३८। ०		३।२७।२१	=	+।१३।१०।३९

न्यास=ख.

स्वल्पांतर के कारण चित्रागणना से मेल मिलता है:-

प्रमेयों का विवरण	ग्रह लाघवोक्त परिमाण.	ग्रंथोक्त परिमाणों से स्थूलताके कारण अंतर	चित्रापक्षीय परिमाणों की तुलना
	रा. ° ' "	° ' "	रा. ° ' "
मध्यम रवि:-	११।१९।४१। ०	- ०।४९। ६	= ११।१८।५१।५४
उच्च व नीच:-	८।१९। ०। ०	- ०।२९।२८	= ८।१७।३०।३२
मंद केंद्र:-	३। १४।१। ०	- ०।१९।३८	= ३। १२।१।२२
मंदफल:-	+। २।१०।४२	- ०।१३।४४	= +। १।५६।२८
स्पष्ट रवि:-	११।२१।५१।४२	- १। २।५०	= ११।२०।४८।५२
अयनांश:-	+।१६।३८। ०	- ०।३०।४८	= +।१७। ८।४८
सायन रवि:-	०। ८।२५।४२	- ०।३३। २	= ०। ७।५७।४०

अर्थात् ग्रहलाघवोक्त अयनांशों में केंद्र व फल संस्कारों की स्थूलता जनित स्वल्पान्तर (+०।३०।४८) का संस्कार करने पर उनकी चित्रागणना से एक वाक्यता हो जाती है। क्योंकि रवि भगणारंभ में अंतर सिर्फ ४९'·१ कला मात्र है। अंशात्मक अंतर नहीं है। तथा वर्तमान में तो बिलकुल थोडी ही कलाओं के अंतर से संपूर्ण ग्रंथों के परिमाणों से चित्रागणना की एकवाक्यता हो जाती है। इसलिये गोविंदरावजी का कथन असत्य (खोटा) है।

परीक्षण ८ (उ)

आर्यसिद्धान्तकारानीं उच्चपात व अयनांश यांचे यथार्थ ज्ञान करून घेतलें, या विधानाचा चित्रा किंवा रैवत पक्षाशीं संबंध पोहोंचत नाहीं। तथापि हे म्हणणें खरे दिसत नाहीं कारण असें होत असतें तर उच्च व पात यांच्या सूक्ष्म गतीचें अनुमान त्यांनां करितां आलें असतें. परंतु तसे जाहलें नाहीं (भा. ज्यो. पृ. २०० पाहा) अयनांश संबंधी ही तशीच स्थिति आहे. प्रत्येकानें आप आपले काळीं अयनांश किती होते इतकें निश्चित केले होतें असें म्हणणें ही ठीक दिसत नाहीं. उदाहरणार्थ खालील सर्व ग्रंथाच्या काळांचे अयनांशच पहा त्या त्या ग्रंथांत दिलेल्या त्याच्या शून्यायनांश वर्षावरून व त्यांच्या अयनगती (१ कला) वरून ते काढिले आहेत (भा. ज्यो. पृ. २३९,२५९)

मुंजाल	शक ८५४	अयनांश ६।५४
राजमृगांक	,, ९५४	,, ८।३९
करण कमल मार्तंड	,, ९८०	,, ८।५६
करण प्रकाश	,, १०१४	,, ९।२९
भास्वती करण	,, १०२१	,, ९।३१
करणोत्तम	,, १०३८	,, १०। ०
करण कुतूहल	,, ११०५	,, ११।३०
गृह लाघव	,, १४४२	,, १६।३८

या अयनांशां वरून हें स्पष्ट आहे कीं सर्व ग्रंथकारांनी ४३८ ते ४५० पर्यंत शून्यायनांश वर्ष मानिलें आहे. व वार्षिक अयनगती १ कला मानिली आहे.

समाधान ८ (उ)

यदि गोविंदरावजी भास्कराचार्यादि के **'यत उच्चसमे ग्रहे फलाभावो गतेश्च परमाल्पत्वम् (सि. शि. ग्र. म. श्लो. १-६ पृ. १७)** इत्यादि एवं असकृत्कर्म संबंध के वचनोंका स्वारस्य जानते और तदनुसार कहेहुए भगणों (वर्ष मान) में केंद्रान्तर व नक्षत्रांतर कितना है इसका तनिक भी विचार करते तो इस तरह बिना सोच विचार किये एकदम " कुल भारतीय ग्रंथकारों को उच्च, पात और अयनका ज्ञान नहीं था. " ऐसा कदापि नहीं कहते । इसके संबंध में प्रस्तुत रिपोर्ट (पृष्ट ९४-१०४) देखिये तो पाठकों को मालूम हो जायगा कि इस विषय में आर्य ग्रंथकारों की गलती है या स्वयं गोविंदरावजी की है, वस्तुत: **'यतो ग्रहाणां मंद फलाभाव स्थानानि प्रत्यक्षेणै वोपलभ्यन्ते । तान्येव मंदोच्च स्थानानि । यान्येव विक्षेपा भावस्थानानि तान्येव पात स्थानानि किंतु तेषां गति रस्ति नास्ति वेति संदिग्धम् तत्र मंदोच्च पातानां गतिरस्ति चंद्र मंदोच्च पातवदित्यनु मानेन सिद्धा । ' (गोलबंध श्लोक)** प्रत्यक्ष वेध द्वारा तात्कालिक उच्च और पात का शोध पूर्वाचार्योंने लगा लिया है। और वह इतना सूक्ष्म है कि उपर्युक्त (ई) समाधान का न्यास=(ल) में मंद केंद्र और उच्च का जोड मध्यम रवि है । इनमें कालांतर के अतिरिक्त अंशांतर भी नहीं है। ऐसेही अयनांशांतर+३०'८ कला मात्र–शुद्ध नाक्षत्रमान के सूक्ष्म गणित के तुल्य है । और न्यास=क में देखिये झिटा गणनासे तो करीब ६ अंशों से भी अधिक अंतर होनेसे वह गणना आर्य ग्रंथोंमें आजतक थी ही नहीं. यदि वह प्रचलित होती तो (ख) न्यास के माफक उसका स्वल्पान्तर होना था सो नहीं है । ऐसा देखकर गोविंदरावजी संपूर्ण आर्य ग्रंथकारों के ऊपर बिगड गए हैं । उसी धुन में आपका कहना है कि ' **असें होत असतें तर उच्च व पात यांच्या सूक्ष्म गतींचें अनुमान त्यांनां करितां आलें असतें'** अर्थात् " सूक्ष्म गतिके शोध के बिना उच्च पातों का निश्चय ही नहीं क सकते. "

वाहरे समज और बुद्धिमत्ता की बलिहारी है। स्टेशन पर गाडी आगई ऐसा प्रत्यक्ष देखने वाला कह रहा है. किंतु उस गाडी की गति वह भी सूक्ष्मगति जहां तक देखने वाला नहीं कहे तो "जर गाडी पाहिलीं असती तर त्याची सूक्ष्म गतीचे अनुमान त्याला करितां आले असते परंतु तसेंम्हटले नाहीं म्हणून गाडी आली नाहीं." गाडी आई हम कैसा समझ सकते हैं। यह कथन नाटकी विदूषक से भी कांकणभर अधिक है। दूसरी बलिहारी भा. ज्यो. पृष्ठ २०० में जहां किसने कितने उच्च पात कहे उनकी तुलना करके बताई है वह पृष्ठ तो लिख दिया किंतु पृष्ठ २०८ में:—कागदावरील अंक पाहून तोडानें दोष देणें सोपें आहे परंतु आकाशांत एक विकला समजण्यास सांप्रतच्या सूक्ष्मयंत्रानिहीं किती प्रयासें पडतात हें ज्यास माहित आहे. तो तसा दोष देणार नाहीं। उच्चें आणि पात यांची गति फार सूक्ष्म आहे इतकें आमच्या ग्रंथकारांच्या लक्षांत आलें होते हा आपण त्यांचा गुण घेतला पाहिजे." तो ऐसा लिखा होने से लेख का भँडाफोड होजायगा इस भीति से यह पृष्ठ लिखा नहीं दिखता है। किंतु जैसे ज्योतिर्गणित (प्र. ग. अ. ३) कोष्टक ११ और (पृ. २१५ में) केंद्रभगण दिनों के वर्षगण से (नीच+मध्यम केंद्र =) मध्यमग्रह बनते हैं। ठीक उसी प्रकार (नाक्षत्र से ग्रंथोक्त का अंतर + केंद्रान्तर =) मध्यमग्रह (रिपोर्ट पृ. ९८-९९) बनते हैं। एवं (पृ १०१) अयन वर्ष गति = (नाक्षत्र गति + केंद्रीय गति) बनती है सो ही शुद्ध है।

नाक्षत्र वर्ष के अन्यत्र भी नाक्षत्र अयनगति लेने में विजातीय गुणन के तुल्य अशुद्धफल मिलता है। इससे छायार्क करणागतांतर की एकवाक्यता कैसे मिल सकती है। यह कुछ गोविन्दरावजी को समझा ही नहीं है. क्योंकि समझता तो ग्रंथोक्त अयनवर्ष गति १ कला को अशुद्ध कह नहीं सकते थे। आपके ही लिखे हुए मुंजालके उदाहरण को देखिये (भा. ज्यो. पृ. ३३०) लघुमानस ग्रंथ में अयन भगणाः कल्पे १९९६६९ कलियुगारंभ (शक पूर्व ३१७९ वर्ष) में संपात का चक्र शुद्ध भोग २९९° । ३७' । ४०·८" था। उसमें अयन वर्ष गति ५९·"९००७ मिला देने पर (वर्तमान कालिक) अयनांश होते हैं। जैसे वर्तमान शक में (१८५१+३१७९=) ५०३०×५९·९००७= ८३° । ४१' । ४०·"५ यह युक्त कर देने पर सांप्रत में अयनांश २३° । १९' । २१·३" (मुंजालोक्त मेषार्क से सम्पातांतर रूप) आते हैं यह चैत्री अयनांश २२° । ५१' । १५' से सिर्फ +२८·१ कलान्तरित ही होने से स्वल्पान्तर से यह नाक्षत्र मान से शुद्ध हैं। झीटा गणना से तो +४·४३७ अंशों का अंतर होने से वह कोई भी शास्त्रीय पद्धति से युक्त नहीं होते हैं। और इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुंजालने अपने समय के छायार्क करणागत के अंतरानुसार अयनांश ६ । ५० लाने के लिये कल्पादि को शून्यायनांश वर्षमान कर अयनगति को भगण द्वारा कहकर अयनांशों का साधन किया है। नकि इसमें कहीं शाके

४४४ वगैरे शून्यायनांश वर्ष का उल्लेख किया है। वरना मुंजालने अपने स्वयं वेध के बलपर कहा है कि "**परिसरतां गगनसदां चलनं किंचिद् भवेदपमे ॥ तद्भगणाः कल्पे स्युर्गोरसरसगोऽकचंद्रमिताः** ॥ (सि. शि. गोल ८. २९७) 'ग्रहों की वामगति को प्रत्यक्ष देखकर कल्प में उक्त भगण निश्चित किये हैं। इसके संबंध में (भा. ज्यो. पृ. ३१४) दीक्षित कहते हैं कि; '**अयनगती चा स्पष्ट उल्लेख मुंजालाच्या पूर्वींच्या कोणत्याही उपलब्ध पौरुष ग्रंथांत नाहीं ही गोष्ट फार महत्वाची आहे ॥ मुंजाल हा एक विलक्षण शोधक आणि कल्पक होऊन गेला असें दिसतें .** ' ऐसा होते हुए गोविंदरावजी के " शून्यायनांश वर्षावरून व त्यांच्या अयनगति (१ कला) वरून ते काढिले आहेत. " " सर्व ग्रंथ कारांनीं ४३८ ते ४५० पर्यंत शून्यायनांश वर्ष मानिलें आहे. " ऐसे उटपटांग कथन कहां तक सत्य माने जासकते हैं. । कदापि नहीं । क्योंकि जबकि मुंजाल के समय शक ८५४) के इधर ही अयनगति का स्पष्ट उल्लेख मिलता है तब उक्त शून्यायनांश वर्ष में तो पूरा शोधही नहीं लगा था । तब, वह परंपरा संपूर्ण ग्रंथकारों के समय; कैसे चल सकती है । इसका सूज्ञ पाठकों ने ही निर्णय कर लेना चाहिये ।

परीक्षण ८ (ऊ)

" आपण घटकाभर असें मानिलें कि सर्वांत पहिला मुंजाल याने खुद्द वेध करून शक ८५४ या वर्षी अयनांश ६।५४ घेतले तर पुढें ग्रहलाघवकारा सारख्या आकाश पाहाणाराला ते $(\frac{१४४२-८५४}{१}) \times \frac{५०२}{६०\times६०}$ =८° । १२' । ५२" + ६° । ५४=१५° ६' । ५२" दिसावयास पाहिजे होते ते त्याने १६° । ३८' लिहिले आहेत. अर्थात् ते दृक्प्रत्यय वरून लिहिलेले अयनांश नव्हेत. "

समाधान ८ (ऊ)

मुंजालोक्त अयनगति केंद्रीय वर्षमान साधित होने से प्रतिवर्ष १ कला कहे गई है। और ग्रहलाघवकार का भी वर्षमान ३६५ । १५ । ३१ । ३० केंद्रीय है। इसलिये १४४२–८५४=५८८ $\times \frac{१}{६०}$ =९° । ४८'+६° । ५०'=१६° । ३८' इस प्रकार (सजातीय वर्षमान और अयनगति से) ग्रहलाघवकारने वेधतुल्य अयनांश ही कहे हैं किंतु जिसने जन्मभर में आकाश के तर्फ देखाही नहीं केवल नाविक पंचांग की नकल करने वालेको झीटाके विरूद्ध अयनांश दृक्प्रत्यय युक्त कैंसे दिख सकते हैं.

परीक्षण ८ (ऋ)

' गणेश दैवज्ञाचा पिता केशव हा तर फार वेधकुशल म्हणून त्याची ख्याती आहे (भा. ज्यो. पृ. २५९) परंतु त्याने ही ग्र. ला. प्रमाणेंच अयनांश मानिले आहेत. '

समाधान ८ (ऋ)

ज्यो. वि. केशव दैवज्ञ का वर्णन प्रस्तुत रिपोर्ट (पृ. ६-८) में किया गया है । आपने दृक्प्रत्यय के अनुसार (रिपोर्ट पृष्ठ १० के छ. ज. कथन में) मध्यम चंद्र और चंद्रोच्च को कहने से केंद्रीयमान को स्पष्ट कर दिया है । तथा शाके १४१८ में बनाए हुए ग्रह कौतुक में तत्कालीन अयनांश १६° । १४' कहे हैं । सो तत्कालीन वर्षमान से बिलकुल शुद्ध हैं । किंतु यह भी झीटा के विरुद्ध होनें से गोविंदरावजीने अवेधज्ञ के नंबर ३ में इनको भी ले लिया है । क्योंकि जब कोई एक भी आर्य पुरुष ने झीटा यनांश का समर्थन नहीं किया है तब उन नामों में इनका नाम कहां से बच सकता है ।

परीक्षण ८ (ऌ)

भास्कराचार्याविषयीं तर असें म्हणता येतें कीं त्यानीं आपल्या वेळचे अयनांश पाहून लिहिलेलें नाहींत. कारण 'वेधानें साध्य अशा गोष्टीं संबंधानें भास्कराचार्यांच्या सिद्धांतांत नवीन असें काहीं नाहीं, परंतु केवळ विचार साध्य अशा ज्ञानानें भास्कराचार्यांचा ग्रंथ भरलेला आहे, ' (भा. ज्यो. पृ. २५० पहा) शिवाय मी प्रत्यक्ष वेधानें पाहून अयनांश ठरविले असें भास्कराचार्य म्हणत ही नाहींत. " यदार्येऽशा निपुणै रुपलभ्यन्ते तदासएव क्रांतिपातः " हा सर्व साधारण नियम आहे. भास्कराचार्यांनीं प्रत्यक्ष पाहून अयनांश ठरविले असते तर तसे त्यानीं अवश्य लिहिलें असतें. पात वगैरेची गति पुढें ब्रम्हगुप्ता प्रमाणें महाबुद्धीमान् प्रत्यक्ष वेध घेऊन त्रैराशिकानें ठरवितील असे त्याच टीकेंत पुढें लिहिले आहे. असो. ज्यांनीं ज्यांनीं काहीं नियत अयनांश लिहिले आहेत ते प्रत्यक्ष पाहून लिहिलेले आहेत हें खरें नाहीं. परंपरेने आलें तें लिहिलें यांत शंका नाहीं.

समाधान ८ (ऌ)

भास्कराचार्य ने सि. शि. के (पृष्ट ३८७) गोलाध्याये प्रश्नाध्याय श्लो. ५४ में:—"युक्तायनांशोंश शतं १०० शशीचे, दशीति ८० रर्कों द्विशति २०० विपातः ॥ चंद्रस्तदानींवद पातम्. " ऐसा तथा टीकामें 'नवभागाधिकं राशि द्वयं रविः २।९ भागोनं त्रिभंशशि २।२९ एकविंशति भागाधिकं त्रिभंपातः ३।२१ एवं युक्तायनांशोंशशतं शशी ३।१० अशीतिरर्कः २।२० अंश द्विशती सपातः ६।२० अत्रपातः३।२१ चं २।२९ अतोंशद्विशती सपात चंद्रो २००=६।२० भवति ' ' यदाकिल का दशा ११ यनांशास्तदा ' और ऐसा पाताधिकार (पृ. २२८) में लिखा है । आगे इसी प्रश्नाध्याय के श्लोक ५८ में " रसगुण पूर्णमही १०३६ सम शक नृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ॥ रसगुण ३६ वर्षेणमया सिद्धान्त शिरोमणीरचितः ॥ ५८ ॥ " इस प्रकार मूल पाठ में और टीकामें अयनांश ११ स्पष्ट लिख दिये

हैं। और उसी के ४ श्लोक आगे में ग्रंथकारने आपका जन्म समय शक १०३६ और ग्रंथ समाप्ति का समय शक १०७२ लिख दिया है, तथा वेध के संबंध में–"छायातो प्रातोवा भानुः संक्रांति पात एवस्यात्॥ पातो नः स्फुट भानुःस्फुट भानूनो भवेत्पातः।" लिख रहा है। उक्त पाताध्याय (श्लो. २ पृ. २२६) में:– " एवं विध्यता यस्मिन्दिने सम्मक्प्राच्यां रवि रुदितो दृष्टस्तद्विषुवं दिनं तस्मिन्दिने गणितेन स्फुटो रविः कार्यः। तस्य रवेर्मेषा देश्च यदंतरंतेऽयनांशाः। एवं चंद्रस्यापि गोलायनसंधयो वेधेन वेद्याः " ऐसी उपपत्ति बताई है। सो क्या भास्कराचार्य ने इत्यादि अयनांश संबंध का कथन बिना वेधके केवल आंख मीचकर बिना देखे भाले लिख दिया है। समझ में नहीं आनेसे गोविंदरावजी ने लिखदिया होता तो आप लिखते हैं 'भास्कराचार्य के सिद्धान्त में नवीन कुछ नहीं है' इसलिये स्पष्ट होता है यह जानबूझकर दोष लगाना है। भास्कराचार्य के नाविन्य के संबंध में म० म० सुधाकर द्विवेदी अपने बनाए चलन कलन की भूमिका (पृष्ट ५) में लिखते हैं कि; " आर्क मिड्ज की अपेक्षा भास्कराचार्य के ग्रंथ में चलन कलन संबंधि बहुत बातें हैं। निदान भास्कराचार्य के पीछे फिर भारतवर्ष में ऐसा कोई विद्वान् न हुआ जो चलन कलन संबंधि कुछ विशेष लिखा हो। कमलाकर आदि हुये भी तो वे भास्कराचार्य के विशेषों को न समझ उलटा खंडन ही करनेपर तत्पर हुये। जिस समय मैंने भास्कराचार्य के ग्रंथोंको पढा और उसमें चलन कलन संबंधि प्रकाशों को और उनकी उपपत्तियों को देखा तो मुझे यह चिंता उत्पन्न हुई की भास्कराचार्य की लिखी हुयीं उपपातियों से तो भास्कराचार्य के प्रकारों की ठीक सत्यता नहीं उत्पन्न होती। इसलिये वे प्रकार सत्य है वा नहीं। बहुत दिनों के बाद बनारस संस्कृत कालेज के अङ्गलो विभाग में अंग्रेजी भाषा सीखने पर श्रीमान् डाक्तर थीबो साहब महाशय की असीम कृपासे चलन कलन को पढने से जानपडा कि सचमुच भास्कराचार्य के प्रकार सच हैं। तात्कालिकी गति नामक भिन्नगति आदि कई प्रकार भास्कराचार्य ने बनाये हैं। इस प्रकार जिसकी यशोदुंदुभि संसार में गूंज रही है ऐसे विद्वान के ग्रंथ को वेध साध्य नहीं कहकर वेदांत के तुल्य केवल विचार साध्य कहना द्वेषता का द्योतक है। और द्वेष बोले तो यह कि उसने शके १०७२ में अयनांश ८ अंश के अंदर कहना था जोकि हजारों आर्य ग्रंथकारों में से एक तोभी झिटापक्षी (अपवाद के लिये क्यों न हो) मिलजाता. किंतु उसने तो अयनांश ११ कह दिये हैं। केवल अयन की वार्षिक गति के संबंध में " मुंजालाद्यै र्यदयन चलन मुक्तं सएवायं क्रांतिपातः। ते गोंऽगर्तुनन्दगोचंद्रा उत्पद्यन्ते। अथ च येवा तवा भगणा भवन्तु। यदार्येऽशानिपुणै रुपलभ्यांतेतदा सएव क्रांतिपात इत्यर्थः। (गो. श्लो. १७-१९ और टीका देखो) ऐसा कहा है कि " चाहे जो भगण (कल्प में अयन के होनेवाले राशिचक्र के भ्रमण की संख्या) हों वेधज्ञ को वेध द्वारा जितने अंश उपलब्ध हों उस समय वही अंश समझें " इसमें जो भगणों के संबंध में कहा है। यही भगण; अयनकी कल्पगति

रूप हैं उसी से वर्षगति आसकती है। भास्कराचार्य ने जैसे सि. में, 'युक्तायनांशोंश' इस श्लोक से अयनांश ११ कहे हैं। वैसे करण कुतूहल में 'कलान्विहायात्रभवा एवोक्ताः' कलाओं को छोडकर" ही कहे गये हैं। केवल अयनगति मुंजाल की ही कही मानी है भिन्न गति कही नहीं। इससे गोविंदरावजी कथन असत्य एवं भ्रांत कथन के तुल्य है।

परीक्षण ८ (ए)

'ज्यांनी ज्यांनी कांहीं नियत अयनांश लिहिले आहेत ते प्रत्यक्ष पाहून लिहिले आहेत हे खरे नाहीं. परंपरे ने आले ते लिहिले यांत शंका नाहीं.'

समाधान ८ (ए)

जिस उद्देश्य को लेकर गोविंदरावजी परंपरा बतला रहे हैं; उस उद्देश के उक्त कथन सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि परंपरा भूतकालिन हुआ करती है न कि भविष्य में होनेवाली बात। और बिना कोई प्रमाण के बताए यह गोविंदरावजी का कथन कैसा माना जा सकता है।

परीक्षण ८ (ऐ).

याचें एक ढळढळीत उदाहरण प्रौढ मनोरमामध्यें सांपडते. ही टीका केशवी जातक पद्धति वरील दिवाकर दैवज्ञाने शके १५४८ मध्यें पूर्ण केली आहे. पहिल्याच श्लोकावरील टीकेच्या शेवटीं शेवटीं (काशी येथें छापलेल्या पुस्तकाचें पृ. ११) " भूनेत्र तिथ्युन्मिते १५२१ शालिवाहन शकयात वर्ष गणे ते (अयनांशाः) चसांप्रतं सार्ध षोडशायनांशाः " असें लिहिलें आहे. याचे पूर्वीं शके १४४२ मध्यें ग्र. ला. प्रमाणें ते १६।३८ येतात हें स्पष्टच आहे तेव्हां ७९ वर्षांत अयनांश ८ कला मागें हटले असें होतें। प्रत्यक्ष पाहून अयनांश लिहिले असते तर हा अनवस्था प्रसंग आला नसता.

समाधान ८ (ऐ)

जब कोई भी प्रकार से अपना प्रतिपाद्य विषय समर्थित नहीं हो सकता उस समय मनुष्य निराधारता से घबराकर वक्तव्य प्रमाण की संगति एवं योग्यता के तर्फ बिलकुल ध्यान नहीं देकर केवल विरुद्ध पक्षके तनिक से विसंवाद को बतलाने की धुनमें कुछतोभी बतलाने लगता है तब उसे यह भान नहीं रहता है कि यह मेराही वक्तव्य मेरेही प्रतिपाद्य विषय के कितना विरुद्ध है।

ठीक इसी तरह प्रस्तुत परीक्षण में स्वयं प्रिंसिपल आपटे साहेब की परीक्षा होगई है। क्यौंकि पूना रिपोर्ट में आपही के बताए हुए जातकार्णव के प्रमाण से भी यही अयनांश १६°।३०′ सिद्ध होकर; आपका बताया हुआ उक्त श्लोक का अर्थ और तदनुसार शाके १८४८ के बताए हुए १९ अयनांश गलत सिद्ध होजाते हैं; इतनाही नहीं तो आपने सिद्धान्त और चैत्रीय पक्षमें जितना विसंवाद बतलाना चाहाथा वह बात इससे सिद्ध न होकर उसकी अपेक्षा झीटागणनामे ही द्विगुण से भी अधिक अंतर होजाने से स्वयं झीटा गणना ही असत्य व निरर्थक सिद्ध होजाती है!! जैसाकि "शाकं १९२१ एकाक्षिवेदो ४२१ नं ११०० द्विः कृत्वा (द्विधास्थाप्य) दशभि र्हरेत् $\frac{११००}{१०}$ ॥ लब्धं ११० ही नंच तत्रैव ११००−११०=९९० षष्ट्या ६० साश्वायनांशकाः १६°।३०′॥१॥" इस तरह प्रौढ मनोरमा के उदाहरण में कहे हुए अयनांश जातक ग्रंथोक्त योग्यता के मानसे बराबर थे ऐसा सिद्ध होगया है। तब शके १८४८ के अयनांश = $१८४८−४२१=\frac{१४२७}{१०}−१४२.७=\frac{१२८४.३}{१०}$ = २१°।२४′.३ (जातक ग्रंथोक्त योग्यता के तुल्य) आते हैं। इससे पूना रिपोर्ट (पृष्ठ २०७.८) में आपका बताया हुआ "द्विःकृत्वा" का "बाकीची दुप्पट करून" (द्विगुणं कृत्वा) अर्थ गलत सिद्ध होकर "द्विष्टं कृत्वा=द्विधास्थाप्य" ऐसा व्युत्पत्तियुक्त और उपयोजित अर्थ सिद्ध होगयाहै। तदनुसार "**शके १८४८ चे प्रारंभीं १९°।२′।९" इतके अयनांश येतात**" यह अयनांश भी गलत सिद्ध होगये हैं। अतएव आपकाही बताया हुआ उदाहरण इस प्रकार आपकेही विरुद्ध जाना प्रि. साहब बहादुर (के प्रतिपादन शैली) की अर्थात् परिक्षण की परीक्षा हो जाना आश्चर्य है।

प्रस्तुत अयनांश साधन के लिये गणितन्यास.

चैत्रीय गणना से.	अब्दप.			तिथि.	अयनांश.			पंचांगोक्त मिति.	इसवी सन १५९९	
विवरण.	वार	घटी	पल	शुद्धि.	अंश.	कला.	विकला	शाके १५२०-१५२१	तारीख	मास.
शुद्ध नाक्षत्र मध्यम मेषार्क	०	३२	३७	१५.३६	१८	१४	५७	चैत्र(वै.)बदि १ शनिवार	१०	अप्रेल
मंद केंद्रीय मेषार्क	६	३६	४५	१४.४१	१७	२०	२	चैत्र शुद्ध १५ शुक्रवार	९	अप्रेल
स्पष्ट मेषार्क	५	३७	४५	१३.४१	१८	१४	५७	चैत्र शुद्ध १४ गुरुवार	८	अप्रेल
मध्यम सायन मेषार्क	३	१	४१	२६.५५	०	०	०	फाल्गुन कृष्ण १२ भोमे	२३	मार्च
स्पष्ट सायन मेषार्क	१	६	४९	२५.००	०	०	०	फाल्गुन बदि ११ रविवार	२१	मार्च

जातक ग्रंथोक्त स्थूलमान की सूक्ष्म गणितागत से तुलना.

(क) शुद्ध नाक्षत्र गणना से	अयनांश	१८°।१९′	जातकार्णवोक्त से	अंतर	+१°।४५′
(ख) १५२१–४४४ = $\frac{१०७७}{६०}$	,,	१७।५७	,,	,,	+१।२७
(ग) शुद्ध मंद केंद्रीयमान से	,,	१७।२०	,,	,,	+०।५०
(घ) जातकार्णवोक्त पद्धति से	,,	१६।३०	,,	,,	०।०
(ङ) झीटा पिशियम गणना से	,,	१४।१७	,,	,,	–२।१३

उपर्युक्त समीकरण से आपको मालूम होगा कि [घ] अयनांशों में [ख क] मान से [१°।२७′] और [१°।४५′] अंतर है और [ग] मान से सिर्फ ५० कला मात्र अंतर है सो सूर्य सिद्धान्तीय वर्षमान के तुल्य होने से वह उस गणना से शुद्ध है। और उक्त अयनांशों में दिनों का अंतर नहीं है किंतु [ङ] गणना से तो सवा दो दिन का फर्क है। इसलिये प्रौढ मनोरमा प्रोक्त उदाहरण के अयनांश यद्यपि स्थूल हैं तो भी सिद्धांतीय अयनांशों से जैसे मिलते हुए हैं ऐसे झीटा गणना से मिलते हुए नहीं हैं। इसलिये इनसे झीटा गणना का समर्थन नहीं होकर वस्तुत: यह प्रमाण उसके विरुद्ध है ! अतएव झीटा गणना बिलकुल असत्य और प्रस्तुत परीक्षण निरर्थक है ऐसा सिद्ध होता है।

आपने प्रस्तुत परीक्षण में ग्रह लाघव करण ग्रंथोक्त अयनांशों से इस जातक ग्रंथकी टीका में लिखे हुए स्थूल अयनांशों की तुलना करते हुए अनवस्था प्रसंग बतलाने का प्रयत्न किया है। सो व्यर्थ है। क्योंकि यदि ऐसा सिद्धान्त या करण ग्रंथ के आपस में सजातीय गणित से अयनांशों का विसंवाद पाया जाता तो उन्हें छोडकर आपको इस तरह एक जातक ग्रंथ के टीकाकार की शरण नहीं लेनी पडती.

इसी जातक पद्धति की और भी बहुत सी टीका उपलब्ध हैं उनमें ग्रहलाघवोक्त पद्धति के अनुसार ही अयनांश लिखे गए हैं। जैसे (१) बल्लालसुत गोविंदात्मज नारायणकृत टीका के उदाहरण (लिखी हुई पुस्तक के पृष्ठ ३-४) में शाके १५०९ के अयनांश १७।४५ लिखे हैं। (२) उमाशंकर मिश्रकृत सुबोधिनी टीका के उदाहरण (काशी की छपी हुई पुस्तक के पृष्ठ १०) में शाके १७७९ के अयनांश २२।१५ लिखे हैं। यह दोनों ग्रहलाघवोक्त पद्धति के आधार से इस प्रकार बनाये गये हैं सो—

१५०९–४४४=१०६५÷६०=१७।४५ }
१७७९–४४४=१३३५÷६०=२२।१५ } केंद्रीय वर्षमान के तुल्य शुद्ध हैं.

किंतु इतने पर से पूर्वोक्त जातकार्णवानुसारी और ग्रहलाघवानुसारी के आपस में विसंवाद बता नहीं सकते क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि सिद्धान्त और करण ग्रंथकारों ने अपने दृक्प्रत्यय (वेधसिद्धमान) से जो अयनांश निश्चित किये हैं वह उनके काल में बराबर थे। लेकिन जिस भिन्न २ वर्षमान के अनुसार अयनगति मानकर आगे जातकादि ग्रंथकारों ने या टीकाकारों ने उदाहरण में अयनांश कहे हैं। वह प्रत्यक्ष देखकर किये न होकर भिन्न २ वर्षमान साधित ग्रहों के लिये शुद्ध हैं। अतएव उनकी भिन्नता से सिद्धान्त या करण ग्रंथ में विसंवाद बताना अयुक्त है। प्रस्तुत में 'जातक ग्रंथकारों ने भी वेध लेकर अयनांशों का निश्चय किया है' ऐसा कोई भी विधान में हमने कहा नहीं है। वरना आगे के विधान में हमने स्पष्ट कह दिया है कि जातक ग्रंथोक्त कई बातें गोल गणित की तुलना में बहुत स्थूल हैं। इतने पर से 'कुल भारतीय ग्रंथकारों ने प्रत्यक्ष देखकर अयनांश लिखे नहीं' ऐसा कह देना छोटा मुंह बडी बात के तुल्य बिलकुल अयोग्य है।

परीक्षण ८ (ओ)

अयनांश प्रत्यक्ष पाहून कसे ठरवावें हे व्यवहारिक रितीनें लिहिलेलें कोठें आढळत नाहीं. करणांतच जर अशुद्धि असली तर ती "छायाकोत्कारणागते" या रीतीत अशरांशा मध्यें ही चुकेल हें कबूल करणें भाग आहे. ही रीति सोडून दुसऱ्या कोणत्या तरी रीतीनें अयनांश वेधानें ठरविणें फार कठीण आहे. ते काम फारच थोडेच ज्योतिश करूं शकतील त्यांतून दीनानाथजी समजतात त्या प्रमाणें जर भास्कराचार्यादिकांनीं आपल्या शकाचें अयनांश हि लि लेले आहेत तरते खुद्द पाहून लिहिले हें अशक्यच आहे. शून्यायनांश वर्षे ठरविण्या संबंधी दीक्षित ही लिहितात (भा. ज्यो. ३३७) कीं "निरनिराळ्या ग्रंथांतून त्यांचे स्पष्ट मेष संक्रमण आणि सायन मेष संक्रमण हीं एकाकाळीं येण्याचीं जीं वर्षे तीं शून्यायनांश वर्षे होत या प्रमाणेंच वरील वर्षे काढिलीं आहेत". ब्रम्हगुप्ताच्या वेध कर्तृत्वाबद्दल त्याची प्रशंसाच केलेली आहे (भा. ज्यो. पृ. २२०) त्याच्या सिद्धान्ता प्रमाणें शक ५०९ हा शून्यायनांश काल येतो.

समाधान ८ (ओ)

इस विषय का सिद्धांतिक रीति से विस्तृत उत्तर प्रस्तुत रिपोर्ट की भूमिका (पृ. ६,९) में और रिपोर्ट (पृ. ९४-१०५) में दिया गया है। और '**निरनिराळ्या ग्रंथातून त्यांचे स्पष्ट मेष संक्रमण आणि सायन मेष संक्रमण हीं एकाकाळीं येण्याचीं जीं वर्षे तीं शून्यायनांश वर्षे होत या प्रमाणें वरील वर्षे काढिलीं आहेत.**' इस प्रकार के परीक्षण मे लिखे हुए दीक्षित के कथन से ही स्पष्ट हो जाता है कि 'शून्यायनांश वर्षों के परंपरानुसार बिना देखे भाले अपने अपने काल में अयनांश कहे न होकर उन ग्रंथकारों ने प्रत्यक्ष

देखकर अपने वर्तमान काल के अयनांश निश्चित किये हैं। और उनके वर्षमान के अनुसार जो अयनगति प्रति वर्ष १ कला मित आती है; तदनुसार शून्यायनांश वर्ष कहे हैं। सो मंद केंद्रीय मानके हैं। इस संबंधका विवेचन आगे के विधानों (११ से २५ पर्यंत) मेंही विस्तृत रीति से किया गया है। उसका सारांश ये है कि करणागत में उतनी स्थूलता नहीं है कि जितनी प्रिं० गोविन्दरावजी बता रहे हैं। और वह गणित द्वारा कैसे निकल सकती है सो क्रमशः आगे के विधानों में बताया गया है। ब्रह्मगुप्त के खंडखाद्य में लिखे हुए क्षेपकों से (भा. ज्यो. पृ. २२३) शाके ५८७ में अमांत चैत्र बदि ३० शनिवार को इष्ट घटी २६।४६ पर और सूर्य सिद्धांत से घ. १२ प. ९ पर मेष संक्रमण हुआ है। और सायन मेष संक्रमण चैत्र बदि ११ सोमवार को घ. ५३ प. १ पर हुआ है। इससे अयनांश ४°।१९'।२५" निश्चित होते हैं। इसीसे अयन वर्ष गति १ कलामित मानकर शून्यायनांश शक वर्ष ३३२ जोकि दामोदरीय भट्ट तुल्य (भा. ज्यो. पृ. ३३५) के निकट में आते हैं। और इसी को शुद्ध नाक्षत्र गति का भाग देने पर शाके २८२ और मंदफल के अन्तर को निकाल डालने पर शाके २१३ शून्यायनांश वर्ष आते हैं। किंतु प्रिं० साहब के कहे प्रकार इससे शून्यायनांश शक वर्ष ५०९ आते नहीं हैं। सारांश परीक्षण में लिखी हुई कुल बातें बिना गणित के देख भले अटसंट लिखी गई हैं। सो असत्य हैं अतएव त्याज्य हैं।

विधान ९

उनके (आर्य ग्रंथकारों के) कहे हुए अयनगति के आधारपर शून्यायनांश वर्ष आदि को नाक्षत्रवर्ष मानना अयोग्य है। क्योंकि वह वर्षमान मंद केंद्रीय के बराबर कहे जानेसे उसी मानसे वह ठीक ठीक मिलते हैं। नाक्षत्र से मिलाने के लिये बीज संस्कार करके उनके द्वारा शून्यायनांश वर्षों का निर्णय कर लेना चाहिये।

परीक्षण ९

या विधानाचा हेतू ध्यानांत येत नाहीं. रैवत किंवा चैत्रपक्षा संबंधीं यानें कांहीं विशेष गोष्ट सिद्ध होते असें नाहीं. शून्यायनांश वर्षाचा व सिद्धान्तोक्त नक्षत्रस्फुट ध्रुवाचा फार निकट संबंध आहे हें पूर्वी दाखविलेंच आहे. सिद्धान्तोक्त वर्षमान हें मंदकेंद्रीय वर्ष आहे असें सिद्धांतकारांच्या दृष्टीनें म्हणता येत नाहीं. व तें खरें नाहीं. कारण त्यांनीं उच्च भगण निराळे दिले आहेत. त्यांनीं दिलेलीं वर्षमानें नाक्षत्रच होत ; ही त्यांची समज गृहीत धरूनच आपण चालले पाहिजे.

समाधान ९

उक्त परीक्षण से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत विषय को प्रि. गोविंदरावजी नें देखा [पढा] नहीं है। इसलिये अभी वह पढें कि केंद्रीय सौरवर्ष और नाक्षत्रिक सौरवर्ष के परिमाण किस आधार से और किस गणित से ज्ञात हो सकते हैं। इस विषय में श्रीमान् से अनुरोध करताहूं कि ज्योतिर्गणित के [पृ. २१५] कोष्टक ६-७ में केंद्रीय वर्षमान और (पृ. २१९) नाक्षत्र वर्षमान (भगणकाल) को तथा [प्रस्तुत रिपोर्ट के (पृ. ९८-१०२) कोष्टक १-३ को अवश्य] पढेंगे तो आगे आप ऐसा असंबद्ध व निरुपयोगी लेख नहीं लिखेंगे। क्योंकि एक उच्च भगण कह गये हैं इतने पर से सिद्धान्तोक्त वर्षमान नाक्षत्र नहीं हो सकते. इसलिये शुद्ध गणित की कसौटीपर ग्रंथोक्त परिमाणों के भावको समझ लेना चाहिये। इनकी दृष्टि उनकी दृष्टि इत्यादि कथन से काम नहीं चल सकता है।

विधान १०

शून्यायनांश के वर्षों के संबंध में यद्यपि दीक्षितजी (भा. ज्यो. पृ. ३३५ में) सूर्यादि ५ सिद्धान्त और सिद्धान्त तत्वविवेक का शाके ४२१, मुंजालका ४४९, राजमृगांक, करण प्रकाश, करण कुतूहल इत्यादि का ४४५, करण कमल मार्तंड, ग्रहलाघवादि का ४४४, भास्वती करण का ४५०, करणोत्तम का ४३८, और दामोदरीय भट्टतुल्य का ३४२ शक वर्ष लिखे हैं। वह ग्रंथोक्त स्पष्ट सूर्य के अनुसार हैं। उच्च की स्थिर प्रायगति और परमफल की भिन्नता के कारण जबकि सूक्ष्ममान से क्यों न हो इनके वर्षमान ही भिन्न भिन्न —(रिपोर्ट पृष्ट १०४ कोष्टक ४ देखिये) आते हैं। तब विभिन्न केंद्रीय वर्षमान से और परमफल के ह्रास आदि के संस्कार किये बिना ही वहां प्राचीन मंदफल से साधित स्पष्ट सूर्य का विषुवदिनांतर काल साधित अयनांशों में भिन्नता आजाना स्वाभाविक है। इसीलिये गणेशदैवज्ञादि ने तिथिचिंतामणि आदि सारणी ग्रंथों में जैसे अब्दपका यानी मध्यमगति का उपयोग किया है। वैसे सूर्यसिद्धान्तीय मध्यमरवि और मध्यमसायन रवि के अंतर रूप (शाके १४४२ में) अयनांश १६°। ३८' निश्चित कर अयनवर्ष गति १ कला के अनुसार शून्यायनांश वर्ष ४४४ कहा है। ऐसा ही मुंजाल आदि ने कल्पभगणों द्वारा अयनगति को कही है। यह सब मध्यम मान को पुष्ट करते हैं। यद्यपि यह भगण रविभगणानुसारी सावनदिनात्मक केंद्रीय भागानुसार कहे जाने के कारण शुद्धनाक्षत्र मानसे इनमें केंद्रांतर व अयनांतर (रिपोर्ट पृ. १०० कोष्टक २ देखिये) तो रहता ही हैं। किंतु वह एक निश्चित मान होने से गणित द्वारा उस अंतर को अलग २ करदेनेपर उनकी शुद्ध नाक्षत्र मानसे एक वाक्यता होसकती है।

विधान ११

प्राचीन काल में नक्षत्रों को प्रत्यक्ष देखकर उनके अंतर द्वारा काल का नाप किया जाता था (रि. पृ. १०२ की टिप्पणी तथा भूमी का पृ.७-९ देखो) आगे सिद्धान्त काल में जो भी केंद्रीय वर्षमान लेने से दो तीन अंश तक उच्च बढ जाने तक उसी उच्च को स्थिर माने हुए लेते चले जाते थे। किंतु जब नक्षत्रों की अश्वमुखादि आकृतियों से और भ ध्रुवकों के भोगसे अंतर हुआ देख कर आगे के ग्रंथकार उच्चको बढाकर फिरसे नाक्षत्रमान के तुल्य कर लेते थे। क्योंकि उस समय शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान की गति और उच्चगति इनका ठीक ठीक शोध नहीं लगा था। लेकिन अब हमें शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान, उच्चगति और अयनगति सूक्ष्ममान की ज्ञात होगई हैं तब उसके गणितद्वारा हमें यह ज्ञात हो सकता है कि सिद्धांन्त ग्रंथों के वर्षमान में केंद्रीय कितना भाग मिश्रित हुयेला है। तोभी हम उससे गणितशुद्ध केंद्रायनगति निश्चित कर सकते हैं। ऐसा करने से सिद्धान्त ग्रंथों के वर्षमान के मूलांकों के अनुसार इनके ६ प्रकार निश्चित होते हैं। (१) शुद्ध मंद केंद्र, (२) सूर्य सिद्धान्त, (३) आर्यसिद्धान्त, (४) ब्रम्हसिद्धान्त, (५) शुद्धनाक्षत्र और (६) शुद्ध-सांपातिक (सायन) और इनके गणितद्वारा जो उच्चगति, अयनगति और शुद्धनाक्षत्रसौर-मानांतर निश्चित होते हैं सो [रिपोर्ट पृ. १०० में अलग २ बताए गए हैं तथा] आगे के विधान में स्पष्ट करके पृथक् पृथक् बताते हैं।

विधान १२.

अयन, और केंद्रगति तथा शुद्ध नाक्षत्रमान से अंतरदर्शक (समीकरणरूप) कोष्टकः—

संकेत के अक्षर.	संकेताक्षर.	क	ख	ग	घ
	सिद्धांत और शुद्ध परिमाणों क नाम.	वर्षमान के दिन यानी सौर भगण काल.	अयनगति दिन यानी सांपातिक से अंतर.	केंद्रगति दिन यानी केंद्रीय वर्ष से अंतर.	नाक्षत्र बीज यानी नाक्षत्र से अंतर दिन.
	सिद्धांत ग्रंथ	मूलांक दिन	– गति दिन	+ गति दिन	संस्कार दिन
अ	शुद्ध मंद केंद्र	३६५·२५९७१२२४	·०१७४९५५८	·००००००००	+ ००३३३७८९
इ	सूर्य सिद्धांत	३६५·२५८७५६४८	·०१६५३९८२	·०० ९५५७६	+·००२३८२०६
उ	आर्य सिद्धांत	३६५·२५८६८०५५	·०१६४८३८९	·००१०३१३९	+ ००२३०६१३
ए	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत	३६५·२५८४३७५०	·०१६२२०८४	·००१२७४७४	+ ००२०६३०८
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	३६५·२५६३७४१२	·०१४१५७७६	·००३३३७८२	+·००००००००
ओ	शुद्ध सांपातिक	३६५·२४२२१६६६	·००००००००	·०१७४९५५८	+·०१४१५७७६

उपर्युक्त कोष्टक में के (अ)−(ओ) के अंतर द्वारा (ख)= अयनगति और (ग) =केंद्रगति बताई गई है। इससे शुद्ध नाक्षत्र वर्ष परिमाण के लिये (घ)=बीज, तथा उससे (ग)+(घ)= शुद्ध केंद्र गति एवं (ख)+(घ)= शुद्ध अयनगति (इ, उ, ए, ऐ) परिमाणों की ज्ञात हो जाती है; अतएव सिद्धान्त ग्रंथोक्त परिमाणों को कदम्बाभिमुख सदा स्थिरप्राय नक्षत्रों से एवं नक्षत्रों से निश्चित चैत्रादि मासों से तुलना करने के लिये (शुद्ध नाक्षत्र मान से कालान्तर रूप) (घ) संस्कार करना चाहिये, ताकि इस प्रकार शुद्ध परिमाणों से सिद्धांत ग्रंथोक्त अयनांशादि परिमाणों की एक वाक्यता हो जाती है।

विधान १३

स्पष्टता पूर्वक समझने के लिये एक उदाहरण करके बतता हूं

केंद्रीयमान से अयनगति लाने के लिये दिनात्मक न्यास= १

विवरण.	सूर्य सिद्धान्त.	आर्य सिद्धान्त.	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत.	शुद्ध नाक्षत्रमान.
१: सौरवर्ष में	दिन	दिन	दिन	दिन
शुद्ध केंद्रायनगति.	·०१७४९५५८	·०१७४९५५८	·०१७४९५५८	·०१७४९५५८
−ग्रंथसाधित केंद्रगति	·०००९५५७६	·००१०३१६९	·००१२७४७४	००३३३७८२
=अयन वर्षगति.	·०१६५३९८२	·०१६४६३८९	·०१६२२०८४	·०१४१५७७६

केंद्रीयमान से अयनगति लाने के लिये पलात्मक न्यास= २

१: सौरवर्ष में	पल	पल	पल	पल
शुद्ध केंद्रायनगति	ध्रु. ६१·८४८०	ध्रु. ६१·८४८०	ध्रु. ६१·८४८०	ध्रु. ६१·८४८०
−ग्रंथ साधित केंद्रगति	−३·३११२	−३·३६०६	−४·५२३०	−११·८१२३
=अयन वर्षगति	=५८·४५६८	=५८·१८७४	=५७·३२५०	=५०·२३५८

इसमे ध्रु= स्थिर राशि मानकर शुद्ध केंद्रगति द्वारा, अन्यान्य ग्रंथों की अयनगति बताई गई है। इससे शुद्ध नाक्षत्र वर्ष का काल और शुद्ध अयनगति लाने के लिये (ऐ-क) स्थिर राशि से वर्षगति का कालान्तर और (ऐ−ग) स्थिरराशि मानकर (घ) स, बीज का संस्कार करें। तो ग्रंथोक्त अयनांशों की शुद्ध गणितागत से एक वाक्यता हो जाती है। अतएव सिद्धांत ग्रंथोक्त अयनांश वेध सिद्ध परिमाणों से शुद्ध हैं।

विधान १४

करण ग्रंथों में कही हुई अयन वर्षगति १ कला से केंद्रगति (१.८४८ पलात्मक) होती है। यद्यपि नव्य सूर्यसिद्धांतोक्त कल्पोच्च भगण ३८७ से उच्च वर्षगति ·११७८ पल मात्र आती है। इसीलिये वह " तस्योच्चस्यचलनं वर्षशतेनापिनोपलक्ष्यते. " (सि. शि. म. श्लो. ६ टीका) इस प्रकार के भास्कराचार्य के कथनतुल्य स्थिरप्राय माने गये हैं। किंतु वेदांग ज्योतिष के बाद के संहिता (जातक) ग्रंथों में रविका उच्च १० अंश लिखा है। जोकि शुद्ध उच्चगति से शक पूर्व १९१३२ में इतनाही उच्च था ऐसा गणित से निश्चित होता है। इसके बाद के ग्रंथों में क्रमशः २०।२५ से ७०।७५।७७ उपलब्ध होते हैं। ग्रहलाघवादि ग्रंथकारों ने रवि का उच्च ७८ अंश का माना है और शुद्ध नाक्षत्र गणित द्वारा वर्तमान में ७८°–७९° आता है। तथा हमारे ग्रंथों में ऐसा एकभी प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि चैत्रीय केंद्र से २-३ अंश से अधिक अंतरित हो तब ज्ञात हो जाता है कि रविभगण का आरंभस्थान एक दो अंश आगे बढजाने पर नक्षत्रों से मेल मिलाने के लिये आगे के ग्रंथकार उच्च को भी एक दम उतनाही बढादिया करते थे कि जितना शुद्ध नाक्षत्रमान से आता है। इस विषय के प्रमाण सिद्धान्त सम्राट और सिद्धन्तराज में उपलब्ध होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि पर्याय से क्यों न हो केंद्र गति उतनी ही मानी गई है कि जितनी विधान १३ में बताई गई है। इस केंद्रांतर को निकालने पर शुद्ध नाक्षत्र भाग स्वयं निश्चित हो जाता है।

विधान १५.

अयनांशों के शोधन करने के संबंध में रवि मंदफल का भी विचार करना अवश्य है। ग्रहों की कक्षा कालांतर में धीरे धीरे कम होती जाती है। प्राचीन ग्रंथों में रवि परम फल २°।१०' लिखा है वह अब कम होते होते वर्तमान में १°।५९' हो गया है। इसलिये अब हम सायनस्पष्ट सूर्य से करणागत स्पष्टार्क में मंदफल की भिन्नता के कारण पडे हुए अंतर को गणित से अलग निकाल सकते हैं। किंतु यह अंतर बहुत थोडा है कुछ कलाओं के सिवाय इसके द्वारा अंतर गिरता नहीं है। विशेष फर्क तो केंद्रीय गतिजन्य होने से ग्रंथोक्त अयनांशों की जहां तहां हमने सूक्ष्ममान से एक वाक्यता करके बताई है वहां सिर्फ एक मंद केंद्रीय नाम कहकर ' शुद्ध नाक्षत्र सौर अयनांश=मंदकेंद्रीय+अंतर संस्कार (घ) इस प्रकार समीकरण माना है। सो इसमें बाकी के फलान्तरादि समझ लेना चाहिये।

विधान १६

उपर्युक्त समीकरण के द्वारा तथा ग्रंथोक्त मध्यम सूर्य को सायन मध्यम रविके तुल्य समानता आने के काल को " यंत्रेंद्र मध्योन्नत भागकेभ्योद्देशे निजे योस्तिपरि स्फुटोर्कः ॥ सिद्धान्त युक्त्यापिच साधितोयस्तद्विप्रयोगादयनांश कास्युः ॥ ३३ ॥ " इस सिद्धान्त सम्राट (लिखि त पृ० ४१·१) के अनुसार; अन्य न्य परिमाणों के शून्यायनांश शक वर्ष निश्चित होते हैं। (१) शुद्धमंद केंद्रीय का ९१६, (२) सूर्य सिद्धान्त का ४४२, (३) आर्य सिद्धान्त का ४३६, (४) ब्रम्हगुप्त सिद्धान्त का ४१९, और (५) शुद्ध नाक्षत्र का २१२ शाके है इस तरह-के शक वर्षों से ग्रंथोक्त अयनांशों की भी एक वाक्यता हो जाती है। उदाहरण के लिये १० ग्रंथों के अयनांशों की शुद्ध मान से एक वाक्यता करके बताता हूं।

विधान १७

(१) मुंजालकृत लघुमानस-शाके ८५४ में शुद्ध सूक्ष्म वर्ष गति से मध्यम मेषार्क काल चैत्र बदि (अमांत) २ सोमवार तारीख ३१ मार्च सन ९३२ ई० को घ० ३२ प० ३१ पर और सांपातिक म० मेषार्क काल—चैत्र शुद्ध ८ शनिवार ता० २२ मार्च ९३२ ई० को घ० २८ प० ११ पर हुआ है। इससे अन्य न्य वर्षमान द्वारा (निम्न लिखित) अयनांश आते हैं। उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता इस कोष्टक में लिखे प्रकार होती है।

	मुंजाल के.	अब्दप.			तिथि.	अयनांश.			शाके ८५४.	ईसवी सन ९३२	
	समय में.	वार.	घटी.	पल.	शुद्धि.	अंश.	कला.	विकला.	पंचांगोक्त मिती.	तारीख.	मास.
ऐ	शुद्ध नाक्षत्रमान	२	३२	३१	१६·७३	८	५६	३०	चैत्र(वै.)ब.२सोमवार	३१	मार्च
ए	ब्रह्मगुप्त सि०	०	३५	२४	१४·७९	७	१	५	चैत्र शुद्ध १५शनिवार	२९	,,
ऊ	मुंजालोक्त	०	२४	१०	१४·५४	६	५०	०	चैत्र शुद्ध १५शनिवार	२९	मार्च
उ	आर्य सिद्धांत	०	२१	३६	१४·५१	६	४७	२९	,, ,,	,,	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	०	१७	४२	१४·४५	६	४३	१६	,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सूं० सि०	०	१७	२०	१४·४२	६	४३	१४	,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध केंद्रीय	६	२३	३	१३·९२	५	४१	४६	चैत्र शुद्ध १४शुक्रवार	२८	,,
ओ	शुद्ध संपातिक	०	२८	११	७ ५०	०	०	०	चैत्र शुद्ध८शनिवार	२२	,,

अंकों की तुलना-(०।२८।११) + (१।४।२०) = (२।३२।३१) ऐ अब्दप तुल्य है

मुंजालोक्त अयनांश (ऊ) स्थानीय सिद्धांतोक्त के बराबर हैं। भा. ज्यो. पृ. ३१३ में ' शक ८९४ में अयनांश ६।५० ' लिखे हैं। ग्रंथोक्त रवि भगणारंभ सौर तुल्य तिथि १४.४५ पर होता है। सो मुंजालोक्त अयनांश उक्त सूक्ष्म गणितागत से युक्त एवं बराबर हैं।

विधान १८

(२) द्वितीय आर्य भटीय सिद्धान्त-शाके ८७५ में शुद्ध सूक्ष्म वर्ष गति से मध्यम मेषार्क काल चैत्र शुद्ध ८ शनिवार तारीख ३१ मार्च सन ९५३ ईसवी को घ. ५५ प. ३८ पर और सांपातिक म. मेषार्क काल–फाल्गुन बदि ३० गुरुवार ता. २२ मार्च ९५३ ई. को घ. ३३ प. २२ पर हुआ है। इससे अन्यान्य वर्षमान द्वारा (निम्न लिखित) अयनांश आते हैं। उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता इस कोष्टक में लिखे प्रकार होती है।

विधान १८ प्रांक अक्षर.	आर्य भट के.	अब्दप.			तिथि.	अयनांश.			शाके ८७५ तथा सन् ९५३ ई.		
	समय में.	वा.	घ.	प.	शुद्धि.	अं.	क.	वि.	पंचांगोक्त मिती.	तारीख.	मास.
ऐ	शु. नाक्षत्र	०	५५	२३	८·०४	९	१४	६	चैत्र शुद्ध ८ शनिवार	३१	मार्च
ए	ब्र. गु. सि.	६	१	५	७·१०	७	२१	१५	चैत्र शुद्ध ७ शुक्रवार	३०	,,
उ	आर्य सि.	५	५४	३५	६·८७	७	७	५७	चैत्र शुद्ध ६ गुरुवार	२९	,,
ई	सूर्य सि.	५	४३	४४	६·८१	७	४	९	,, ,,	२९	,,
इ	नव्य सू. सि.	५	४३	२३	६·८०	७	३	४८	,, ,,	२९	,,
अ	शु. केंद्रीय	४	५०	५८	५·९०	६	११	३१	चैत्र शुद्ध ५ बुधवार	२८	,,
ओ	शु. सांपातिक	५	३३	३२	२९·५१	०	०	०	फाल्गुन ३० गुरुवार	२२	,,

वारों से तुलना (५ ३३ ३२) + (२ । २२ । ११) = (० । ५५ । ३३) ऐ अब्दपतुल्य है

द्वितीयार्य सि. के गणित से आर्य भट तुल्य तिथि शुद्धि ६·८७ पर मेष संक्रमण काल आता है। सो सूक्ष्म गणित के तुल्य बराबर है

विधान १९.

(३) राज मृगांक (भोज कृत) शाके ९६४ में मध्यम मेषार्क काल-शुद्ध नाक्षत्र परिमाण से चैत्र शुद्ध ४ शनिवार तारीख २ अप्रेल सन १०४२ ई. को घ. ४४ प.३४ पर। और सांपातिक परिमाण से फाल्गुन (अमांत) बदि शके ८७४) ८ बुधवार ता. २३ मार्च १०४२ ई. को घ. ६ प ४९ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बताई है।

विधान १९ प्रति अक्षर	राजमृगांक के समय में	अब्दप वार	घटी	पल	तिथि शुद्धि	अयनांश अंश	कला	विकला	शाके ९६४ इसवी सन १०४२ मिती	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	०	४४	३४	३.५९	१०	२८	३६	चैत्र शुद्ध ४ शनिवार	२	अप्रेल
ए	ब्रम्हगुप्त सिद्धांत	६	१	४	१.८४	८	४६	३६	,, ३ शुक्रवार	१	,,
ऊ	भोज प्रोक्त	५	५९	४७	१.७१	८	३९	०	,, २ गुरुवार	३१	मार्च
उ	आर्यभ सिद्धांत	५	५२	५३	१.६७	८	३४	३६	,, ,, ,,	३१	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	५	४५	२४	१.६०	८	३१	१०	,, ,, ,,	३१	,,
इ	नव्य सू. सि.	५	४५	६	१.६१	८	३०	५०	,, ,, ,,	३१	,,
अ	शुद्ध केंद्रीय	४	५७	१०	३०.८६	७	४३	३६	,, १ बुधवार	३०	,,
ओ	शुद्ध सांपातिक	४	६	४९	२२.७९	०	०	०	फाल्गुन व. ८ ,,	२३	,,

वारों से तुलना (४।६।४९)+(१०।३७।४७)=(०।४४।३४) 'ऐ' के तुल्य है।

भा. ज्यो. पृ. २३८ से राजमृगांक के सूर्य १०।२८।४९।० चंद्र १०।१९।२।५३ द्वारा फा. ब. ३० करणारंभ में तिथि ०·८०९ से मेषारंभ तिथि १.४ आती है। और उसमें लिखे अयनांश ८।३९ से ति. शु. १.७१ (ऊ) अद्बपादि स्वल्पान्तर से शुद्ध हैं।

विधान २०

(४) 'करण कमल मार्तंड' शाके ९८० में मध्यम मेषार्क काल-शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र बदि ३० शुक्रवार तारीख २ अप्रैल सन १०५८ ई. को घ ५० प. ४७ पर और शुद्ध सांपातिक मान से चैत्र बदि ५ सोमवार (सूर्योदय से) ता. २२ मार्च सन १०५८ को घ. ५९ प. २१ पर हुआ है। इससे अन्यान्य वर्षमान द्वारा (निम्न लिखित) अयनांश आते हैं। उनकी ग्रंथोक्त से एकवाक्यता इस काष्ठक में लिखे प्रकार होती है।

	कमल मार्तंड के	अब्दप			तिथि	अयनांश			शाके ९८० ईसवी सन १०५८		
	समय में	वा	घ	प.	शुद्धि	अं.	क.	वि.	मिती	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	६	५०	४७	३०·५९	१०	४२	०	चैत्र ब. ३० शुक्रवार	२	अप्रैल
ए	ब्रह्म गुप्त सिद्धांत	५	९	११	२८·८७	९	१	५८	,, १४ गुरुवार	१	,,
उ	आर्य सिद्धांत	४	५७	१४	२८·६७	८	५०	१०	,, १३ बुधवार	३१	मार्च
ई	सूर्य सिद्धांत	४	५३	४९	२८·६१	८	४६	४८	,, ,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सू. सि.	४	५३	३१	२८·६१	८	४६	२९	,, ,, ,,	,,	,,
ओ	शुद्ध केंद्रीय	४	६	३०	२७·८१	८	०	९	,, ,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध सांपातिक	२	५९	२१	१९·५६	०	०	०	,, ५ सोमवार	२२	,,

वारों से तुलना [२।५९।२१]+[१०।५१।२६]=[६।५०।४६] 'ऐ' के तुल्य है.

भा० ज्यो० पृ० २४० में लिखे प्रकार से अयनांश [९८०–४३८=५४२ ÷ ६०=] ९°।२' आते हैं। सो ब्रह्मगुप्तोक्त भगणारंभ दिनादि के तुल्य हो जाने से गणितानुसार शुद्ध हैं।

विधान. २१

(५) करणप्रकाश [ब्रह्मदेव विरचित]—शाके १०१४ मध्यम मेषार्क संक्रमण काल=शुद्ध नाक्षत्र मानसे चैत्र वद्य २ शनिवार तारीख २ अप्रील १०९२ इ० को घ. ३३ प.४३ पर और शुद्धसांपातिक मानसे चैत्र शुद्ध ६ मंगलवार ता. २२ मार्च १०९२ इ० को घ. १३ प. २८ पर हुवा है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्तसे एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बतई है।

करण प्रकाश म. म सुधाकर द्विवेदीकृत टीकायुत [सन १८९९ काशी मुद्रित] के पृष्ट १४ में के "१०१४ शके चैत्र शुक्ल प्रतिपादि भृगौ रव्युदये भादीन् रव्यादी नार्य भट्टं मतानुसारेण। रविः ११।१६।३२।५७ चन्द्रः ११।२७।२०।२०" आधार से गणित द्वारा उपर्युक्त कोष्टक में [ऊ] चिन्ह के आगे करण प्रकाशोक्त अब्दप ति. शु. और अयनांश लिखे ह। यह सबीज करे होने से आर्य सिद्धांत के सिर्फ ६ कलांतर से शुद्ध है। इसकी भूमिका में म० द्विवेदीजी लिखा है कि "शंकर बालकृष्ण दीक्षित लेखानुसारेण ब्रह्मदेव मतेन ४४५ शकेऽयनांशाभावः प्रत्यब्दमेक कलायन गतिश्च [भा. ज्यो. पृ० २४०–२४१ विलोक्ये] परन्त्वत्रायन भागचर्चा न कुत्रापि दृश्यते।" इससे स्पष्ट है कि शून्यायनांश वर्षों से अयन गति द्वारा हमारे ग्रंथकार अयनांशों को नहीं लेकर वेधसिद्ध विषुव दिन से लेते थे। अतएव वह सिद्धांतिक मान से शुद्ध हैं।

ग्रंथ.	करण प्रकाश के.	अब्दप.			तिथि.	अयनांश.			शाके १०१४	ईसवी सन १०९२	
चिन्ह.	समय में.	वा.	घ.	प.	शुद्धि.	अं.	क.	वि.	मिति	ता.	मास.
ऐ	शुद्ध नाक्षत्रमान	०	३३	४३	१६·७१	११	१०	२८	चैत्र वद्य २ शनिवार	२	अप्रिल
ए	ब्रह्म गुप्त सिद्धांत	५	२६	२४	१५·०६	९	३४	३४	चैत्र शुद्ध १५ गुरुवार	३१	मार्च
उ	आर्य सिद्धांत	५	४४	५६	१४·८७	९	२३	१६	,, ,, ,, ,,	,,	,,
ऊ	करण प्रकाश	५	३८	४९	१४·७६	९	१७	१३	,, ,, ,, ,,	३१	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	५	४१	४२	१४·८१	९	२०	३	,, ,, ,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सू. सिद्धांत	५	४१	२४	१४·८१	९	१९	४५	,, ,, ,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध केंद्रीयमान	४	५६	१४	१४·०४	८	३९	१९	,, ,, १४ बुधवार	३०	,,
ओ	शुद्ध सांपातिक	३	१३	२८	५·१९	०	०	०	चैत्र शुद्ध ६ मंगलवार	२२	,,

वारों से तुलना [३।१३।२८] + [११।२०।२५] = [०।३३।४३] 'ऐ' के तुल्य है.

विधान २२

(६) 'भास्वती करण' शाके १०२१ में मध्यम मेषार्क संक्रमण काल=शुद्ध नाक्षत्रमानसे-चैत्र शुद्ध ५ सोमवार तारीख ३ अप्रील सन १०९९ इ. को, घ. २१ प. २४ पर। और शुद्ध सायनमान से फाल्गुन बदि ८ बुधवार ता. २२ मार्च १०९९ इ. को घ. ५५ पल ११ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एकवाक्यता निम्न-लिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ	भास्वती के	अब्दप			तिथि	अयनांश			शाके १०२१। इ. सन १०९९		
चिन्ह	समय में	वा.	घ.	प.	शुद्धि	अं.	क.	वि.	मिती	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्रमान	२	२१	२४	४·१५	११	१६	१९	चैत्र शुद्ध ५ सोमवार	३	अप्रील
ए	ब्रह्म गुप्त सि.	०	४५	०	२·५२	९	४१	१७	चैत्र शुद्ध ३ शनिवार	१	,,
ऊ	भास्वती करण	०	३४	३५	२·३५	९	३१	०	,, ,,	१	,,
उ	आर्य सिद्धांत	०	३३	४०	२·३३	९	३०	५	,, ,,	,,	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	०	३०	२५	२·२७	९	२६	५३	,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सू. सि.	०	३०	४	२·२७	९	२६	३५	,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध केंद्रीयमान	६	२५	२३	१·५१	८	४२	३३	चैत्र शुद्ध २ शुक्रवार	३१	मार्च
ओ	शुद्ध सायन	४	५५	११	२२.५३	०	०	०	फाल्गुन ब. ८ बुधवार	२२	,,

वारों से तुलना (४ । ५५ । ११) + (११ । २६ । १३) = (२ । २१ । २४) ऐ के तुल्य है.

भा. ज्यो. पृ. २४४ के लिखे प्रकार से अयनांश ९°। ३१' आते हैं सो (ऊ) ब्रह्मार्यपक्ष के बीच के तुल्य शुद्ध हैं।

विधान २३

'करणोत्तम' शाके १०३८ में मध्यम मेष सं. काल=शुद्ध नाक्षत्र मान से चैत्र सुदी १२ सोमवार तारीख ३ अप्रील सन १११६ ईसवीं को घ. ४२ प. ५४ पर। और शुद्ध सायन मान से चैत्र सुदी १ गुरुवार ता. २३ मार्च १११६ इ. को. घ. २ प. १९ पर; हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता (निम्न) कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ	करणोत्तम के	अब्दप			तिथि	अयनांश			शाके १०३८। ईसवी सन १११६ में		
चिन्ह.	समय में	वा.	घ.	प.	शुद्धि	अं.	क.	वि.	मिति	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	२	४२	५४	१२.२१	११	३०	३४	चैत्र सुदी १२ सोमवार	३	अप्रेल
ऊ	करणोत्तम	१	११	३	१०.६६	१०	०	०	चैत्र सुदी ११ रविवार	२	,,
ए	ब्रह्मगुप्त सि.	१	८	३५	१०.६१	९	५७	३६	,, ,, ,,	२	,,
उ	आर्य सि.	०	५७	२९	१०.४२	९	४१	३९	,, १० शनिवार	१	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	०	५४	१८	१०.३७	९	४३	३१	,, ,, ,,	१	,,
इ	नव्य सू. सि.	०	५४	०	१०.३७	९	४३	१४	,, ,, ,,	१	,,
अ	शुद्ध केंद्रीय	०	१०	१७	९.६२	९	०	९	,, ,, ,,	१	,,
ओ	शुद्ध सायन	५	२	१९	३०.२४	०	०	०	चैत्र सुदी १ गुरुवार	२३	मार्च

वारों से तुलना (५।२।१९)+(११।४०।३९)=(२।४२।५४) 'ऐ' के तुल्य है।

भा. ज्यो. पृ. २४५ में "करणोत्तमादौ चाप्ययनांशा दशसंख्या:" इस समय अयनांश १० थे" ऐसा लिखा है। सो (ऊ) परिमाण ब्रह्मगुप्त के (२'।२४") स्वल्पांतर से बराबर है। सो सिद्धांतिक रीति से शुद्ध है।

विधान २४

(८) करण कुतूहल (भास्कराचार्य कृत) शाके ११०५ में मध्यम मेष सं० काल =शुद्ध नाक्षत्र मान से चैत्र शुद्ध ४ सोमवार तारीख ४ अप्रील सन ११८३ ई को घ ५३ प. ३० पर। और शुद्ध सायन मान से फाल्गुन बदी ६ बुधवार तारीख २३ मार्च ११८२ को, घटी १५ प. ५८ पर हुआ है. । इनके द्वारा अयनांश और उन की ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ चिन्ह	करण कुतूहल के समय में	अब्दप			तिथि	अयनांश			विक्रम संवत १२४० सन ११८३		
		वा.	घ	प.	शुद्धि	अं.	क.	वि	मिती	तारीख	मास.
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	२	५३	३०	३.३८	१२	२६	४०	चैत्र सुदी ४सोमवार	४	अप्रेल
ऊ	क. कुतूहल	१	४९	३५	२.३२	११	२४	०	चैत्र शुद्ध ३ रविवार	३	,,
ए	ब्रम्हगुप्त सिद्धांत	१	२७	२९	१.९२	११	१	५२	,, २ ,,	,,	,,
उ	आर्य सिध्दांत	१	१७	२०	१.७५	१०	५१	५३	,, ,, ,,	,,	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	१	१४	३१	१.७०	१०	४९	२	,, ,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सूर्य सिध्दांत	१	१४	१०	१.७०	१०	४८	४६	,, ,, ,,	,,	,,
अ	शुध्द केंद्रीय	१	३४	२०	१.०३	१०	९	२९	,, ,, ,,	,,	,,
ओ	शुद्ध सायन	४	१५	५८	२०.५६	०	०	०	फाल्गुन व. ६ बुधवार	२३	मार्च

वारोंकी तुलना (४।१५।१८)+(१२।३७।३२)=(२।५३।३०) 'ऐ' के तुल्य है.

करण कुतूहल [बंबई वेंकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ सटीक है] पृष्ट ३१ श्लोक १७ की टीका में **'यथाब्दादा वयनांशा: ११।२४ ग्रंथकृता चतुर्विंशाति विकलान् विहायांशा एव भवा एकादशमिता गृहीता:'** ऐसा लिखा है। इससे ज्ञात होता है ब्रह्मगुप्त के ग्रहों में बीज संस्कार " खाभ्रखार्कैहता कल्पयाता समा: "(सि शि. ग्र. मध्यमाधिकार श्लो. ७-८) देकर अयनांश ११°।२४′ आते हैं. बीज नहीं दिये तो ११°।२′ कोष्टकोक्त ब्रह्मगुप्त के तुल्य आते हैं। और यही मुंजालोक्त के तुल्य एवं ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तीय शून्यायनांश वर्ष ४४२ से मिलते हैं। अतएव ब्रह्मसिद्धान्त के तुल्य शुद्ध हैं. सि. शि. [शाके १०७२] में भूतकालीन ११ अयनांश लिखे हैं। वह उनके जन्म कालीन कहे हैं। वह नाक्षत्रमान के एक अंश के अन्दर हो जाते हैं। कोई भी हो उनके वेध सिद्ध अयनांश ११°।२४′ ठीक दिखते हैं वही मैने प्रस्तुत विधान मैं लिखे हैं। और ११°।२′ मानने पर भी कोई बाधा आती नहीं है।

विधान २५

(९) 'ग्रहलाघव' शाके १४४२ में मध्यम मेष सं. काल=शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र सुदी १२ शुक्रवार तारीख ९ अप्रैल सन १५२० इ. को घ. १७ प. २६ पर। और शुद्ध सायनमान से फाल्गुन बदि ९ सोमवार तारीख २२ मार्च १५२० को घ. ५३ प. ३४ पर हुआ है इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्न लिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ चिन्ह	ग्रह लाघव के समय में	अब्दप वार	घटी	पल	तिथि शुद्धि	अयनांश अंश	कला	विकला	संवत् १५७७ सन १५२० मिती	तारीख	मास
ऐ	शुद्ध नाक्षत्र	६	१७	२६	११·४३	१७	८	४९	चैत्र सु १२ शुक्रवार	९	अप्रैल
ऊ	ग्रह लाघव	५	४६	५	१०·८९	१६	३८	०	,, ११ गुरुवार	८	,,
ए	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत	५	३३	४	१०·६८	१६	२५	८	,, ,, ,,	,,	,,
उ	आर्य सिद्धांत	५	२७	५०	१०·५९	१६	२०	०	,, ,, ,,	,,	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	५	२६	२४	१०·५७	१६	१८	३१	,, ,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सूर्य सि.	५	२६	१३	१०·५६	१६	१८	२३	,, ,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध केंद्रीय	५	५	४३	१० २१	१५	५८	१९	,, ,, ,,	,,	,,
ओ	शुद्ध सायन	२	५३	३४	२३ ७५	०	०	०	फागण ब. ९ सोमवार	२२	मार्च

वारों की तुलना (२।५३।३४)+(१७।२३।५२)=(६।१७।२६) 'ऐ' के तुल्य है।

ग्रह लाघवकार ने अपने समय के अयनांश १६°।३८' कह दिये हैं। वह सिर्फ ३०·८ कलांतर से शुद्ध नाक्षत्रमान के तुल्य शुद्ध हैं।

विधान २६

(१०) सिद्धान्ततत्व विवेक (कमलाकर कृत) शाके १५८० में मध्यममेषार्क काल=शुद्ध नाक्षत्रमान से चैत्र शुद्ध ८ बुधवार तारीख १० अप्रील सन १६५८ इ. को; घ. ४० प. ११ पर और सायन मानसे फाल्गुन कृष्ण ४ शुक्रवार ता. २२ मार्च १६५८ को घ. १९ प. ७ पर हुआ है। इनके द्वारा अयनांश और उनकी ग्रंथोक्त से एक वाक्यता निम्नलिखित कोष्टक में बताई है।

ग्रंथ	तत्व विवेक के	अब्दप			तिथि	अयनांश			संवत् १७१५ सन १६५८		
चिन्ह	समय में	वार	घटी	पल	शुद्धि	अंश	कला	विकला	मिती	तारीख	मास
ऐ	[ऊ] शुद्ध नाक्षत्र	४	४०	११	८·०२	१९	४	२२	चैत्र सुदी ८ बुधवार	१०	अप्रेल
ए	ब्रह्मगुप्त सिद्धांत	४	१२	५८	७·५८	१८	३७	३२	,, ,,	,,	,,
उ	आर्य सिद्धांत	४	९	४७	७·५२	१८	३४	२२	,, ,,	,,	,,
ई	सूर्य सिद्धांत	४	८	४९	७·५१	१८	३३	२८	,, ,,	,,	,,
इ	नव्य सूर्य सि.	४	८	४६	७·५१	१८	३२	३९	,, ,,	,,	,,
अ	शुद्ध केंद्रीय	३	५६	८	७·२९	१८	२०	५५	,, ७ मंगलवार	९	,,
ओ	सायनमान	६	१९	७	१८ ३७	०	०	०	फाल्गुन ब ४ शुक्रवार	२२	मार्च

वारों की तुलना (६।१९।१७)+(१९।२१।४)=(४।४०।११) 'ऐ' के तुल्य है।

कमलाकर ने अपने ग्रंथ में चलांशों (अयनांशों) का उपयोग तो दिया है किंतु उसके अंक नहीं देकर सूर्यसिद्धांत तुल्य कहे हैं। जोकि सू. सि. के रविभगणारंभ को देखते १८° । ३३′ होते हैं। भा. ज्यो. पृ. ३३५ में सि. तत्वविवेक का शून्यायनांश वर्ष ४२१ उससे (इ) सू सि. की गति से १८° । ५४′ होते हैं। तथा स्थूल गति प्रत्यब्द १ कला से १९° । १९′ होते हैं । इसलिये इनका मध्य (विधान १६ देखिये) आर्य भटीयमानसे (१५८०–४३६=११४४÷६०=अयनांश १९°।४′ लेने से शुद्ध नाक्षत्र के तुल्य हो जाने से अलग लिखे नहीं है। तथा ग्रंथकार के स्पष्ट लिखे बिना ठीक ठीक प्रमाण मानते आता नहीं है। तो भी जबकि ग्रंथकार ने शेष वासना (पृ. ४२) में 'क्रांति वृत्ते मेषादेः स्वस्व नक्षत्र ध्रुवकान्तरे स्वस्व भोगः' इस प्रकार, तथा विषुवांशसाधन और भास्करीयोदयान्तर समालोचना में वेधसिद्ध सायन ताराओं से भध्रुवकोक्त योगतारा भोगों के अंतर द्वारा अयनांशों को ध्वनित किया है इसलिये कमलाकर के समय के अयनांश १९ । ४ चैत्रीयमान के एवं शुद्ध नाक्षत्र के तुल्य शुध्द हैं।

विधान २७

सूर्य सिद्धान्त आदि प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में लिखे हुए ध्रुवक यद्यपि अत्यन्त प्राचीन कालिक होने से ताराओं की निजगति के कारण स्वाती के तुल्य अति गति युक्त ताराओं

के भोग शरों में अब तक कुछ अंशों का अंतर पडता है तथापि यह सदा स्थिरप्राय कदंब प्रोतीय कहे होने से अयनांश और आरंभस्थान के निश्चय करने में (पर्याप्त) शुद्ध हैं। चित्पावन जातीय माधवात्मज दादाभाई कृत किरणावली टीका (ह. लिखित पृष्ठ ११६'२) में " एते ध्रुवाः क्रांतिवृत्ते भोगाः शराभयोगतारा कदंब वृत्ते । " ऐसा ' ध्रुवकों को क्रांतिवृत्त में भोग और कदंबाभिमुख शरों को ' कहा है। सिद्धान्त तत्वविवेक में कमलाकर ने बडी गवेषणापूर्ण इस विषय का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

कदंब संबंध वशेननूनं ये सूर्यसिद्धान्तमत प्रसिद्धाः ॥ ध्रुवोत्थसूत्रेनहितेऽवबोध्याः सूर्याशयज्ञैर्गणितप्रवीणैः ॥ १ ॥ कदंबद्वय प्रोतवृत्तंच यत्तद्भबिंबस्थितं सद्भवृत्तेचयत्र ॥ भवेद्भध्रुवस्तद्भबिंबान्तराले कदंबोत्थवृत्ते शरोयाम्यसौम्यः ॥ ३ ॥ कदंबसंबंधवशेन सिद्धाएवोदिता ये रविणा ध्रुवाख्याः ॥ तेषां बलाद्ये ध्रुवसूत्रसंस्थां मत्वा विलोमायन कर्म कृत्वा ॥ १९ ॥ पुनः कदंबोन्मुखतां प्रसाध्य युत्यादिकं स्वीयधियाऽऽनयंति ॥ असंगतंतत्प्रतिभाति यस्मात् सूर्यादि देवैरुदितंनतद्वत् ॥ २० ॥ कदंबस्थिता तारका नप्रसिद्धा ततः खेटयोग प्रतीतिः कथंस्यात् ॥ ध्रुवस्थान तारात्र लोकप्रसिद्धा ततश्चोचिता खेटयोगोपपत्तिः ॥ ६६ ॥ इत्थं प्रसिद्ध ताराया विश्वासाच्च शिरोमणौ नाशितं खेट योग्यस्य साधनं ध्रुवसूत्रगम् ॥ ६७ ॥ किंचात्र शीघ्र नीचोच्चवशाद्भेदो महान्गतौ ॥६९॥ येभध्रुवाः स्वायन कर्म सिद्धा स्तेसस्वबाणा ध्रुवसन्मुखास्युः ॥ ये केवलामध्रुवका सदाते वेद्याः कदंबाभिमुखाः सबाणाः ॥ ९२ ॥ सौरेतुतंत्रे दिनरात्रियात सिद्ध्यर्थ मुक्तं किलदृष्टिकर्म ॥ तत्खेटयोर्मेलक वद्ग्रहस्यगत्यादि नाद्यं वदताःसदुक्तम् ॥ १०१ ॥ भखेटयोः केवलयोर्युतेश्च संसाधनं श्रीरविणामयार्थम् ॥ १०२ ॥ " भग्रहयुत्यधिकार में इत्यादि विस्तारपूर्वक लिखा है।

विधान २८.

यद्यपि विश्वनाथ और रंगनाथ ने (सू. सि.) टीका में मूल वाक्यों के अर्थ को खींचखांचकर ध्रुवसूत्रीय कहने का प्रयत्न किया है किंतु पर्वत और नार्मद आदि प्राचीन टीकाकार इन्हें कदंब सूत्रीय प्रतिपादित करते हैं ऐसा "नक्षत्र ध्रुवके पर्वतेनायन दृक्कर्माप्युदाहरणे कृतम् " आपका कथन पूर्व टीकाकारों के सम्मत नहीं इसप्रकार स्पष्ट कर दिया है इतनाही नहीं तो वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्तादि संपूर्ण ग्रंथों में ' नक्षत्राणामथोवक्ष्ये स्वराशि वलयेस्थितिम् ॥ १ ॥ धिष्ण्यानांदृक्कर्मकुर्यात् ॥ १९ ॥ इन्हे राशिचक्र=क्रांतिवृत्त में लिखकर ध्रुवसूत्रीय करने के लिये इनको दृक्कर्म करना कहा है लल्ल सिद्धान्तादिमें तो सेकडो जगह 'ध्रुवः' 'ध्रुवकः' शब्द आये हैं वह सब क्रांतिवृत्तीय कदंबसूत्रीय के अर्थ में हैं इससे सिद्ध होता है कि नक्षत्रों के ध्रुवक कदंबसूत्रीय हैं।

विधान २९.

इसलिये शुद्ध नाक्षत्रमान के अयनांश साधन में ध्रुवकोक्त योग तारा के भोग से संपातसाधित सायन तारा के भोगांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र अयनांश आसकते हैं। तत्वविवेक (भग्रहयुत्य.) में कमलाकर ने भी " अत्रांशाद्यं ग्रहाद्यंतत्कृत्वा तेग्रहपूर्वकाः ॥१६॥ संपातान्मेषसंज्ञाश्च ध्रुवाणांचलत्वतः ॥ भगोलांकितमेषादेः स्थिराऐवोदिताः सुरैः ॥ १७ ॥" ऐसा ही कहा है। किंतु अयनांश साधन एवं राशिचक्र के आरंभस्थान के निश्चय में योग तारा [१] निस्संदेह, [२] नेत्रों से स्पष्ट दिखनेवाली=देदीप्यमान, [३] निजकी अत्यल्प गतिमान्, [४] पूर्ण राशिरूप, [५] क्रांतिवृत्त के आदि में या ठीक मध्य में स्थित हो [६] अल्प शरवाली हो [७] पैछानने में विशेष लक्षणवाली, [८] संहिता ग्रंथोक्त राश्यादि विभागों से पूर्ण संबंध रखनेवाली, [९] वैदिक काल से नक्षत्र गणनादर्शक, [१०] सर्व ग्रंथ सम्मत, और [११] परंपरा प्रामाण्ययुक्त होनी चाहिये। इन ग्यारह लक्षणों का अब मैं क्रमशः स्पष्टीकरण करता हूं।

विधान ३०.

उपर्युक्त दश लक्षणों में से (१) निस्संदेह योग तारा वही हो सकती है जो एक ही तारा का नक्षत्र हो। सत्ताईस नक्षत्रों में से ऐसा एक तारा नक्षत्र (१) आर्द्रा, (२) स्वाती और (३) चित्रा है। यह तीनों देदीप्यमान तेजस्वी तारे हैं। किंतु इनमें आर्द्रा और स्वाति की निजगति अधिक और लंबा शर है। इससे इनके भोग शरों में कुछ अंतर पड गया है तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.५.१) में " रुद्रस्य बाहू। मृगयवः परस्ताद्विक्षारोऽवस्तात्" ऐसा लिखा है. अर्थात् भरतपुंज के बाहू स्थानीय आर्द्रा की तारा है। इसके पश्चिम के तर्फ मृगशीर्ष (इन्वका) तारा और पूर्व तर्फ आकाश गंगा है। ऐसे लक्षणों को देखकर प्राचीन सिद्धान्तादि में आल्फाओरायन को आर्द्रा की योग तारा मानी है। लेकिन आगे इसमें भी कुछ फर्क हुआ देख कर सूर्य सिद्धान्त एवं तत्वविवेकादि ग्रंथों में इसका भोग ७४°।५०' (भा. ज्यो. पृ. ४९६ देखिये) तथा वृद्ध वसिष्ठ सि. में ७५ अंश और शर ९ अंश कहा होने से 'ग्यामा जेमिनी, नामक आर्द्रा की योग तारा निश्चित होती है (भा. ज्यो. पृष्ठ. ४५९ देखिये) दीक्षित ने भी (मन्मतीय काळ में) ग्यामा जेमिनि को ही आर्द्रा की तारा और वर्तमान काल में उसका भोग ७५°।१६' और शर ६।४५ द. कहा है।

विधान ३१.

उपर्युक्त आर्द्रा भोग से वर्तमान ता. १-१-३० संवत १९८६ शके १८५१ पौष शु० २ के अयनांशों का निश्चय करने के लिये विधान १६ में कहे हुए सिद्धांत सम्राट् के अनुसार

वेधसिद्ध सायन निम्नलिखित गणित से बनाकर बताता हूं। नाटिकल आल्मनाक सन १९३० में तारा नंबर ४०३ ग्यामा जेमिनि प्रति (वर्ग) १·९३ विषुव काल ६ । ३३ । ४०·०४९ विषुवांशा: ९८° । २५′) आर क्रांति उत्तर १६°।२७′ ३७.″२१ (=+१६°।२८′) लिखी है। ज्योतिर्गणित (पृष्ठ. ३९१) में लिखी सारणी से लाग्रथम द्वारा गणित न्यास इस प्रकार है।

आर्द्रा का सायन भोग साधन.

आर्द्रा क्रांति छाया या	घातांका:	९·४७०६७६२	चाप:
,, विषुवांश भुज ज्याया	,,	९·९९५२९७२	
अंतरं, छाया या:	,,	९·४७५३७९० परम क्रांति:	१६°।२८′
,, विषुव को ज्याया:	,,	१०·८४८५४५७ रवे: परम क्रांति:	२३।२७
,, क्रांति को ज्याया:	,,	९·९९६९१९१ अ	—६।४९
ऐक्यं ब को ज्याया:	,,	१०·८४५४६४८ ब	८१।५६
ब छायाया:	घातांकां:	१०·८४८५४५७	चांपांश:
अ कोटीज्याया:	,,	९·९९६९१९१	
ऐक्यं भुज च्छायाया:	,,	१०·८४५४६४८	भुज: + ८१°।५२′
सायनो ,,	,,	,,	भोग: = ९८। ८
ब भुजज्याया:	,,	९·९९५६८१५	
अ भुजज्याया:	,,	९·०७४४२४४	
ऐक्यं शरज्याया:	,,	९·०७०१०५९	शर:—६।४५ दक्षिण:

अयनांश साधन.

आर्द्रा (ग्यामा जैमिनि)·का	वर्तमान कालिक वेधासिद्ध मानसे	प्राचीन कालिक वृद्धवसिष्ठोक्तम्
सायन भोग	९८° ८′	९८° ८′
नाक्षत्र भोग	७५ १६	७५ ०
अयनांशा: (शास्त्रशुद्धा:)	२२ ५२	२३ ८
तारे की निजगति से कालान्तर बीज (शुद्धांतर जन्य)		—० १६

वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्तोक्त भोगसाधित वही अयनांश　　२२ ५२ आते हैं।

विधान ३२.

दूसरा एक तारा नक्षत्र स्वाती है "आर्कटयूरस" नामक इसकी सर्व सम्मत योगतारा है। प्राचीन ग्रंथोक्त ध्रुवकों में इसका भोग १९९° तथा शर ३७° उत्तर में कहा है। और 'वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त आदि में अपांवत्सापयोर्भार्धे' स्थितिः। ऐसा अपांवत्स (झीटाव्हिर्गिनीस) और आपः (टाऊव्हिर्गिनीस) की स्थिति राशिचक्र के ठीक मध्य १८०°।०' में कही है। तथा वराह मिहिर ने "**सम मुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः॥ तस्यासन्ने चंद्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति॥ १॥**" इस प्रकार चित्रा और अपांवत्स के आसन्न में स्थित चंद्रमा की स्वाती के साथ शरसूत्रीय युतिके होने में शुभ फल कहा है। तथा '**चित्रार्धासन्नभागे**' पंचसिद्धांतिका में चित्रा को राशिचक्र के (अर्धास्त) ठीक ठीक मध्य में कहा है। एवं कुल सिद्धान्त ग्रंथों में चित्रा का शुद्ध नाक्षत्रिक कदंबाभि मुखभोग को और अपांवत्सापः को (भार्धे) राशिचक्र के मध्य में लिखा है तब ऐसे भार्धस्थित चंद्र की स्वाति के साथ कदंबशर सूत्रीय युतिके उक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वर्तमान में स्वाति की स्थिति चित्रा के एवं भोग १८० अंश के निकट में है।

विधान ३३.

वेध सिद्ध परिमाणों से कदंबाभिमुख स्वाति का भोग १८०°।२४' शर ३०°।४९' उ० है। अतः गणित से पता चलता है कि ध्रुवकोक्त स्थान से पश्चिम के तर्फ १८·६ अंश और दक्षिण के तर्फ ६·१८⅓ अंश (भुजकोटी मानने से उ० कदंब से २५१।३७' दिगंश के तर्फ (त्रिज्यारूप) १९·६ अंश स्वाति का तारा सरक गया है। इसकी तुलना पाश्चात्यों के शोध से वर्तमान में) स्वाति के विषुवांश २१३, क्रांति १९° उ० में; उत्तर ध्रुव से दिगंश २०९ के तर्फ वर्षगति २·२८ विकला कही है सो पूर्व प्रतिपादन के करीब में मिलती हुई है। इस गति द्वारा 'ध्रुवकोक्त स्वाति के स्थिति का सद्भाव काल शक पूर्व २९०९७ वर्ष का निश्चित होता है। किंतु रवि परमक्रांति २६ अंश मानली जावे तो स्वाती का इतना चलन करीब १७।१८ हजार वर्षों मेंही हो जाता है। जोकि वेदांग ज्योतिष के बाद में ध्रुवकोक्त स्थिति काल निश्चित होता है। अतः अब अयनांश साधन के लिये स्वाति के सायन भोग (२०३।१६') में नक्षत्र भोग (१८०°।२४') कम करने पर अयनांश २२°।५२' निश्चित होते हैं। और पूर्वोक्त के तुल्य शास्त्र शुद्ध हैं।

विधान ३४.

सप्तर्षियों के ७ तारोंसे भी अयनांश का निश्चय हो सकता है। इसके संबंध में तत्त्व विवेककार ने लिखा है कि "**साकल्यसंज्ञ मुनिना कथिताः सबाणाः सप्तर्षि तारक भवा**

ध्रुवकाचलाश्च ॥ २५ ॥ 'युगादौ विष्णुतारायाः क्रतुर्भार्द्धे व्यवस्थितः ॥" इत्यादि (शा. ब्र. सि. श्लो. १७९–१८५) देखिये यहां 'भाद्यैः समाहितः' पाठ लेने से विष्णुतारा की संगति लगती नहीं 'भार्धे' से लगती है। इसलिये भार्धेपाठ लेकर निम्न लिखित न्यास में इन श्लोकों का अर्थ और अयनांशों को निश्चित करके बताता हूं।

सप्तर्षि के तारोंकी स्थिति.

सप्तर्षियों के तारों के		शुद्ध नाक्षत्र वर्तमान में		सायन श्रवण संपात में		ग्रंथोक्त प्राचीन कालिक		वर्तमान तारीख १-१-३० को	
नाम	ग्रीक नाम	भोग	शर	भोग	अंतर बीज	सायन भोग	शर	शरांतर	सायन भोग
		° ′	° ′	° ′	° ′	°	°	° ′	° ′
१ ऋतु	अल्फा-यूर्समेजारिस	१११।२१	४९।४१	१८०। ०	०। ०	८०	५५	–५।१८	१३४ १४
२ पुलह	बीटा ,,	११५।३५	४५। ७	१८४।१४	+१।१४	१८३	५१	–५।१३	१३८ २८
३ पुलस्त्य	ग्यामा ,,	१२६।३८	४७। ८	१९५।१७	+२।१७	१९३	५०	–२।५२	१४९ ३१
४ अत्रि	डेल्टा ,,	१२७।१२	५१।३९	१९५।५१	–०। ९	१९६	५६	–४।२१	१५० ५
५ अंगिरा	इप्सिलान,,	१३५। ५	५४।१८	२०३।४४	–०।१६	२०४	५७	–२।४२	१५७ ५८
६ वासिष्ठ	झीटा ,,	१४१।५१	५६।२३	२१०।३०	–०।३०	२११	६०	–३।३७	१६४ ४४
७ मरीचि	ईटा ,,	१५३। ५	५४।२३	२२१।४४	+०।४४	२२१	६०	–५।३७	१७५ ५८

उपर्युक्त स्थितिदर्शक कोष्टक में सातों तारों के शर दक्षिण के तर्फ करीब ५ अंश खिसका हुआ दिखता है। विधान ३३ देखिये-स्वाति का भी ऐसे ही ६ अंश खिसका है। और प्राचीन ग्रंथों में अगस्त्य का दक्षिण शर ८० लिखा था सो अब–७५.८ होने से+४·८ अंश उत्तर को आगया है इससे क्या तो सूर्य ग्रह माला को लिये हुए अगस्त्य के तर्फ जारहा है या रवि की परम क्रांति पहिले २६।२७। अंश थी ऐसा ज्ञात होता है। इससे हमारे ग्रंथोक्त परिमाण शुद्ध नाक्षत्र के हैं। सूक्ष्ममान से कालान्तर युक्त तुल्य मिलते हैं।

विधान ३५.

ऐसा ही इनकी गति के संबंध में 'प्रत्यहं प्रग्गति स्तेषामष्टौलिप्ता मुनीश्वर' ऐसे पाठ में 'शताद्बे प्राग्गति स्तेषां' पाठ है। अथार्त् सौ वर्ष में नक्षत्र की ८ कला [८×१३।२०]

=१°।४६'।४०" कही है सो सूक्ष्ममान से अयनगति [१°।२३।'४६"] + उच्च याने केन्द्र गति (१९'।४१") = १।४३।२४" के स्वल्पांतर [सौ वर्ष में ३'।१६" मात्र] से तुल्य मिलती हुई है। इससे अब हमे इनके द्वारा अयनांश निश्चय में कोई विवाद या विसंगता नहीं है। इसी शाकल्योक्त ब्रह्मसिद्धांत में लिखे चित्रा भोग १८० के अनुसार उपर्युक्त कोष्टक में नाक्षत्र भोग लिखे हैं। इनके भोग में इन्हींका सायन भोग कम करने पर अयनांश २९१°।२१' किंवा चक्र शुद्ध-६८°।३९' उस समय के [वेद काल निर्णय पृ. १०१ देखिये] यानी शक पूर्व २१९३२ वर्ष के निश्चित होते हैं। अर्थात श्रवण नक्षत्र के भुक्त ४६ घटी, ५ पल पर जिस समय संपात की स्थिति थी उस युगादि में यानी वेदांग ज्योतिष के सिर्फ १६० वर्ष के बाद क्रतु का तारा भार्ध [१८० अंश] पर था और वर्तमान में उसका सायन भोग १३४°।१४' है इन प्रत्येक में शुद्ध नाक्षत्र भोग कम करनेपर ऋणायनांश युगादि में -६८°।३९' और वर्तमान में २२°।५३' निश्चित होते हैं। इसी प्रकार पुलहादि के वर्तमान सायन भोगों में उनके नाक्षत्रमान घटा देने पर सभी तारों से वर्तमान के अयनांश-२२।५३ ही निश्चित होते हैं। यदि हम झीटा पिशियम को आरंभस्थान में मानकर गणित करें तो क्रतुका नाक्षत्र भोग ११५°।१९-१८०=२९५°।१९' तत्कालीन अयनांश धनिष्ठा नक्षत्र की ८ घडी ५६ पल बीतने पर संपात की स्थिति आती है सो (" विष्णु तारायाः युगादौ ") श्रवण नक्षत्र विभाग के बाहर संपात धनिष्ठा में चला जाने से ग्रंथोक्त का (झीटागणना से) बिलकुल मेल मिलता नहीं है।

विधान ३६.

हमारे सिद्धान्त ग्रेन्थोंमें जो मृग व्याध (लुब्धक=सीरियस) का भोग ८०°।०', और ४०°।०' लिखा है सो "रज्जुवेधाख्य यंत्रेण" इसप्रकार के (वृ. व. सि. अ.७श्लो. २२ पृ. ४९, कथनानुसार ग्रन्थकारने स्वतः वेध लेकर आपके वर्तमान कालीन कहा है। इससे इसमें विशेष कालान्तर नहीं होने से तथा लुब्धक की वार्षिक गति १·२१ विकला ध्रुवादंगांश २०४ के तर्फ होने से इसके भोगमें+१६ कलाका और शर में-२५ कला का ही फर्क पडा है अतएव इसका अब शुद्ध नाक्षत्र भोग ८०°।१६' शर द-३९°।३५'और सायन भोग १०३°।९' है। इसका अंतर २२°।५३' है सो ही वर्तमान में अयनांश हैं।

विधान ३७.

इस तरह वर्तमान कालीक सभी तारों के सायन भोग में उन २ तारोंके नाक्षत्रभोग कम करने पर अयनांश २२।५३ ही आते हैं। लेकिन उस तारे की निजगतिका इसके साथ

विचार करना पडता है । क्यौंकि गुरुत्वाकर्षणसे आकाश व्याप्तहोने से थोडी बहुत निजगति संपूर्ण तारोंको और हमारे सुर्यको भी है । तब प्राचीन ग्रंथोक्त योगताराका ध्रुवक उतनाही कैसे रह सक्ता है इसीलिये ब्रह्मसिद्धान्त (अ.२श्लो.१६८-६९) में कहाहै कि "पितृ पौष्णयमाग्नीनां श्रवणाभिजितोस्तथा ॥ मूलार्द्रासार्धसप्तांशे स्वस्थानात्प्रागवस्थिता ॥ दृश्यतेयस्य तस्यास्ति न स्वप्नेऽपिव्यवस्थितिः ॥" अर्थात जोभी मघा, रेवती, भरणी, कृत्तिका, श्रवण, अभिजित्, मूल, आर्द्रा यह सार्धसप्तांश मित यानि अर्धांश से तो ७ अंश पर्यंत स्वस्थान से पूर्वही अवस्थित हैं । इसलिये ऐसे अनेक ताराओंकि प्राचीन ग्रंथोक्त परिमाण ठीकठीकस्थिति स्वप्नमें भी दीखते नहीं हैं । अर्थात वह स्वस्थानसे इधर उधर खिसके हुए दिखते हैं ।

विधान ३८.

यहतो प्राचीन ग्रंथकारोंका कथन हुवा । आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने तो कई ताराओं की निजगति को निश्चित करलिया है । यद्यापि ऊपर लिखे श्लोकमें (पौष्ण)रेवती का नाम आया है किंतु ३० कला से तो ७ अंशतक में कितना खिसका है सो इतने परसे स्पष्ट होता नहीं है । और इसमें ३२ तारे बिलकुल छोटे छोटे होनेसे ग्रंथोक्त रेवती की योग तारा को पैछाननाही कठिन है । उसमें झीटापिशियम को मानलेंवे तो उसका दक्षिण शर है संपूर्ण ग्रंथोमें उत्तर शर लिखा है यदि कहें कि " उत्तर का शर निजगति से खिसककर दक्षिण होगया है ऐसे भोग भी ३°। ५८' पश्चिम के तर्फ खिसकने से (उसका भोग) ३५६। २ होगया है तथा उसके वर्तमान कालिक सायन भोग १८। ५५ में उसका नाक्षत्र भोग कम करनेपर [१८°। ५५'- ३५६°।२' =]२२°।५३ अयनांश सर्व ग्रंथ सम्मत चित्रा भोग १८० के तुल्य ही आते हैं । फिरभी इससे आयनांश गिनने में क्या बाधा (हरकत)है? इसके उत्तर में श्रीयुत दत्तात्रय वामन जवखेडकर मनमाड वे. साथ सायन निरयनवाद नामक पुस्तक अभी प्रसिद्ध की हुई है उसकी [पृष्ट २७ पंक्ति ९-१६] सिर्फ एक पंक्तिको उधृत करता हुं " **झिटापिशियम् मध्यें शके ४९४ सालीं संपात होता असें झिटापक्षी यांनी गृहीत धरिलें आहे. हें गृहीत धरितांना झिटापिशियम् ताऱ्याची वार्षिक निजगति जी ११ विकला आहे ती अजिबात सोडून दिलेली आहे ही गति हिशेबांत घेऊन गणित करून पाहतां झीटापिशियम् ताऱ्यांत संपात असण्याचा काल शके १७७ हा येतो. यावरून झीटेस शके ४९४ सालीं संपात होता, असा जो भासाविण्याचा प्रयत्न केला आहे तो किती फोल ठरतो हें सहज दिसून येईल.** " इसलिये इतनी बडी निजगति वाली बत्तीस मेंसे एक ऐसी संशयास्पद अंधुक एकतारका से शुद्ध सूक्ष्म नक्षत्रमान के अयनांश निश्चित

कैसे हो सकते हैं। इससे तो कई एकतारा नक्षत्रोंकी भी निजगति अल्प है [जैसे कि आर्द्रा आदि] उनमें निजगति का कलामात्र संस्कार करना पडता है। और झीटामें अंशोंका करना पडता है इतनाभी होकर न इसका आरंभस्थान से मेल था न अब है। अतएव यह सर्वथा त्याज्य है।

विधान ३९.

अब हमें चित्रा की निज गति का निर्णय करना है। सूर्य, सोम ब्रह्म, पितामह और वृद्ध वसिष्ठादि प्राचीन सिद्धान्त ग्रंथों में चित्रा का भोग १८०°।०′ और शरद २ अंश लिखा है। बाद में वराह मिहिर ने भी चित्रा को (चित्रार्धास्त्रभभागे) अर्धास्त्रे (त्र्यस्त्रे चतुरस्त्रे के माफक) ठीक ठीक (क्रांति वृत्त के) मध्य में चित्रा को कहा है। और दैवज्ञ काम धेनु में (आचित्रादर्धमादिशेत्) चित्राको ही मर्यादाभूत मानकर क्रांति वृत्त ये पूर्व पश्चिम दो भाग तदनुसार १२ राशि और २७ नक्षत्रों के सम विभाग परिमाण निश्चित कर लेना कहा है। इससे स्पष्ट है कि चित्रा तारे के भोग शर सदा स्थिर प्राय अविकृत अचल के तुल्य शुद्ध नाक्षत्र मान के गुण युक्त हैं यद्यपि आधुनिक शोध से चित्रा की निज गति वार्षिक ०.०६ कला ध्रुव दिगंश २३१ की ओर कही है किंतु वह इतनी अल्प है कि उक्त दिगंश को कर्णरूप मानने से १२८७ वर्ष में सिर्फ १ कला चलन स्वल्पान्तर शुद्ध से नाक्षत्र के तुल्य है। इसीलिये कुल भारतीय ग्रंथों में चित्राभिमुख बिन्दुसे ही ग्रहों के भगणारंभ स्थान और अयनांश कहे गए हैं। वर्तमान में (तारीख १।१।३० को) चित्रा का वेधसिद्ध सायन भोग २०२°।५३′ है। उसमें से सकल ग्रंथोक्त चित्रा का शुद्ध नाक्षत्र भोग १८० अंश कम कर देने पर अयनांश २२।५३ आते हैं। जिस प्रकार आर्द्रा, मृग, व्याध आदि साधित अयनांशों में कुछ कलाओं का निजगति संस्कार करना पडा है। ऐसा इसमें करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अतएव इसकी संपूर्ण आर्य ग्रंथोक्त आरंभस्थान एवं अयनांशों से एक वाक्यता हो जाती है।

विधान ४०.

विधान १७–२६ में कहे हुवे मुंजाल से लगा कर सिद्धान्त तत्वविवेक पर्यंत के ग्रंथोक्त आरम्भ स्थान और अयनांशों की चित्रा गणना से निम्न लिखित कोष्टक में एक वाक्यता करके बताता हूं।

प्राचीन ग्रंथोक्त केंद्रीय अयनांशों की चैत्रीय शुद्ध नाक्षत्र-

अयनांशों से एकतादर्शक कोष्टक नंबर ११

संकेतांक-			क			ख			क–ख=ग			घ			ग+घ=अ		
कोष्टक नंबर	विधानोक्त ग्रंथो के नाम	शालिवाहन शाके	ग्रंथोक्त बीज संस्कृत उच्च			शुद्ध नाक्षत्रीय चैत्रीय रव्युच्च			केंद्रीय मान का शुद्ध नाक्षत्रांतर संस्कार			ग्रंथोक्त केंद्रीय अयनांश			चैत्रीय गणना के शुद्ध नाक्षत्रीय अयनांश		
		वर्ष	अं	क	वि	अं	क	वि	अं	क	वि	अं	क	वि	अं	क	वि
१	मुंजाल	८५४	७७	४१	१४	७५	३४	४४	+२	६	३०	६	५०	०	८	५६	३०
२	आर्यभट	८७५	७७	४४	५९	७५	३८	५३	२	६	६	७	८	०	९	१४	६
३	मृगांक	९६४	७७	४६	०	७५	५६	२४	१	४९	३६	८	३९	०	०	२८	३६
४	मार्तंड	९८०	७७	३९	२१	७५	५९	३१	१	४०	०	९	२	०	१०	४२	०
५	प्रकाश	१०१४	७७	४६	५२	७६	६	१४	१	४०	२८	९	३०	०	१०	१०	२८
६	भास्वती	१०२१	७७	५२	५६	७६	७	३७	१	४५	१९	९	३१	०	११	१६	२९
७	उत्तम	१०३८	७७	४१	३३	७६	१०	५९	१	३०	३४	१०	०	०	११	३०	३४
८	कुतूहल	११०५	७७	२६	५१	७६	२४	११	१	२	४०	११	२४	०	१२	२४	४०
९	लाघव	१४४२	७८	१	१७	७७	३०	२९	०	३०	४९	१६	३८	०	१७	८	४९
१०	विवेक	१५८०	७७	४६	४८	७७	४६	२६	+०	०	२२	१९	४	०	१९	४	२२

विधान ४१

ऊपर लिखे कोष्टक ११ में विधान १७-२६ में लिखे हुए कोष्टकोक्त (१-१०) ग्रंथो में लिखे हुए अयनांशों की शुद्ध नाक्षत्रमान से कैसी एक वाक्यता होती है सो अंकों द्वारा स्पष्टता पूर्वक बता दिया गया है। और केंद्रीय भगणारंभ का शुद्ध नाक्षत्रमान से भी इसी सारणी से एक वाक्यता हो जाती है। उक्त कोष्टक के (क) पंक्ति में (८) भास्कराचार्योक्त रवि उच्च में [७७°।४५′।३६″] – [१८′।४५″] = [७७°।२६′।५१″] और (९) ग्रहलाघवोक्त उच्च ७८° में + १′।१७″ बीज देकर अन्य ग्रंथोक्त में सिर्फ २।४ कलाओं का बीज देकर रवि का उच्च लिखा गया है। बाकी (ख,ग,घ, अ,) परिमाण शुद्ध गणित के तुल्य है। ग पंक्ति को देखने से श्रीमान् को ज्ञात हो जायगा कि आगे के ग्रंथ कारोंने वेध द्वारा संशोधन करते हुए जितना मुंजाल के समय अंतर था वह आगे कम होते होते तत्वविवेककार के समय शुद्ध नाक्षत्रमानके बिलकुल तुल्य हो गया है। सो शाके १८९७ तक रवि का उच्च ७८-७९ अंश में रहने से वहां तक उच्च की तुल्यता के कारण हमारे संपूर्ण ग्रंथों के मेषारंभ काल

की और अयनांशों की दिन व अंशके रूपमें एक वाक्यता बनी रहेगी। । ऐसी स्थितिमें विद्वान लोगों का कर्तव्य है कि सिद्धान्त ग्रंथो में मिली हुई उच्चगति को ग्रंथोक्त उच्चगति में मिलाकर शुद्ध उच्च, शुद्ध फल संस्कार, शुद्ध वर्षमान, शुद्ध अयनगति इनका पंचांग साधन में उपयोग करने से सब परिमाण शास्त्रशुद्ध अविकृत बने रहेंगे। इस प्रकार की तुलनात्मक पद्धति के प्राचीन ग्रंथोक्त परिमाणों की शुद्ध परिमाणों से एक वाक्यता के एवं भिन्न २ ग्रंथकारों के कलान्तर बीच के देखने से स्पष्टतया सिद्ध होता है कि हमारे ग्रंथकारों ने जो अयनांशादि परिमाण निश्चित किये हैं सो तत्कालीन उपलब्ध यंत्रों से वेध लेकर स्वतः देखकर निश्चित किये हैं। और गणेश दैवज्ञने आपके देखे अयनांशों में प्रति वर्ष एक कला अयनगति कम करके शाके ४४४ शून्यायनांश वर्ष कहे हैं। वस्तुतः कमलाकरोक्त अयनांशों में तथा अन्यान्य ग्रंथों के शुद्ध नाक्षत्र अयनांशों में शुद्ध नाक्षत्र-अयनगति का भाग देने पर शून्यायनांश वर्ष शाके २१२ ही निश्चित होता है। इस तरह चित्रा गणना सर्व शास्त्र सम्मत एवं परंपरा प्रामाण्य युक्त शुद्ध है।

विधान ४२

प्रसंगवश यहां जातक ग्रंथोंमें कहे अयनांशों का स्वरूप बतादेना समुचित समझता हूं। जोकि सिद्धान्त तत्वविवेक और सार्वभौम सिद्धान्त में जातक ग्रंथोंके महत्व के संबंध में लिख गया है कि; " **पद्धत्युक्ता अनार्षाः कथय कथममी गोल संस्थान सिद्धाः** " अर्थात् ऋषिप्रणीत ग्रंथोंके अतिरिक्त जो कई पद्धति ग्रंथोंमें परिमाण लिखे हैं सो गोल गणित से भिन्न यानी स्थूल हैं। क्योंकि जिस कालमें वह परिमाण कोई गणित ग्रंथसे उद्धृत किये गए हों उस काल में तो वह कुछ ठीक रह सकते हैं। किंतु आगे उसमें अंतर पड जाने पर भी वही परिमाण लेने में स्थूलता आजाना स्वाभाविक बात है। इसलिये सिद्धान्त या करण ग्रंथों की तुलनामें जातक ग्रंथोंका उपयोग करना उचित नहीं है। ऐसा होते हुएभी प्रिं० गोविंदरावजीने पूना सभा के रिपोर्ट में सिर्फ १ जातक ग्रंथके प्रमाण कोही महत्व दिया है इससे ही मालूम हो जाता है कि झीटा गणना बिलकुल निराधार है और आपने अपने लेखमें इस निराधारता को कबूली जबाब (अंगीकारी कथन) देदिया है। वह इस प्रकार है **" अयनांश सुमारे १९ धरण्यास काहीं ग्रंथाधार नाहीं असे ही म्हणता येत नाहीं, जातकार्णव ग्रंथात असें लिहिलें आहे कीं, " शाकमेकाक्षि वेदोनं द्विः कृत्वा दशभिर्हरेत् ॥ लब्धं-हीनंच तत्रैव षष्ठ्याप्ता चायनांश काः ॥ " म्हणजे शकातून ४२१ वजाकरून १० नीं भागावें भागाकार त्याच बाकींत वजा करावा व ६० नीं भागावे, म्हणजे अयनांश येतात, (शब्द कल्पद्रुम भाग १ पृ. ९१) या प्रमाणें गणित केलें असतां शके १८४८ चे प्रारंभीं १९।१।९ इतके अयनांश येतात. (पुणें पंचांगैक्य मंडळ शके १८४७ का**

रिपोर्ट पृ. ९७ से उद्धृत) ऐसा झीटागणना को केवल प्राचीन ग्रंथका यही एक आधार बताते हुए शाके १८४८ के अयनांश १८°।५′०।३०″ बदलेमें १९°।१′।९″ बताये हैं वह सर्वथा अशुद्ध एवं असत्य हैं। क्योंकि न तो उस श्लोक के अर्थ से उक्त अयनांश आते हैं। और ग्रंथ में तो उसी प्राचीन समय के १९ अयनांश लिखे हुए हैं।

विधान ४३

शब्द कल्पद्रुम में उक्त श्लोक के स्थल में ही स्पष्ट लिखा है कि (अ) " **एक वर्षे चतुः पंच पलमान क्रमेणतु** ॥ (इ) **षट् षष्ठी ६६ वत्सरानेक दिनं स्यादयनं रवेः ॥१॥ इति ज्योतिस्तत्वं** । **अयनांशस्तु जातकार्णवोक्तः** । **यथा** (उ) [**तथा**] **शाकमेकाक्षि वेदोनं द्विः कृत्वा दशभिर्हरेत् ॥ लब्धेन हीनं तत्रैव षष्ट्याप्ताश्चायनांशकाः ॥ १ ॥ इति । सिद्धान्त रहस्ये । तेच इदानी चैत्रस्यैका दशाहे संभवात् उनविंशति १९ संख्यकाः । " चैत्रस्यैकादशाहेतु विषुवारंभणं यदा ॥ तद तल्लग्नमानंहि ज्ञेयमन्यत्र साधनात् । " ॥ इति.**

अर्थात् " एक वर्ष में ५४ पल जबकि अयन की गति है तब ६६-⅔ वर्ष में **सूर्य का** एक अयन दिन (अयनांश) होता है " ऐसा **ज्योतिस्तत्वमें** लिखा है। **अयनांशों का** साधन **जातकार्णव** में बताया है कि; ' शक वर्ष में ४२१ कम करके [द्विः कृत्वा= द्विष्ठं स्थाप्य= द्विधास्थापयित्वा] वह दो जगह स्थापित करके एक जगह दशका भाग **देकर** वह अंक **दूसरी** जगह कम करके उसमें साठ का भाग देनेपर अयनांश होते हैं। **वह अब चैत्र की एकादशी को अयनांश १९ उपलब्ध होते हैं.** क्योंकि चैत्र के ११ वें दिन विषुव [सायन मेष] संक्रमण से निश्चित हुए अयनांश १९ है। इसीसे लग्न परिमाण और उक्त गतिके चालन से अन्य वर्षोंके भी सुलभता से अयनांश साधन कर सकते है. " ऐसा ही **सिद्धान्त रहस्य** में भी लिखा है। इन दोनों ग्रंथोके प्रमाणों से शाके १८४८ के **अयनांश**

($१८४८-४२१=१४२७-१४२\cdot७=\frac{१२८४\cdot३}{६}=$) २१°।२४′.३ होते हैं। **इसलिये प्रिं.** साहब का कथन गलत और असत्य है।

विधान ४४

और भी जातक के ग्रंथों में अयनांश साधन करने का ऐसा ही प्रमाण बताया है। जैसे ज्योतिर्निबंध से कहा है कि " **भूनेत्र वेदोन ४२१ शकस्त्रिनिघ्नो व्योमाभ्र नेत्रै २०० र्विहृतोयनांशाः ॥१॥** अर्थात् ' शक वर्ष में ४२१ कम करके शेष को तीन गुणा करके

२०० का भाग देवे तो अयनांश होते हैं। इस प्रमाण से शाके १८४८ – ४२१ = $\frac{१४२७ \times ३}{२००}$ = २१°।२४'.३ अयनांश आते हैं। प्रि. साहब के कहे हुए आते नहीं हैं।

विधान ४५

अयनांश संबंध के मुहूर्तसिन्धु में भी दो प्रमाण उपलब्ध होते हैं; " **भूनेत्र वेद रहितः शाकः स्वाशांश हानितः ॥ षष्टिभक्तोऽयनांशाख्याः सौराश्चालन चालिताः ॥१॥ नवघ्नरविराश्यर्धयुता ग्राह्या कलादितः ॥२॥** " अर्थात् 'शक में ४२१ कम करके जो शेष बचे उसमें उसीका दशांश कम करके साठ का भाग देवे तो चालन देकर [नाक्षत्रमान के निकट में] चालित किये हुए सूर्य सिद्धान्तानुसारी अयनांश होते हैं ॥१॥ किंतु यह वर्ष के आरंभ **के समय** होते हैं। आगे और राशि को $\times \frac{९}{२}$ = करने से विकलादि होते हैं ॥२॥ इससे भी वही अयनांश आते हैं जोकि विधान १० और ११ में बताए गए हैं इस सब प्रमाणों की नीचे लिखे प्रकार एक वाक्यता होती है.

समीकरण

१	वर्ष की अयनगति = ५४ विकला	.... ज्योतिस्तत्व (१)
२	अयन के १ अंश पूर्ण होने में वर्ष $६६\frac{२}{३}$	.... ज्योतिस्तत्व (२)
३	एक वर्ष की अयनगति $१ - \frac{१}{१०} = .९' = ५४''$	.... सिद्धान्त रहस्य
४	,, ,, $१ - .१ = .९' = ५४''$	.... जातकार्णव
५	,, ,, $\frac{१ \times ३}{२००} = \frac{३}{२००} = .९' = ५४''$	.... ज्योतिर्निबंध
६	,, ,, $०.°०१५ = .९' = ५४''$	.... मुहूर्त सिंधु [१]
७	रवि राशि $\frac{१२ \times ९}{२}$ =	५४" एक वर्ष की अयनगति मुहूर्त सिंधु [२]

इन ७ प्रमाणों की एक वाक्यता से शक १८४८ में अयनांश २१°।२४'।'३ आते हैं। इसी में जातकार्णव का प्रमाण आ गया है। इसी से प्रि. गोविंदरावजी नें " बाकी ची दुप्पट करून १० नीं भागावें, भागाकार त्याच बाकींत वजा करावा" **ऐसे अशुद्ध अर्थ से १९°।१'।९" अयनांश बताये हैं। इससे अयन वर्ष गति** (१-.२=८'=) ४८" **होती है**

इसका प्रिं. साहब को भान भी नहीं है कि उपर्युक्त ७ जातक ग्रंथों के प्रमाणों से वह असिद्ध निश्चित हो गई है खैर उससे तथा अन्य ६ प्रमाणों से प्रिं. साहब का कथन असत्य सिद्ध होता है क्योंकि शक १८४८ मे किसी भी ग्रंथ के आधार से अयनांश १९ आते नहीं हैं। ऐसे विद्वान पुरुषोंनें ऐसा अनभिज्ञ की तरह असत्य अर्थ कर देना आश्चर्य है.

विधान ४६

खैर, यहां तो हम कह सकते हैं कि आपटे साहब को अन्य कोई कारण वश 'द्विः कृत्वा ' का ' द्विघ्नं कृत्वा ' अर्थ दिख गया होगा; किन्तु बिलकुल स्पष्ट रीति से जो वहां १९ अयनांश उस आधार के स्पष्टी करण में ही कहे गये हैं। वह कैसे नहीं दिखे. यदि दिखे थे तो वह क्यों छिपा लिये गये ? जब कि वह छपी हुई पुस्तक में विद्यमान हैं तो जातकार्णव किंवा सिद्धान्त रहस्य के समय के ही वह होने चाहिये कि नहीं ? यह भी आप न माने तो जिस शब्द कल्पद्रुम का आपने प्रमाण बतलाया है - वह शके १८०८ में छपा है कि जिसको आपके बातए शके तक ४० वर्ष हो गये थे; तब यदि आप मान लेकि उसके छपने [शब्द कल्पद्रुम को प्रकाशित होने] के समय के ही हैं - तोभी ४० वर्ष में क्या उसकी १ कला ९ विकला ही गति होती है !! यह तो स्वयं प्रिंसिपल साहेब ने - मानों ऐसा समझ लिया होगा कि - शके १८४८ के लिये छपे हैं तोभी यहां यह प्रश्न खडा होता है कि यह भविष्यत् के अयनांश ४० वर्ष पहिले ग्रंथकार क्योंकर कैसे छाप सकेगा ? यदि कंपोज के वक्त का मानते होतो क्या ४० वर्ष अयन गति की घडी [वाच] बन्द पड गई थी ? इस तरह भोलीभाली जनता को आंखों में धूल डालकर झीटा की निराधारता को मिटाने के मनोराज्य में सिर्फ यही एक आधार; इसका भी बनावटी अशुद्ध अर्थ करके असत्य अयनांशों को बताना झीटा गणना की इति श्री नहीं तो क्या है।

परीक्षण ४६ (अ)

पं. दीनानाथजीनीं या विधानावर बराच जोर दिला आहे. वास्तविक पाहतां या विधाना चा उल्लेख करणेंच अप्रासंगिक आहे. शिवाय मी त्यांना या श्लोकाचा आधार देऊन त्यांचें उत्तर मागितलें नव्हतें, आणि रैवतपक्षाला याचेंच मुख्य समर्थन आहे असे ही नाहीं. इतर समर्थनांत हें आणखी एक समर्थन आहे इत की च त्याची योग्यता व तशाच तऱ्हे ने पुणें सभेचारिपोर्ट पृ. २७ यावर याचा उल्लेख केला आहे. तरी ही दीनानाथजी त्याला नसते महत्व देऊन असें दाखवितात कीं आम्हीं दिलेला अर्थ चुकीचा आहे. तथापि तो एक अर्थ होऊ शकतो असेही ते कबूल करितात. त्यांचें म्हणणें कीं आमच्या अर्थ करण्या च्या रीती नें अयन गति ४८ विकला येते ती अतिशय कमी आहे. इतकी कोणत्याही ग्रंथांत

लिहिलेली नाहीं. दीनानाथजींनीं प्रारंभींच सांगून ठेविलें आहे कीं त्यांनीं बहुतेक सर्व ग्रंथ पाहिले आहेत. परंतु ते जर आतां भा. ज्यो. पृ. ३३० । ३३१ पाहातील तर त्यांना असें लिहिलेलें आढळेल कीं द्वितीय आर्य व पराशर सिद्धान्तांप्रमाणें अयन वर्ष गति सरासरी माना नें ४६.३ विकला येते. तसेच रा. पवार कृत रेवती 'योग तारे चा शोध' पृ. १४ मध्यें गणिता नें असें दाखविलें आहे कीं आपले ग्रंथांतील माना वरून कांहीं ताऱ्यांची वार्षिक अयन गति ४४,४३,४०,६ विकलां इतकी थोडी सिद्ध होते. या कारितां ४८ विकलां गती बद्दल आश्चर्य वाटण्याचें कांहींच कारण नाहीं. दीनानाथजींनीं द्वितीय आर्य व पराशर सिद्धान्त हे पुन्हां एक बार लक्ष पूर्वक पहावेत.

समाधान. ४६ (अ)

जिन विधानों के परीक्षण करने में प्रि. गोविंदरावजी अवाक् (चुप्) होगये हैं उन अग्रिम विधानोंके भी इस स्थल में एकत्रित करके एक जगह ही सिलसिले वार विधान १० से ४५ तक यानी ३६ विधान में लिखदिये हैं । यह बडे महत्व के और आपकी भूल को सुधारने के संबंध के होते हुवे भी यहां आप निरुत्तर होगये हैं । इसलिये मैं कह सकतां हूं कि " **परमतं स्वमते विनिवेशितं यदिन दूषित मादृत मेवतत्.** " इस न्यायानुसार वह आपको स्वीकृत हैं । और उसमे से कोई एक दो विधान के कुछ अंशपर जो कुछ परीक्षण लिखा गया है उससे विधान की परीक्षा न होकर स्वयं परीक्षण की परीक्षा हो जाती है कि यह न्याय संगत नहीं है । ऐसा " यह विधान अप्रासंगिक है, इसका उत्तर मैंने मांगा नहीं है । इत्यादि कथन से ही स्पष्ट हो जाता है । जहां अनेकानेक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा सिद्धान्त ग्रंथप्रोक्त और शुद्ध नाक्षत्रिक भगणों की एवं अयनांशों की चित्रभिमुख आरंभस्थान से एक वाक्यता सिद्ध करके झिटापिशियम आरभं स्थान दर्शक तारा हो नहीं सकती इसके अनेक कारण बताये गये हैं इसलिये वह कपोल कल्पित है ऐसा सिद्ध कर देने पर भी प्रि. साहब बहादुर को अपने चश्मे मे अभी उसका प्रसंग ही आया हुआ दिखता नहीं है ! जहां कोई सत्य वस्तु को असत्य बतलाने के उद्देश्य से अशुद्ध अर्थ करे यानी (बनावटी) अर्थ के सहारे भलती ही बात प्रसिद्ध करे किंवा प्रमाण के साथ लिखी हुई बात के कुछ अंश को छिपा कर छपी हुई बात को अब की बतावें तो वहां असत्य बात को प्रकाशीत कर उसके यथार्थ मतलब को समझा देना हरएक का कर्तव्य है । इसमें आपके उत्तर मांगने की प्रतीक्षा न्यायसंगत नहीं है ।

वस्तुतः आपके तर्फ़से अभीतक एक भी प्रमाण ऐसा नहीं बताया गया है कि ' इस ग्रंथ के आधार से झीटा यह रेवती की याने राशिचक्र की आरम्भ दर्शक योग तारा है । और न अयनांशों द्वारा इसका समर्थन हुवा है । फिर भी आप झूटा दम भर रहे हैं कि (उक्त

जातकार्णव का अशुध्द अर्थ भी) यह एक प्रकार का समर्थन है । किंतु एक झूट के समर्थन में यह दूसरी झूट है । ऐसी बातों से ही झीटा के तोतया रेवती पन का प्रदर्शन स्पष्ट हो रहा है । क्योंकि सिद्धान्त, करण, और (स्थूल ग्रंथ) जातक ग्रंथों में से किसी का भी झीटा गणना को तनिकसा आश्रय मिल जाता तो फिर ऐसा बनावटी अशुध्द अर्थ करने की आपको आवश्यकता ही क्या थी । और ' असे ही ते कबूल करितात ' इत्यादि बिना लिखी गतिसंबंध की बातें क्यों बनानी पडती । क्या वहां (विधान ४५ में) लिखा नहीं है कि 'ऐसे अशुध्द अर्थ से १९।१।९ अयनांश बताए है । और इससे अयन वर्ष गति ४८ विकला होती है इसका प्रि. साहब को भान भी नहीं है कि उपर्युक्त ७ जातक ग्रंथोंके प्रमाणों से वह गति असिध्द हो चुकी है । " इत्यादि प्रश्नों का उत्तर तो कहां से दे सकते हैं । अब तो केवल इष्टापत्ति टालने के लिये भा ज्यो. शास्त्र. के तर्फ अंगुली निर्देश कर " आढळेल" वगैरे का स्वप्न देख रहे हैं ।

इधर विधान ७ में सूर्य, सोम, वृध्द वासिष्ठ और सि. शिरोमणी और विधान १६ में सिध्दान्त सम्राट् इन ग्रंथों के अनेक प्रमाणों की एकतानता से अयन की उपपत्ति तथा छायार्क करणागतके अंतर द्वारा अयनांशों के साधन करने की मुख्य पध्दति सर्व सम्मतीसे सिद्ध की गई है । विधान १७-२६ में मुंजाल से तत्व विवेक पर्यंत के १० कोष्टकों में उन के वर्तमान कालिक अयनांश गणित द्वारा विशदरीति से बता दिये है । विधान २७-३९ में तारों से अयनांशसाधन कर उनकी और विधान ४० में उक्त १० ग्रंथोक्त अयनांशों की शुद्ध नाक्षत्र चैत्रीय मान से एकवाक्यता सिध्द करके बतादी है । इसमें सकल ग्रंथावलोकन का सार आगया है । इस लिये अब दीक्षितजी के (भा. ज्यो. के) यह वह पृष्ट देखो के कथन मात्र से काम नहीं चल सकता है । क्योंकि इनमें झीटा गणना की सब पोलपट्टी खुल गई है ।

मुख्य मुद्दों के ऊपर आप निरुत्तर होकर अब केवल ' अहोरूपं अहोध्वनिः ' का आलाप गा रहे हैं कि रा. पवार ने " कुछ तारों की वार्षिक अयनगति ४४, ४३, ४०·६ विकला बतलाई है । " लेकिन प्रि. गोविंदरावजी ने समझ लेना चाहिये कि यह अल्पगति= शुद्ध अयनगति–तारे की निजगति के तुल्य है । अतएव उन तारों की निजगति ध्रु. दिगंश २७० की ओर ६·२, ७·२, ९·६ के करीब होने से शुद्ध नाक्षत्र भोग से प्रतिवर्ष वह तारे पीछे हटते जाते हैं । अतएव वह अशुद्ध होने से उनके द्वारा अयनांशों का निश्चय करना अयुक्त है । इसी गणना में झीटा भी है । यदि उसकी निजगति जादा न लेकर रा. पवार कथित (४०"·६) भी लेवेंगे तो वर्तमानकालीन उसके भोग से गणित द्वारा पता लग जाता है कि वह शाके ३६२ में चित्राभिमुख आरंभ स्थान से सिर्फ १ महिने तक संलग्न थी सो आगे (५०".२–९".६=४०".६) प्रतिवर्ष हटती हुई वर्तमान

शाके १८९० में ३ । ५८ । ८ पीछे हटगई यानी झीटा भोग ३५६° । १ । ५२ होगया है । अतः ऐसे पीछे रींगने वाली झीटा का अब भी उक्त क्षणिक संबंध को अब भी बना रखना अयुक्त है ।

आपके पुनः द्वि. आर्य सिद्धांत को देखने की शिफारिश की उस (काशी का छपा म. प. द्विवेदीजी की टीका) में कलिमुख क्षेपक, पृष्ठ ३६ में रवि मंदोच्च ७७ । ४५ । ३६ और रवि बीज (वर्ष $\frac{\times ३८४ \times ६०}{१०५४}$ = +२१·"८६) लिखा है । तदनुसार विधान १८ में करणागत से छायार्कान्तर रूप ७ । ७ । ५७= अयनांश एंव विधान ४० में शुद्ध नाक्षत्र उच्च और ग्रंथोक्त उच्च की तुलनात्मक पद्धति से अंतर और फलांतर द्वारा शुद्ध नाक्षत्र चैत्रीय अयनांशों से उसकी एक वाक्यता निश्चित कर तत्कालीन अयनांश ९ । १४ ।६ सिद्ध करके बता दिये हैं कि जो १० ग्रंथों की एकतानता से संबद्ध होने से निःसंदेह रूप हैं । सो आप लक्षपूर्वक देख सकते हैं कि यहां तक के विधान व समाधानों द्वारा झीटा गणना की इति श्री होगई है या नहीं ।

परीक्षण ४१ (आ)

दीनानाथजीचें समीकरण (विधान १३ न्याय २) असें आहे कीं अयनगति+केंद्रगति= पूर्ण मंद केंद्रगति (१) =शुद्ध अयनगति+निर. उच्चगति (५०·२५+११·६०=६१·८४८०)= स्थिर राशि । उदाहरण—५८·४५६८ + ३·३९१२ = ६१·८४८० सूर्य सि. वरून

,, ५८·१८७४ + ३·६६०६ = ६१·८४८० आर्य सि. वरून

,, ५७·३२५० + ४·५२३० = ६१·८४८० ब्र. गु. सि. वरून

ही नजर बंदीची खेळ आहे. ३·३९१२ इत्यादि वार्षिक केंद्रगति लिहून लोकांना असें भासविण्याचा प्रयत्न केला आहे कीं सिद्धांत कारांनीं अयनगति कमी किंवा जास्ती अशा- रीतिनें लिहिली आहे कीं अयनगति व केंद्रगति यांची बेरीज हल्लीं उपलब्ध असलेल्या सूक्ष्म सायन अयनांश गतिचा ६१·८४८ विकला हा स्थिरांक यावा. परन्तु असें कधींच होऊं शकत नाहीं. सू. सि. वार्षिक उच्चगति ०·"११४ आहे व कोणत्याही सिद्धान्ता प्रमाणें ती १ विकलेहून अधिक नाहीं या पेक्षां पुष्कळ कमी आहे. पं. दीनानाथजी स्थिरांक ६१·"८४८ आणण्या करितां त्या त्या ग्रंथाची अयनगति त्या स्थिरांकांतून वजा करितात व तितकी स्वकपोल कल्पित कृत्रिमगति उच्चगति मानतात. त्यांनीं हें लक्षांत ठेवावयास पाहिजे होतें कीं सिद्धान्तकारास जर या स्थिरांकाचा बोध जाहला असता तर त्यांनीं उच्च- भगण त्या मानानेच अधिक सांगितलें असतें. ज्या कित्येक वसिष्ठसिद्धान्त सूर्य सि. इत्यादि ग्रंथकारांनीं अयनगति ५४ विकला मानिली आहे त्यांची संगति कशी लावावयाची हें त्यांनीं

दाखविलें नाहीं. (भा. ज्यो. पृ. ३२८–३३१ पाहा) त्यांना तेथें अशी कांहीं शकल सांपडली नाहींसे दिसते. तथापि हें ही उपपादन चैत्र किंवा रैवत पक्षाच्या मुद्याला सोडून आहे.

समाधान ४६ (आ)

प्राचीनों के शोधों का उच्छेद करने के लिये " देखिये प्राचीनों के परिमाणों में कितनी विभिन्नता एवं स्थूलता है। कई ग्रंथों के कई वर्षमान एवं कितने ही प्रकार के अयनांश हैं। " इत्यादि सत्याभासरूपी असत्य कोटीक्रमों से प्राचीनों के शोध और प्रमेयों को गलत बताकर उनके स्थल में आयते बने हुए सायन पंचांगों की नकलरूप पंचांगों को प्रचलित करने का ध्येय वाले प्रिं. गोविंदरावजी;-विधान ११-१४ में लिखे प्रकार प्राचीनों के (भगणादि परिमाणों द्वारा साधित उनके समय के) अयनांशों की आधुनिक (शुद्ध केंद्रायन गत्यन्तररूप) परिमाणों से तुलना करने के विवेचन को नजरबन्दी का खेल क्यों नहीं कहेंगे ! किंतु यदि आप (१) मंदकेंद्र, वर्षमान और अयनांशों के आपस के कार्य कारण संबंध को देखते, (२) 'वेधेनमया मध्य चंद्रोज्ञात: तत्रफल ऱ्हास वृध्यभावात्' [ग्रह कौतुक, भा. ज्यो. पृ. २५९] इत्यादि वेधसिद्ध केंद्र से मध्यम ग्रह को बनाने की प्रक्रिया का भाव समझते, (३) उसके साथ नाम मात्र उच्चगति, तथा तस्योच्चस्य चलनं वर्ष शतैर्नोपलभ्यते, इत्यादि कथन से उच्चके स्थिरत्व के हेतु को ध्यान में लाते, और (४) ' पातोन: स्फुटभानु: स्फुटभानूनोभवेत्पात: ' (सि. शि.) इत्यादि प्रमाण और विधान ७ में लिखे हुए ' अयनांशोपत्ते: सांप्रीतकोपलब्धिरेवगमकम् ' आदि का भावार्थ समझते तो बिना कोई आधार या प्रमाण के बताए " हल्ली असें कधींच होऊं शकत नाहीं। स्वकपोलकल्पित कृत्रिमगति उच्चगति मानतात। सिद्धान्तकारास जर या स्थिरांकाचा बोध जाहला असता तर त्यांनीं उच्चभगण त्या मानाचेच अधिक सांगितलें असतें. " इस तरह के उन्मत्त प्रलापों से सुपेदपर काला कर अपनी योग्यता का प्रदर्शन करा नहीं सकते। खैर अब तो भी विधान ११-१४ को पूर्ण देखिये आपकी सब शंका कुशंकाओं का उसमें विशद रीति से समाधान स्वयं हो जाता है। ग्रंथोक्त उच्चगति का हेतु और उपयोग बताया गया है कि जिससे उन्मत्त तरंग स्वयं अवाक् हो जाती हैं। सूर्य सि. के ' छायार्कोत्करणागते ' कथन से और वृ. वसिष्ठ के ' छायागणितागतयोर्भान्वोर्विवरं चलांशकास्तेवा ' कथन से अयनांश साधन का योग्य प्रकार कह दिया गया है। तब ' ज्या कित्येक ग्रंथकारांनीं ५४ विकला मानिली आहे ' इस प्रकार की वितंडा के लिये वहां स्थल ही रहता नहीं है। क्या आपकी गृध्र दृष्टि भा. ज्यो. पृ. ३३३ की " म्हणजे आमच्या ज्योतिष्यांनीं १·४ विकलेच्या फरकानें अयनगति शोधून काढली असें झालें। स्वतंत्रपणें इतकी सूक्ष्म अयनगति आमच्या लोकांनीं शोधून काढली हें त्यांस अत्यन्त भूषणास्पद आहे. " इस पंक्ति

की ओर नहीं पहुंची । यदि पहुंचती तो " अशी कांहीं शक्कल सांपडली नांहींसे दिसते " ऐसा भव्य बुद्धिमत्ता का पुष्पार्पण अवश्य ही नहीं किया जाता ।

विधान ४७

कुल भारतीय सिद्धान्त ग्रंथों में रेवती का उत्तरशर कहा है। और झीटा का शर १३ कला दक्षिण में है । इसलिये झिटापिशियम् को रेवती की योगतारा कहना गलत है ।

विधान ४८

यदि कहें कि प्राचीन काल में झीटातारा क्रांतिवृत्त के उत्तर में थी किंतु अब वह १३ कला दक्षिण में चली गई है । तो ऐसी अतिगतिमान् स्थानभ्रष्ट क्षणिक तारा से राशि चक्र का आरंभस्थान मानना गणित शास्त्र से बिलकुल अयुक्त है ।

विधान. ४९

पूर्व विधान (८,२७-२८) में सिद्ध किया गया है कि सूर्य सिद्धांतादि प्राचीन ग्रंथोंमें लिखे हुए भध्रुवक कदंब सूत्रीय हैं। इन सबमें जिस प्रकार चित्राका भोग ठीक ठीक १८०°।०' लिखा है इस प्रकार रेवतीका शून्य लिखा नहीं है। जैसे सूर्य और ब्रह्म सिद्धान्त में ३५९°।५०', सोमसि० में ३५९।३० वृ० वसिष्ठ और पितामहसि० में कुछ लिखा नहीं है। और आधुनिक ग्रंथ (१) भास्कराचार्य, (२) द्वि० आर्य सि०, (३) दामोदर भट्टीय, (४) सुंदर सि० और (५) ग्रहलाघव में जो ध्रुवक कहे हैं सो कृतदृक्कर्मक अर्थात् ध्रुव सूत्रीय कहे हैं। उनमें रेवतीका भोग शून्य लिखा है। तब यदि झीटाको रेवती मानते हो तो उसके शरके कारण कदंब सूत्रीय भोग ३५९°।१५' होता है। इसलिये झीटा की तारा आरंभ स्थान दर्शक या अयनांश साधक न होकर वह ५५ कला से कम है। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन सभी ग्रंथों से झीटा की तारा आरंभ स्थान से भ्रष्ट सिद्ध हो जाती है। इसलिये झीटा तारा भगणांतरूप रेवती हो नहीं सकती ।

विधान ५०

सिद्धान्त ग्रंथों में भगण के समाप्ति या आरंभ बिन्दुको रेवती विभागका अंत कहा है वहां तारेका नाम नहीं है। और ध्रुवको में रेवती तारेका भोग (उपरोक्त प्रमाणों से

करीब १ अंश कम कहा है। ऐसे ही रोहणी, हस्त, मूल और आश्लेषाके तारोंको ही पुंज के पूर्व में है और भरणी, कृतिका तथा मघा के तारे जिस प्रकार अपने पुंज के दक्षिण में कहे हैं उसी प्रकार रेवती तारा को भी पुंजके दक्षिण में कही है। तब इस पुंजका अंत्य बिंदु रेवती योग तारेसे पूर्व तर्फ होना ही चाहिये। इससे स्पष्ट है कि आरंभबिन्दु से रेवती की योग तारा भिन्न होकर वह अपने विभाग के अन्दर है विभाग के अंत (समाप्ति) में नहीं है। इसलिये झीटा को रेवती की योगतारा या रेवत्यंत बिन्दु सन्निध की मानना शास्त्रसिद्ध नहीं है।

विधान ५१

यदि क्षण भर के लिये " आरंभ स्थान में तारा होना चाहिये " ऐसा मान लिया जावे तोभी अब के वेधसिद्ध नाटिकल आल्मनाक में लिखे हुए पिशियम पुंज के तारों को देखते उनकी प्रति की प्राचीन ग्रंथोक्त प्रति से तुलना करने पर ज्ञात होती है कि ग्रंथोक्त रेवती तारा लुप्त हो गई है। अर्थात् प्रति छोटी होकर अपनी निज गति से उक्त स्थान से इधर उधर हट गई है। इसीलिये वर्तमान में नेत्रों से ठीक पहिचानने में आनेवाली तारा ग्रंथोक्त स्थान या आरंभस्थान में नहीं है।

परीक्षण ५१

रेवतीचा शर व भोग बहुतेक ग्रंथांमध्यें शून्य लिहिला आहे. व तो तारा बारीक आहे तरी आकाशांत यंत्र साधना शिवाय दिसत आहे. तेव्हां तो लुप्त झाला म्हणणें म्हणजे सत्याचा विपर्यास करणें आहे. जीं लक्षणें ग्रंथांत दिलीं आहेत त्याच लक्षणांनीं युक्त तो तारा आहे.

समाधान ५१

उक्त परीक्षण का उत्तर विधान (४७–५०) और आगे (५२–५४) में कहागया है सारांश रेवती के ग्रंथोक्त लक्षण झीटाके तारे में बिलकुल मिलते नहीं हैं। इससे झीटा सिर्फ पुंजांतर्गत तारा है रेवती यागतारा नहीं हैं। विधान ३७–३८ में बताया गया है कि साधारण निजगति के तारे भी कालान्तर में कुछ अंश इधर उधर खिसके हुए दिखते हैं। तब झीटा तो शीघ्रगतिमान तारा है। इसको ग्रंथोक्त स्थान भ्रष्ट कहने में सत्य का विपर्यास नहीं ! सत्य का विपयार्स तो इसे स्थिरप्राय मानने में है। इसकी निजगति नापने के लिये जो भी आज हमें इसके प्राचीन काल के वेध सिद्ध परिमाण मिलते नहीं हैं तो भी वर्तमान

कालीन ४९ वर्षान्तर के नीचे लिखे प्रकार उपलब्ध होते हैं। इसलिये उसीके द्वारा झीटा की कदंब सूत्रीय निजगति को (उदाहरण देकर) सिद्ध करके आपकी सेवा में अर्पित करता हूं।

झीटा तारे से अयनगति = अ

ज्योतिर्गणित (ज्यो. वि. केतकर कृत पृ. ३९२) में शाके १८०४ तारीख १-१-१८८३ इ. के समय के वेधसिद्ध विषुवांश क्रांति द्वारा झीटा का सायन भोग १८°।१४'।२२"·३ शर दक्षिण ०°।१२'।५९."६ लिखे हैं और आज हमें दो वर्ष आगे का नाटिकल आल्मनाक उपलब्ध होगया है. उसमें (शाके १८५३) तारीख १·१-१९३२ इ. के समय के झीटा पिशियमतारा नंबर ७४ वर्ग ५·५७ के लिखे आधारपर विषुवांश १७।३२·६३, उत्तर क्रांति ७।१२।५८·६५, और रवि परम क्रांति २३°।२६'।५५·२" यह वेध सिद्ध परिमाण लेकर झीटा का सायन भोग तथा शर का साधन लाग्रथम (घातांक) के गणित से निम्न लिखितानुसार करके बताता हूं।

झी = झीटापिशियम् के विषुवक्रांति से भोग शर साधन.

झी. क्रांति छाया घातांक	९·१०२४९८९	झी. विषुवकोज्या घा०	९·९७९३१४६
झी. विषुवांश भुज्या ,,	९·४७९११९४१	,, क्रांतिकोटीज्या ,,	९·९९६५४६१
अंतर=परम क्रांति छाया ,,	९·६२६३०४८	ऐक्य ब कोज्या ,,	९·९७५८६०७
झी. परम क्रांति	२२°।४७'।६·१"	न=	१८° ५९'६१
रवि परम क्रांति	२३।२६।५५·२	अ=	−० ३९·८२
अ=	−०।३९।४९·१	ब भुजज्या घातांक	९·५११०२७९
ब छाया घातांक	९·५३५१६७२	अ भुजज्या ,,	८·०६३७९७२
अ कोटीज्या ,,	९·९९९९७०९	ऐक्य शर भुजज्या ,,	७·५७४८२८१
ऐक्य भोग छाया ,,	९·५३५१३८१	झी. शर (दक्षिण)	०°।१२'।५९"·१
झी. सयन भोग=	१८°।५५'।३२·४"		

परिमाणों की तुलना	झीटाके सायन भोग.	शर.
शाके १८५३ (ता० १।१।१९३२) के	१८।५९।३२·४	दक्षिण ०°।१२'।५५"·१
शाके १८०४ (ता० १।१।१८८३) के	१८।१४।२२·१	,, ०।१२।५९·६
अंतर वर्ष ४९ में (अयनगति ५० ४१")	०।४१।१०·१	−।०।४·५

झीटा का शुद्ध अयनगति से परीक्षण = आ

ज्योतिर्ग० पृ० ८६ में लिखी शुद्ध अयनगति की सारणी से:—शाके १८०० मेषार्क समय के झीटा के (अयनांश) सायन भोग १८°।१०'।२५·०"

शाके १८५१ (ता०१-१-३२) पर्यन्त की शुद्ध अयनगति	४४।५८·३
,, ,, ,, अयनगति संस्कार	०·३
अयनगति से साधित झीटा का सायन भोग	१८।५५।२३·६
उपर्युक्त तारे से साधित ,, सायन भोग	१८।१५।३३·४

शुद्ध मान से झीटा के तारे के भोग में अंतर (वर्षगति ·१"६३) +८·८

शुद्ध परिमाणों की तुलना में झीटा की अशुद्धता.

उपर्युक्त गणित से जबकि शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान व अयनगति साधित सायन भोग से झीटा के तारे से साधित सायन भोग ५३ वर्ष में +८·८ विकला बढा है तो एक वर्ष में शुद्ध मान से अंतर पडने से झीटा का वर्षमानही निम्न लिखे प्रकार भिन्न (विकृत नाक्षत्र) हो जाता है।

$$\text{एक वर्ष में दिनान्तर} = \frac{८''·८ \times \text{शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान}}{५३ \times ६० \times ६० \times ३६०} = ·००००४६७९५ \text{ दि०}$$

शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान ३६५·२५६३७४४१७ दिन। शुद्ध चक्र भोग साधित
एक वर्ष में अंतर= +·००००४६७९५ दिन। उक्त गणित साधित

झीटा वर्षमान= ३६५·२५६४२१२१२ दिन। चक्र भोग से अशुद्ध है.
झीटा की अयनगति= ५०"·४१ – अंतर ·२२" = (शुद्ध अयनगति) ५०·"१९
इस प्रकार शुद्ध सूक्ष्म गणित से झीटा गणना अशुद्ध सिद्ध हो जाती है.

विधान ५२

हमारे सिद्धान्त ग्रंथों में तारों के अस्तोदय ज्ञात होने के लिये उनके कालांश १३।१४। १५।१७।२१ कहे हैं। वह सामान्यतः एक दो प्रति के तारों के कालांश १४ लेकर इनसे विशेष तेजस्वी के १३ कालांश, और छोटे तारों के तेज के अल्पत्व से अधिक कालांश = (+१=) १५, (+२=) १७, (+४=) ऐसे कहे हैं। इनमें एक तारा नक्षत्रों की योगताराओं

में भिन्नता न होने से १३ कालांश के तारों की प्रति (वर्ग) में अब भी विशेष अंतर दृष्टि में नहीं आता है। केवल छोटे छोटे तारका पुंज के अनेक ताराओं के नक्षत्रों में योगतारा की भिन्नता के कारण तथा सभी ताराओं की प्रति में कालान्तरजन्यरूप विकारित्व के कारण थोडा बहुत अंतर पडना स्वाभाविक बात है। तोभी वह इतने शुद्ध और (बिना यंत्र के सहाय्य से केवल नेत्रों से क्यों न हो) अनेक दिन के अनुभव द्वारा ठीक ठीक निश्चित किये हुए हैं कि; आधुनिक फोटोमेंट्रीके प्रकाश मापन के यंत्र साधित तारों की प्रति के एवरेज (सरासरी) से अब भी तुलना में कालांश के बराबर मिल सकते हैं। इतना ही नहीं तो समानान्तर के कालांशों १३ (+४=) १७, (+४=) २१ में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ प्रति के तारे विभाजित करने से उनकी प्रति के आरंभ समाप्ति मान तुलना में निम्न लिखितानुसार बराबर मिलते हैं। सू. सि. में :—"**स्वात्यगस्त्य मृग व्याध चित्रा ज्येष्ठाः पुनर्वसुः॥ अभिजिद्ब्रह्म हृदयं त्रयोदशभिरंशकैः॥ १२॥ भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यात्रिःसप्तकांशकैः॥ शेषाणि सप्त दशभिर्दृश्यादृश्यानि भानितु॥ १५॥**" '**शेषाणि भानि शततारा पूर्वोत्तरा भाद्रपदा रेवती संज्ञानि**" ऐसा लिखा है। इसमें सिर्फ रेवती तारे का मेल मिलता नहीं है। मिलता है सो झीटा की अपेक्षा म्यूपिशियम से मिलता है.

तारों के कालांशों की नाटिकल आलमनाक में लिखी हुई प्रति से तुलना

कालांश १३		कालांश १७		कालांश २१	
वर्ग –१.५८ से + १.२२ एवरेज .२४		वर्ग २.५७ से ३.८४ एवरेज ३.०९		वर्ग ४ से ४.२७ एवरेज ४.०९	
नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति	नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति	नक्षत्रों के ग्रीक नाम	प्रति
स्वाती Arcturus	+०.२४	शततारा L Aquarius	३.८४	भरणी Arities	४.००
अगस्त्य Canopus	–०.८६	पूर्वा भाद्रपदा Markab	२.५७	पुष्य D Cancri	४.२७
मृग B orionis	+०.३४	उ. भाद्रपदा Alpherat	२.८७	मृगशिर Z 2orion	४.००
व्याध A Canis maj	–१.५८	तारे ३ जोड	९.२८	तीनों तारों का जोड	१२.२७
चित्रा Spica	+१.२१	सरासरी ३.०९ इससे झीटापिशियम नं. १ प्रति ५.५७		सरासरी ४.०९ इससे म्यूपिशियम प्रति ४.५ का स्वरूपांतर से मेल मिलता है। सिर्फ ग्रंथोक्त कालांश १७ से कालांश ४ अधिक होते हैं।	
ज्येष्ठा Antares	+१.२२	,, ,, ,, २ ,, ६.६०			
पुनर्वसु Pollux	+१.२१	मेल मिलता नहीं है अत: यह रेवती की तारा नहीं है.			
अभिजित् Vega	+०.१४				
ब्रह्महृदय Capella	+०.२४				
तारे ९ जोड	२.१३				
सरासरी	०.२४				

परीक्षण ५२

कालांश हे प्रत्यक्ष आकाशांत पाहून बराचसा अनुभव घेवून ठरवावे लागतात. तसे ते ठरविले असावेसें वाटत नाहीं. कारण ते त्या त्या तार्‍यांच्या चाक चक्याच्या मानानें ठरविलेल्या प्रतिशी विसंगत आहेत. याचे विवेचन पुढे केलें आहे. या कारणानें कालांश व प्रति यांचा सांगड घालून त्यावरून निर्णय करणें चुकीचें आहे. ज्या ज्या मानानें तार्‍याची प्रत अल्प; त्या त्या मानानें त्याचे कालांश कमी असावयास पाहिजे होती परंतु तसें नाहीं याची स्पष्टता खालील कोष्टकावरून होईल.

कालांश १३	कालांश १४	कालांश १५
स्वाती L Bootis +०·२४	हस्त D Corvi ३·११	कृत्तिका Eta Tauri २·९६
अगस्त्य L Argus −०·८६	श्रवण Antaris L Acquali ०·८९	अनुराधा D Scorpi २·५४
मृगव्याध L Canis Major −१·५८	उ. फाल्गुनी Theta Leonis ३·४१	मूल ४५ O Phichi ४
चित्रा L Virginis +१·२१	पू. फा. D Leonis २·५८	L Scorpionis १·७१
	धनिष्ठा L Dalphini ३·८६	आश्लेषा L Cancri ४·५७
ज्येष्ठा L Scorpi antaris +१·२२	रोहिणी Aldeberon L Tauri १·०६	आर्द्रा Betelguse (of varginy Magnitude from 1 to 2) L Orionis
पुनर्वसु Pollux +१·२१	मघा Regulus L Leonis १·३४	
अभिजित् L Lyris, vega +०·१४	विशाखा I Librae ४·६६	पू. षाढा D Sagitaris १·८४
ब्रह्महृदय L Augiri +०·२१	अश्विनी B Arities २·७२	उ. षाढा S Sagitaris २·१४
	L Arities २·१३	
(एवरेज ०·२३)		(१६·७१)

कालांश १७	कालांश २१	
शततारका L Aquarius ३·८४ पू. भाद्र Marcob L Pegasi २·५७ उ. भाद्र Alpherat L Andromede Algenib, २·१५ G Pegasi २·८७ रेवती Zeta Pisoium ५.५७ वह्नी B Tauri १·७८ ब्रह्मप्रजापती D Aurigae ३ ५ अपांवत्स Theta Virgo ४·६६ आपः Xi Virgo ३·४४	भरणी ४·० ४१ Arities ३५ Arities पुष्य D Cancri ४·० मृगशीर्ष L Orionis ४.०	पं. दीनानाथ यांनीं आपले उताऱ्यांत कालांश १४ व १५ चे तारे वगळले आहेत. ते कां न कळे उतारा अपुरा दिल्यानें खोटी अनुमानें निघतात. कालांश — प्रति १३ — −०·८६ ते १·२२ १४ — +०·८९ ते ४·६६ १५ — १·७१ ते ४·५७ १७ — १·७८ ते ४·६६ ० ते ५·५७ २१ — भर: पुष्य मृग

कालांश व ताऱ्यांच्या प्रति यांच्या कोष्टकावरून या प्रमाणें संबंध दिसतो यावरून नियम बसत नाहीं।

समाधान ५२.

जिन ग्रंथोंके आधारपर झीटा की शास्त्र शुद्धता का आभास बतलाया जाता था उन्हीं ग्रंथोंके कहे कालांशों के अंतर्गत झीटापिशियम की प्रति (वर्ग) को नहीं आता देख कर प्रि. गोविंदरावजी घबरा गए हैं; क्यौंकि इसी के प्रतीकार की धुन में ' यह कालांश तो प्रत्यक्ष देख कर अनुभव किये हुए निश्चित शुद्ध होते तो आधुनिक सूक्ष्ममान के प्रत्येक तारेकी तुलनामे ठीक ठीक मिल जाते किंतु यह विसंगत अतएव विश्वसनीय नहीं है ' इस प्रकार सिद्धांत ग्रंथोंके महत्व को घटाने के लिये ग्रंथोक्त भोग शरसे मेल नहीं खाने वाली ऐसी अनुक्त ताराओं के आधुनिक प्रतियों द्वारा हजारों वर्ष पहिले कहे कालांशों की विसंगतता बतलाई जानेसे यह परीक्षण ही स्वयं असंगत, गलत एवं अयोग्य होगया है। वस्तुत: ऐसा अंतर तो आधुनिक पाश्चात्य गणित साधित ग्रंथोंमें भी निम्नलिखितानुसार हो सकता है (ज्योतिर्गणित केतकर = के और आपटे = आ देखिये.)

कालांश १३			कालांश १४			कालांश १५		
न.	के.	आ.	न.	के.	आ.			
स्वाती	१	०·२४	हस्त	२·३	३·११	कृत्ति.	३	२·९६
भग	१	−०·८६	श्रव.	१·२	०·८९	अनु.	२½	३·५४
मृ. व्या.	१	−१·५८	उ. फा.	२	२·५८	मूल	४	१·७१
चित्रा	१	१·२१	पू. फा.	३	३·४१	आश्ले.	४	४·५७
ज्येष्ठा	१·२	१·२२	धनि.	३½	३·८६	आर्द्रा	१	रूपविकारी
पुन.	१·२	१·२१	रोहि.	१	१·०६	पू. षा.	३	२·८४
अभि.	१	०·१४	मघा	१·२	१·३४	उ. षा.	२½	२·१४
ब्र. हृ.	१	०·२१	विशा.	४½	४·६६			
			अश्वि.	३·२	३·७२			
जोड		१·७९	जोड		२३·६३	जोड		२०·७६
सरासरी		+ ०·२२	सरासरी		२·६३	सरासरी		२·९७

ऐसे ही कालांश १७ में मूल प्रयोग नक्षत्रों में भिन्न अन्य तारों में एवं का. २१ में भी थोडा अंतर है।

उक्त (के. आ.) दोनों मान पाश्चात्यों के पुस्तकों के आधारसे लिखे गये हैं। इनमें १०।१२ तारों में अंतर है सो क्या दोनों मेसे एक परिमाण गलत हो सकता है ? नहीं। क्योंकि स्थूल सूक्ष्मका विचार करते, तारोंकी भिन्नता को अलग करके ३०।४० वर्ष के रूपविकारित्व को देखते यह अंतर नहीं रह सकता है। इसी प्रकार उक्त कालांशों को तो आज हजारों वर्ष होगये हैं तब रूपविकारित्व से महदंतर पडना स्वाभाविक है। उसमें भी वह नेत्रोंसे निश्चित किये हैं। यह फोटो उतारकर मंत्रोंसे नापे हुए हैं। इतना होते हुए भी भलते ही तारों को बतलाकर थोडेसे अंतर से उन ग्रंथों को अविश्वसनीय एवं असंगत बता देना योग्य कैसे हो सकता है।

ऐसा होते हुए प्रि. आपटे के कहे हुए भिन्न तारों से भी यदि उक्त वर्ग की सरासरी लेकर संपूर्ण कालांशों की तुलना की जाय तो निम्न लिखितानुसार बराबर मिल जाती है तो यह क्या ग्रंथोक्त की शुद्धता का महत्व पूर्ण प्रमाण हो नहीं सकता ! तथा विचार पूर्वक देखा जाय तो प्रति के आरंभिक अंकों का अनुक्रम भी ठीक ठीक मिलता है। छोटे तारों के रूपविकारित्व से समाप्तिभाग में थोडी अस्ताव्यस्तता होना ही उसके प्राचीनत्व की दर्शक है। अतः हमारे ग्रंथोक्त कालांश शुद्ध एवं विश्वसनीय हैं।

कालांश	आरंभ प्रति की समाप्ति	सरासरी
१३	−१.५८ से +१.२२	०.२२
१४	+०.८९ से +४.६६	२.६३
१५	१.७१ से ४.२७	२.९७
१७	२.५७ से ३.८४	३.०९
२१	४.०० से ४.२७	४.०९

परीक्षण ५२ (आ)

बर्जेस सू. सि. इंग्रजी भाषांतर पृष्ट ३६८, ३६९ यांत दिलेला मजकूर लक्षांत ठेवण्याजोगा आहे। त्याचा अर्थ असा आहे कीं "कालांशाप्रमाणें केलेलें हें ताऱ्याच्या तेजाचें वर्गीकरण फार चमत्कारिक व विलक्षण आहे. १३ कालांशांच्या वर्गामध्यें बहुतेक तारे पहिल्या प्रतीचे सांगितले आहेत। परंतु पुढें रोहिणी, मघा, उत्तराफाल्गुनी, श्रवण हे तारे पहिल्या प्रतीचे असून ही १४ कालांशाचें वर्गात सांगितलें आहेत। पहिल्या दोन प्रति मध्यें असणारा आर्द्रा नक्षत्राचा तारा १५ कालांशांत सांगितलेला आहे. १७ कालांशाचें यादींत तर उत्तरा भाद्रपदाचा तारा दुसऱ्या प्रतिचा व सूर्य तेजांत कधीं न लोपणारा असून ही सांगितला आहे। २१ कालांशाचे यादींतील तारे कमी कालांशाचे जे कांहीं तारे सांगितलें आहेत त्या पेक्षां कमी तेजस्वी नाहींत. त्यांतील भरणी तारा जर तिसऱ्या प्रतीचा आहे।" कमी तेजस्वी ताऱ्यांचा विचार केला तरीही या वर्गीकरणाची विसंगती स्पष्ट आहे। विशाखा तारा पांचव्या प्रती चा, व उत्तराफाल्गुनी ४ थ्या प्रतीची, धनिष्ठा ४ थ्या प्रतीची घातली आहे। त्या पेक्षां तेजस्वी कृत्तिका, अनुराधा, पू. षाढा, उत्तराषाढा. १५ कालांशांत व पू. भा., उ. भा. बन्हि हे ही ३।२।२ या प्रतीचें तारे असूनही १७ कालांशांत सांगितलें आहेत. श्रवण, स्वाति धनिष्ठा, उ. भाद्रपदा व ब्रह्महृदय हे तारे सूर्य तेजांत विलुप्त होत नाहींत असे सूर्य सिद्धांत अ. ८ श्लो. १८ व सोम सिद्धांत, वसिष्ट सिद्धांत यांत सांगितलें आहे। मग यांचे कालांश सांगण्यांचें महत्व काय? अर्थात हे कालांश प्रत्यक्ष अनुभव पाहून लिहिलेले आहेत असें दिसत नाहीं.

समाधान ५२ आ.

ज्यो. वि. श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर कृत भारतीय ज्योतिर्गणित (पृष्ट १५१-५३) का लेख ध्यान देने लायक है। वह ऐसा है कि "अगस्त्याचे दर्शन लोप १२ कालांशांनीं, लुब्धकाचे १३ कालांशांनी, सामान्यत: तेजस्वी ताऱ्यांचे १४ कालांशांनीं व लहान ताऱ्यांचे

त्यांच्या तेजाच्या अल्पत्वाच्या मानानें त्यां पेक्षां अधिक कालांशांनीं होतात। कालांशांस ६ नें भागिलें म्हणजे घटिका येतात। या घटिका व तान्यांचे उदयलग्न यांच्या साह्यानें **लग्न साधावें** या लग्नास **उदयार्क** म्हणतात। त्याच घटिका व तान्याचें अस्तलग्न यांच्या साह्यानें **विलोमलग्न** साधावें. या लग्नांत ६ राशी वजा करून येणाऱ्या वजा बाकीस **अस्तसूर्य** म्हणतात। तान्यांचा उत्तर शर ज्या मानानें मोठा असतो त्या मानानें त्याचा अक्षदृक्कर्मज कालात्मक संस्कार ही मोठा असतो। तान्याचा शर जितका मोठा असेल व स्थलाचे उत्तर अक्षांश जितके अधिक असतील तितक्या मानानें **उदयार्क** व **अस्तसूर्य** यांमधील अंतर कमी असतें। ज्यास्थळीं ज्याताऱ्याचे उदयास्तार्क तुल्य असतात किंवा उदयार्कापेक्षां अस्त सूर्यच अधिक असतो त्या स्थलीं तो तारा कधींच अदृश्य होत नाहीं। ज्योतींचीं दर्शनादर्शनें कालांशांवर अवलंबून नसून संध्यारुण दीप्तीप्रमाणें ज्योतींच्या उदयास्तकालीं सूर्याचे क्षितिजाखालीं जे दृङ्मंडलीय नतांश असतात त्यांवर अवलंबून असतात, असें रा० केतकर यांचे मत आहे। अशा नतांशापासून आलेले दर्शनलोप कालांशापासून येणाऱ्या दर्शनलोपापेक्षां सूक्ष्म असतात हें खरें आहे. पण वास्तविक महातां दर्शन लोप नतांशावर अवलंबून नसून सूर्य व ज्योति यांमधील सूत्रात्मक अंतरा वरच अवलंबून असतात, असें सूक्ष्मविचारांती दिसून येईल. **सूर्याची दीप्ति त्याच्या भोंवतीं वर्तुलाकार गतीनें फांकत जाते**। ज्योति दृश्य असण्यास त्याचें सूर्यापासून जें परम अल्प सूत्रात्मक अंतर असावें लागतें तत्तुल्य व्यासार्धानें सूर्या भोंवतीं काढिलेल्या **वर्तुलाच्या टापूच्या बाहेर तो कोठेंही असला तरी तो दिसलाच पाहिजे**। मग त्याचे क्षितिजाखालील नतांश पठित नतांशापेक्षां कमी असले तरी हरकत नाहीं। येथें संध्यारुण दीप्तीचा दाखला देतां येत नाहीं। कारण संध्या दीप्ती क्षितिजाच्या कोणत्याहीं बिंदूपाशीं दिसली तरी चालते। उलट ज्योतीचा सूर्य प्रकाशा मुळें लोप होण्यास तो प्रकाश प्रत्यक्ष त्या ज्योती पर्यंत पोंचला पाहिजे; क्षितिजाच्या इतर बिंदुपर्यंत पोहोंचून उपयोग नाहीं."

ऐसा ही हमारे सिद्धान्त ग्रंथों में लिखा है "**अष्टादश शताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदया सुभिः ॥ विभज्य लब्धाः क्षेत्रांशास्तैर्दृश्या दृश्य ताथवा ॥१६॥ प्रागेशा मुदयः पश्चादस्तो दृक्कर्म पूर्ववत् ॥ गतैष्य दिवसप्राप्तिर्भानु भुक्त्या सदैवहि ॥ १७ ॥**" (सू. सि. अ. ९) "**काष्ठांशैरधिकैरेभ्यो दृश्यान्यल्पैरदर्शनम् ॥११॥ तल्लग्नाद्यत्र कालांशा स्तल्लग्रा सुहृता गतिः ॥ राशिलिप्ताहृतास्यातां कालभुक्ती तयोरुभे ॥१२॥ सूर्यो सूर्याधिकेन्यस्मिन्नपि षड् भानि निक्षिपेत् ॥ सूर्यास्त कालिकौ कुर्यात्तौच सूर्यास्त ताडितौ ॥१७॥ इतरान्तस्थयान्याभिधनर्णं तत्फलं तथा ॥१८–२०॥** (सोमसिद्धांत अ.७) एवं ब्रह्मसि. (अ २ श्लो. २२६-३४) वृद्धवसिष्ठ सि. (अ. ९ श्लो. १४–२०) ज्यो. कोल्हटकर ने लिखे हैं सो ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तानुसार लिखे हैं। तथा भारतीय ज्यो. शा. (पृष्ठ ४४७–४९) में कालांश संबंध का वर्णन है। अंत्य में कहा है कि "**आमच्या ग्रंथांतले कालांश आमच्याच देशांत**

ठरविलेले आहेत; ' टालमीच्या कालांशांविषयीं मी असें ह्मणूं शकतों कीं त्यानें ते स्वानुभवानें दिले नाहींत । " सारांशः-हमारे ग्रंथों में लिखे हुए कालांश स्वानुभवशुद्ध हैं । इसलिये वर्तमान कालिक शुद्ध सूक्ष्म गणित के पंचांगों में भी उक्त कालांश पद्धति के अनुसार ही ग्रह ताराओं के उदयास्तका साधन किया जाता है। इतना ही नही तो इसके अतिरिक्त दूसरा [नतांशादि का] साधन अभीतक प्रचार में आया नहीं है । क्योंकि प्राचीन साधन ही जब कि दृक्प्रत्यय में ठीक ठीक मिलता है फिर दूसरे साधन की आवश्यकता ही क्या है । अतः यह हमारे ग्रंथों का कितना बडा गौरव है ।

लेकिन एक झीटा तारे की प्रति (वर्ग) संपूर्ण आर्यग्रंथोक्त रेवती के ही (कालांश के वर्ग में) नहीं; २७ नक्षत्रों के पुंज की कुल ताराओं के उक्त कालांशों के वर्ग के अंतर्गत न होने से प्रस्तुत परीक्षण मे संपूर्ण आर्यग्रंथोक्त कालांशों को विसंगत कह दिया गया है 'और कालांश तथा प्रति (वर्ग) की सांगड डालकर उस पर से निर्णय करना गलत है; ऐसा बताने के लिये जबकि इसकी पुष्टि में प्राचीन व अर्वाचीन किसी भी आर्य विद्वान की सम्मति नहीं मिलनेसे; आर्यावर्तीय नाक्षत्र गणना को सायन मान के तर्फ निदान ४ अंश तोभी हटादें इस उद्देश से जिन्होंने झीटा को रेवती का स्वांग दिया है । उनमें से एक प्रो. वर्जेस साहब बहादुर की शरण प्रि. आपटे साहब बहादुर को लेनी पडी है । अस्तु । इसमें आपने सिर्फ एक प्रमाण बताया है किः-"अभिजित, ब्रह्महृदयं, स्वातीं, वैष्णव वासवाः ॥ अहिर्बुध्न्य मुदक्स्थत्वान्नलुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥ १८ ॥ ऐसा सू. सि., सोमसि. ' वृ. वसिष्ठ सिद्धांत में लिखा है. तब इन तारों के कालांश कहने की आवश्यकता क्या थी" इस प्रश्न को अब हमें गणितद्वारा हल कर देना है । जैसा कि ऊपर सोम सिद्धांत व ब्रह्मगुप्त के अनुसार ज्यो. कोल्हटकर महोदय ने कहा है । तथा सू. सि. की सुधा वर्षिणी। एवं ग्र. लाघवादि की टीकाओं में म. पं. सुधाकर द्विवेदी ने उपपत्ति बताई है । सूर्य सिद्धांतादि प्राचीन ग्रंथों के अन्यान्य परिमाणों में जहां स्थल विशेष का संस्कार दृष्टि गोचर होता है उस को तथा वेदांग ज्योतिष के दिनमान की घट बध को देखने से पता चलता है कि उज्जयनी मध्यरेषा= कुरुक्षेत्र के उत्तर में अक्षांश ३६ उत्तर के अनुसार क्षेत्रांश हमारे सिद्धांत ग्रंथों में कहे गए हैं । और ' परमाऽपक्रमज्यातु सप्तरंध्र गुणेंदवः ' (सू. सि.) के कथन से उस समय परमक्रांति २४ थी। तथा विधान ७ (पृष्ठ ५१-५२) को. नं. ५ (अ ब) में लिखे तारों के भोगशर के गणित द्वारा उपपत्ति करके बताता हूं ।

कालांशकी व्याख्या.

अक्षांश ३६ पर सूर्य के उदय और अस्त के आगे पीछे २२°-२९° कालांश तक (जो मंडलाकार लघुत्तम से महत्तम तक) संधि प्रकाश रहता है । उसको हटाकर जो तारा

अपने चाक चक्षय (तेजस्विता= दीप्ति) के परिमाण से दृष्टि गोचर होने लगता है उस प्रति (वर्ग) को काल के अंश का रूप देकर कहा है सो कालांश हैं। अतएव 'तारे के तेजस्विता के तारतम्य से सूर्य के चौगिर्द मंडलाकार अवधि (मर्यादा) के दर्शक कालांश हैं' जोकि 'स्वात्यगस्त्य' श्लोकों १२-१५ में १३,१४,१५,१७,२१ के वर्ग में कहते हुए' 'सौक्ष्मात्रिसप्तकांशकैः' 'तारों के अल्प प्रकाश के कारण वह २१ कालांश में पढे गए हैं इस कथन से भी उक्त व्याख्या; पुष्ट होती है। (सांप्रातिक वर्ग में जो थोडा फर्क दृग्गोचर होता है सो तारों के रूप विकारित्व से है।) इस (कालांश रूप) अवधि के अंदर तारा अदृश्य और बाहर दृश्य होता है।

क्षेत्रांश और कालांश का संबंध.

ज्योति के शर और देखने वाले के स्थल विशेष से उक्त कालांश साधित लग्नरूप अंशोंको क्षेत्रांश कहे हैं। इसी के द्वारा "अष्टादशशताभ्यस्ता०" (श्लो. १६-१७) उस तारे का दृश्यादृश्य काल निश्चित हो सकता है। अत एव (१) कालांश और (२) क्षेत्रांश यह दोनों बातें अलग अलग हैं। या मोटे तौरपर यौंभी कह सकते हैं कि क्षेत्रांश के साधन-रूप कालांश हैं क्योंकि "तैर्दृश्या दृश्यता" इन्हीं के अनुसार तारों का दृश्यादृश्यता कहे गई है।

सतत दिखने वाले तारोंकी उपपत्ति.

भारत में उत्तर अक्षांश होनेसे दक्षिण शर के तारोंका नित्योदयास्त ही रवि के उदयास्त की अपेक्षा कम होता है। उनके लोप दर्शन के कालांश वही होकर क्षेत्रांश बढ जाते हैं। इससे उनका दक्षिण शर जैसा जैसा बडा हो वैसे वैसे उनके लोप का समय बढते जाता है। अतः वह हमें सतत दिख नहीं सकते। किंतु उत्तर अक्षांश में जहां क्षेत्रांश ने कालांश की अवधिका उल्लंघन किया कि वह तारा सतत दिखता रहता है। यद्यपि यह अवधि विषुवांश व क्रांति के अनुसार ही शुद्धता से ज्ञात हो सकती हैं तथापि रवि के उदयास्त की अपेक्षा के कारण उसका अंतर धनर्ण होकर केवल तारे के शर के तुल्यता में आजाता है। इस उपपत्ति से निम्न लिखित समीकरण हो सकते हैं।

समीकरण और उदाहरण.

(१) लोपदर्शनावधि रूप शर = कालांश भुजज्या ÷ अक्षांश छाया.

अवधि रूप शर

ज्ञेयराशी कालांशावधिरूप } अक्षांश व कालांशों को ज्ञात राशी मानकर समीकरण

शर = $\frac{\text{कालांश भुजज्या}}{\text{अक्षांश छाया}}$ =

कालांश	भुज्या घातांक	शरछाया घा०	शरउत्तर
			अं. क.
१३	९·३५२०२८०	९·४९०८२७०	१७ १२
१४	९·३८३६७५२	९·५२२४१४२	१८ २५
१७	९·४६५९३५३	९·६०४६७४३	२१ ५५

विधान ७ (पृष्ठ ५२) कोष्टक नं. ५ (ब) के अंदर और तेजस्वी तारों के शर को तथा उक्त कालांश के वर्गों को देखने से ज्ञात होता है कि अभिजित् आदि ग्रंथोक्त ६ तारों के ही शर उपर्युक्त अवधिरूप शर की अपेक्षा अधिक हैं। इसलिये निम्न लिखित अवधिरूप अक्षांश के उत्तर के प्रदेश में यह ६ तारे सतत दिखते ही रहेंगे।

समीकरण और उदाहरण.

(२) लोपदर्शनावधिरूप अक्षांश = कालांश ÷ ज्याशरछाया

प्रस्तुत ६ तारोंके अवधिरूप अक्षांश.

ज्ञेयराशी दृश्यादृश्य क्षेत्रांशावधिरूप उत्तर } ज्ञातराशी = कालांश और शर समीकरण

अक्षांश = $\frac{\text{कालांश भुजज्या}}{\text{शरछाया}}$

शर	शर छाया	अक्षांश छाया	अक्षांश
अं क			अं क.
+६१ ४४	१०·२६९४६४६	९·०८२६२३४	६।५४
+२२ ५२	९·६२५०३५६	९·७२७०५२४	२८। ५
+३० ४९	९·७७५६२०६	९·५७६४६७४	२०।४०
+२८ १८	९·७४९०९७४	९·६३४५७७८	२३।१९
+३२ २	९·७९६३५१३	९·५८७३२३९	२१। ८
+२५ ४३	९·६८२७०९८	९·७८३२२५५	३१।१६

उपर्युक्त उपपत्ति से स्पष्ट हो जाता है कि अक्षांश ३१।१६ के उत्तर के प्रदेश में प्रस्तुत ६ तारों का अस्त लोप कभी नहीं होता क्योंकि यह तारे कालांश रूप अवधि (टापू) के बाहर के सदा दृश्य क्षेत्र में स्थित हैं। इसलिये हमारे आर्य ग्रंथों में "**अभिजित्**॥६॥ **उदक्स्थ त्वान्नलुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः** (सू. सि. ९.१८)' अभिजित् आदि ६ तारे (बहुत) उत्तर में स्थित होनेसे सूर्य के संधि प्रकाश से इनका लोप (अस्त) नहीं हो सकता है' ऐसा लिखा है सो योग्य है। तथा इसी प्रकार उक्त तारोंका:—

चरांश और कालांशांतर गणित द्वारा सदा दृश्यत्व

(अयनांश ० अक्षांश+३६ र. प. क्रांति २४ के गणित से)

न्यास १	१	२	३	४	५	६
नक्षत्रों के नाम तारों के ग्रीक नाम प्रति (वर्ग) दीप्ति	अभिजित् व्हीगा ०.१४	ब्रह्महृदय कॅपेला ०.२१	स्वाती आ-र्कटयूरस ०.२४	श्रवण आल्टेर ०.८२	धनिष्ठा अल्फा डे० ३.८६	उ. भाद्रपदा आल्फेराट २.१५
ताराओं के	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
सायन भोग	२६१ २८	५८ १	१८० २४	२७७ ५५	२९३ ३३	३५० २८
तारों के शर	+६१ ४४	+२२ ५२	+३० ४९	+२९ १८	+३३ २	+२५ ४३
तारों क विषुवांश	२६४ ५४	४८ ४३	१९३ ५९	२७६ ५६	२८९ ५६	३४० ३६
रवि विषुवांश	२६० ४०	५५ ५५	१८० २२	२७८ ३९	२९५ ३०	३५१ १७
तारा क्रांति	+३७ ५३	+४२ ३२	+२७ ४५	+ ५ ३०	+१० ४१	+१९ ३७
रवि क्रांति	−२३ ४३	+२० ११	− ० १०	−२३ ४५	−२१ ५४	− ३ ५२
ता. र. विषुवांतर	+ ४ १४	− ६ ५६	+१३ ३७	− २ ४३	− ५ ३४	−१० ४१
ता. रवि क्रांत्यंतर	+६१ ३६	+२२ २१	+२७ ५५	+२९ १५	+३२ ३५	+२३ २९
शर क्रांत्यंतरांतर	− ० ०८	− ० ३१	− २ ५४	− ० ०३	− ० २७	− २ १४
रवि चरांश	−१८ ३७	+१५ ३०	− ० ७	−१८ ३९	−१६ ५९	− २ ४९
तारा चरांश	+३४ २५	+४१ ४८	+२२ २८	+ ४ १	+ ७ ५३	+१५ ०
चरांशांतर	+५३ २	+२६ १८	+२२ ३५	+२२ ४०	+२४ ५२	+१७ ४९
कालांशावधि	+१३ ०	+१३ ०	+१३ ०	+१४ ०	+१४ ०	+१७ ०
सदा दृश्यांश	+४० २	+१३ १८	+ ९ ३५	+ ८ ४०	+१० ५२	+ ० ४९

इस तरह अंतिम पंक्ति से सदा दृश्यत्व सिद्ध होता है। एवं सिद्धांत तत्व विवेक में "**तथैव साध्ये दिनरात्रिमाने खेटर्क्षयोस्तद्गणित प्रसिध्यै ॥ १२५ ॥ सिद्धे गते स्वोन्मितितो विशुद्धं तद्भ्रम्यमूह्यं किल तस्य सिद्धौ ॥१२६॥ दृग्बिंब संदर्शनमस्ति तत्र स्थूलंतदल्पे त्वधिकेऽथ सूक्ष्मम् ॥१३३॥ स्थूलंयतोऽस्त्यल्पकतैजसंयत्, सूक्ष्मंतुतच्चाधिक तैजसंस्यात् स्थूल सूक्ष्माण्यपीत्यादि भेदाद्दृग्योग्यमस्तियत् ॥ भिन्नास्तत्समयास्तेषाम् ० ॥१३६॥ नक्षत्राणांच कालांशैर्ज्ञातैर्बिंबस्य साधनम् ॥१४९॥ अभिजितेत्वाद ॥१८२॥ व्यक्षोत्तरेतु कालांशाधिकोत्तर शरान्तरे ॥ १८२ ॥ उक्तास्तेऽप्यर्कतो बिंबंदूरेऽतस्तन्नलुप्यते ॥ १८३ ॥**

(उदयास्ताधिकार में) ऐसा लिखा है । तदनुसार गणित से.

अस्तोदय गणित द्वारा ६ ताराओं का सदा दृश्यत्व.

न्यास २	१ अभि.	२ ब्र. हृ.	३ स्वाती.	४ श्रव.	५ धनि.	६ उ. भा.
र=रविका	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल	घटी पल
रवि चर काल	−३ ३.७	+२ ३३.०	−० ०.७	−३ ३.९	−२ ४५.९	−० २४.९
,, दिनमान	२४ २.६	३५ १६.०	३० ८.६	२४ २.२	२४ ३८.२	२९ २०.२
,, दिनार्ध	१२ १.३	१७ ३८.०	१५ ४.३	१२ १.१	१२ १९.१	१४ ४०.१
,, मध्याह्न	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०
,, उदय	२ ५८.७	५७ २२.०	५९ ५५.७	२ ५८.९	२ ४०.९	० १९.९
,, अस्त	२७ १.३	३२ ३८.०	३० ४.३	२७ १.१	२७ १९.१	२९ ४०.१
ता=तारोंका						
ता. विषुवकाल	४४ ५.४	८ ४.३	३२ १५.९	४६ ५.६	४८ १५.६	५६ ४३.६
र. विषुवकाल	४३ ३२.८	९ ४०.१	३० २.४	४६ १५.५	४८ ५३.३	५८ २२.८
भ सूर्य विषुवांतर	+० ३२.६	−१ ३५.८	+२ १३.५	−० ९.९	−० ३७.७	+० २०.८
पंचदश घट्य:	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०	१५ ०.०
ता. या. लंवनकाल	१५ ३२.६	१३ २४.२	१७ १३.५	१४ ५०.१	१४ २२.३	१५ २०.८
तारोंका चरकाल	+५ ४२.५	+६ ५४.८	+३ ४२.८	+० ४०.१	+१ १५.३	+२ ३०.०
दिनमान	४१ ३५.०	४३ ५९.६	३७ ३५.६	३१ ३०.२	३२ ४०.६	३५ १०.०
ता. दिनार्ध	२० ४७.५	२१ ५९.८	१८ ४७.८	१५ ४५.१	१६ २०.३	१७ ३५.०
,, उदयकाल	५४ ४५.१	५१ २४.४	५८ २५.७	५९ ५.०	५८ २.०	५७ ४५.८
,, अस्तकाल	३६ २०.१	३५ २४.०	३६ १.३	३० ३५.२	३० ४२.६	३२ ५५.८
मध्यममान से						
रवि उदय	२ ५८.७	५७ २२.०	५९ ५५.७	२ ५८.९	२ ४०.९	० १९.९
तारा उदय	५४ १२.५	५३ ०.२	५६ १२.२	५९ १४.९	५८ ३९.७	५७ २५.०
तारा अस्त	३५ ४७.५	३६ ५९.८	३३ ४७.८	३० ४५.१	३१ २०.३	३२ ३५.०
रवि अस्त	२७ १.३	३२ ३८.०	३० ४.३	२७ १.१	२७ १९.१	२९ ४०.१
ता. र. अस्त	+८ ४६.२	+४ २१.८	+३ ४३.५	+३ ४४.०	+४ १.२	+२ ५४.९
कालांश काल	−२ १०.०	−२ १०.०	−२ १०.०	−२ २०.०	−२ २०.०	−२ ५०.०
सदा दृश्यत्व	+६ ३६.२	+२ ११.८	+१ ३३.५	+१ २४.०	+१ ४१.२	+० ४.९

यही गणित ज्योतिर्गणित (नक्षत्राध्याय ४ श्लोक ४) के द्वारा भी होता है । प्रस्तुत ६ ताराओं के उदयास्त काल रवि की अपेक्षा तथा उक्त कालावधि (मर्यादा) से अधिक होने से सदा दृश्य रहते हैं.

उपर्युक्त अनेक विद्वानों के कथनानुसार शास्त्रीय उपपत्ति, प्रमाण एवं सूक्ष्म गणित की तुलना से सिद्ध होता है कि उक्त ६ तारे सदा दृश्य थे और वर्तमान में भी उक्ताक्षांश के उत्तर के प्रदेश में सदा दृश्य हैं। यह सदा दृश्यत्व कालांश और उत्तर शर जन्य होने से अयन चलन के भेद से इनकी क्रांति भिन्न होने पर भी रवि ताराओं का क्रांत्यंतर शरतुल्य रहने के कारण कालांतर हो जाने पर भी इनके सदा दृश्यत्व में बाधा नहीं आसकती है। यद्यपि उक्त शोध को आज कई शताब्दि बीत चुकी हैं इससे जिस प्रकार निजगति के कारण (विधान ७ के कोष्टक देखिये) तारों के भोग शर में थोडा फर्क पडा है उसी प्रकार तारों के- दीर्घ कालिक क्यों न हो- रूपविकारित्व से कालांशों को देखते धानिष्ठा और उ. भा. के तारों की दीप्ति में एक प्रति का अंतर (२.८६ के ३.८६ और ३.१५ के २.१९) होगया है। तथापि इतने पर से ग्रंथोक्त कालांशों की प्रति के सादृश्यता में बाधा नहीं आसकती है क्योंकि (उपर्युक्त न्यास १ देखिये) अभिजित् आदि चार तारों की प्रति; ग्रंथोक्त अनुक्रम और कालांश के तुल्य ठीक ठीक मिलते हुए हैं। तथा समांतर वर्ग की सरासरी की तुलना ऊपर बता चुके हैं। वस्तुतः तारों के दृश्यादृश्यत्व का निर्णय बिना कालांश रूप मर्यादा के कहे निर्णीत नहीं होसकता है। इसलिये हमारे ग्रंथों में उक्त ६ तारों के कालांश कह कर आगे उन्हें सदा दृश्य कहे हैं सो योग्य है। इस तरह की सर्वमान्य, स्पष्ट और बडे महत्व की मोटी बातें भी प्रि. गोविंदरावजी को अनार्य जुष्ट चस्मे में से नहीं दिखना उनके और हमारे सुदैव की बात कैसे हो सकती है। इतने में ही पाठक महोदयों ने सब समझ लेना चाहिये.

परिक्षण ५२ (इ)

पितामह सिद्धान्त (पृ. २२ वर) तर " तेषां (नक्षत्राणां) द्वादश दृश्यादृश्य नतांशाः " असें मोघम म्हटलें आहे. या वरून ही तेंच अनुमान होतें,

समाधान ५२ (इ)

प्रिं० साहब का यह कथन भी असत्य और असंगत है क्योंकि पितामह सिद्धान्त में " **नतांशाः** " लिखा न होकर कालांशानुसार ग्रहों के उदयास्त का साधन कह कर " **एवं नक्षत्राणां तेषां द्वादश दृश्या दृश्यांशाः** " " इसी प्रकार नक्षत्रों के भी उदयास्त काल का निश्चय कर लेना चाहिये और उनके दृश्या दृश्य के कालांश १२ लेवें " ऐसा लिखा है नतांश खस्वतिक से गिने जाते हैं। कालांश सूर्य से तारे के लग्नांतर नाप ने के दृश्या दृश्य काल के अंश रूप को कहते हैं प्राचीन पद्धति को विकृत और असंगत बतलाने के उद्देश्य से मूल पाठ को छोड कर कल्पित पाठ " **नतांशाः** " ऐसा जोडा गया है सो असत्य है। पितामह सिद्धान्त गद्यात्मक लघु ग्रंथ है। इससे इसमें कई बातें सामान्य रीति से कहे गई हैं

तब इस सर्वसामान्य विधान से सूर्य सि. के विशेषोक्त भिन्न भिन्न तारों के भिन्न २ कालांशों में बाधा नहीं आकर पितामह ने जो १२ कालांशों का सर्वसाधारण शोध लगाया उससे बढकर नव्य सूर्य सिद्धान्तकार ने शोध लगाया जोकि हरएक तारे के यथार्थ दृश्या दृश्य कालांश अभीतक प्रचलित हैं। इससे यह शोध हमारे ही हैं विदेशीयों के लिये हुए नहीं हैं। इससे ' यावन्नहीं तेंच अनुमान होतें ' यह कथन असंगत है। अर्थात् हमारे सब ग्रंथों के परिमाण शुद्ध और उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृक्प्रत्यय युक्त होते गये हैं। अतएव विश्वसनीय एवं प्रमाण कोटी में ग्राह्य करने लायक हैं।

परीक्षण ५२ (ई)

तात्पर्य झीटा ताऱ्याचे कालांश व त्याची प्रत यांचा अमुक प्रकारचाच संबंध असला पाहिजे अशी कल्पना करून, तो तसा नाहीं या कारितां झीटापिशियम हा ग्रंथोक्त लक्षणांनीं युक्त असून ही, तो रेवती तारा नव्हे असें एक ठोक सरसकट विधान करणें हें शास्त्रीय वादांत शोभत नाहीं.

समाधान ५२ (ई)

आर्य ग्रंथों के परिमाणों में गणित साध्य सोपपत्तिक रीति से तनिकसी भी विसंगति सिद्ध किये बिना ही केवल कल्पना तरंगों के अनार्य प्रलापों से ' वर्गीकरणाची विसंगति स्पष्ट आहे, सूर्य तेजांत लुप्त होत नाहीं····मग त्यांचे कालांश सांगण्याचें महत्व काय, कालांश प्रत्यक्ष पाहून लिहिलेले नाहींं," इस तरह एक तर्फ तो संपूर्ण आर्य ग्रन्थों को दृक्प्रत्यय युक्त तुलना में अविश्वसनिय एवं प्रमाण कोटी में अग्राह्य बताना और दूसरे तर्फ एक कोई तनिकसा भी ग्रंथोक्त या शास्त्रीय आधार बताए बिना ही " झीटापिशियम हा ग्रंथोक्त लक्षणांनीं युक्त असून ही " इत्यादि कहना तथा शास्त्रीय प्रतिपादन, व तुलनात्मक निश्चय को कल्पना बताना ' ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें और निराधार कथन तो प्रिं० साहब बहादुर को नामधारी शास्त्रीय वाद में शोभता है; और कोई भी ग्रंथ के किसी भी कालांश के वर्ग की ताराओं के अंतर्गत झीटा नंबर १ पिशियम की प्रत न होने से तथा ग्रंथोक्त रेवती के तनिक भी लक्षण इसमें न होने से यह रेवती तारा नहीं ऐसा विधान करना आदि को शोभता नहीं बताना यह यथार्थ वस्तु को सत्य कहने में दोष बताने के तुल्य निरर्थक है।

विधान ५३

जबकि प्राचीन ग्रंथोक्त कालांशों की आधुनिक सूक्ष्मगति सूक्ष्म यंत्र साधित तारोंके वर्ग से स्थूल सूक्ष्म मानके तारतम्य का विचार करने से- तुलना बराबर मिलती हुई है;

तब पूर्व विधान में कहे प्रकार १७ कालांश के तारोंकी प्रति २·५७–३·८४ के अंतर्गत किंवा उसके सरासरी मान के निकट में रेवती की योग तारा होनी चाहिये किंतु अब वहां ऐसी प्रति की तारा नहीं है; इससे क्या तो वह लुप्त होगई है।

विधान ५४

यदि मान भी लेवें की इतने वर्षों में तारों की निजगति और रूप विकारित्व से उस के स्थान और प्रति में थोडा अंतर पड सकता है। किंतु झीटापीशियम रेवती की योगतारा हो नहीं सकती क्योंकि झीटा नंबर २ पिशियम की प्रति ६.४९ (नक्षत्र विज्ञान पृष्ठ २९-३० देखिये) केवल नेत्रों से दिखने वाली परमावधि रूप ६ प्रति के ऊपर सातव वर्ग में होने से वह इतनी अंधुक है कि अंधियारी रात में याम्योत्तर लंघन के समय में भी दिखने वाली तारा नहीं है। तथा इसके—६४° दिगंश पर २४ विकला के अंतर से झीटा नंबर १ तारा की प्रति ५·५७ है। जोकि नेत्रों से नहीं दिखने वाले ६ वर्ग में होकर परमावधि से सिर्फ ०·४३ वर्गांश कमी होने से दैनंदिन उदयास्त के ३ कलाक आगे पीछे यानी ४५ नत कालांश के करीब में बडे सावधानी पूर्वक देखने से अंधियारी रात में यदि कोई रेवती पुंज स्थिती दीप्तिमान् ग्रह का प्रकाश न होतो वह नेत्रों से दिख सकती है। और लोप दर्शन के समय में तो उत्तराक्षांश ३६ के प्रदेश में ३० अंश तक संधि प्रकाश तथा ४०–५० अंश तक क्रांति तेज (Declination Light) रहने से झीटा के दृश्या दृश्य कालांश ४०–५० करीब में होते हैं। सो ग्रंथोक्त रेवती के १७ कालांशों से ही नहीं "सौक्ष्मात्रिसप्तकांशके:" सूक्ष्म तारों के २१ कालांशों के प्रति से भी बहुत कम होने से तथा ग्रंथोक्त कुछ ताराओं की प्रति की तुलना में बिलकुल ही गई बीती (अंधुक) तारा होने से झीटा पिशियम तारा सूर्य सिद्धान्तादि ग्रंथ प्रोक्त रेवती की योग तारा नहीं हो सकती।

विधान ५५

सूर्य सि० में बडे छोटे तारों के १३–१५ व २१ कालांश कहे बाद मध्यम प्रति के अनुक्त तारों के नाम से १७ कालांश कहे हैं। उसमें रंगनाथ आदि टीकाकारों ने पहिले अनुक्त नक्षत्रों के नाम कहकर आगे "**वह्नि ब्रह्माऽपांवत्सापसंज्ञानिच सप्तदशभि: कालांशै:**" ऐसा चार तारों के नाम और लिख दिये हैं। इनके पाश्चात्य नाम और प्रति नीचे लिखे प्रकार है।

अग्नि B. Tauri	१·७८	अपांवत्स Z. Virginis	३·४४
ब्रह्मा D. Aurigae	३·००	आप: Tau. Virginis	४·३४

सो विधान ५२ में लिखे १७ कालांश के तारों की प्रति के साथ इनको मिलाकर पढने में इस १७ कालांशों की व्याप्ति १·७८—४·३४ और सरासरी ३·२६ प्रति तुल्य होती है। किंतु जबकि पितामह सिद्धान्त में "रेवत्युदय: प्राची। सर्वस्य महती योगतारा." ऐसा लिखा है। इससे उस समय रेवती विभाग के अंत्य में और अश्विनी के आरंभ में वसंत संपात की स्थिति थी। वहां तारा हो या सूर्य उसका उदय संसार की प्राची (पूर्व) दिशा का दर्शक होता है। तब यदि रेवती का विशेषण 'सर्वस्य महती योगतारा' कथन को याने सब में बडी योगतारा रेवती को लगाते हैं तो रंगनाथ की कही हुई १७ कालांश की 'अग्नि सादृश्या' रेवती की तारा होने पर भी उसका उदय पूर्व क्षितिज पर प्राची दर्शक हो नहीं सकता और तो क्या एक प्रतिका तारा भी उदय होने के साथ दिख नहीं सकता इससे स्पष्ट है कि उक्त प्राची दर्शक कथन कोई तारे के उपलक्ष्य में नहीं है केवल चित्राभिमुख आरंभस्थान स्थित सूर्योदय के संबंध में है। तदनुसार 'सब नक्षत्रों में जो तारा बडी हो वही उसकी योगतारा है ऐसा 'सर्वस्य महती योगतारा" का अर्थ हो सकता है। अर्थात् रेवती तारे के संबंध के दोनों वाक्य नहीं हैं। इससे चित्राभिमुख बिंदु ही आरंभ स्थान है ऐसा सिद्ध होता है।

परीक्षण ५५

यांतील पहिलें वचन निराधार आहे। दुसऱ्या वचनातील शब्द अशा रीतीनें मागें पुढें करून लिहिले आहेत कीं त्यामुळें मूळचा अर्थ वाचकांचे लक्षांत न येतां त्यांचा दुसराच अर्थ असला पाहिजे अशी वाचकांचा गैर समज व्हावी। पहिले वचन पितामह सिद्धान्तांत नाहीं। दुसरें वचन आहे परन्तु ते "रेवत्युदय: प्राची। सर्वस्य महती योगतारा" असें आहे. अर्थात् त्यांचे स्वरूप पं० दीनानाथजींनीं विकृत केलें आहे। पूर्वापार संबंधानें या वचनाचा अर्थ असा आहे कीं सर्व नक्षत्रांच्या मोठ्या तारा किंवा महत्वाच्या तारा योग तारा समजाव्या हा एक अगदीं साधारण नियम दिला आहे. वृद्ध वसिष्ठ सिद्धांत पृ. ४९ वर कोणत्या नक्षत्रांच्या योग तारा आप आपल्या पुंजांत कोणत्या दिशेंत आहेत हें सांगून नंतर श्लोक २२ मध्यें "अनुक्तानांतु सर्वेषां स्थूला या स्तासु तारका:" म्हणजे वर ज्या नक्षत्रांच्या योग तारा सांगितल्या नाहींत त्यांत ज्या मोठ्या तारा आहेत त्याच योग तारा समजाव्यात असें सांगितलें आहे. सू. सि. अ. ९ श्लोक १९ मध्यें ही 'यथा प्रत्यव शेषाणां स्थूलास्याद् योग तारका' असें लिहिलें आहे. या वरून "सर्वस्य महती योग तारा" हा एक स्थूल नियम समजावयाचा, रेवती योगतारा

उगवते तीच प्राची असा ' रेवत्युदयः प्राची ' या वचनाचा अर्थ आहे. अर्थात् त्याकाळीं रेवती तारा थेट वसंत संपातीं होती हें उघड आहे. म्हणजेच त्याचा भोग व शर शून्य असें येथें सांगितलें आहे. पहिल्या निराधार वचनाचा अर्थ दीनानाथजी देतात तो असा कीं रेवती व अग्नि तारा यांचे कालांश सारखे होत परंतु हें बरोबर नाहीं. तथापि—कारण शततारका प्रत ३·८४, ब्रह्मा ३·५ आप ३.४४ हे तारें ही १७ कालांश अग्नि १.७८ ताऱ्याप्रमाणें सांगितले आहेत. तेव्हां त्यांच्या संबंधांत ही " अग्निसादृश्याः " अशा अर्थाचें कांहीं लिहिलें आहे कीं नाहीं तें (त्याच संदर्भाच्या अनुरोधानें) पाहिलें पाहिजे.

समाधान ५५

उक्त लंबे चौडे परीक्षण को देखकर हंसी और दया आती है। क्योंकि मुद्देकी बात पर कुछ भी विचार नहीं करते हुए विधान में ही लिखी हुई बातों को दुहरा कर फिजूल बातों की भर्ती के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखा है (१) पहला मुद्दा ये है कि पि. सि. में " रेवत्युदयः प्राची " ऐसा लिखा है। और प्रि. गोविंदरावजी ने रेवती तारा थेट वसंत संपातीं होती ' इस कथन से उसी पर वसंत संपात की स्थिति थी ' यह विधानोक्त कथन का स्वीकार कर लिया है। तब सिद्ध होगया कि पितामह सि. के समय रेवती की शून्य क्रांति थी। तब शून्य क्रांतिकी ज्योतिः उदय के समय में ही ठीक ठीक पूर्व दिशा में रहती है आगे वह उत्तर अक्षांश के प्रदेश में दक्षिण के तर्फ झुकने लग जाती है। उदाहरण के लिये इन्दोर (अक्षांश +२२°।४४') को लीजिये (ताकि संदेह होता वेधद्वारा तुरीय यंत्रसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं), शून्य क्रांति के ज्योतिः का उदय और गमन निम्न लिखितानुसार होता है:—

ज्योतिः के उदय में ० कलाक मानकर=	कलाक ०	कलाक १	कलाक २	कलाक ३	कलाक ४	कलाक ५	कलाक ६
	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
क्षितिज से ज्योतिः के उन्नतांश=	० ०	१३ ४९	२७ २८	४० ४२	५३ १	६२ ५९	६७ १६
पूर्व बिन्दु से दक्षिण दिगंश=	० ०	५ ५४	१२ ३५	२१ ८	३४ ४७	५५ १६	९० ०

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि पितामह के समय उदयकाल में ही आरंभस्थान का बिन्दु थेट पूर्व दिशा में उदय होता था बाद में उसके जैसे जैसे उन्नतांश बढते थे। वैसे वैसे उसके दक्षिण के तर्फ दिगंश बढते जाते थे। ऐसी स्थिति में यदि हम उसे तारा मानते हैं तो अग्नि सादृश्य एक दो प्रति का तारा भी उदय के

१ कलाक के बाद १४ उन्नतांश पर दक्षिण तर्फ ६ दिगंश पर दिख सकेगा। अतः निःसंदेह कह सकते हैं कि तारे के उदय (क्षितिज संलग्न) से न तो पितामह के समय प्राची साधन हो सकता था न अब; इसलिये उक्त कथन सूर्य नक्षत्र के संबंध का है। सूर्यादि ग्रहों के तथा देदीप्यमान कोई तारे के बिना क्षितिज संलग्न तारा दिख नहो सकता। झीटाकी अंधुक तारका तो जोकि उदय होने के ३ घंटे बाद थोडी बहुत झलकती हुई दिखती है तब उसके उन्नतांश ४१ और दिगंश २१ दक्षिण में हो जाते हैं। उससे शुद्ध प्राची दिशा कदापि निश्चित नहीं हो सकती। विधानोक्त बहुतसा कथन तो गोविंदरावजी ने स्वीकार कर ही लिया है। बाकी परीक्षण मुद्दे के बाहर है। सारांश रेवती पुंजमें कोई उल्लेखनीय तारा न होने से जब कि पितामह ने आरंभ स्थान स्थित सूर्य के उदय से प्राची दिशाका साधन कहा है तब उत्तम प्रमाण से सिद्ध होता है कि आरंभ स्थानही उस समय रेवत्यंत बिंदु समझा जाता था. कोई तारा नहीं।

विधान ५६.

नाटिकल ॲलमनाक (सन १९३०) में नंबर ७४ याने झीटा नं० १ पिसियम के नीचे जो टीप " ६ ४९ (झी. २),२४",६४° " ऐसी है उसका अर्थ है कि झीटा पिसियम नं० १ के साथ बिलकुल नजीक याने २४ विकला के अंतर पर उ० ध्रुव से ६४ दिगंश पर एक दुसरी साथीदार तारका है। जिसको झीटा नं० २ पिसियम ऐसा नाम दिया गया है। इसकी प्रति ६·४९ है। याने नं० १ से, नं० २ कुछ कम तेजस्वी है। इसकी जगह नं० १ मध्य में है ऐसी कल्पना करके आकृति नीचे लिखे प्रमाण से बनती है। (आकृति नंबर ३ देखिये) समझने के लिये (अ, ब) का तारतम्य आकृति के बाकी प्रमाण से नहीं रखा है। इस तारका युग्म के दोनों तारों की प्रति (वर्ग) में परस्परांतर वर्ग ०·९२ मात्र होने से नेत्रों द्वारा २४ विकला तक का विकृत रूप दिखता है। मानों अक्षर में अक्षर लिख देने से फूटा अक्षर बन जाता है; ठीक ऐसा ही भ्रांतिजनक विकृतरूप, अंधुक झीटा का दिखाई देता है।

विधान ५७.

तारों की जोडी [युग्म] असंबद्ध और संबद्ध रूप दो प्रकार की दिखाई देती हैं वसिष्ठ और अरुंधती की जोडी असंबद्ध है। यद्यपि दिखने में [सिर्फ १९", १५०° पर) संनिध दिखते हैं। किंतु इनकी निज की दूरी इतनी है कि अरुंधती से वसिष्ठ तक प्रकाश आने में कई बर्ष लगते हैं। इनकी प्रति [२·४० आर ३·९६] तेजस्वी और छोटी बडी स्पष्ट

दिखने वाली होने से वसिष्ठ व अरुंधति के पहिचानने में तनिक भी भ्रांति नहीं होती है। इसलिये आर्य ग्रंथों में (श्रावणी और विवाह प्रयोगादि देखिये) इस जोडी को आदर्श, पूजनीय एवं पति पत्नीरूप शुद्ध कही है। ऐसे और भी असंबद्ध जोडी के तारों में परस्पराकर्षणजन्य विकृति न होने से यह शुद्ध कहाते हैं। तथा संबद्ध जोडी में देवयानी के मिझार व अल्माक तारे पुनर्वसु एवं ज्येष्ठा आदि हैं। इनका निजी अंतर अल्प होने से पृथ्वी चंद्र के और गुरु शनि के तुल्य परस्पराकर्षण से बडे तारे के चौगिर्द छोटे तारे घूमते हैं। तथा इनमें से कई तारे परस्पर के आकर्षण से (दीर्घकाल हो जाने से) विशेष रूप में इधर उधर यानी स्थान भ्रष्ट होगए हैं। किंतु इन तेजस्वी संबद्ध तारों की विकृतता को प्राचीन काल में ही आर्यों ने जान लिया था। 'देवयानी का कूप पतन, पुनर्वसु=अदिति का हतप्रभत्व कद्रूसे परिपीडन, हजारों वर्ष तक ब्रह्महत्या ग्रस्त इंद्र का कमल नाल में छिपे रहना' जैसी यह कथाएँ पुंजांतर्गत तारों की विकृतता के संबंध में प्रचलित हैं; ऐसे रेवती पुंज के (युग्मतारे झीटा नंबर १,२ के) संबंधमें भी "**पूषाऽनपत्यो पिष्टादो भग्न दन्तो भवत् पुरा**" (भा. पु. ६।७।४४) "पूषा की आगे वृद्धि न हुई, इसके दांत तोडे जाने से दूसरे के पीसे हुए को खाने वाला=बूढे के रूप में होगया" इत्यादि प्रचलित हैं। सो युक्ति युक्त हैं।

विधान ५८

क्योंकि विधान ५१ में लिखे प्रकार झीटा नं० १ पिसियम के वर्षमान और अयनगति शुद्ध नाक्षत्र वर्ष मानसे कम ज्यादा है ऐसा सूक्ष्म गणित से निश्चित है। तथा चक्रभोग ३६० पूर्ण हुए बिना शास्त्र शुद्ध वर्षमान साधन में झीटाके वेधका उपयोग हो नहीं सकता। ब्रम्ह सिद्धान्त में स्पष्ट कह दिया है कि– "**पूर्ण मेषादिभिर्गोलं चक्रंस्यात्—नतुचेन्नतत्** ॥" (ब्र. सि. अ. २ श्लो. २४४ पृ. ३९) अर्थात् "मेषादि आरंभस्थान से जब गोल (३६० अंश) पूर्ण होता हो वही शुद्ध चक्रभोग कहाता है; यदि वह कम ज्यादा होता हो तो उसे चक्रभोग या शुद्धनाक्षत्र सौर वर्ष नहीं कह सकते। तब झीटा साधित वर्षमान कम ज्यादा होने से शास्त्रीय दृष्टिसे अशुद्ध है। इतना ही नहीं तो झीटा नं १ के स्वल्पान्तर तुल्य ही झीटा नं २ की तारा निकटमें ही संबद्ध होनेसे ज्ञात होता है कि परस्पराकर्षण के परि पीडन से झीटा नं १ की निजगति और प्रतिमें अनियमित परिवर्तन होते रहना ही चाहिये। अतः ऐसा परिवर्तनशील और विकृत तारा सब राशि चक्र का मेढी रूप दर्शक कदापि हो नहीं सकता। तब ऐसे निरुपयोगी तारेके द्वारा शुद्ध अयनांशों का साधन कैसे हो सकता है।

विधान ५९ ज्यो० दीक्षित का मत.

झीटा की निरुपयोगिता और चित्रा की ग्राह्यता के संबन्ध में आधुनिक विद्वानो का भी करीबन ऐसा ही कथन है:– " रेवती योगतारेशीं अयनांशाचा किंवा अयन गतीचा कांहीं संबंध नाहीं । " रेवती योगतारा हें आरम्भ स्थान म्हणावें तर सूर्य सिद्धान्तांत आणि लल्लाच्या ग्रंथांत तिचा भोग शून्य नाहीं. ब्रह्मगुप्त आणि त्यापुढील लल्लाखेरीज बहुतेक ज्योतिषी रेवतीं (ध्रुव सूत्रीय) भोग शून्य मानितात; परन्तु त्यांचे आरम्भ स्थान रेवती योग तारेशीं कधींच नव्हतें व असणार नाहीं । सांप्रतच्या सूर्य सिद्धान्ताचें स्पष्ट मेष संक्रमण होण्याच्या वेळीं प्रत्यक्ष सूर्य रेवती योगतारेशीं —झिटापिशियमशीं —कधीं होता हें काढून पाहतां असें वर्ष शक १७७ येतें. ' 'झिटापिशियम असें नांव युरोपियन ज्योतिषी जिला देतात, व जी रेवती योग तारा असें कोलब्रूक इत्यादि युरोपियन विद्वानांनीं ठरविलें आहे । ती तारा फार बारीक आहे. ' सांप्रत ती आकाशांत दाखविणारे जुने जोशी क्वचित सांपडतील. सारांश ती इतकी लहान आहे कीं वेधाच्या कामीं तिचा उपयोग होण्याचा संभव फार थोडा. अयनांश काढण्या करितां तर तिचा उपयोग करीत नाहित.– (भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ ३३८–३३९)

विधान ६० ज्यो. केतकर का मत (झीटा पक्ष का उद्गम)

२१. आरंभ स्थान के संबंध में प्रो० व्हीटने साहब का कथन:—

" At the time of albirunis visit to India (A, D. 1024) the Hindus seem to have been already unable to point out distinctly and with confidence the situation in the heaven, of that most important point from which they held that the motions of the planets commenced at the creation and at which at the successive interval their universal conjunctions would again take place for he is obliged to mark the asterism as not certainly identifiale. (Page 343, translation of Surya Siddhant by Burges.) " " यावरून स्पष्ट होतें कीं झीटा तारा हिन्दूनीं सन १०२४ पर्यंत आरंभ स्थानीं मानली नव्हती. ती तारा तदनंतरच्या भास्कराचार्यांस देखील माहित नव्हती. माहित असती तर झीटेच्या वेधावरून अयनांश ठरवावे, असें त्यांनीं स्पष्ट सांगितलें असतें. त्याना अयनांश विषयक सर्व जबाबदारी मुंजालावर सोंपविली आहे. अशा अनिश्चित प्रसंगीं कोलब्रुक साहेब सर्व नाक्षत्र विभागां तील योग तारा ठरविण्याच्या कामीं पुढें सरसावले आणि आमच्या वेदांग ज्योतिषादि ग्रंथांचा काल आणवेल तितका अलीकडे आणण्याच्या हेतू नें झीटा तारा ही रेवती विभागाची योग तारा मानिली. [भा. ज्यो. पृ. ८६]

त्यांचीच री बेंटली, व्हिटनी, बायो, मोक्षमूलर, वेबर या पाश्चात्य विद्वानांनीं ओढली आहे, यांत नवल नाहीं. परंतु पंचांग शोधन कमीटीनें विचार न करितां त्यांच्या असद् हेतूला बळी पडणें हें आर्य संस्कृतीला अत्यन्त अपमानास्पद आहे.

२९ चित्रा व झीटा पक्षांतील कांहीं गोष्टींची तुलना वें. बा. केतकर विविध ज्ञान विस्तार (अक्टोबर १९२४ पृष्ठ ४७२-७३) से उधृत.

गोष्टी.	चित्रापक्ष.	झीटापक्ष.
आरंभस्थान.	कंठरवोक्त.	आनुमानिक कोलब्रूक साहेब थोडीं
द्रष्टा.	लगधाचार्य.	घराणीं ६० वर्षांची
व्याप्ति.	भरतखंडभर.	३ पट
परंपरा	४००० वर्षांची	११ योगतारा
चकाकी	१०० पट.	
विभागच्युत	९ योगतारा	
ग्रह लाघवी पंचांगाशीं तुलना.		
संक्रमण भेद	०।१९ घटी	४ दिवस
अधिक मास	क्वचित् १ मास	२ ते ९ मास

विधान ६१ ज्यो. केतकर का अभिप्राय.

ज्यो. केतकर का अभिप्रायः–(मराठी ग्रहगणित पृष्ठ१५० से उधृत) अयनांश म्हणजे विषुवसंपातापासून निरयण भोगारंभस्थानीय बिन्दू पर्यन्त कक्षाकार अंतर। (आरंभ) बिन्दु क्रांतिवृत्तावर आहे. म्हणजे याचे भोग आणि शर शून्य आहे. या बिंदूंत एखादें ठळक नक्षत्र असतें तर बरें झालें असतें पण तसें ठळक नक्षत्र नसल्या मुळें (आरंभ) बिंदूच्या आसपास असणाऱ्या नक्षत्रांपैकीं जें जास्त तेजस्वी असेल त्यालाच रेवतीचा योगतारा मानण्याचा संप्रदाय आहे. सूर्यसिद्धान्ताच्या मतें चित्राताऱ्याचा भोग १८० अंश आहे आणि रेवतीयोगताऱ्याचा भोग ३५९ अंश ५० कला आहे. म्हणजे तो आरंभस्थानाच्या पश्चिमेकडे १०कला अंतरावर आहे असें होतें. पण आकाशांत या ठिकाणीं स्पष्ट दिसणारें असें एकही नक्षत्र नाहीं. चित्रा हा पहिल्या प्रतीचा तेजस्वी तारा आहे. याचा कदंबसूत्रीय भोग१८० अंश मानून आरंभस्थान ठरविलें तर म्यूपिसियम नांवाच्या ४ थ्या वर्गाच्या नक्षत्राचा निरयण भोग ३५९ अंश १७ कला येतो. म्हणजे हें नक्षत्र आरंभस्थानाच्या पश्चिमेकडे ४३ कला अंतरावर आहे असें होतें. म्हणून आम्हीं या नक्षत्रालाच रेवती योगतारा मानिलें आहे. आमचे आकाशाचे नकाशे पहा म्हणजे वरील मजकूर नीट ध्यानांत येईल. याप्रमाणें ठरविलेल्या अयनांशाचें समीकरण पुढें दिल्या प्रमाणें सिद्ध होतें अयनांश = चित्रासायन भोग –१८० अंश. सायनगणनेचे आरंभस्थान म्हणजे विषुवसंपात हें जसें निसर्गसिद्धआहे, तशी

निरयणगणनेच्या आरंभस्थानाची गोष्ट नाहीं, मनुष्यानें सारासार विचारानेंच तें ठरविलें पाहिजे. चित्रा तारा पहिल्या प्रतीचा, ठळक, व एकाकी असल्यामुळें त्याच्या व्यक्तीविषयीं भ्रांति उत्पन्न होण्याची मुळींच भीति नाहीं. प्राचीनकाळीं तर चित्रा व मघा या तान्यांच्या साह्यानेंच ग्रहांचे वेध घेत असत. पटवर्धनी पंचांगाचे आरंभस्थान झीटापिसियम * हें नक्षत्र आहे हें ६ व्या किंवा ७ व्या प्रतीचे असल्यामुळें इतकें अंधुक आहे कीं तें आकाशांत अमुकच म्हणून दाखविण्याची पंचाईत पडते. हें प्रचरित आरंभस्थानाच्या मागें सुमारें ४ अंश असल्या मुळें प्रचरित पंचांग दृष्ट्या संक्रमणें, नक्षत्रें, योग, अधिकमास वगैरेंची उलथा पालथ फारहोऊन लोकांत निष्प्रयोजन मतभेद उत्पन्न होतो. बरें हें नक्षत्र चिरस्थायी तरी असावे, तेंही नाहीं या नक्षत्राला क्षयाची भावना झालेली आहे. इ. स. १७५५ त तें ४थ्या प्रतीचें होतें, इ. स. १८५० त ४'८प्रतीचें होतें. सांप्रत ६ व्या किंवा ६'५ व्या प्रतीचें झालें आहे, पुढें लवकरच कांहीं वर्षांनीं तें मुळींच दिसेनासें होणार आहे. म्हणून अशा नक्षत्राची कांस धरून चालणें दूरदर्शित्व नव्हे. (प्र. ग. शके १८३६ सन १९१४)

विधान ६२

प्राचीन ग्रंथों के ध्रुवक कदंब सूत्रीय और परंपरागत वेध साधित शुद्ध नाक्षत्र मान के हैं किंतु शून्यायनांश काल के निकट के वर्षों में अयनांश २।३ हुए तक कोई २ ग्रंथकार सांपातिक को ही नाक्षत्रमान मानलेने के कारण (१) जिन नक्षत्रों के पुंज में अनेक तारे थे उनमें योग तारों की भिन्नता समझकर तथा (२) दीप्तिमान निःसंदेह तारों को ध्रुव सूत्रीय कल्पित कर कैसा तो भी उनका मेल कर लिया है और जिन नक्षत्रों का दोनों भी प्रकार से मेल न हुआ तो वहां प्राचीन ग्रंथों के मूल वचनों में पाठ भेद करके ब्रह्मगुप्त के अर्वाचिन ग्रंथ कारों ने परंपरा गत से संगति मिलाई है। इसका दिग्दर्शन निम्न लिखित पितामह सिद्धांत के मध्रुवकों के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है:— "अश्विन्यादीनां ध्रुवकाः राश्याद्याः" के आगे.

* Il y a des etoiles dont I' eclat diminue .... L' etoile zeta du poisson austral, de quatrieme grandeur autrefois, est actuellment de six, sept, invisible á I' Œil nu. ' (La pluralité des mondes Habites Par C. Flammarion, page 196.)

पितामह सिद्धान्त में प्रक्षिप्त पाठ—कौंस में, और चाहिये सो " " ऐसा बताया है।

नक्षत्र	राशि	अंश	कला	ग्रंथोक्त मूल पाठ	नक्षत्र	राशि	अंश	कला	ग्रंथोक्त मूल पाठ
अ	०	८	....	खं ०, अष्टौ ८	स्वा	६	०	१९	रसाः ६ (खं०) नवेंदवः १९
भ	०	२०	....	खं ०, खयम : २०	वि	७	२	५	शैलाः ७ पक्षौ २ शराः ५
कृ	१	७	२८	शशी१मुनयः ७अष्टयमाः२८	अ	७	१४	५	मुनयः ७ मनवः १४ भूतानि ५
रो	१	१९	२८	शशी१नवेंदवः१९ " २८	ज्ये	७	१९	५	सप्त ७ नवेंदवः १९ पंच ५
मृ	२	३	....	पक्षौ २ गुणाः ३	मू	८	४	....	अष्टौ ८ चत्वारः ४
आ	२	७	....	पक्षौ २ शैलाः ७	पू	८	९	...	अष्टौ ८ नव ९
पु	३	३	....	गुणाः ३ गुणाः ३	उ	८	२०	९	वसवः ८ [नव ९ नखाः २०]
पु	३	१६	....	गुणाः ३ षोडश १६	अ	८	२५	....	अष्टौ ८ तत्वानि २५
आ	३	१८	....	त्रीणि ३ अष्टादश १८	श्र	९	८	....	नव ९ वसवः ८
म	४	९	....	वेदाः ४ रंध्राणि ९	ध	९	२०	....	नव ९ नखाः २०
पू	४	२७	....	वेदाः ४ सप्तयमाः २७	श	१०	२०	....	दश १० नखाः २०
उ	५	५	...	शराः ५ शराः ५	पू	१०	२६	....	दश १० षडयमाः २६
ह	५	२०	....	शराः ५ नखाः २०	उ	११	१४	१०	शर्वाः ११मनवाः१४ खचंद्राः १०
चि	६	०	....	रसाः ६ (गुणाः ३) पुष्करं०	रे	....	....	....	... .

इसमें अभिजित् छुड्डा २८ नक्षत्रोंमें रेवतीके संबंधमें कुछनहीं तो खंखं लिखनाथा सोभी लिखानहीं और कलास्थानमें ८ जगह अंक कहे हैं बाकी १९ जगह खं शून्यं लिखनाथा सोभी लिखानहीं तब एक चित्राके सामनेही कलास्थानमें "पुष्करं"=शून्य कैसे लिखा जासकता है। क्या सब क्रम को छोडकर यहां कलास्थानमें शून्य लिखनेसे कोई संदेहनिवारण हो सोभी नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि यह शून्य कलास्थानीय न होकर अंशस्थानीय है। और अंशस्थानीय का (गुणाः ३) अंक प्रक्षिप्त है। यह अंक प्रक्षिप्त करने वाले का ध्यान यह रहा कि "पुष्करं का शून्यांक कला स्थान में माना जा सकेगा। तीन अंश बढने से चित्राभोग (अयनांश ३ के समय) हमारे दृक्प्रत्यय में आता ही है। सिर्फ स्वाती का अंश स्थानीय खं स्वाती को चित्रा से कम बताता है अतः इसे उडा देने से कला स्थानीय नवेंदवः आजाने से वह ध्रुव सूत्रीय के निकट में आजाता है।" और पूर्वाषाढा के तुल्य ही उत्तराषाढा को समझने से नखाः नवको नवनखाः करदिया गया है। लेकिन यह सब बातें एक "पुष्करं" = ० को नहीं उडाने से, चित्रा के अन्य ग्रंथोक्त की तुल्यता से, एवं वेधसिद्ध परिमाणों के सापेक्षांतर के तारतम्य से ज्ञात होती हैं। और इसीसे झीटा भोग ३५६।२ निश्चित हो जाता है।

परीक्षण ६२

पितामह सिद्धान्तांतील सर्व नक्षत्रांचे स्फुट भोग गद्यात्मक आहेत, वस्तुत: सर्व ग्रंथच गद्यमय आहे तसेंच ते आहेत. ते लिहिण्याचा प्रकार खालीं दाखविल्याप्रमाणें आहे. उभी रेघ देई पर्यंत एकच भोग लिहिला आहे:- ' अश्विनी खं ० रा, अष्टौ ८° । भरणी खं ०, खयमा: २० । कृत्तिका शर्शा १, मुनय: ७°, अष्टयमा: २८' । रोहिणी शशि १ रा., नवेंदव: १९°, अष्टयमा: २८ । चित्रा रसा: ६ रा., गुणाः ३°, पुष्करम् ०' । पूर्वा भाद्र. दश १० रा., षड्यमा: २६° । उत्त. भाद्र. शर्वा: ११ रा., मनव: १४°, खचन्द्रा: १०' । याच्या पुढें रेवती भोग दिलेला नाहीं । जो पितामह सिद्धान्त कार चित्रेचा भोग १८३°।०' देतो तोच रेवती भोग ३५९।२ देणार नाहीं । याचे भान दीनानाथजी यांस राहिले नाहीं. वास्तविक वर दाखविल्या प्रमाणें त्यानें " रेवत्युदय: प्राची" या वचनानें रेवती भोग ० असा पुढें सांगितला आहे, या करितां तो इतर भागां बरोबर दिला नाहीं. "

समाधान ६२

यह सब परिक्षण आलाटाली का है । ग्रंथकार ने यदि चित्रा के अंशस्थानीय (गुणा: ३) कहे होते तो फिर कलास्थानीय के संबंध में पुष्करं = ० कहने की उसे क्या आवश्यकता थी; ऐसे कौन कौन जगह कलास्थानीय के शून्य कहे गये हैं इस मुद्दे को हल करना छोडकर पाठकों को भूल में डालने के लिये प्रि. गोविंदरावजी ने मुद्दे को छोड कर भल ी ही निष्प्रयोजित बातें लिखदी हैं । वह सब व्यर्थ हैं । जैसे अश्विनी भरणी के राशि के अभाव में ०।० = ' खं, खं' द्वारा, चित्रा के अंश स्थान में "पुष्करं" द्वारा शून्य जो कहा है । ऐसा यदि रेवती का शून्य भोग विबक्षित होता तो उसके राश्यंश के संबंध में 'खं, खं' कहे बिना पितामह न रहते. जबकि सूर्य, सोम, ब्रह्म, वृद्ध वसिष्ठ सिद्धान्त, वराह मिहर और कामधेनु के तुल्य ही पितामह ने चित्रा की पूर्ण ६ राशि कहकर पुष्करं द्वारा शून्यांश स्पष्ट कर दिया है । तब चित्राभिमुख बिन्दु ही पितामह सम्मत रेवत्यंत बिन्दु = राशि चक्र का आरंभ स्थान सिद्ध होता है । गोविंदरावजी समझ रहे हैं कि 'रेवत्युदय: प्राची'– रेवती का उदय शुद्ध प्राची का दर्शक– वचन से झीटा का अनूक्त रेवती पन कुछ मिट सकेगा किंतु वह रेवत्यंत सूर्योदय के संबंध में है । जो कि समाधान ५५ में सप्रमाण सिद्ध किया गया है । वरना दोनों वचनों का विचार करने से सिद्ध होता है कि (१) रेवती पुंज में योग तारा के लायक कोई तारा न होने से उसके भोग पितामह ने कुछ उल्लेख किया नही है और (२) शुद्ध प्राची दिशा का साधन भी चित्राभिमुख रेवती विभाग के अंत्य बिन्दु स्थित सूर्योदय से किया है । तदनुसार झीटा का भोग ३५९ अंश २ कला रूप गणित द्वारा स्वयं सिद्ध हो जाता है ।

विधान १३.

चित्रा और रेवती की योगताराओं की निःसंदेहता के संबंध में उनके पुंज की तारा संख्या की परंपरा निम्न लिखितानुसार हैं:—

चित्रा और रेवती के तारोंकी संख्या	चित्रा	रेवती
तैत्तिरीय श्रुति	१	१
नक्षत्र कल्प	१	१
खंड खाद्य में उधृत प्राचीन सू. सि. वचन	१	१
वृद्ध गार्गीय संहिता	१	४
नारद संहिता	१	३२
वराह मिहिर	१	३२
लल्लकृत रत्नकोश	१	३२
ब्रह्म सिद्धांत	१	३२
श्रीपति रत्नमाला	१	३२
मुहूर्त तत्व	१	३२
मुहूर्त चिंतामणि	१	३२

इसमें जिस प्रकार चित्रा की योग तारा के संबंध में जैसी एक वाक्यता है यानी श्रुति काल से लगाकर वर्तमान काल तक के कुल ग्रंथों में एक ही तारा कही है ऐसी रेवती की बात नहीं है। यानी पहिले इस पुंज की भी चित्रा के समान एक ही तारा मानते थे, आगे ४ मानने लगे तथा नारद संहिता से आजतक ३२ तारा मानते हैं अतएव रेवती के संबंध में एक वाक्यता नहीं हैं। तेज में और स्थान में परिवर्तन हुए बिना ऐसा तारोंका परिवर्तन नहीं हो सक्ता है,

इसलिये रेवती तारे के व्यक्तित्व में संदेह सिद्ध होगया है। चित्रा के एक तारा की परंपरा जैसे वैदिक काल स आज तक अविच्छिन्न चली आरही है। इसका मोती का आकार इसकी दीप्ति और उपादेयता को प्रगट करता है। इससे स्पष्ट होता है कि; इसका स्थान और देदीप्यमान तेज वही कायम है अर्थात् राशि चक्र के ठीक ठीक मध्य भाग में ही अपने सनातन सिंहासन पर चित्रा तारा विराजमान है। ऐसी बात रेवती की रही नहीं है। मृदंगा कार ३२ तारों के पुंज में प्राचीन काल की दीप्तिमान् रेवती की तारा रूपाविकारित्व से अब लुप्त हो गई है। और वह निजगति से स्थान भ्रष्ट भी हो गई है। तब ऐसी तारा संख्या में व भोग शर के संबंध में विभिन्नता युक्त, अनिश्चित, एवं संशयास्पद छोटा तारका सब तारों में मुख्य यानी राशिचक्र की आरंभ स्थान दर्शक कैसे हो सकती है? कदापि नहीं।

परीक्षण १३ (अ-ई)

(अ) हें विधान गमतीचें व हास्यास्पद आहे "एक ताराथी वहुतडीथी" असे म्हणण्यास आधार नाहीं. (आ) शततारकाचीही तारा एकच आहे परंतु ती लहान आहे. (इ) एकच तारा असली म्हणजे ती मोठी असते हें म्हणणें खरें नाहीं. (ई) ब्रह्म सिद्धान्तादि ग्रंथांत रेवती पुंजाच्या तारा ३२ मानिल्या आहेत व त्यांत रेवतीचा आकार ही मृदंगा सारखा सांगितला आहे.व कालांश ही १७ सांगितले आहेत. लल्लाचार्य अयनांश शोधा-पूर्वीचे आहेत. रेवतीचे व अग्नेचे कालांश १७ ही भाषा सू. सि. तादि ग्रंथांची आहे. म्हणजे अयनांश ज्ञान कालाच्या नंतरची अथवा लल्लाचार्या नंतरचे ग्रंथांची आहे. व आतां पर्यंत तिचाच अंमल आहे. या वरून लल्लाचार्यांचे कालापासून सिद्धान्तोक्त रेवती तारा

लुप्त झाली असावी हें अनुमान चुकीचें आहे. लल्ल कृत रत्न कोशांत ही रेवती पुंजांत तारा ३२ मानिल्या आहेत यामुळें सदरील अनुमान दृढ होते. अर्थात् ग्रंथोक्त रेवती ताराच अद्याप दृग्गोचर होत आहे हें उघड आहे.

समाधान ६३ (अ-ई)

(अ) झीटा की निरूपयोगिता को सिद्ध हुई देखकर पाठकों को भुलावेमें डालनेकेलिये प्रिं० गोविंदरावजी " गमतीचे व हास्यास्पद " के तुल्य बे मुद्दे बेताली गीत गारहे हैं। प्रस्तुत विधानोक्त कोष्टकमें तैत्तिरीयश्रुति और नक्षत्र कल्पादि ११ ग्रंथोमें लिखी चित्रा व रेवती पुंज के तारोंकी संख्या बतादी है। तथा इन्हीं ग्रंथोक्त एक तारा नक्षत्रोंकी देदीप्यमानता निम्न-लिखितानुसार है।

एक तारा नक्षत्रों की अपने पुंज में अद्वितीय तेजस्विता.

क्रमांक	नक्षत्र.	तारा नाम.	प्रति.	तारा संख्या. श्रुति प्रोक्त.	तारा संख्या. ग्रंथ प्रोक्त.	स्पष्टीकरण.
१	रोहिणी	Aldebran	१·०६	१	५, ५	रूप विकारित्व से आर्द्रा की प्रति ०·५ से १·१ तक छोटी बडी होती रहती है. मूल का दक्षिण शर विशेष होकर उसके निकट में ही दीप्तिमान अनेक तारा होने से उक्त ग्रंथोक्त तारा संख्या में कुछ भिन्नता और श्रुति ग्रंथों में इन नक्षत्रों के १ व २ तारे कहे हैं। शतभिषक् व पुष्य की प्रति ४ से मिलती हुई केतकरोक्त म्यूपिसियम की प्रति ४ रेवती के स्थान में लिखी है। झीटा नंबर १ की प्रति ५·५७ (अंधुक दीप्ति) झीटा नं. २ की प्रति ६·४९ (नेत्रों से नहीं दिखनेवाली) निस्तेज होने से वह रेवत्युक्त दीप्ति के लायक नहीं है। बाकी
२	आर्द्रा	Alpha orionis	१·१०	१७२	१, १	
३	पुष्य	Delta Concri	४·०	१	१, ३	
४	मघा	Regulus	१·३४	१	५, ६	
५	चित्रा	Spica	१·२१	१	१, १	
६	स्वाति	Arcturus	०.२४	१	१, १	
७	ज्येष्ठा	Antares	१·२२	१	३, ३	
८	मूल	Lambda Soorpii	१·७१	१७२	२,६,९,११	
९	अभिजित्	Vega	०·१४	१	३, ३	
१०	श्रवण	Altair	०·८९	१	३, ३	
११	शतभिषक्	La. Aquarii	३·८४	१	१,१००	
१२	रेवती	Mu Piscium	४·००	१	१,४,३२	

९ तारों की प्रति १ नंबर चाकचक्य युक्त है। अतः उक्त सूक्ष्ममान की तुलना द्वारा सिद्ध

होता है कि " श्रुति ग्रंथों में लिखे हुए जितने एक तारा के नक्षत्र हैं वह सब दीप्तिमान और अपने पुंज में अद्वितीय हैं " इसलिये " एक तारा थी, वह बडी थी" असें म्हणण्यास आधार नाहीं और (इ) कथन बिलकुल गलत है।

(आ) झीटापिसी• की अपेक्षा शतभिषक् की तारा १८-१९ पट अधिक दीप्ति मान है और वह अपने पुंज में अद्वितीय तेजस्वी हैं। रेवती पुंज में शतभिषक् के तुल्य तेजस्वी झीटा न होकर म्यूपिसियम तारा है। और वह अपने पुंजमें अद्वितीय तेजस्वी भी है। श्रुति प्रोक्त अजूबाजू के तारों के भोग शरांतर से पुंज के रूप रेषा को अनुमित कर सकते हैं। सो निम्नलिखितानुसार होती है।

शतभिषक्, रेवती और झीटा की तुलनाः—

तारोंके	वैदिक नाम	ग्रीक नाम	प्रति	भोग	शार
शतभिषक् पुंज	तै. ब्रा. १-५-१		वर्ग	अंश	
	विश्व क्षिति	Delta Aquarii	३.५१	३१५.१	– ७.७
	इंद्र = शतभिषक्	La. Aquarii	३.८४	३१७.७	– ०.४
	विश्वव्यचाः	Beta Piscium	४.५८	३२७.७	+ ७.७
रेवती पुंज				अं. क.	अं. क.
	गाथः	Epsilon Piscium	४.४५	३५.३ ४२	+ १ ५
	पूषा = रेवती	Mu Piscium	४.००	३५९ १७	– ३ ४
	वत्साः	Nu Piscium	४.६८	१ ४०	– ४ ४१
झीटा	कालकंजा	Zeta Piscium	५.५७ ६.४९	३५६ २	– ० १३

सिद्धांतोक्त योग तारा के लक्षण भेद

' स्थूलास्यायोग तारका ' अपने चक्राकार पुंज में बिलकुल छोटे ६ प्रति के तारों में शतभिषक् स्थूल होने से योग तारा है।

' रेवत्याश्चैव दक्षिणा ' अपने मृदंगाकार लंबे पुंज में दीप्तिमान होकर दक्षिण में स्थित म्यूपिसियम योग तारा है.

म्यूपिशियम से झीटा अन्य तेजस्वी व उत्तर में होनेसे योग तारा नहीं है।

अर्थात् शततारकाके संबंध का "परंतु ती लहान आहे" इत्यादि कथन आकाश को बिना देखे लिखागया अतएव असत्य है। और सू. सि. में. कहे रेवती स्थान (भोग ३५९। ५० शर + ०।०) को शून्य मानकर उत्तर कदंबीय दिगंश २६६°। ४४' के दूरी ३°। ४४' २८"·२ पर झीटा का तारा है और दिगंश १९०। १० के दूरी ३°। ६'। ५६"·४ पर म्यू-पिसियम है। सो उक्त स्थान से झीटाकी अपेक्षा म्यु तारा ४१'। ३१"·८ निकट में एवं प्रतिमें दीप्तिमान् है। यदि ग्रंथों में रेवती का उत्तरशर लिखा है किंतु निजगति से दक्षिण की और चलाजाना संभव हैं तथापि "रेवत्याश्चैव दक्षिणा" ग्रंथोक्त लक्षण झीटासे–२° ५१' दक्षिण में म्युतारा होने से उसमें मिलते हैं। इससे स्पष्ट है कि जोभी रेवती स्थानभृष्ट होगई; दीप्तिमें छोटी होगई तोभी ग्रंथोक्त रेवती के लक्षण म्यूतारामें मिलतें हैं झीटामें बिलकुल मिलतें नहीं अतएव झीटा रेवती नहीं भ्रमोत्पादक कालकंजारूप तारा है ?

(ई) परीक्षणमें लिखी बातों से विधानोक्त सिद्धान्त पुष्ट होतें है किंतु इसमें जो ['**लल्लाचार्य अयनांशशोधा पूर्वीचे' सू. सि. 'अयनांश ज्ञानकाला नंतर चे'**) अयनांश ज्ञान काल [शाके ९००-५५०] बताया है। सो बिलकुल गलत तो है ही लेकिन शुद्धनाक्षत्र गणना में भ्रम फैलाकर श्रुति स्मृति प्राचिन ग्रंथकारों को जबकि अयनांशों का भी प्राचीनो को ज्ञान नहीं था तब उनकी कही बातें अज्ञतायुक्त हैं अतः वह विश्वसनीय नहीं एवंप्रमाण कोटीमें ग्राह्य करने लायक नहीं हैं ऐसा बतलाने के लिये कुटिलनिति से कहेगई सो बिलकुल असत्य है। जिन ग्रंथोंके आधार से झीटा को रेवती का स्वांग देना चाहते हैं उनसे वह बात सधती नहीं देखकर पहिले भी आपने (१) भारतीय ग्रंथकारों को उच्च व पात मालूम नहीं हुयेथे। (२) अयनांशों का निश्चय प्रत्यक्ष देखकर किया नहीं हैं ' ऐसे पहिले भी आपने आर्योंके उपर झूटे लांछन लगाए हैं। उसी तरह यह अयनांश ज्ञानकाल का कोटिक्रम है। परंतु इस आक्षेप के खंडनमें हमारे वेदकाल निर्णय [पृष्ठ १८-२४,३८-९९,९५-१०९,१४४-१५१, २३६-२३७] में अनेकानेक प्रमाण देकर सिद्ध करके बता दिया है कि वैदिक कालसे ही आर्यों को शुद्ध नाक्षत्र पद्धति और अयन संपात की स्थिति का ज्ञान होगया था सिर्फ "जबजब अयनांश शून्य होते आए हैं तबतब अयनांशों के स्वल्पान्तर तक कुछ विद्वान् नाक्षत्रमान के तुल्य ही सांपातिक मान को मानते आये हैं।" इस सिद्धान्त के अनुसार गत शून्यायनांश वर्ष शके २१२ से ५५० तक अयनांश मानने में २। ३ अंश की गडबडी हुई है। उतने परसे गोविंदरावजी आर्य ग्रंथ कारों को किसी तरह ज्ञान— अज्ञान के संपुट में लाकर शुद्ध नाक्षत्र गणना में प्रच्छन्न सायन मानका अंधःकार फैलाना चाहते हैं सो अब वैदिक ज्ञान प्रभाकर के उषःकाल के सामने टिक सकता नहीं है।

परिक्षण ६३ (उ, ऊ)

(उ) सूर्यसिद्धान्ता नंतर आतां पर्यंत केशव दैवज्ञ, गणेश दैवज्ञ यांसारखे आकाशाचें चांगल्या प्रकरें निरीक्षण करणारे ज्योतिषी होऊन गेले त्यांनीं रेवती तारा लुप्त झाल्याची

तक्रार केलेली नाहीं. [ऊ] रा० केतकर यांची ही १९।२० वर्षा पूर्वी ही तक्रार नव्हती. या २५।३० वर्षांतल्या चित्रोत्पत्ती पासून मात्र काहींच्या विचार चक्षूवर पाल आलेलें आहे त्यामुळें ती चर्म चक्षूस दिसून ही व्यर्थ होते.

समाधान ६३ (उ, ऊ)

नव्यसूर्य सिद्धांत के बाद आजपर्यंत के ग्रंथकारोंने जिस आरंभ स्थान को लेकर अपने-२ ग्रंथो में ग्रहोंके भगण और अयनांश [मंद केंद्रीय वर्षमानानुसार] कहे हैं वह सब चित्राभिमुख रेवत्यंत बिंदुसे कैसे मिलते हैं सो विधान १७-२६ में रिपोर्ट के ग्रहलाघव चालन प्रकरण में, समाधान २५, ८ के क, ख न्यास में उदाहरण देकर सोपपत्तिक रीति से बता दिया है । किंतु मजा ये है कि [परीक्षण ८ अ देखिये] जो गोविंदरावजीने केशव एवं गणेश दैवज्ञ के संबंध में "**गणेश दैवज्ञाचा पिता केशव" परंतु त्याने ही ग्र. ला. प्रमाणेंच अयनांश मानिले आहेत "पाहून लिहिलेले नाहींत**" ऐसा कह चुके हैं । और अब किसी तरह का झीटा को आधार न होनेसे डूबते को तिनके का आश्रय के तुल्य कहना पडा है कि ' उक्त पिता पुत्र आकाश के उत्तम निरीक्षक यानी प्रत्यक्ष वेध लेकर काम करनेवाले थे फिर क्या है जबकि इन्होंने अपने २ ग्रंथोंमें जिस भगणारंभरूप रेवती का अवलंबन करके शाके १४१८ तथा १४४२ के रव्युच्च ७८ अंश, अयनांश १६।१४ तथा १६।३८ कहे हैं। और इन्हींके ग्रंथोंपर से जो आज ग्रहोंके भगणारंभ स्थान आते हैं उन सबसे म्युपिसियम तारा ही रेवती की योगतारा निश्चित होती है । झीटापिसियम से ४ दिनका अंतर रहता है तब निःसंदेह है कि उक्त पिता पुत्रों कि दृग्गणितैक्य रेवती म्युपिसियम ताराथी झीटापिसियम नहीं । कोलब्रुक साहब सूचित झीटाका झगडा छोड दिया तो फिर रेवती की तकरार ही रहती नहीं । [ऊ] अब रही रा० केतकर की तकरार सो उनके शब्दों से ही मिट जाती है:—

" २ रा. आपटे यांना अशी सवयच दिसते कीं, उगाच भला लांबलचक लेख लिहून, त्यांत ज्योतिःशास्त्रीय शब्दांचा पुष्कळसा उपयोग करून पाहिजे तितकी चुकीचीं, खोटीं व दिशाभूल करणारीं अनुमानें झोकून द्यावींत. बेंटलीचे जे भरकसलेले लेख आहेत ते त्यानें हिंदू ज्योतिषाच्या अज्ञानामुळें लिहिले आहेत; या कारणामुळें ते क्षम्य आहेत. परंतु रा. आपटे यांना हिंदू ज्योतिषाचें × × ज्ञान असून ही त्याचा दुरुपयोग करण्यामध्येंच ते प्रौढी मानतात, यावरून ते खरें सवाई बेंटली आहेत. त्यांची " म्हणून, यावरून, अर्थात्, ज्यापक्षीं, करितां, कारण " इत्यादि उभयान्वयी अव्ययांनीं जोडलेलीं कार्यकारण परिणाम दर्शक वाक्यें अत्यंत असंबद्ध, खोटीं, व भ्रांत्युत्पादक असतात, असें आमचा हा लेख वाचतांना वाचकांच्या प्रत्ययास येईल. (**विविधज्ञान विस्तार अक्टोबर**

१९२४–केतकर) " " २. रा. आपटे यांच्या लेखास उत्तर देण्यापूर्वी ज्योतिःशास्त्र दृष्ट्या त्यांच्या कृतिची वाचकांना ओळख करून देणें जरूर आहे. सन १९१२ या वर्षी ' ज्योतिर्गणित वार्तिक ' या नांवांचा गद्यपद्यात्मक एक ग्रंथ आमच्या ज्योतिर्गणिताच्या आधारानें त्यांनीं लिहिला आहे. त्याच्या भूमिकेंत आम्हांस उद्देशून त्यांनीं पुढील पद्यें दिलीं आहेत. ' जयतुजगति चारं ज्योतिषा मुज्ज्वलानां युति द्युति हृति भक्त्यादि प्रयोगैर्नियच्छन् ॥ भटइव कटकानां वेंकटेशः पटीयान् गणक गुरु गणेशो योयमन्यः सुमान्यः ॥ १ ॥ प्रत्यक्षसिद्ध नव बीज मनोज्ञभागं यज्ज्योतिषां गणितविद् गणितं व्यधत्त ॥ श्रेष्ठं सुबोध्यमपि केतकरो ऽद्वितीयं तच्छात्रबुद्धि करमित्यति माननीयम् ॥ २ ॥ ही केवळ शिष्टाचाराची प्रशंसा आहे. परन्तु जेथें प्रशंसेला कारण नाहीं अशीं कांहीं त्यांची गणितिक वचनें पुढें देतों ह्मणजे चित्रा संबंधीं त्यांचीं मतें पूर्वी कशीं अनुकूल होतीं हें वाचकांना कळेल. पृष्ठ ६९ यांत ते म्हणतातः—या ग्रंथांतील गणितास प्राचीन ग्रंथांचा आधार घेतला आहे त्या विषयीं—

"सूक्ष्मत्वादवगम्यते न गणकैःसा रेवती तारका ॥
कर्मा तो रविदिष्ट भोगगणितात् तत्स्थानतोऽत्रोदितं ॥ १ ॥"

अर्थः—रेवती तारा सूक्ष्म असल्या मुळें ती कोणती असावी हे कळत नाहीं म्हणून रवि दिष्ट म्हणजे सूर्य सिद्धांतांतील तिच्या भोगा वरून तिचें स्थान ठरविलें आहे. पुढें अयनांशा विषयीं पृष्ठ ५२ येथें ते म्हणतात– " ध्रुवायनांशेष्विषुनेत्रवेद, धराणु नेत्राश्वि मितेषु २२.१४२५ युंक्ष्व ॥ द्विसप्तपंचत्रिकराणुखेष्वा ९०.२३५७२ हताब्द संघ प्रमिता विलिप्ताः ॥२॥ " ३. याच प्रमाणें पुढें पांच वर्षांनी रा. आपटे यांनीं "ज्योतिर्माला" सप्टेंबर १९१७ यांत " पंचांग शोधन अयनांश विचार " या नांवाचा लेख प्रसिद्ध केला आहे. त्यांतून पुढील उतारा घेतला आहे. '६. आतां तारां चे भोग ठरवितांना कोणती तरी तारा मुख्य मानावी लागते ······ हे भोग क्रांति वृत्तावर मोजावयाचे आहेत. करितां ज्यांचा शर लहान आहे; अशा तारां पैकींच कोणती तरी एखादी मुख्य मानून तिच्या अनुरोधा नें भोग ठरविले असले पाहिजेत, हें उघड आहे. २७ योग तारां पैकीं क्रांति वृत्ताला फार जवळ अशा ४ योग तारा आहेत. पुष्य, मघा, शततारका व रेवती यांचे शर ३० कलांचे आंत आहेत······ या चारी योग ताऱ्या पैकीं मघा सर्वांत ठळक व १ । २ प्रतीची आहे. ही मुख्य मानावी असा मनाचा ओढा सहज होतो. आपल्या प्राचीन ज्योतिष्यांच्याही मनांत ही गोष्ट वागत होती असें दिसतें कारण···· सर्व ठिकाणीं मघाचा भोग पूर्ण अंशात्मक मानिला आहे. मला तसेंच करणें सयुक्तिक दिसतें ···· या वरून मघा भोग १२६ अंश मानिला पाहिजे हें वरील कोष्टका वरून उघड दिसेल. या योगानें रेवती योग तारा (म्यूपिसियम) अं. ३९९ क. १७ इतक्या अंतरावर असल्या कारणानें ती आरंभी मानिल्या सारखें होतें. रेवती भोग लघुतंत्रांत अं. ३५९, सूर्य सिद्धान्तांत अं. ३५९ क. ५० व इतर ग्रंथांत (ध्रुव सूत्रीय) अं. ३६०

दिला आहे. म्हणजे रेवती तारा ३६० अशांत कोठें ही असली तरी आरंभीच आहे असें समजण्याचा ग्रंथकारांचा प्रघात आहे. या नियमानुसार आपल्याही वरील योजनेंत रेवती तारा आरंभी मानिली आहे असें आपणांस म्हणतां येतें'''' करितां रेवती तारा आरंभी मानावी ही सर्व ग्रंथकारांनां संमत असलेली गोष्ट साधून मघाचा भोग कला रहित अं. १२६ घेतला असतां शके १८३९ च्या आरंभीं अयनांश २२।४१ येतात. ते २२ व २३ अशांचे मध्यवर्ती असल्या कारणानें बहु संमत होतील अशी आशा वाटतें, मघा पासून चित्रा बरोबर ५४ अशांनी पूर्वेस असल्या कारणानें चित्रा भोग सहजगत्या १८० अंश येतो.' ' या दृष्टी नें तयार केलेल्या योजने मध्यें कोण कोणते फायदे साधले आहेत ते खाली लिहील्या प्रमाणें संकलित केले आहेतः– (१) आरंभी योगतारा सांपडते, (२) आरंभ स्थान निश्चल राहते, (३) शके १८३९ चे आरंभीं येणारे अयनांश २२।४१ हे बहुसंमत मर्यादेच्या आंत म्हणजे २२।२३ अंशांचे मध्यवर्ती आहेत, (४) नक्षत्रांच्या योगतारा आपापले स्थिर विभागांत असाव्यांत हा जो शास्त्रकारांचा मुळचा हेतु तो हल्लीं उपलब्ध असलेल्या किंवा सुचविलेल्या कोणत्याही योजने पेक्षां योजनेने उत्तम साधतो, (५) भोग मापनास सोयीची अशी बहुतेक निःशर मघातारा १२६ अंशावर म्हणजे निष्कल येते व चित्रा ही कांहीं बाबतींत महत्वाची असलेली तारा सहजगत्या १८० अंशावर येते, (६) एखाद्या विशिष्ट वर्षाच्या करणागत मेषकालाच्या सायन स्पष्ट सूर्या पासून हे अयनांश साधलेले नाहींत त्यामुळें ते भिन्न येणार नाहींत, (७) आतां पर्यंतच्या योजनां पेक्षां हा अधिक व्यवहार्य व सशास्त्र दिसते."

"४. वरील उताऱ्या वरून दिसतें कीं, सूर्य सिद्धान्तोक्त चित्रेचा भोग १८० अंश आणि तदनुसारी शके १८०० वर्षाचे अयनांश २२·१४२५ हे त्यांना मान्य होते. इतकेच नव्हे तर पृष्ठ २७ पासून पुढील एकंदर गणितांत चित्रापक्षाच्याच क्षेपक ध्रुवक यांचा त्यांनीं उपयोग केला आहे. यावरून पूर्वीं त्यांना चित्रापक्ष मान्य नव्हता अशी शंका तरी कोणी घेईल काय ? सन १९१९ पर्यंत ते चित्रापक्षाचे कट्टे अभिमानी होते, परंतु पुढें सांगली संमेलनानंतर कोणत्याही पक्षाने किंवा यक्षिणीनें आपली कांडी फिरविली, कोण जाणें रा० आपटे यांनीं एका क्षणांत आपली पगडी फिरविली आणि तेव्हांपासून नूतन धर्मान्तर केलेल्या माणसाप्रमाणें चित्रापक्षाची निंदा करण्याचा सपाटा त्यांनीं सुरू केला आहे, ' त्यांना खोटे बोलण्यांत कांहींच दिक्कत वाटत नाहीं त्यांनीं आपल्या "शास्त्रपूतां वदे द्वाणीं" या लेखांत, सपशेल खोटी विधानें, दिशाभूल करणारे तर्क, उपहास, वितंडा, हेत्वाभास, अपपाठाश्रय, जल्प, इत्यादि साधनांचा मनमुराद उपयोग केला आहे, अशा मनुष्याची कींव करावी किंवा धिक्कार करावा हें वाचकांनींच ठरविणें बरें" **यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवंपरिषेवते ॥ ध्रुवाणि तस्य नश्यंति अध्रुवं नष्ट मेवच ॥ १ ॥** ' विविध ज्ञान विस्तार जून १९२४ वें. बा. केतकर.'

अब यहां आपटे साहब से इतनाही प्रश्न है कि सांगली सम्मेलनके पहिले और बाद; आपके चर्म चक्षूमें इतना जमीअसमानका अंतर याने जो दृष्टि चित्राकी रक्षक दिखती थीं वह उसकी भक्षक कैसे बनगई, क्या गाडेके चाकके तुल्य तत्ववेत्ताओंके सिद्धान्त ऐसे पूर्व के पश्चिम तर्फ एकदम बदलते रहते हैं या स्वार्थ लोलुपोंके !! ज्यो. वि. केतकर की भी निस्वार्थताको देखिये कि जिसने झीटा पक्षियोंकी " अध्रुवतारा पकडा कर वैदिक काल से प्रचलित नाक्षत्र ध्रुवपद्धति को छुडा देना तो संपूर्ण आर्यग्रंथ स्वयं निरर्थक होजायंगे" ऐसी चालबाजी को पहिचानतेही कमेटी के ५००० रुपियों के पुरस्कार का परित्याग कर आर्य संस्कृति को उज्वलित रखी.

परीक्षण ६३ (ए-ओ)

(ए) हल्ली कालांशाचा आधार घेणारांनीं तर हें कालांश तपासून कधींच पाहिलेले दिसत नाहींत. त्या प्रमाणें वेधानें कालांशांचा अनुभव घेऊन झीटापिशियम सिवाय बाकीचे कालांश अनुभवास ठीक ठीक येतात परंतु रेवतीचे मात्र येत नाहीत असें साधार प्रसिद्ध झाल्याशिवाय रेवती तारा लुप्त झाली ही केवळ मतलबाची वल्गनाच समजली पाहिजे -(ओ) कारण झीटापिशियम तारेचे भोग शर रेवती योगताऱ्याच्या ग्रंथोक्त भोग शरांशी जुळतात ही गोष्ट निःपक्षपातानें विचार करणारांस नाकबूल करतां यावयाची नाहीं.

समाधान ६३ (ए-ओ)

कालांश का आधार कहने वालों ने चाहे सब तारों के कालांशों को अभी प्रकाशित न किये हों तोभी नित्योदयास्त के दृश्यादृश्य नत कालांशों को प्रत्यक्ष में वेध द्वारा देखते हैं. सो उससे तथा नाटिकल आल्मनाक में लिखी तारों की प्रति से तुलना करनेपर ज्ञात होता है कि बहुतेक तारों के जो ग्रंथों में कालांश कहे हैं सो तत्कालीन दृक्प्रत्यय से ही लिखे गए हैं। उनके स्वप्रविकारित्व से अब थोडा अंतर पडना स्वाभाविक है। तथापि सरासरी को देखते विधान ५१-६२ में लिखे प्रकार सब बराबर मिलते हैं। सिर्फ झीटा-पिशियम के मिलते नहीं। करीबन म्यूपिशियम के मिलते हैं सो साधार प्रसिद्ध भी कर दिये हैं। अब संभव है प्रिं. गोविंदरावजी ने जैसे (१) 'रेवत्युदयः प्राची॰' से शून्य कालांश और (२) 'रेवतीचे १७' से सतरह कालांश कहे हैं वैसे इन परस्पर विरुद्ध दोनों बातों की कोई प्रत्यक्ष वेध सिद्ध संगति लगा कर झीटा के तोतया रेवतीपन को मिटाते हैं। या 'गाजर की पुंगी बजी वहां तक बजाए नहीं बजी तो खा डाले' के तरह झीटा मान को भी फेक कर क्या सायन मानकी वल्गना शुरू करते हैं सो देखना है। क्योंकि अंतिम

ध्येय तो यही मतलब का है अब छुपाने की क्या जरूरत । (ओ) यहां भोग शर का पूर्वापर तनिक भी उल्लेख एवं कार्यकारण–संबंध न होते हुए केवल " कारण " के प्रयोग से आप दिशाभूल कर रहे हैं यह बात निःपक्षपात से विचार करने वालों को नाकबूल करते नहीं आसकती है ।

विधान ६४

" उक्त रेवती पुंजमें ३२ तारा इतनी छोटी हैं कि उनमें से सिर्फ ३।४ तारा नेत्रों से खस्वस्तिक के निकट में दिख सकती हैं किंतु छोटी होनेसे उसमें भ्रम पडना संभव है " ऐसा सूर्य सिद्धांत की टीकामें प्रोफेसर व्हिटने साहब का भी कथन है। तथा पूर्वोक्त कथन से ऐसा भ्रांतिकारक, अंधुक, विकृत, स्थानभृष्ट, और आर्य ग्रंथो के गणितागत आरंभस्थान से अयुक्त तारा २७ नक्षत्रों में मुख्य कैसे हो सकता है कदापि नहीं ।

विधान ६५

वैदिक ग्रंथो में तो ऐसे भ्रांतिकारक तारों को " छायारूपःसःपाप्मा ! कनिष्ठः अल्पतमः सचपाप्मा " (श. ब्रा २-२-१-१० भाषा. पृ० ८७) ' पाप्मा, भ्रातृव्य= भ्रांति कारक यज्ञ प्रयोग से शुद्ध नहीं आने वाले और देवोंके शत्रु' ऐसा कहा है । इतना ही नहीं तो " चित्रा नक्षत्र के ऊपर यज्ञारंभ करके वहींसे चिति चयन (इष्टकोपधान रूपतत्कालीन दृश्य पंचांग) का निर्माण करें. " इस तरह चित्रा तारे के द्वारा संपूर्ण नक्षत्रों का निश्चय करना ऐसा वेदसंहिता में कहा है तथा तैत्तिरीय ब्रा० (१·१·२·४) में भी " काल कंजावै नामासुरा आसन् ते सुवर्गाय लोकायाग्निमचिन्वत । पुरुष इष्ट का मुपादधात्पुरुष इष्टकाम्। स इंद्रो ब्राम्हणो ब्रुवाण इष्टका मुपाधत्त। एषामे " चित्रा " नामेति । ते सुवर्ग लोक माप्रारोहन्। स इन्द्र इष्टका मावृहत्। तेऽ वा कीर्यन्त ये वाऽ कीर्यन्त। त ऊर्णाव भयोऽ भवन् । द्वा वुदपततां। तौ दिव्यौश्वाना वभवताम् । यो भ्रातृव्यवान्त्स्यात् । स चित्रायां अग्निमादधीत। अवकीर्यैव भ्रातृव्यान् ओजोबलमिंद्रियंवीर्यमात्मन्धते । "

अर्थात् "काल कंज नामक असुरों ने स्वर्ग लोक में जाने के लिये पुरुष के आकृति (Bootes बूटिस) की चिति में इन्द्र है देवता जिसका ऐसे चित्रा तारे से इष्ट कोप धान यज्ञ (तत्कालीन इष्टकाकृति लेख) को आरंभ किया । इनमें से जिन्होंने चित्रा के अनुसंधान रहित ईटें रखी थीं वह स्वर्ग (उत्तर) की ओर बढे हुए वहां इधर उधर

खिसक गये सो ऊर्णासूत्र के जाले के, (या शतपथ ब्रा. २-१-२-१६ 'ग्रीवाः'= कटे हुए गले के स्वेत केसों वाले शिर के) सदृश यानी वर्तमान में जिसे अरुंधती केश (Coma Berenices) कहते हैं ऐसे तारों के झूमके के रूप के बन गए। तथा दो तारे और भी उत्तर को बढकर गये वह तार का पुंज दिव्य दो श्वानों के (Canes Venatici) रूप के हो गए। इसलिये जिस विद्वान् को (नक्षत्रों की गणना में) भ्रातृव्य= भ्रांति= संदेह हो उसने उक्त आकृति विशिष्ट तारका पुंजों से निश्चित होने वाले इंद्र दैवत्य देदीप्यमान चित्रा नक्षत्र से अग्नि का आधान करे। जिससे सब भ्रांति दूर होकर इसके प्रभाव से वह ओजबल वीर्य को धारण (शुद्ध नाक्षत्र गणना द्वारा) कर सकता है। " इत्यादि वैदिक प्रमाणों से शुद्ध नाक्षत्र दैवी गणना में सब नक्षत्रों की अपेक्षा चित्रा की निरपवादित श्रेष्ठता एवं अखंड परंपरा सिद्ध होती है। ऐसे रेवती के संबंध का कहीं भी यज्ञारंभ का उल्लेख नहीं है। झीटा तारा तो अत्यंत निजगति वाला पद भ्रष्ट होने से असुर और अंधुक होने से पाप्मा यज्ञवंचक, देव शत्रु कहा सकता है। अतएव वह नाक्षत्र गणना के लायक ही नहीं है. तब उसको यज्ञ परंपरा कैसे मिल सकती है

परीक्षण ६५ (अ)

हें विधान अप्रासंगिक आहे व खरे ही नाहीं. वेदा मध्ये निरनिराळया तारा पुंजावर रूपकें बसवून कथा लिहिल्या आहेत. त्या पैकीं " काल कंजा नामा सुरा आसन् इ० " ही एक आहें. सूक्ष्मतार्‍यांना अनुलक्षूनच असुर शद्वाचा प्रयोग केला आहे असें वाटत नाहीं. याच्या उलट प्रकारचें कोठें कोठें उल्लेख सांपडतात. ज्येष्ठा तारा ठळक असूनही " आम्हीं ज्येष्ठाला मारिलें, शतभिषिकावर अभिषेक केला, रेवतीवर वध केला असें देव म्हणातात अशा अर्थाचीं वाक्यें आहेत. " तै. ब्रा. १·५-२ (भा. ज्यो.पृ. ५९)

समाधान ६५ (अ)

प्रस्तुत परीक्षण असमंजसतासे दूषित एवं गलत अतएव भ्रमोत्पादक है। वैदिक ग्रंथों में जितने रूपक कहे गये हैं वह सब ज्योतिषशास्त्र से संबंध रखने वाले हैं. अतएव उनमें प्रायः ज्योतिष के मूल तत्वों को निश्चित करने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ प्रयोगों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। और वह भी इस तरह की जिससे मानवज्ञान के क्रम विकाश के तत्वानुसार संसार व्यापी प्राचीनतम इतिहास का पता लग सकता है क्योंकि उस स्मारक के अवशेष भाग संसार में ज्योतिष में ही अब भी उपलब्ध होते हैं। जिससे वैदिक ज्ञान का जगद्व्यापित्व सिद्ध होता है। और बिना सत्यता के कोई भी वस्तु चिरकाल तक टिक नहीं सकती इस अबाधित सिद्धान्त से वैदिक बातें सत्य हैं।

उस काल में किस २ समय नाक्षत्र, सौर, सावन, चांद्रमान और वसंत संपात से यज्ञारंभ, अयन, ऋतु, आदि का शोध लगता गया था। किसी ऋषिने, किस स्थल में किस काल में कौन तत्त्वों का शोधन लगाकर कौन २ ग्रंथ निर्माण किये हैं इत्यादि बातों का दिग्दर्शन हमारे युगपरिवर्तन और वेदकाल निर्णय नामक ग्रन्थों में बताया गया है इससे पाठकों के अनुषंगिक शंकाओं का समाधान हो सकता है।

गोविन्दरावजी ने विधानोक्त अर्थ को विपरीत बताने के लिये जो अनुवाक का उल्लेख किया है उसी के द्वारा विधनोक्त बातें पुष्ट एवं समर्थित होकर उससे परीक्षण की ही पूर्ण रीति से परीक्षा हो जाती है कि वह कितने सत्यांश को लिये हुये है।

" सलिलं वा इदमंतरासीत्। यदतरन्। तत्तारकाणांतारकत्वम्। यो वा इह यजते अमुऽसल्लोकं नक्षते। तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम्। देवगृहा वै नक्षत्राणि। " यानिवा इमानि पृथिव्याश्चित्राणि तानि नक्षत्राणि। तस्मादश्लील नामऽश्चित्रे, नावस्येन्नयजेत। यथा " पापा हे " कुरुते तादृगेवतत्। कृत्तिकाः प्रथमं। विशाखे उत्तमम्। तानिदेवनक्षत्राणि॥ अनूराधाः प्रथमं, अपभरणी रुत्तमम्। तानियमनक्षत्राणि॥ यानि देवनक्षत्राणि तानि दक्षिणेन (मार्गेण) परियन्ति। यानि यमनक्षत्राणि, तान्युत्तरेण॥ ' ज्येष्ठ मेषा अवधिष्मेति तज्ज्येष्ठघ्नी'। 'यच्छतमाभिषज्यन्। तच्छतभिषक् '। 'रेवत्यामरवन्त।' यत्कारीस्यात्। " पुण्याह " एव कुरुते। (तै. ब्रा. १-५-२)

भावार्थः-"समुद्र के तुल्य विस्तृत आकाश को जिन तारका=नौकाओं के सहारे हम तर सकते हैं वह तारका (तारे) कहाते हैं। इन तारोंके आधारपर जो यज्ञप्रयोग करते हैं उनके लोक (क्रांतिवृत्त पर गिने जाने वाले स्थान) क्षत (गलत) नहीं होते इसलिये इनको नक्षत्र कहते हैं। नक्षत्र यह दिव्यज्योति देवताओं के मंदिर हैं। पृथ्वीमें अनेक प्रकार के आकृति विशिष्ट चित्रोंसे अन्यान्य पुरुषों के घरों की जैसे सुभीते से पहिचान हो जाती है ऐसे ही अश्वमुखादि चित्रोंसे उनके अश्विनौ आदि देवताओं के शुद्ध नक्षत्रों की पहिचान हो जाती है। इसलिये नक्षत्रों का 'चित्र' नाम है। इससे 'अश्लीलंचित्रे' यानी अस्पष्ट=भद्द=संशयास्पद= गंवारी आकृति वाले= भ्रांतिकारक चित्र (नक्षत्र) से कोई यज्ञ का आरंभ या समाप्ति न करे। क्योंकि पापाहे मेघाच्छन्न (दुर्दिन) में स्पष्ट देखे बिना ही प्रयोग करने से जैसा उसका मापन अनिश्चित होता है ऐसा ही अस्पष्ट नक्षत्र से करना योग्य नहीं है। ' ' इनमें कृत्तिका से विशाखापर्यंत दे= देवनक्षत्र ' और अनुराधा से भरणी पर्यंत के यम नक्षत्र कहाते हैं। देवनक्षत्र पर स्थित ग्रह दक्षिणाभिमुखमार्ग (क्रांति वृत्त) से गमन करते हैं. यम नक्षत्रों पर स्थित उत्तराभिमुख गमन करते हैं। उक्त नक्षत्र पर काम करना तो वह " पुण्याह " कहाता है.

इनमें से कुछ नक्षत्रों के शुभाशुभ फल के अनुसार वैसेही उनके उपनाम पड गए है। जैसे जेठ को मारने का फल वाली = ज्येष्ठघ्नी, जिस पर सेकडों की भैषज्य चिकित्सा की जाती है वह शतभिषक् और जिसका रुदन फल कहा है वह रेवती ऐसे इनको कहते हैं। फलज्योतिष ग्रंथों में भी " **सुरेशतारा जनिता धवाग्रजं हंति। शतभिषजि भैषज्यं कारयेत्। पौष्णाधिष्ण्ये मासिकं रोगपीडनम्.** " ऐसा वसिष्ठ संहिता में लिखा है।

तथा हनन शब्द का अर्थ जैसे गणित में 'गुणाकार' लिया जाता है ऐसा वैदिक काल में मंडल वेध (९०।१८०।२७० अंश) में या पूर्ण नक्षत्र वेध (१३°।२०′) आदि में हनन (घ्न) शब्द का प्रयोग किया जाता था और उसमें मघा नक्षत्र को पितृघ्नी कहा है। शतपथ ब्राह्मण (३·२·४·१४ देखिये:—

" सोमक्रयणी पिंगाक्षी (लाल तारा) रोहिणी (लोहिनी) भोग ४६ अंश इंद्र दैवत्या ज्येष्ठा पिंगाक्षी वार्त्रघ्नी (१८०) रोहिणी = ज्येष्ठा भोग २२६ पितृ दैवत्या मघा श्वेताक्षी (सपेद तारा) पितृभ्योघ्नंति ॥१२६॥ अर्थात् रोहिणी से मघापूर्ण ६ नक्षत्र × (१३°।२०′) =८०° से विद्ध होती है." इस उपपत्ति से जैसे मघा को पितृघ्नी कहा है ऐसे ज्येष्ठा नक्षत्र को ज्येष्ठघ्नी कहना उपर्युक्त वेध के आधार से योग्य है।

उक्त प्रमाणों के आधारपर निम्नलिखित बातें निश्चित होती है :- (१) वैदिक वाक्यों में जो बातें लिखी हैं सो अब भी वेध सिद्ध परिमाणों से मिलती हुई हैं = ज्योतिःशास्त्रिय प्रणाली युक्त हैं ; अतएव प्रमाण कोटी में ग्राह्य हैं, (२) तैत्तिरीय ब्रा० के समय धनिष्ठारंभपर वसंतसंपात की स्थिती थी इसको सामने रख कर तत्कालीन शीतातप वर्षा के तीव्रता द्वारा होने वाले क्लेशों की तुलना की जाय तो ज्येष्ठघ्नी आदि नाम योग्य हैं, (३) तदनुसार या और फलितके तत्वोंको लेकर आगे जो फलज्योतिष में फल कहे हैं उससे विधानोक्त पूर्व कथन में कुछभी विरोध नहीं आता है, (४) सूक्ष्म या स्थूल तारोंके उपलक्ष्य में असुर शब्द कहा न होकर संपात के विलोमगति या अन्य कारण से जो आकाश के दृश्यस्थिति में अंतर पडता है उसको अलग बताने के उपलक्ष्यमें असुराः ('पूर्व देवाः' वर्तमाने देवत्वात् भ्रष्टाः) इत्यादि शब्द कहे गये हैं। कोष ग्रंथों में भी '**पूर्वदेवा : सुरद्विषः**' के नामसे उल्लिखित किये गये हैं। अतः जो वैदिक यज्ञ रूप नव्य गणना के बाहर हैं वह असुर कहाते थे।

परीक्षण ६५ (आ)

(क) काळ कंजाची स्तुति ही केलेलीं वाक्यें वेदांत आहेत (भा. ज्यो. पृ. ६१ (का) अथर्व संहिता ६·८०), (ख) शत्रूंचा नाश व्हावा अशी इच्छा असेल त्यानीं चित्रावर आधान करावें असें सांगितल्यानें जणूं काय चित्रा कदंब भोग १८० अंश ठरणार आहे अशा

बुद्धी नें दीनानाथजीनीं या कथेला महत्व दिले आहे। परन्तु हा भ्रम आहे, (ग) कृत्तिका व इतर नक्षत्रांवरही आधान करण्यासंबन्धी अशा प्रकारची वर्णनें आहेत.

समाधान ६५ (आ).

(क) यहां कोई प्रमाण या आधार नहीं बताकर जबकि गोविंदरावजी ने केवल भारतीय ज्योतिः शास्त्र का अगुंली निर्देश कर दिया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आपका वेद देखा हुआ नहीं है फिर 'असें वेदांत आहे' इत्यादि आपका कथन निरर्थक है। क्योंकि भा. ज्यो. में दीक्षितजी ने तै. ब्रा. के प्रस्तुत प्रमाण के संबंध में " **यांतील 'दोनवरगेले ते दिव्य श्वान झाले' हा निर्देश कोणत्यातरी दोन तारांस किंवा तार का पुंजांस अनुलक्षून आहे असें स्पष्ट दिसतें** और अथर्व संहिता ६·८० के यंत्र के संबंध में—'**ह्यांत एक दिव्य (आकाशांतला) श्वा आला आहे आणि आकाशांत देवासारखे असलेले तीन काल कंज आले आहेत.** ' ऐसा गोलमाल अर्थ " **दिसतें** " क्रियापद से व्यक्त कर दिया है। इसी के भरोसे 'स्तुति का अर्थ नहीं होते हुए भी' गोविंदरावजी का " स्तुतिही केलेल्डीं वाक्यें वेदांत आहेत " ऐसा डींग मारना हास्यास्पद है।

(ख) मूल (तै. ब्रा. के) प्रमाण में भ्रातृव्य शब्द है वर्तमान में इसका अर्थ भाई के पुत्रों (बांधवों) के संबंध में लगाया जाता है। लेकिन वैदिक बातें सब आकाशस्थ दिव्य ज्योति तारों के संबंध में है। उनमें जो तारे चितिचयन एवं यज्ञकर्मों के प्राचीन मंत्रों से एक वाक्यता रखने वाले निश्चित व अविकृत प्रतीत हुए वे तारे को देव, देवी, देवता और उनके दर्शकों को ऋषि, गंधर्वादि तथा स्थानभ्रष्ट, भ्रांतिकारी, अधिक, विकृततारों को असुर, दानव, देवबांधव यज्ञ शत्रु याने वेध लेने वाले के ज्ञान में व्यत्यय लाने वाले शत्रु ऐसा इन्हें वेद में कहा है। प्रस्तुत चितिचयन में चित्रा तारे की इंद्र देवता बताकर मुख्यत्व बताया है। चित्रा तारे की इष्ट को (गणना) नहीं रहने से '**ते वै-अकीर्यन्त। ये वै-अकीर्यन्त। ते-ऊर्णावभयः अभवन्**' इन शब्दों से ही उनका खिसकना (स्थानभ्रष्ट होने से भ्रातृव्यत्व व्यक्त होता है। अंत्य में जो चित्रा से यज्ञ (चितिचयन) करता है वह **अवकीर्य एव भ्रातृव्यान्** भ्रांतिकारक असुर रूपों को बचाकर हटाकर ' ऐसा अर्थ होते हुए को गोविन्दरावजी '**शत्रूंचा नाश**' ऐसा अर्थ करते हैं सो उपर्युक्त 'अकीर्यन्त' के विरुद्ध होने से उनका ही भ्रम व्यक्त हो जाता है। इतना ही नहीं तो चित्रागणना से रेवत्यंतबिन्दु के निकट की झीटापिसियम तारा अत्यंत निजगति वाली होने से स्थानभ्रष्ट है एवं ३२ तारों में अंधुक होने से भ्रांतिकारक निश्चित होती है तब वह इस तै. श्रुति के प्रमाण से देव तारा न होकर आसुरी तारा स्वयं सिद्ध हो जाती है। और श्रुतिप्रोक्त चित्रा तारे की वर्तमान में भी विभागात्मकरूप

से प्रचलित है यानीं ' चित्रार्धे कन्या ' ' चित्रार्धे तुला ' माने जाती है। इस तरह की एक वाक्यता से चित्रा का कदंब भोग १८० सिद्ध होता नहीं तो क्या है ?

(ग) श. ब्रा. (२-१-२) के आधार से नीचे के कोष्टक में अग्नि के आधान के नक्षत्र लिखे हैं। तै. ब्रा. (१-१-२) में सिर्फ मृगशीर्ष और हस्त को छोडकर यही नक्षत्र कहे हैं। किंतु चितिचयन (सुपर्णचिती आदि वेद कालीन पंचांग का निर्माण) चित्रा तारे से ही करना लिखा है। **कोष्टक रचना की उपपत्तिः—**

अग्न्याधान और चिति निर्माण के योग्य प्रत्यक्ष वेध सिद्ध=आधेय एवं सन्मुख नक्षत्र (वैदिक ऋषियों के निर्वाचित तारे)

इष्टिका.	आधेय नक्षत्र.	कदंब सूत्रीय शर.	आधेयदेवता.	सन्मुख देवता.
प्रति	योगतारा	दिशा	सत्य	ऋत
३	कृत्तिका	+ ४° २′	अग्नि	इंद्राग्नी
१	रोहिणी	− ५ २८	प्रजापति	मित्र
४	मृगशीर्ष	−१३ २३	सोम	ज्येष्ठेंद्र
२	पुनर्वसु	+ ६ ४०	अदिति	विश्वेदेव
३	पू. फाल्गुनी	+ ९ ४२	अर्यमा	अजः
२	उ. फाल्गुनी	+१२ १७	भग	अहिर्बुध्न्य
२	हस्त	−१२ ११	सविता	पूषा
१	चित्रा	− २ ३	देवेंद्र	अश्विनौ

जिन तारों की तेजस्विता उत्तम होकर जो सूर्य गमन मार्ग (क्रांतिवृत) के निकट में हैं यानी १२।१३ अंश से जिनका अधिक शर नहीं है; ऐसे तारों को वेध कर उसके अनुसार चिति के ऊपर ईंटों को रखना शुरू करते थे वह आधेय नक्षत्र ८ और उनसे १८० अंश पर निश्चित किये सन्मुख नक्षत्र ८ ऐसे १६ नक्षत्रों की देवता प्रस्तुत कोष्टक में बता दिये हैं। यद्यपि स्वाती, श्रवण, मूल, धनिष्ठा तारे तेजस्वी हैं किंतु उनका शर अधिक है। श्रृंग (Gamma Leonis) के निकट के सूक्ष्म तारों के जत्थे के निकट वाली मघा, आकाश गंगा के निकट वाले आर्द्रा ज्येष्ठा पूर्वाषाढा जोभि दीप्तिमान् एवं अल्प शर हैं निकटवर्ती पुंज से रूप विकारी हैं। बाकी शतभिषक् भरणी, पुष्य व आश्लेषादि तारे अल्प तेजस्वी हैं। इसलिये इन ११ तारों को वेधोपयोगी नहीं मानकर उपर्युक्त १६ नक्षत्रों के विभागानुसार **" विज्ञा मानो है वास्य-धिष्ण्याः। इमे समंकाः "** (**श. ब्रा.** ३, ५, १, १, पृ. ३६१) इनके भी क्षेत्र और तदंतर्गत पुंजों को समान विभाग से निश्चित किये हैं और संपूर्ण २७ नक्षत्रों के विभागों को निश्चित करने के लिये **" ते देवाः प्रति बुध्येंद्र मध्य तो दधुस्त इंद्रेणै व मध्यतः प्रातः सवने "** (ऐ. ब्रा. ६-२-१) **" इंद्रोवै यजमानस्तत्स्वऽ एवैतन्नक्षत्रेऽग्नी आधत्तऽइन्द्रो यज्ञस्य देवतै तेनो हास्यै तत्सेन्द्र मग्न्याधेयं भवति. "** (श. ब्रा. २-१-२-११) **" नाना हवा ऽएतान्यग्रे क्षत्राण्यासुः। यथैवासौ सूर्य एवं तेषां एष [चित्रा] उद्यन्नेव वीर्यं क्षत्र-मादत्त.** [**श. ब्रा.** २-१-२-१८]

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में इंद्र है देवता जिसका ऐसे चित्रा नक्षत्र को मुख्य माना है। क्योंकि यह एक नंबर का तेजस्वी तारा होकर आधेय नक्षत्रों में सभी से इसका शर अल्प है। ऐसाही संहिता ग्रंथों में कहा है :— "**त्वष्टादधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेपाकोचिष्टुर्यशसेपुरूणि ॥ वृषायजन्वृषणंभूरिरेतामूर्द्धन्यज्ञस्यसमनक्तुदेवान् ॥** (वा० सं० २०।४४)" सरलार्थः- "यह त्वष्टा (चित्रा) देवताने यशस्वी और दीप्तिरूप वर्षण में समर्थ इन्द्र देवता को यथेष्ट बलशाली किया है, इसकी अपेक्षा अधिक वा समान प्रशंसनिय और कोई नहीं है। यह सब (नक्षत्रों) के क्षेत्रों का नियामक है। इसी (चित्रा) ने इंद्रको नियुक्त करके सबके विभाग रक्षण में सम्पन्न किया है। यह संपूर्ण देवों का एवं खगोल का एक मात्र निश्चित करने वाला है अतएव त्वष्टा (चित्राका तारा) यज्ञरूप क्रांतिवृत का मूर्धा सदृश = मुख्य माना गया है वह संपूर्ण देवों को अपने विभागों में नियुक्त करें" इत्यादि प्रमाणों के द्वारा गोविंदरावजी को उत्तर दिया जाता है कि 'कृत्तिकादि नक्षत्रों पर अग्न्याधान के प्रसंग में जैसा चिति चयन में चित्रा को मुख्य मानने का वर्णन मिलता है ऐसा अन्य नक्षत्रों के संबंध में नहीं है' अतः आपका कथन केवल प्रलाप मात्र निर्मूल अतएव निरर्थक है।

परीक्षण ९५ (इ)

(घ) गणित व ज्योतिष अशा रोकठोक वादांत पूर्वग्रह दूषित काव्यकल्पनेचा काय उपयोग ! (ङ) कथांचा अर्थ अनेक तऱ्हेनें करतां येतो. (च) या गोष्टीचा तर अनुभव नेहमीच येतो. (छ) कल्पनेच्या कोट्याच करावयाच्या तर असेही म्हणतां येइल कीं रेवतीची योनि राजमान्य गज आहे तर चित्रेची योनि क्रूर श्वापद व्याघ्र आहे. रेवती जातांना देवगणी अशी संज्ञा आहे तर चित्रा जातांना राक्षसगणी अशी संज्ञा आहे. तेंव्हां ज्योतिषासारख्या गंभीरशास्त्रामध्यें चित्रासारख्या दुष्ट योनीच्या राक्षसगणी ताऱ्यापेक्षां (ज) धीरोदात्तगज योनीच्या व सर्व तारागणांचा आधिपति जो पूषा तीच ज्याची देवता आहे अशा देवगणी रेवती तारासच प्राधान्य देण्यांत उच्च भावना व्यक्त होते.

समाधान ९५ (इ)

(घ) वेद गणित और ज्योतिष से अलग नहीं है। वेदकाव्य कल्पनारूप न होकर व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूलतत्वों का (कुबेर भंडाररूप) संग्रह ग्रंथ है। ऋषियोंने बडे २ यज्ञ प्रयोगों के प्रयत्नोंद्वारा आकाशस्थ ज्योतियों के स्थान, स्वरूप, पुंज, दीप्ति आदि भेदों यथा विभाग निश्चित कर उन्हें चिरस्थायी एवं जगन्मान्य करनेके लिये ऐसे चरित्र के रूपमें कहा है कि संसार के मानव जाति के उत्पत्ति से लगाकर आजतक का इतिहास इसीमें भरा

हुआ है। और उसे धार्मिक उदात्त भावना से चरित्र का रूप देनेसे आजतक अविकृत अखंड और सर्वव्यापक होकर बना हुआ है। यद्यपि इस वैदिक ज्ञान की थोडी बहुत व्याप्ति संसार के सभी धार्मिक और ज्योतिष के ग्रंथोमें उपलब्ध होती है। किंतु इसका पूर्ण स्वरूप देखना हो तो भारतीय संहिता, तंत्र, जातक और सिद्धान्त=ज्योतिषशास्त्र, मीमांसा, श्रौत, शुल्ब और गृह्यसूत्र, मानवादि धर्मशास्त्र याज्ञिक ग्रंथ एवं इतिहासपुराणादि के साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और वेदांज्यगोतिष आदि एवं शास्त्रीय ग्रंथों को तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन किये बाद वेदार्थ के सत्य एवं समुज्वल स्वरूप को समझ सकते हैं ? देख सकते हैं तथा ऐतिहासिक कसौटीपर शास्त्रीय घर्षण से उसके सत्यासत्यत्व को तपास सकते हैं।

किन्तु उक्त अधिकारियों के सिवाय केवल ज्ञानलव दुर्विदग्धों को वेदार्थ का असली स्वरूप नहीं दिख सकता। इतना ही नहीं तो 'येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्' उक्ति वालों को सूर्योलूक न्याय से काव्य कल्पना रूप दिखना स्वाभाविक है। और उसी के अंतर्गत "कायउपयोग" ऐसा प्रश्न है। वस्तुतः इस वैदिक ज्ञान से आगे संसार को क्या लाभ होगा। और इतिहास संशोधकों को पुराण वस्तुओं के अन्वेषण से कई दर्जे अधिक उपयोगी सामग्री कितनी मुबलक मिलेगी। यह; इस प्रसंगमें मैं कह नहीं सकता हूं किन्तु इतना इशारा मात्र देता हूं कि संसार के सभी विद्वान्; इस अद्भुत शोध से चकित होकर, जब अपने प्राचीन धर्म ग्रंन्थों को शोधने लगेंगे तो उन्हें उनमें वेदोक्त बातें, शब्दसाम्य, मंत्रसाम्य उपलब्ध होने से वह मानने लग जावेंगे कि हमारा आदिम ग्रंन्थ वेद है, मुख्य वैदिक धर्म है। आर्टिक होम वेदाज प्रोक्त उत्तर ध्रुव स्थान वगैरा की कल्पना एवं ओरायन प्रोक्त वेदकाल की ४।६ हजार वर्षों की कल्पना निर्मूल होकर हम सब का जन्म भारत वर्ष में हुआ है। हमारा इतिहास २ लाख वर्षों से अविच्छिन्न चला आ रहा है। हजारों सूक्तकारों के कालों का अनुक्रम बराबर चला आरहा है भारतीय चितियों के निर्माण खाल्डियन इष्टका कृति लेखों से कई अंश में मिलते जुलते हैं। इस प्रकार सब लोग मानने लग जावेंगे, व एक नई ज्ञान क्रांन्ति शुरू हो जायगी। परिणाम में विश्वबन्धुत्व बढेगा अतः यह क्या वेद का उपयोग नहीं है ? इसलिये चित्रा गणना की परंपरा बतलाने के साथ साथ उनके आनुसंगिक ऐतिहासिक बातों पर भी मैने प्रकाश डाला है। जोकि नूतन वेदार्थ के शोध का दिग्दर्शन मात्र है।

(क) जिन गोविन्दरावजीने–सांगली संमेलन के आगे पीछे के काल में चित्रा अयनांशों को सत्य तथा असत्य और जो० केतकर के ग्रंथ के आधार से अपनी टीका बनाने के समय उन्हें गणेश की उपमा देकर विद्या गुरुतुल्य मानना बाद में रावण की उपमा देकर राक्षसतुल्य बताना आदि आपकी कथाएँ द्वारा निज के " अनवस्थित चित्त का " किंवा अव्यवसायात्मिक बुद्धि का परिचय दे दिया है। फिर वे ओरायन एवं आर्टिक

होम दि वेदाज में लिखे हुवे वैदिक मंत्रों को ऐतिहासिक प्रमाण माने और यहां उन्हीं मन्त्रों को काव्य कल्पना (कथाओं का अनेक तरह के अर्थ होने से अगादेय अप्रमाण) माने तो इसमें क्या नई बात है। यही है ना प्रिंसिपली स्वभाव ? (च) लेकिन ऐसे वेदार्थ का अनुभव **'नेहमी'** नहीं देखा होगा। (छ) मालूम होता है झीटा तारे की निराधारता में कोई भी आधार नहीं मिलता देखकर डूबते हुए को सेवाल का भी आश्रय लेना दिखता है उसके तुल्य गोविंदरावजीने चित्रा रेवती विभागों को योनी घटित व्याघ्र गज कहते हुए उनके मेरे नामों के अश्वसिंह पर ध्यान नहीं दिया यदि ध्यान देते तो (ज) धीरोदात्त की कहानी को छोडकर हाथी घोडा तथा गज सिंह की भाग दौड एवं छलांग मारने की कल्पना को लडाए बिना नहीं रहते। क्योंकि गण स्वभावानुकूल कल्पना तरंगों में पाठकों को भुलावा देना प्रिंसिपल आपटे साहब के सिवाय और किसी को शोभता नहीं है.

परीक्षण ६५ (उ)

या कथेच्या विवेचनांत "ऊर्णावभयः" व "तौ श्वानौ' यांचा दीनानाथजींनीं जो अर्थ लाविला आहे. तो पटण्यासारखा नाहीं. काल कंजाचें तीन तारे व दोन कुत्रे यांचा संबंध मृगाचें तीन ठळक तारे व पुनर्वसूचें तारे यांच्याशीं असावेसें वाटतें (भा. ज्यो. पृ. ६१)

समाधान ६५ (उ)

गोविंदरावजीने फिरस उसही कहानी की द्विरावृत्ति की है। किंतु **' पटण्यासारखी नाहीं'** **'असावा सें वाटते'** कह कर अपनी भ्रामक कल्पना का परिचय दे देने से तथा कोई भी मुद्देसूद प्रति पादन या प्रमाण नहीं बताने से स्वयं फोल (निरर्थक) निश्चित होगई है। वस्तुतः न तो वेदार्थ का वास्तविक शोध लगा है न गोविंदरावजीने लगाया है। जो प्रस्तुत विधानोक्त बातें चित्रा नक्षत्र के निकट के उत्तरीय भाग में यथानुक्रम से बराबर मिलाकर विधान में बताई गई हैं। उसका खंडन तो कहां से कर सकते हैं। यहां तो केवल बातों की भर्ती लगाकर उस सत्यार्थ को एवं वैदिक मंत्रोक्त सिद्धान्तों को उटपटांग बताने की बुद्धिसे उन्हे गोविंदरावजी मृग पुंज व पुनर्वसु पुंज में बता रहे हैं। सो सब निर्मूल एवं गलत है। जो कि आगे के विधानो में सांगोपांग रीति से स्पष्ट कर दी गई है.

विधान ६६

वैदिक मंत्रोंके अर्थ करने की प्रस्तुत पद्धति बिलकुल नई हमारे ही द्वारा आविष्कृत होनेसे बिना आकाशीय नकशों के सहारे आप महानुभावों को यथार्थ समझ न सकेगी

इसलिये "चित्रास्तोम" के संबंध के नकशे इस परिशिष्ट के अंतिम भागमें जोडे गए हैं। सो यहां उनका परिचय करा‍ए बाद कई सिद्धांत निश्चित करके उनके द्वारा वैदिक काल में भी आकाश की एवं क्रांतिवृत्त (राशी चक्र) की गणना चित्रा से ही की जाती थी। इस तरह चित्रा गणना की अखंड परंपरा और चित्रा तारे का महत्व आप सज्जनों की सेवामें निवेदित करुंगा। सुभीते से उल्लेखित करने के लिये इस प्रकरण का नाम मैंने चित्रा स्तोम रखा है.

विधान ९७

जब कि वैदिक काल में व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूल तत्वोंका शोध लग गया था तब इन ज्योतिर्गोलोंको अखंड मंडलाकार सर्व व्यापि सर्व शक्तिमान परमात्मा की दिव्य (देदीप्यमान प्रत्यक्ष) विभूति नाना स्वरूप देवता आदि मानकर तत्कालीन ऋषियों ने बडी गवेषणा पूर्ण इनके (कविता रूप में किंतु यथार्थ सत्य सत्य) चरित्र वर्णन किये हैं। और वह सर्व साधारण को समझने के एवं चिरस्थायी प्रचार के लिये वे लोग यज्ञ प्रयोगों में इनके नकशे बनाकर प्रयोगों द्वारा आकाशीय स्थिती को प्रत्यक्ष मिलाकर बतलाया करते थे लेकिन वह नकशे कागद पर अंकित किये न होकर पृथ्वी पर ईंटें व पत्थरों के बडे आकार के बनाया करते थे और भक्तिभाव से उनका पूजन, अर्चन एवं होम इस तरह करते थे कि उसमें की प्रत्येक विधी उसके तत्वार्थ एवं गति, स्थिति ऋतु परिवर्तन आदि के काल को व्यक्त करती थीं। इस विषय का विस्तृत वर्णन हमारे बनाए हुए युगपरिवर्तन एवं वेदकाल निर्णय में एवं सुपर्णचिति नामक वेद कालीन पंचांग साधन ग्रंथ में मैंने लिखा है यहां सिर्फ (१) सुपर्ण चिति (२) वाग्क्रम दर्शक चिति और (३) वेदार्थ दर्शक दैवत गोल इनके चित्र बता दिये हैं।

विधान ९८.

इसके सिवाय प्रस्तुत प्रसंगोपयोगी और भी नकशे दिये हैं। यद्यपि वह वैदिक मंत्र-प्रतिपादित अर्थसे कुछ विरुद्ध हैं तोभी वह बहुत अंशमें वैदिक सिद्धान्तोंके अनुसार ही बने हुए प्रतीत होते हैं। वस्तुत: भारतीय एवं खाल्डियन नकशोंमें बिलकुल थोडाही अंतर है। अतः हमारे प्राचीन वैदिक नकशों को कोई आधुनिक कल्पित बता न सके इसलिये हमने प्राचीन परंपरागत प्रचलित नकशोंकाही यहां उपयोग किया है। जो कि अन्यत्र

प्रकाशित हैं। और सभीको तुलना करनेके लिये मिल सकते हैं। उन्हींपर के चित्र, फोटो द्वारा लेकर जैसे के वैसे दीये हैं। और उनके संबंध का वर्णन उसी ग्रंथकी भाषामें (पृष्ठांक आदि बताकर) उधृत किया है। ताकि किसीको यह संदेश नहो कि हमने हमारी इच्छानुकूल परिवर्तन करके वर्णन लिखा हो। और इससे यहभी ज्ञात हो जायगा कि आकाशमें उक्त चित्रों की आकृती (स्वरूप) करीब २ वैसीही दिखती है सो सत्यरूप है। बिना सत्यता के संसारव्यापी एकही कल्पना हजारों लाखों वर्ष होजाने परभी जैसी की वैसी टिक नहीं सकती है। क्यों कि कल्पित कल्पना तो तत्कालही में नष्ट हो जाती हैं। अतः वैदिक बातें सबसत्य एवं विश्वसनीय हैं।

विधान ६९

निरूक्तकार यास्क और जैमिनि व सायणाचार्यादि ने जो अर्थ किया है वह पूर्ण नहीं है इसीलिये उन्होंने कितने ही मंत्रों का अर्थ केवल उनके शब्दों के व्युत्पत्ति के अनुसार वैकल्पिक कहा है निश्चित रूप से कहा नहीं है। और " **न पृथिव्यां नान्तरिक्षे न दिव्यग्निश्चेतव्य' इत्यादिषु 'अस्तिचाप्रसक्त प्रतिषेध रूपो नित्यानुवादो वेदे.** " " **प्रत्यक्ष विरूद्धं वचनमुपन्यस्तं– ' स एष यज्ञायुधी यजमानोऽ जसास्वर्गं लोकं यातीति प्रत्यक्षं शरीरकं व्यवदिशतीति** (मी. सू. शाबरभाष्ये १. १. पृ. १४)' **उत्तानावै देवगवा वहन्ति ' अग्निर्वृत्राणि जंघनत्** ' (मी. सू. भा. १. ३. १० पृ. ५४) ' **पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते न पुत्रः** ' (ऋ. सं. ५. ७. १. ३) ऐसे मंत्रों का अर्थ कूट काव्य या गूढ मानकर छोड दिया गया है। और इसी का अनुकरण आधुनिक विद्वानो ने किया है।

विधान ७०

लेकिन हमारी परिशोधित पद्धति से संपूर्ण सूक्तों के अर्थ काल, कर्ता और ऋषि के स्थल की संगति बराबर मिल जाती है। इतना ही नहीं तो पौराणिक प्रचलित नकशों आदि से उसकी तुलनात्मक एक वाक्यता होकर हमारी निश्चित की हुई बातें ऐतिहासिक सिद्ध होती हैं। क्योंकि संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और सूत्रग्रंथोक्त बातें ही भारत, रामायण, स्मृति एवं पुराणादिकों में काव्य के रूप में कही गई हैं। अतएव वह पुराणोक्त कालिक नहीं हैं जैसे विश्वामित्र शुनशेप आदि कुल ऋषियों के नाम और चारित्र तथा इक्ष्वाकु, इला, ऐल पुरूरवा, उर्वशी, शंतनु, प्रतीप, भीष्म, व व्यास– वैशंपायन, गौतम–अहिल्या–इंद्र, इत्यादि

नाम वेद में आए हैं। और वह सब वेदकालीन ऐतिहासिक बाते हैं, किंतु भारत रामायणादि में उनके गुण, कर्म एवं चरित्र की वैशिष्य्यता से साम्यता मिलने पर उनके नाम और समकालिकत्व बताया गया है। इससे पुराण ग्रंथोक्त के समकालीन वैदिक पुरुष व उनके चरित्र नहीं होसक्ते। अत: पीढियों से उनके काल को नापना या समझना अयुक्त है।

विधान ७१

वस्तुत: बहुतसी वैदिक बातें नक्षत्रों के व तारका पुंजों के उपलक्ष्य में कही गई हैं। सूक्तों के कर्ता हजारों ऋषि हैं। आज करीब ३ लाख वर्षों का इतिहास वैदिक सूक्तों में भरा हुआ है। मानवज्ञान की क्रांति व उत्क्रांति के साथ साथ ऐसी बातें कही गई हैं कि प्राचीन सूक्त कारों से नए ऋषियों के सूक्त सूक्ष्म बातों के प्रति पादक तथा वेधकी कुशलता व ज्ञानकी विशेषता को लिये हुए हैं। इस तरह बढते २ अंतमें इनसे व्यवहारोपयोगी ज्योतिष के मूलतत्वों का शोध पूर्णावस्था को पहुंचा हुआ हमें उपलब्ध होगया है।

विधान ७२

वैदिक वर्णन में शुद्ध नाक्षत्र, सौर, चांद्र और अयन संपातिक आदि ज्योतिष के कई परिमाण उपलब्ध हैं, किंतु सब में मुख्य नाक्षत्रमान माना गया है। तारोंकी व नक्षत्रोंकी आकृतियां आकाश में निश्चित करके उनके सबन्ध का वर्णन सब नाक्षत्रमानका है। उस समय के ऋतु, अयन तथा संवत्सरादि सांपातिक मानके थे जोकि; सूर्य के ठीक प्राची दिशा में उदय होनेके काल को (रविका) स्वर्गा रोहण काल, और वहां से रविके ९०। १८०। २७० अंश यानी करीब तीन तीन महिनेपर द्यौ:, अंतरिक्ष, पृथिवी के नामसे तथा राट, बिराट्, सम्राट् व स्वराट् नामसे कहते थे। इसके द्वारा द्यौ:=पिता, पृथिवी=माता, अंतारिक्ष=भ्राता एवं स्वर्ग=शिशु:, पुत्र, संवत्सर ऐसा अर्थ होकर; इससे वसंत संपातकी स्थिति, उसका क्रम, व्युत्क्रम तथा और भी परमक्रांति आदि ज्योतिष के मुख्य परिमाण यथार्थ निश्चित हो सकते हैं। और आज हमें इनकी सूक्ष्माति सूक्ष्म गति व स्थिति मालूम होगई है तो उन कथनकी जाँच सूक्ष्म गणित द्वारा आज हम कर सकते हैं। अत: इस प्रकार हर एक सूक्त का काल, कर्ता, और स्थल मालूम हो जाता है तथा पुराणोक्त कथन द्वारा उस सिद्धान्तको पुष्टि मिलनेसे उक्त बातें निःसंदेह (ऐतिहासिक) स्वयं सिद्ध होजाती हैं। किंतु यह कैसे होती हैं सो इसका आगे उदाहरण देकर स्पष्ट कर दिया जाता है।

विधान ७३

चित्रा तारे को क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्यमें मानने की प्रणाली करीब ३ लाख वर्षोंसे प्रचलित है। इसे गणित द्वारा सिद्ध करने के लिये मैं वही उदाहरण देता हूं कि जिसके आधारपर आधुनिक विद्वान वेदों का काल शक पूर्व ४००० वर्षोंके अंदर का (अर्वाचीन) बता रहे हैं। इसके संबंध में ज्यो० केतकर ने नक्षत्र विज्ञान (पृष्ठ ५६-५७) में लिखा है कि; " एता (कृत्तिकाः) ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्चवन्ते." या वरून शतपथ ब्रा० काली कृत्तिका थेट पूर्वेस उगवत असत ही प्रत्यक्ष पाहिलेली गोष्ट आहे. म्हणजे त्या कालापासून आजपर्यंत संपात ६९ अंश मागे हटला. त्याची ४९०० वर्षे लोटली आहेत असे सिद्ध होते. " इसी प्रकार आपने नकशे में भी " विषुववृत्त शतपथ ब्राह्मण काली शकापूर्वी ३१०० वर्षे." ऐसा लिख दिया है।

तथा ज्यो० दिक्षित ने भा० ज्यो. (पृष्ठ १२८-२९) में शक पूर्व ३०६८ से ३००० वर्ष, प्रो० बेन्टली ने इ. स. पू. १३२० वर्ष, प्रो० वायो ने इ. स. पू. २३५७ वर्ष, प्रो. वेबर ने इ. स. पू. २७८० से १८२० वर्ष, प्रो० थीबो ने १७८० से ८२० वर्ष, और लोकमान्य टिळक ने ओरायन (मराठी पृ. २५) में ईसा पूर्व २३५० वर्ष, (ओरायन पृ. २-३ के लेखानुसार) प्रो० मॅक्समुलर ने इ. स.पू. १०० से ८०० वर्ष, डा. हौ ने २००० से १५०० वर्ष, इसी काल के निकट में प्रो० गोडबोलेने कहा है। एवं परशुराम हरी थत्ते नासिक निवासी ने वेदांच्या काळाचा इतिहास [पृ. ३३६] में इ. स. पू. २५०० वर्ष, श्री० रा० ब० वैद्य ने भारत काल मीमांसा में शक पूर्व ३००० वर्ष ही कहे हैं। तदनुसार ज्ञानकोष विश्वकोष व वर्तमान पत्र या मासिक पत्रादि पुस्तक व लेखों में वेद के और भारत के काल को अर्वाचीन बताया गया है। अतएव अभी तक वह जगन्मान्य कहला रहा है। किंतु सत्य के अनुरोध से नम्रता पूर्वक मैं कह सकता हूं; कि:- उक्त अनुमान प्रमाणभूत नहीं होकर अपूर्ण और समर्थन रहित है। क्योंकि न तो यहां ठीक पूर्व में कृत्तिका का उदय होना कहा है; न उक्त प्रमाण से ऐसा अर्थ निकलता है। तब इस आधार पर; बताया हुआ काल सत्य कैसे हो सकता है। बरना वहां ऐसा स्पष्ट लिखा है कि जहां संदेह को स्थल ही रहता नहीं है। किंतु उसके आगे पीछे के भाग के ऊपर किसी भी विद्वान् का - शोधकतायुक्त-दृष्टिपात हुआ ही नहीं है। तब उसके यथार्थ शोध के बिना इसका यथार्थ काल निश्चय कैसे हो सकता है। वस्तुतः शतपथ के प्रस्तुत कंडिका के ५ अनुवाक हैं। एक एक अनुवाक से वही काल निश्चित होता है कि जो अन्यान्य सभी तत्कालीन ग्रंथों के प्रमाणों से निरपवादता से समर्थित होते हुए सभी वाक्यों की जिसके संबंध में एक वाक्यता हो जाती है।

विधान ७४

इसमें पहला प्रमाण ये है " कृत्तिका स्वग्नीऽआदधीत। एतावा ऽअग्नि नक्षत्रं यत्कृत्तिकास्तद्वै ' सलोम' योऽग्नि नक्षत्रे ऽग्नी आदधातै। तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ १ ॥ [श. ब्रा. २-१-२'] " । अर्थः— " कृत्तिकाओं में दोनों अग्नी का आधान करें । क्योंकि यह कृत्तिका अग्नि का ही नक्षत्र है । यही (सलोम) सब नक्षत्रों का शिखा रूप है । अग्नि के नक्षत्र में अग्नि का आधान करना योग्य है । इसलिये कृत्तिका नक्षत्र में आधान करे ॥ १ ॥ " भावार्थ :— इसमें ' सलोम ' शद्व बडं महत्व के अर्थ में कहा गया है । व्यवहार में जिस बिन्दु [स्थान या पैंट] से आगे व पीछे जाने के अर्थ में लोम और विलोम तथा उत्तर दक्षिण के तर्फ चढने व उतरने के अर्थ में अनुलोम और प्रतिलोम शद्व कहे जाते हैं । व्युत्पत्तिशास्त्र से इस [बिन्दु] की व्याख्या ' लोहृती त्रिज्या रूपं सीमान्तं, व्योम= दिवं स्थानं तल्लोमन् संज्ञम् । ('नामन् सीमन् व्योमन् रोमन् लोमन् ' उणादिसूत्रे ४।१५१ ण) ख स्वस्ति के स्थितत्वा च्छिखारूपमित्यर्थः । अतएव " शिखीवह्नौ, बली बर्दे, शरे, केतुग्रहे, द्रुम ॥ मयूरे, कुक्कुटेऽपिचे " त्यग्नेःशिखास्थानीयत्वाच्छिखीति नाम प्रसिद्धोऽ भवदितिभाति., द्वारा ज्ञात होता है कि ' उस समय परमक्रांति स्थान पर कृत्तिका नक्षत्र होनेसे वह शतपथ के स्थल-(अक्षांश ३५ के निकट के प्रदेश-) में ख स्वतिक में आता था । अतएव इस समय से अग्निको शिखि और कृत्तिका नक्षत्र को सलोम=चोटी वाला कहा है सो ही योग्य है । इतनाही नहीं तो इसी शतपथ [१'४'५.५] में " तस्माद्धेमन् (ते) म्लायन्त्योषधयः प्रवनस्पतिनां पलाशानि मुच्यन्ते, प्रतितरामिव वयाँसि भवन्त्यधस्तरामिव वयाँसिपतन्ति विपतित लोमेवपापः पुरुषो भवति. " ऐसा कहा है कि ' हेमंत ऋतुमें अति हिमके गिरने से धान्य के पाक (ओषधी) सूख जाते है संपूर्ण वनस्पति [वृक्षों के] पत्ते गिर जाते हैं । कई पशु पक्षियों के रंग पलट जाते हैं । वृक्षों पर से कई पक्षी नीचे भूमि पर गिर कर हताहत हो जाते हैं । पुरूष की लंबी छाया भूमि पर गिरने से मानों रोम गिर गये हो ऐसे विपतित लोमा पुरुष दिखाई देता है । " इस कथन से पता चलता है कि उस समय रवि की परमक्रांति बहुत अधिक थी क्योंकि शतपथ के स्थल के ३५ अक्षांश के प्रदेश में रवि परमक्रांति के ३० या ३१ के अंश बिना दक्षिण परमक्रांति हेमन्त ऋतु के मध्य काल में इतनी ठंड नहीं गिर सकती कि जिसका वर्णम ऊपर (शतपथ) में कहा गया है ।

ऐसा ही ग्रीष्म ऋतु के मध्य में वर्षा आरंभ होने के संबध में लिखा है:— " मध्यं दिनोऽथ वर्षाः । मध्यंदिन एवादधीत तर्हि ह्य षोऽस्य लोकस्य नेदिष्ठं भवति तन्नेदिष्ठा देवैनमेतन्मध्यान्निर्मिमीते ॥ ९ ॥ छाययेव वा अयं पुरूषः । पाप्मनानुषक्तः सोस्यात्र कनिष्ठो भवत्य धस्पद मिवे यस्यते तत्कनिष्ठ मेवै तत्पाप्मान मवबाधते तस्मादु मध्यान्दिनऽएवादधीत ॥ १० ॥ (श. ब्रा. २'२'१) अर्थात् देव दिनके मध्य में वर्षा का

आरंभ होना, ख स्वस्तिक के निकट (नेदिष्ठ) में सूर्य आने पर आधान का करना वहीं से परिमाणों (नक्षांशों) को गिनना कहा है । वैदिक ग्रंथों में छाया को पाप कहा है । तदनुसार इस काल में पुरुष के ठीक शिर के ऊपर सूर्य के आने से मध्यान्ह में पुरुष की छाया उसके पैरों में ही समा जाती है । एवं बिल्कुल व निष्ठ रूप हो जाती है इसलिये प्रस्तुत काल में अग्नि का आधान करे । " इस कथन में पूर्वोक्त अनुमान दृढ होता है कि शतपथ के (३५ अक्षांश के) स्थल में रवि की परमक्रांति ३०।३१ अंश की हुए बिना उत्तर क्रांति के काल में पुरुषों की छाया उनके पैरों में नहीं आ सकती । और न खस्वस्तिक के निकट के नेदिष्ठ स्थान में सूर्य आ सकता है । तथा इसी काल में अग्नि का आधान करना कहा है । वाजस संहिता (१२·६८) में ' वपते ह बीजं । अ (आ) सन्नो नेदीयः ' ' नेदीयस् काल आसन्न हो गया है कि जिस में बीज बोया जाता है तथा शतपथ [१.५·१·११] में ' अग्नि र्वैदेवानां नेदिष्ठम् ' अग्नि ही देवोंका मध्यंदिन दर्शक, खस्वस्तिक के निकट का एवं बीज वपन काल का द्योतक है । इससे ज्ञात होता है । कि अग्नि नक्षत्र=कृत्तिका पर सूर्य के आने पर उस काल में खेती की बोवणी शुरू होती थी ।

इसीलिये कृत्तिकाके ७ तारों के नाम से उस काल में जो आहुतियां दी जाती थीं उनके नामों से भी यही ज्ञात होता है कि उस समय कृत्तिका पर्जन्य नक्षत्र समझा जाता था जैसे १ (अंबा) अंबु जल देने वाली, २ (दुला) दुरा = मंडल के ऊर्ध्व भागवाली, ३ (नितात्नि) विद्युत्रूप वाली एवं ग्रीष्म ऋतु के मध्यकाल की दर्शक, ४ (अभ्रयंती) अभ्र = बादलें के समान आचरण करने वाली ५ (मेघयन्ती) मेघों को जुटाने वाली, ६ (वर्षयंती) जल की वर्षा का आरंभ करने वाली, और ७ (चुपुणीका) पृथ्वी को वनौषधी से हरीभरी करने वाली" ऐसे तैत्तिरीय ब्रा० (३.१.४. १.) में कृत्तिका के नाम कहे ही है । तथा सलोम के संबंध में:— ऋक्षा वा इय मलोम कासीत् । ततोवा इयमोषधी-भिर्वनस्पतिभिः सलोमका प्रजायत (तै. ब्रा. ३.१.४.५) ऐसा कहा है। अर्थात् जहां तक वह नक्षत्र पर्जन्यारंभ का न हुआ था वहां तक उसे 'आलोम का' नाम से तथा आगे वहां पर्जन्यारंभ होने पर 'सलोमका' नाम से कहने लगे क्यों कि उस नक्षत्र में वर्षा का आरंभ होनेसे पृथ्वी ओषधी एवं वनस्पतियों से हरी भरी रोम = 'लोम' सहित हो जाती थी । अतः जब कि दक्षिण परम क्रांति के काल को उक्त प्रमाण में विपलितलोमा बताया है और प्रस्तुत प्रमाण में उत्तर परम क्रांति के काल को सलोमका बताया है । तथा शतपथ में कृत्तिका को 'सलोम' कहा है । इससे सिद्ध होता है कि जैसे वर्तमान में आर्द्रा नक्षत्र के आरंभ (६७°=आर्द्रा + २३ अयनांश=९० अंश यानी उत्तर परम क्रांति स्थान) पर अर्थात् २२ जून के बाद के काल में पर्जन्य (वर्षा) का आरंभ समझा जाता है वैसे उस काल में कृत्तिका नक्षत्र पर पर्जन्यारंभ माना जाता था ।

विधान ७५

दूसरा प्रमाण ये है:—" एकं द्वेत्रीणि चत्वारीति वाऽअन्यानि नक्षत्राण्यथैता एव भूयिष्ठा यत् कृत्तिका स्तद्भूमान मेवैतदुपैति तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ २ ॥ (श ब्रा. २·१·२) अर्थः—' अन्यान्य नक्षत्र पुंज के तारे एक दो तीन एवं चार तक हैं। और इस कृत्तिका पुंज के बहुत यानी सात तारे हैं। इसलिये कृत्तिका में आधान करने वाले को बहुत सी बातें ज्ञात होकर श्रेयस् की प्राप्ति होता है ॥२॥ इससे स्पष्ट मालूम होता है कि; शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथों के निर्माण काल के पूर्व संहिता काल में ही २७ नक्षत्रों के तारों की संख्या व आकृतियां आदि निश्चित होगई थीं; केवल फर्क इतना ही था कि संहिता काल में नक्षत्रों को उनके देवताओं के नाम से कहते थे। और ब्राह्मण काल में नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम से कहने लगे क्योंकि तैत्तिरीय संहिता (४·४·१०) में तथा तै. ब्राह्मण (१·५·१,३.१.१-२) में सत्ताईस नक्षत्रों के देवता व नक्षत्रों के अनुक्रम वार नामों की तारा संख्या आदि का कुल वर्णन योग्यरीति से उपलब्ध होता है। दुसरे में यद्यपि वैदिक ग्रंथों में अग्निर्जातवेदा, भरताग्नि, कपिलाग्नि, वैश्वानराग्नि आदि विशेषणों युक्त कई अग्नि के नाम आये हैं वह कृत्तिका नक्षत्र देवता अग्नि के पुंज से भिन्न तार का पुंजो के उपलक्ष्य के ह। किंतु जहां एक केवल अग्नि का ही नाम आया है। वह सब वर्णन कृत्तिका नक्षत्र के संबधं का ही कहा गया है। अतः तैति. ब्रा. (३·५·७·१·) में "अग्निर्मूर्धा, दिवःकुत् । पतिःपृथिव्याअयम् । अपांरेतांसिजिन्वति । + दिविमूर्धानंद-धिषेसुवर्षाम् ।" " ककुदमितिमहन्नाम" निघं. (३,३,१९) अर्थात् "यह अग्नि द्यौः लोक का मूर्धा=मध्य का उंचा स्थान (ख स्वतिक) रूप। और पृथ्वीकापति = अभिमुख स्थान का रक्षक है। इसलिये पर्जन्य की वर्षा को बुलाता है। क्योंकि यह द्यौः का मध्य स्थान सुवृष्टि का धारक है" इस कथन से तथा शत. ब्रा. (७,४,२,५६) के समर्थन से निश्चित होता है कि उस (ब्राह्मण) काल में अग्निदेवता= कृत्तिका नक्षत्र; उत्तर परम क्रांति में स्थित होकर; शत पथ के स्थल से ख स्वतिक में उपस्थित होता हुवा तत्कालीन ऋषियों को प्रत्यक्ष दिखता था! क्योंकि पूर्व प्रमाण में कृत्तिका को 'सलोम शिखा रूप कहा है। और यहां अग्निदेवता को मूर्धा, द्यौर्लोक का ककुद एवं सुवर्षा को बुलाने वाला कहा है। सो दोनों प्रमाणों के स्वारस्य रूप एक वाक्यता से; उक्तार्थ ही निश्चत होता है।

विधान ७६

तिसरा प्रमाण ये हैः– " एता ह वै प्राच्यै दिशो न चवन्ते । सर्वाणि ह वाऽअन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते । तत् प्राच्या मेवास्यैतद्दिश्याहितौ भवतस्तस्मात् कृत्तिका स्वादधीत ॥ ३ ॥ " [श. ब्रा. २·१·२·] अन्वयार्थः– " (अन्यानि सर्वाणि

नक्षत्राणि) और सब छब्बीस नक्षत्र (ह) प्रत्यक्ष में (वै) निश्चित रूपसे (प्राच्यै दिशः) प्राची दिक्सूत्र से (च्यवन्ते) च्युत हो जाते हैं यानी दक्षिण के तर्फ ढल जाते हैं। (वै) किंतु (एताः) यह कृत्तिकाएं (ह) प्रत्यक्ष में (प्राच्यै दिशः) पूर्व दिक्सूत्र—सम मंडल—से (न च्यवन्ते) च्युत नहीं होती हैं। किंतु (प्राच्यां एव) पूर्व में ही (अस्य) इसके (एतदिशि) इसी प्राची दिक्सूत्र में (तत्) कृत्ति का और अग्नि यह दोनो (आहितौ) एककालावच्छेद में उपस्थित मात्र [भवतः] हो जाते हैं। " अर्थात् शतपथ के प्रस्तुत प्रमाण में ' कृत्तिकाओं का पूर्व दिशा में उदय होता है ' ऐसा कहा न होकर ' अन्य सब छब्बीस नक्षत्र तो प्राची दिशा से च्यवित हो जाते हैं केवल एक कृत्तिका नक्षत्र च्यवित नहीं होता एवं वह (कृत्तिका) और अग्नि का तारा, यह दोनो एककालावच्छेद में प्राची दिशा में उपस्थित मात्र हो जाते हैं' ऐसा लिखा है। इससे प्राची दिशा का अर्थ ख स्वस्तिक से पूर्व दिक्सूत्र [सम मंडल] हो सकता है। पूर्व क्षितिज बिन्दू नहीं। तथा यह निर्णय देखने (वेध लेने) वाले के अक्षांश के अनुसार व ज्योतिः के क्रांति के द्वारा उसके उदय से लगा कर याम्योत्तर लंघन (मध्याह्न) काल तक हो सकता है।

विधान ७७

सर्व साधारण विद्वानो को ज्ञात होने के लिये निम्नांकित कोष्टक द्वारा इस विषय को स्पष्ट करके बताता हूं:—

अक्षांश ३५ उ० शतपथ के स्थल पर तारे आदि के दृग्गोचर होने वाले उन्नतांश और दिगंश

सारांश	नत	उतर क्रांति ५ अंश		उ. क्रांति १५ अंश		उ. क्रांति २५ अंश		उ. क्रांति ३५ अंश	
	कालांश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश
उ =	उत्तर		दिशा		दिशा		दिशा		दिशा
द =	दक्षिण								
	उदय	०° ०′	उ. ६° ६′	०° ०′	उ१८°२५′	०° ०′	उ.३१°४′	०° ०′	उ४४°२७′
	९०	२ ५२	उ. ४ ६	८ ३२	उ.१२ २३	१४ २	उ २० ५४	१९ १२	उ.२९ ५
च्युत	....	....	....						
	७५	१५ ८	द. ४ ३४	२० ४१	उ. ४ १३	२५ ४५	उ १३ ३६	३० १०	उ.१३ ४६
च्युत	....	......	....	....	....				
	६०	२७ १६	द.१३ ५६	३२ ५८	द. ४ २४	३८ २	उ. ४ २	४१ ३९	उ.१८ २०
च्युत	....	......	....	......	....	......	....		
	४५	३८ ४१	द.२५ ३२	४५ ४	द.१४ ४५	५० ७	द १ ५७	५३ २१	उ १३ ४९
	३०	४९ १०	द.४१ ०	५६ २९	द.२९ ०	६२ २१	द.११ १४	६५ ३१	उ. ८ ४७
	१५	५६ ५७	द ६१ ४७	६५ ५३	द.५२ १७	७३ ३८	द.३३ ३९	७७ ४४	उ. ३ ४३
अच्युत	मध्याह्न	६० ०	द ९० ०	७० ०	द.९० ०	८० ०	द.९० ०	९० ०	उ. ० ०
....	....	....	....	....	....	....	....	....	....

पूर्व दिगंश (०।०) सम मंडल में अनेक समय के समशंकु और नत कालांश

पूर्वाह्नस्थ	पूर्वाह्निक	समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश		समशंकु		नतकालांश	
		अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क	अं	क
	सूत्र	८	४४	८२	५०	२६	४९	६७	३१	४७	२८	४८	१४	९०	०	०	०
	सार	च्युत = ५°				च्युत = १५°				च्युत = २५°				अच्युत = ३५°			

विधान ७८

जबकि प्राचीन वस्तु संशोधको ने एवं इतिहास क तत्वज्ञों ने वेद कालीन ऋषियोंके निवास स्थल को भारतवर्ष के उत्तर में अक्षांश ३५ के निकट का बताया है। और शतपथ ब्रा. (१.३.३-१७ व १.६.३.६) में कुरुक्षेत्र, कोसल व विदेह देशोंके उत्तर में उक्त अक्षांश ३५ के निकट का स्थल कहा गया है। तब निःसंदेहतापूर्वक निश्चित होता है कि शतपथ का स्थल अक्षांश+३५ का प्रदेश था। इस स्थल से उत्तर क्रांति ५।१५।२५।३५ वाले तारों के उदयास्त के समय तथा याम्मोत्तर लंघन के समय; कितने उन्नतांश व दिगंश होंगे और वह कितनी ऊंचाई व नतकाल पर प्राची दिक्सूत्र सम मंडल-में आवेंगे सो गणित करके उपर्युक्त कोष्टक में बता दिया है। इससे आपको मालूम हो जायगा कि उत्तराक्षांश प्रदेश से उत्तर क्रांति वाले तारों का अप्राके दिगंशोंपर उदय होकर, अक्षांश से कम क्रांति वाले तारे ऊंचे आने पर प्राची दिक्सूत्र में आए बाद दक्षिण के तर्फ च्युवित हो जाते हैं अतएव वैदिक ग्रंथों में इन तारों को च्युत कहते थे। तथा जिनकी क्रांति अक्षांश से अधिक था वह ऊंचे आने पर प्राची दिशा के तर्फ आते हैं।।किंतु च्युत हुए बिनाही ख स्वस्तिक के उत्तर की ओरसे घूमते हुए पश्चिम के तर्फ चले जाते हैं। और जिनकी क्रांति अक्षांश के बराबर है वह मध्यान्ह में ख स्वस्थिक पूर्वापर दिक्सूत्र के ठीक २ मध्यमें उपस्थित मात्र हो जाते हैं। अतएव यह तारे अच्युत कहाते हैं। जैसे कि उत्तराक्षांशसे श्रवण नक्षत्र की उत्तर क्रांति अधिक होनेके कारण वैदिक ग्रंथों में श्रवण की देवता विष्णु का नाम अच्युत और अधोक्षज कहा गया है सो इसी आधार से है।

विधान ७९

हालां ज्यो. केतकरजी प्रभृति आधुनिक विद्वानो ने अच्युत का अर्थ ठीक पूर्व दिशा में उदय होना कल्पितकर कृत्तिका पुंज को विषुववृत्त पर बतलाने के लिये रोहिणी नक्षत्र

(६९°-२२° अयनांश = ४७° अंश,, पर और कुछ विद्वानों ने कृत्तिका नक्षत्र पर ही अयन संपात को मानकर उपर्युक्त काल बता दिया है । लेकिन शतपथ में तो एक कृत्तिका को ही अच्युत बताकर कुल २६ नक्षत्रों को च्यवित (च्युत.) बताए हैं । और गणितसे पता चलता है कि उस समय एक कृत्तिका ही नहीं और भी ५ नक्षत्र विषुववृत्त पर थे इस लिये उनका उदय भी ठीक ठीक पूर्व दिशामें होता था । इसका स्पष्टी करण:—

अयनांश+४७° व रवि परम क्रांति २४ द्वारा विषुववृत्तिय और अक्षांश३५ के निकट में

च्युत व अच्युत नक्षत्र

कोष्टक	नक्षत्र व तारों के नाम	कदंब भोग	शर	सायन भोग	विषुवांश	क्रांति
च्यवित (च्युत) होने वाले नक्षत्र व तारे	**विषुववृत्तीय नक्षत्र पुंज**	अं .क	. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
	कृत्तिका (ईटाटारी)	३६ ९	+ ४ २	३४९ ९	३४८ २७	− ० ४२
	रोहिणी शकटाग्रिम (टाऊटारी)	४८ ४९	− ० ४३	१ ४९	१ ५७	+ ० ५
	भरणी (४१ एरैटिस) केतकरोक्त	२४ २२	+१० २७	३३७ २२	३११ १२	+ ० ४१
	अनुराधा (डेल्टा स्कार्पि.)	२१८ ४४	− १ ५८	१७१ ४४	१७१ ४५	− १ ३२
	पश्वा (दक्षिण पुनर्वसु)	९२ ०	−१९ ५१	४१ ०	४६ ३९	− १ ३३
	हस्त (बीटा कार्व्ही)	१७३ ३२	−१८ २	१२६ ३२	१२४ २९	− १ ३६
अच्यवित (अच्युत) नक्षत्र	**ख स्वस्तिक में आने वाले नक्षत्र**	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं क.	अं. क.
	पूर्वा फाल्गुनी (थीटालिओनिस)	१३९ ३४	+ ९ ४२	६२ ३४	९३ ३	+३३ ४१
	ऊत्तरा फाल्गुनी (डेनिबोला)	१४७ ४७	+१२ १७	१०० ४७	१०३ १	+३९ ४७
	ख स्वस्तिक से उत्तरीय नक्षत्र	अं. क.	अं. क.	अं क.	अं· क·	अं. क.
	स्वाती (आर्कटयूरस)	१८० २४	+३० ४९	१३३ २४	१४८ २८	+४६ १२

उक्त कोष्टक से ज्ञात होगा कि कृत्तिका, रोहिणी की शकटा ग्रिमतारा, भरणी, अनुराधा द० पुनर्वसु और हस्त; यहनक्षत्र विषुववृत्त पर होने से यद्यपि पूर्व दिशा में उदय होते थे किंतु दो चार मिनिट के बाद ही वह दक्षिण के तर्फ च्युत हो जाते थे । वस्तुतः कोई भी

तथा उदय होकर कुछ ऊंचा आये बिना क्षितिजपर दिख सकता नहीं है। इस में भी कृत्तिका पुंज के तारे तीन चार वर्ग के होने से उदय हुऐ बाद कम से कम ३२ मिनिट के ऊपर नेत्रों से दिख सकते हैं। तो इतने में ५।७ अंशों का दिगंशोमें उन्नतांशों में फर्क आना स्वभाविक है। इसलिये "कृत्तिका थेट पूर्वेस उगवत असत ही प्रतक्ष पाहिलेली गोष्ट आहे." ऐसा विधान ७३ में कहा हुआ केतकरजी का कथन और अनुमान सत्य कैसे हो सकता है। शतपथ में सिर्फ एक कृत्तिका को ही अच्युत कहा है। किंतु पूर्व दिशा के उदय से अच्युत मानने में उक्त ६ नक्षत्र पुंज पूर्व में उदय होते थे सो उन सब को अच्युत मानना होगा तब इससे तो शतपथोक्त प्रणाम ही अयुक्त हो जाता है।

विधान ८०

इसलिये प्राचीदिक्सूत्र– सममंडल–में आए बाद ही च्युत या अच्युत का निर्णय करना होगा। वह प्रस्तुत समय में ऐसे हो सकता है कि; अश्विनी, रोहिणी, शतभिषक्, मृगशीर्ष, रेवती, आर्द्रा, ज्येष्ठा, मूल, व पूर्वाषाढा, इन नक्षत्रों की दक्षिणक्रांति होने से यह प्राची-दिक्सूत्र में आए बिना ही च्युत हो जाते थे। तथा उत्तर पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा श्रवण, धनिष्ठा इनकी उत्तर क्रांति अक्षांश ३५ से कम होने से यह नक्षत्र सममंडल (प्राची दिशा) में आए बाद दक्षिण के तर्फ च्युत हो जाते थे। केवल पूर्वोत्तरा-फल्गुनी पुंज की क्रांति ३५ अक्षांश के निकट में होने से वह मध्यान्ह के समय विधान ७७ के कोष्टकोक्त कथन के अनुसार पूर्वदिक्सूत्र में उपस्थित हो जाते थे। यानी च्युत नहीं होते थे। ऐसे ही स्वाती की क्रांति ४६ अंश उक्त अक्षांशों से उत्तर की होने से यह भी सममंडल में आए बिना ही मध्यान्ह में भी ख स्वस्तिक से करीब ११ अंश उत्तर से ही मंडलाकार घूम जाती थी। और दक्षिण में च्युत नहीं होती थी। इससे निर्णय होता है कि इस समय सिर्फ दोनो फल्गुनी और स्वाती यह तीन नक्षत्र अच्युत थे बाकी कृत्तिकादि २४ नक्षत्र च्यवित हो जाते थे। किंतु शतपथ में तो सिर्फ एक कृत्तिका को अच्युत और सब (छब्बीस) नक्षत्रों को च्युत कहे हैं। इससे प्रस्तुत काल में उक्त प्रमाण की बिलकुल ही संगति नहीं मिलने से स्पष्ट हो जाता है कि शतपथ का यह काल नहीं है।

विधान ८१

प्रस्तुत प्रमाण वाक्योंकाअर्थ सूक्ष्मगणितागतक्रांतियोंद्वारा तबतक हम सरलता से नहीं बता सकते; कि जब तक यह न बता दिया जाय कि; अन्य प्रमाणोंद्वारा शतपथका निर्माण काल क्या था। क्यों कि उसीके अनुसार नक्षत्रों की क्रांतियों का साधन किया जा सकता है। और यह काल तत्कालीन वसंत संपात से ज्ञात हो सकता है। मैने वेदकाल निर्णय (पृष्ठ ४०,-५३,९६) में शतपथ के प्रमाणों से और (पृष्ठ ३७-५७) में अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि शतपथ ब्राम्हण एवं संपूर्ण वैदिक काल में संवत्सर यज्ञों का आरम्भ वसंत संपात से ही होता था। तथा शतपथ के काल में संवत्सर यज्ञों का आरंभ "तद्वैफाल्गुन्यामेव। एषाह संवत्सरस्य प्रथमारात्रिर्यत् फाल्गुनी पौर्णमासी ॥ १८ ॥ एतद्वैयैव प्रथमा पौर्णमासी। याप्रथमाष्ट कास्तस्यामुखा संभरति। याप्रथमा मावास्या तस्यां दीक्षत ऽएतद्वै यान्येव संवत्सरस्य प्रथमान्य हानि तान्यस्य तदारभते ॥३॥ श० ब्रा० (६·२·१) इत्यादि प्रमाणों से निश्चित हो सकता है। जब कि पौर्णमान्त फाल्गुन महीने की कृष्णअष्टमी, अमावास्या एवं पौर्णिमा में संवत्सरयज्ञ कियेजातेथे तब वसंतसंपातकीस्थिति भी फाल्गुन मास में ही थी। तथा शतभिषक् नक्षत्रपर सूर्यका संक्रमण उक्त फाल्गुन मास में ही आया करता है। तब शतभिषक् संपात काल में शतभिपथ का निर्माण होना शब्द के यौगिक अर्थ से निर्णीत होता है।

विधान ८२

यहां और प्रश्न उपस्थित होता है कि 'शतपथ का निर्माण काल गत शतभिषक संपात [जो कि शक पूर्व २३००० वर्ष में हुआ था उस] में हुआ है या उसके एक चक्र पूर्व के काल [जो कि शक पूर्व ५४६९८ वर्ष] में ? किंतु यह प्रश्न हिमालय की तत्कालीन बाल अवस्था के और उसके निकट के उत्तर समुद्र के वर्णन से ही हल हो जाता है। वह वर्णन शतपथ में इस प्रकार है।

"स औघ उत्थिते नाव मापे दे, ××× ते नैत मुत्तरं गिरि मति दुद्राव, ××× या व यावदुदकं समवायात्, ××× तावत्तावदेवान्ववससर्प। तदप्येव दुत्तरस्य गिरेर्मनो

रवसर्पण मिति श.ब्रा. [१·८·१·६] इस कथन से ज्ञात होता है कि 'उत्तरगिरि के निकट में समुद्र का अस्तित्व था। कि जिसमें राजा मनु की नांव चलती थी। और उत्तरगिरी [हिमालय] उनका बंदरगाह था। और हिमालय इतना छोटा पर्वत था कि उस पर उस (अती शीत) काल में बर्फ नहीं गिरने के कारण उसका तब हिमालय नाम नहीं रखागयाथा। तथा इस प्रकार का भी वर्णन उपलब्ध होता है कि:— " तर्हि विदेघो माथव आस सरस्वत्यां। सतत एव प्राङ् दहन्नभीयायेमां पृथिवीम्, ×× सइमाः सर्वा नदी रतिद्-दाह सदानीरे त्युत्तराद्गिरे र्निर्धावतिता॰ हैं व नाति ददाह, ×××× प्राचीनं भुवन मिति! सैषाप्ये तर्हि कोसल विदेहानां मर्यादा तेहि माथवाः॥ श.ब्रा. [१·४·१·१०] उस समय विदेह [जनकपुर = दरभंगा] के माथव नाम के राजा थे। उन्होंने सरस्वती के तीर पर आकार प्रत्यक्ष देखा उसका भावार्थ ये है कि; उस समय में ज्वाला मुखी का बडाभारी प्रकोप (परिस्फोट) हुआ था। उसीकेद्वारा बहुतसीनदियां जलगई थी सरस्वती भी जल गई थी। सिर्फ कोसल (अयोध्याप्रांत) और विदेह (जनकपुर दरभंगाप्रांत) इन दोनो देशों की सीमाको दर्शानेवाली हिमालय से निकली हुई सदानीरा नामक नदी नहीं जली थी। तथा इसी स्थल के और भी पूर्व कालिक वर्णन से एवं हमारे वेद काल निर्णय [पृ.९–१३] में दिये हुये प्राचीन भौगोलिक वर्णन व नकशों द्वारा पृष्ठ २३९ में निर्णीत किया है कि दो हजार ब्राह्मण ग्रंथो का काल शकपूर्व १॥ लाख वर्ष से शक पूर्व ५४ हजार वर्ष का है; इससे शतपथ का काल एक चक्र पूर्व के शतभिषक् संपात के समय [शकपूर्व ५४६९८ वर्ष] का होना चाहिये (क्योंकि शकपूर्व २३००० के करीब का तो मैत्र्युपनिषद् में और शकपूर्व २२०९० वर्ष में वेदांग ज्योतिष का निर्माण हुआ है। जो कि वेदकाल निर्णय [पृ.२३८ में मैने बता दिया है कि श्रौतसूत्रों के ११३१ ग्रंथ शकपूर्व ५४ से २३ हजार वर्षों में बने हैं। यही श्रौतसूत्र काल है। और श्रौतसूत्रों के पहिले ब्राह्मण ग्रंथ (करीब २००० संख्या के ग्रंथ) बने हैं। अतः स्पष्ट होता है कि शतपथ का काल पहले चक्र के शतभिषक् संपात का यानी शकपूर्व ५४–५५ हजार वर्ष का है।

विधान ८३

लेकिन यह मोटा हिसाब है। गणितागत सूक्ष्म हिसाबसे इसकी एक वाक्यता करनेसे ही इसकी सत्यता एवं ग्राह्यता सिद्ध हो सकती है; इसलिये, तथा शतपथ के प्रस्तुत प्रमाणों के भावार्थ को सरलता से समझने के लिये; तत्कालीन तारोंकी खगोलीय स्थिति को जानलेना अवश्य है। सो निम्नांकित कोष्टक में दोनो शतभिषक् कालीन और धनिष्ठा कालीन, आकाश की स्थिति को स्पष्ट करके बताते हैं।

कोष्टक १ शतपथ कालीन क्रांति द्वारा अच्युत और च्युत नक्षत्रों का तथा तारों का ज्ञापक.

शत पथ के काल निश्चय में			(अ) शताभषगारंभ का अर्वाचीन काल			(ब) धनिष्ठारंभ काल			(क) पूर्व शतभिषक काल	
(अ), (ब), (क) परिमाणों के लिये वर्तमान कालिक शुद्ध नाक्षत्र मान के कदंब सूत्रीय			शक पूर्व २३१२२ वर्ष में अयनांश + ३०६। ९ वा -५३ । ५१ हर्शलोक्त परम क्रांति २४ । ०			शक पूर्व ५३४७२ वर्ष में अयनांश + २९३।२० या –६६ ।४० लेवरियर रवि परमक्रांति ३०।४६			शक पूर्व ५४६९८ वर्ष में, अयनांश-५३ ५१ लेवरियर परम क्रांति ३० । ५५	
नक्षत्र व तारों के नाम	कदंब भोग	शर उत्तर	सायन भोग	विषुवांश	क्रांति उत्तर	सायन भोग	विषुवांश	क्रांति उत्तर	विषुवांश	क्रांति उत्तर
	अ. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अ. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.
वसिष्ठसप्तऋषि	१४१ ५१	+५६ २३	१९५ ४२	२२१ ४५	४४ २५	२०८ ३१	२३३ १९	३५ २८	२२६ ४२	उ ३९ ३६
अभिजित् (व्हीगा)	२६१ २८	६१ ४४	३१५ १९	२९५ ४५	४२ १७	३२८ ८	३०१ ९	३८ ५८	२९४ ३१	३५ ४९
कृत्तिका (ईटाटारी)	३६ ९	४ २	९० ०	९० ०	२८ २	१०२ ४९	१०५ २८	३३ ५६	९० ०	३४ ५७
मरीचि सप्तऋषि	१५३ ५	५४ २३	२०६ ५६	२२५ १६	३९ २६	२१९ ४५	२४० ४८	३१ ४	२३१ ८	३४ ९
(अग्नि नाथ) का ता.	५८ ४४	५ २३	११२ ३५	११५ ३०	२७ २२	१२९ २४	१३१ ३६	२९ ४३	११७ १९	३३ ३४
अश्विनी (ग्या. एरै.)	९ ४	६ २१	६२ ५५	५९ ११	२७ २७	७५ ४४	७२ २२	३६ ०	५७ १३	३३ २०
उत्तरा भाद्रपदा	३४५ १९	१२ ३६	३९ १०	३२ ५	२६ ४४	५१ ५९	४२ ४५	३५ २०	२८ ५१	३० १५
पूर्वा भाद्रपदा	३३० ४२	+१९ २३	२४ ३३	१४ ३४	२७ ३३	३७ २२	२३ १५	३५ १९	१० ४२	२९ ६
रोहिणी (आल्डि.)	४५ ५७	– ५ २८	९९ ४८	१०० १६	१८ १०	११२ ३७	११४ ३२	२२ ५१	१०० ४६	२४ ५९
धनिष्ठा (आल्फा.)	२९३ ३३	+३२ २	३४७ २४	३३४ ३५	२५ ४	० १३	३४१ ४६	२८ २	३३१ ५४	२१ ५७
भरणी (इप्सिलान.)	२४ ४०	+ ४ १०	७८ ३१	७७ ३	२६ १८	९१ २०	८८ २२	३४ ५५	७६ १८	२० ५२
पुनर्वसु (पोलक्स)	८९ २४	+ ६ ४०	१५३ १५	१३७ ५०	१६ ४४	१५६ ४	१६२ २८	१७ ४८	१५९ ५७	१९ १३
मृगशीर्ष (लां. ओ.)	५९ ५२	–१३ २३	११३ ४३	११३ १९	८ ४०	१२६ ३२	१२६ १४	११ ३५	११३ ५४	१५ १
श्रवण (आल्टेर)	२७७ ५५	+२९ १८	३३१ ४६	३२३ ९	१६ १३	३४४ ३५	३३१ ५२	१७ ३४	३२१ ४६	१२ ०
आर्द्रा (आल्फा.)	६४ ५५	–१६ ३	११८ ४६	११७ ४१	५ १४	१३१ ३५	१३० ३	७ २९	११८ ९	११ २१
स्वाती (आर्क.)	१८० २४	+३० ४९	२३४ १५	२३९ १८	१० ३२	२४७ ५	२५० २६	उ.२ २	२३९ ४६	उ.४ ४०

कोष्टक २ (क) सद्दरकी क्रांतिसे अच्युत और च्युत नक्षत्र.

उत्तर अक्षांश ३४।५७ = शतपथ के स्थलपर दृग्गोचर होनेवाले उन्नतांश और दिगंशः—

नत-कालांश	कृत्तिका नक्षत्र क्रांति २४ । ५७		मरीचि सप्तर्षि क्रांति ३४ । ९		अग्नि (भरतोर्ध्वतारा) क्रांति ३३ । ३४		अश्विनी नक्षत्र क्रांति ८ । ३३ । २० A		उत्तरा भाद्रपदा न. क्रांति ३०-१५		सारांश
	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	उन्नतांश	दिगंश	
तारे का	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	अं. क.	
उदय	० ०	उ.४४ २०	० ०	उ.४३ १४	० ०	उ.४२ २५	० ०	उ.४२ ६	० ०	उ.३७ ५५	
-७५	८ ५१	उ.३६ ४५	८ २४	उ.३६ ६	८ ३	३५ १७	७ ५४	३५ २६	६ ३	३२ ५७	
९०	१९ ९	उ.२९ ४१	१८ ४५	उ २९ ५	१८ २८	२८ ३२	१८ २१	२८ २०	१९ ४६	२६ ३३	
७५	३० १०	उ.२३ ४१	२९ ४९	उ.२२ ५३	२९ ३४	२२ १७	२९ २८	२२ २	२८ ९	१८ ५१	
६०	४१ ३७	उ.१८ १७	४१ २१	उ.१७ १८	४१ १०	१६ ३३	४१ ५	१६ १६	३९ ५९	१२ २१	
४५	५३ २६	उ.१३ २३	५३ १५	उ.१२ २	५३ ६	११ ६	५३ २	१० ४६	५२ ७	उ. ५ ५३	च्युत
३०	६५ ३०	उ. ८ ४७	६५ २२	उ. ६ ५४	६५ १६	उ. ५ १७	६५ १३	उ. ४ ४५	६४ २४	द. १ ३६	च्युत
१५	७७ ४३	उ. ४ १९	७७ ३८	उ. ० ५१	७७ ३२	द. २ ३२	७७ २९	द. ३ ५०	७६ ३२	१६ १५	च्युत
मध्याह्न	९० ०	पूर्व. ० ०	८९ १२	द.९० ०	८८ ३७	द.९० ०	८८ २३	द.९० ०	८९ १८	द.९० ०	अच्युत

पूर्व दिगंश (० । ०) सममंडल= पूर्वदिक्सूत्र में आने के समय के समशंकु और नत कालांश.

सम	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	पूर्व
मंडल	९०°।०'	०°। ०'	७८°।३०'	१३°।५४'	७४°।४७'	१८°।४६'	७३°।३५'	१९°।४६'	६१°।३४'	३३°।२७'	सूत्र

A अश्विना पुंज के बीटा, ग्यामा, और म्यू एरीटिस इन तीन तारों में मध्य का ग्यामा एरीटिस लिया है।

नत कालांश	पूर्वा भाद्रपदा न. क्रांति २९।६		धनिष्ठा नक्षत्र क्रांति २१।५७		भरणी नक्षत्र ‡ क्रांति २०।५२		पुनर्वसु नक्षत्र क्रांति १९।१३		श्रवण नक्षत्र क्रांति १२।०		सारांश
	उन्नतां०	दिगंश	उन्नतां०	दिगंश	उन्नतां०	दिगंश	उन्नतां०	दिगंश	उन्नतां०	दिगंश	
उदय	० ०	उ.३६ २४	० ०	उ.२७ ८	० ०	उ.२५ ४५	० ०	उ.२३ ४१	० ०	उ.१४ ४२	
—७५	५ २१	३२ २	१ ०	२६ २१	० २०	२५ ३०	....	....	....	....	
९०	१६ ११	२४ ३१	१२ २२	१८ १७	११ ४६	१७ २१	१० ५२	उ.१५ ५७	६ ५०	उ. ९ ५३	
७५	२७ २९	१७ ४०	२४ १६	१० ४०	२३ ४३	९ ३९	२२ ५३	उ. ८ ६	१९ २	उ. १ ५३	च्युत
६०	३९ ३३	११ ५	३६ २८	उ. २ ४८	३५ ५७	उ. १ ३४	३५ ८	द. ० ३६	३१ २०	द. ७ २२	च्युत
४५	५१ ४३	उ. ४ १५	४८ ४४	द. ६ ५	४८ १३	द. ७ १८	४७ २३	९ ३३	४३ १७	१८ ११	च्युत
३०	६४ ०	द. ४ ४३	६० ४५	१६ २२	६० ९	२० १०	५९ ११	२२ ५०	५४ २६	३२ ४६	
१५	७६ १	२० ३८	७१ २८	४० ५७	७० ४२	४२ ५८	६९ २५	४५ ५८	६३ १९	५५ ४३	
मध्याह्न	८४ ९	द.९० ०	७७ ०	द.९० ०	७५ ५५	द.९० ०	७४ १६	द.९० ०	६७ ३	द.९० ०	

पूर्वदिगंश ०।० = सममंडल = प्राचीदिक्सूत्र में आने के समय के सम शंकु और नत कालांश.

सममंडल	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	सम शंकु	नत कालांश	प्राची
	५७°।५८'	३७°२३'	४०°४४'	५४°४७'	३८°२७'	५६°५७'	३५°३'	६०°९'	२१°४०'	७१°४९	सूत्र

‡ भरणी पुंज के तीन तारे ये हैं (१) इप्सिलान एरेटिस नं.१७५ प्रति ४·६४ भोग २४°।४०' शर +४।१०, (२) डेल्टा एरैटिस नाटिकल नंबर १८७ प्रति ४·५३ भोग २६°।५५' शर +१।५१, (३) टाऊ एरैटिस नंबर १९७ प्रति ५·१७ भोग २९।३२ शर +२°।३१' इन में उत्तर शराधिक तारा इप्सिलान एरैटिस लिया है बाकी के तारों के भोग शर केतकर के नक्षत्र विज्ञान में लिखे हुए लिये हैं। सर्वत्र उन तारों के पाश्चात्य नाम लिखे नहीं हैं.

विधान ८४.

उपर्युक्त पहले कोष्टक के (अ),(ब) और (क) समय में प्रो० लेवरियर सारणी से रवि परम क्रांति २६°।४५',३०°।४४' और ३०°।५५' आती है। सो (ब),(क) कालमें लिखी है। किंतु प्रो० हर्शल साहबने इसकी (२२-२४ अंशोंके अंदर) आंदोलन गति कही होने से चाहे जिस (ब) (क) आदि चक्रमें करीबन यही परमक्रांति आती है। इसलिये (अ) समयकी प० क्रांति प्रो० लिवरकी नहीं लेकर प्रकारांतर के परिमाण ज्ञात होने केउद्देश से प्रे० हर्शल साहब की २४ अंश मित लेकर (अ) सदर के विषुवांश क्रांति इसीके द्वारा साधन किये हैं। (अ) और (क) सदर के अयनांश–५३। ५१ एक ही होनेसे (अ) सदर के सायनभोगही (क) सदर के सायनभोग हैं। इसलिये (क) में सा० भोग लिखे नहीं हैं। दूसरे कोष्टक में (क) सदर के नक्षत्रों की क्रांति के अनुसार तथा शतपथ के स्थल के (कृत्तिकाशर (४° । २')+रवि परमक्रांति=) अक्षांश ३४।५७ लेकर उनके उन्नतांश, दिगंश और पूर्वदिशा (सम मंडल) से दक्षिण के तर्फ च्युत होनेके नतकालांश लिख दिये हैं। अब जब इन कोष्टकोंमें लिखी नक्षत्रोंकी क्रांति को देखते स्पष्ट रीतिसे ज्ञात हे।जाता है कि (ब) समय में कृत्तिकाकी क्रांति ३३°।५६' से आश्विनी, पूर्वोत्तराभाद्रपदा व भरणी की क्रांति अधिक होकर शतपथ स्थल के निश्चित किये हुए अक्षांश ३५ से भी अधिक है। इसलिये अश्विन्यादि नक्षत्र अच्युत और कृत्तिकादि च्युत निश्चित हो जाते हैं। तथा उक्त शतपथोक्त बातोंकी संगति इस कालमें मिलती नहीं है। इसलिये (ब) काल शतपथ का नहीं है। ऐसे ही (अ) काल में सब २७ नक्षत्रों में कृत्तिका की क्रांति २८।२ अधिक है। यानि सप्तर्षि और अभिजित् के तारे जोकि २७ नक्षत्रों में नहीं हैं उनके अतिरिक्त कोई नक्षत्र की क्रांति कृत्तिका से अधिक नहीं है तब कृत्तिका क्रांति तुल्य शतपथ के अक्षांश (२८।२) मानलेनेपर " सब नक्षत्र पूर्व दिशा से च्यवित हो जाते हैं एक कृत्तिका नक्षत्र च्यवित नहीं होता है " ऐसा उक्त ३ प्रमाणोंका वर्णन यद्यपि (अ) कालीन स्थिति से मिलता है। किंतु अक्षांश २८।२ शतपथ स्थल के हो नहीं सकते। क्यों कि उसमें कुरुक्षेत्र के उत्तर का वर्णन पाया जाता है। दुसरेमें आगे लिखे प्रमाणोंसेभी इसकी संगति मिलती नहीं है। इसलिये तथा (क)सदरकी क्रांति को देखते सब प्रमाणों कीसंगति मिलती है। इसलिये शतपथ का काल (अ) समय न होकर (क) समय का है।

विधान ८५

चौथा प्रमाण यह है:— " अथ यस्मान्न कृतिकास्त्रादधीत । ऋक्षाणाऽ्ह वा ऽएता अग्रेपत्य आसुःसप्तऽर्षीनु हस्म वैपुरऽर्क्षा इत्याचक्षते ता मिथुनेन व्यार्ध्यन्तामी

ह्युत्तराहि सप्तऽर्षय उद्यन्ति पुरएता अशामिव वै तद्यो मिथुनेन वृद्धःस नेन् मिथुनेन वृद्धऽइति तस्मान्न कृत्तिका स्वादधीत ॥ ४ ॥" [श, ब्रा, २. १. २.] अर्थः-" यदि कहें कि कृत्तिकामें अग्न्या धान करना योग्य नहीं है क्यौंकि (अग्रे) पहले (एताः) यहकृत्तीकाके ७ तारे (ह) प्रसिद्ध तौरसे (ऋक्षाणां) सातों ऋषियोंके ७ तारों की (वै) निश्चय करके (पत्न्यः) यज्ञ प्रयोगमें संयोग पानें वाली पत्नियोंके रूपमें (आसुः) हो गई थीं (उ) इसीलिये (सप्तऽर्षीन्) सातों ऋषियोंके तारोंके (हस्म) प्राचीन कालमें (वै) निश्चय करके यह (पुरऽक्षाः) पूर्व दिशामें आने वाले तारे हैं (इति) ऐसा (आचक्षते) ज्योतिष के वेधज्ञ- तत्ववेत्ता-लोग कहते हैं। किंतु वर्तमान में (ताः) वह कृतिका एं (मिथुनेन) ऋषियोंके जोडेसे (व्याध्र्यन्त) बिछड गई हैं (हि) क्यौंकि अब तो (अमीः) यह (सप्तऽर्षयः) सप्तर्षियोंके तारे (उत्तराः) उत्तर दिशाके (हि)तर्फ के (उत्) विभाग-बगल-से (यन्ति) जाते हैं। और (एताः) यह कृतिका एं (पुरः) पूर्व दिशामें उपस्थित होती हैं (तत्) सो यह (वै) तो (अशं) सुखकारक नहीं (इव) ऐसा होता है इसलिये (यः) जो नक्षत्र (मिथुनेन) जोडेसे (वृद्धः) युक्त रहा नहीं है (सः) वह (मिथुनेन) जोडेसे (वृध्यै) वृद्धि के लिये (न इत्) ठीक नहीं (इति) ऐसे (तस्मात्) कारणसे (कृत्तिकासु कृत्तिकाओंमें (न आदधींत) आधान नहीं करे " ॥ ४ ॥ इस प्रकार के कथन की संगति उक्त कोष्टक १ के (क) सदर में लिखी हुई मरीचि से वसिष्ठ ऋषिकी उत्तरक्रांति ३४°।९' से ३९°।२६' के अंतर्गत कृत्तिका क्रांति ३४°।५७' आनेसे बिलकुल बराबर मिलती है किंतु (ब) सदर में लिखी उक्त ऋषियोंकी क्रांति ३९°।२६' से ४४।२५ के किंवा परमक्रांति २६। ४५ द्वारा सूचित क्रांति के अंतर्गत आती नहीं है इसलिये स्पष्टरीतिसे ज्ञात होजाता है कि (अ) और (ब) समय में शतपथका काल न होकर (क) समय का है। यानी शकपूर्व ५४६९८ वर्ष में शतपथका निर्माण हुवा ऐसा निश्चित होता है।

विधान ८६

पांचवाँ प्रमाण ये है:- " तद्वैव दधीत। अग्निर्वाऽएतासां मिथुन मग्निनैता मिथुनेन समृद्धास्तस्मादेव दधीत ॥५॥ (श. ब्रा. २.१.२) " अर्थः- " किंतु यहां अब ऐसी शंका करने का कारण ही नही है क्यौंकि सप्तर्षियों के तारों के साथ कृत्तिका पुंजकी जोडी कायम की नहीं थी। वह कुछ कालके लिये बनगई थी। मुख्यतः अग्निका तारा ही कृतिकाओं का जोडा है और वर्त्तमान में उस जोडी से कृत्तिका युक्त हैं। इसलिये सिद्ध होता है कि कृतिका नक्षत्र में ही अग्निका आधान करें।" शतपथ के इस प्रमाण में अग्निके साथ कृत्तिका की जोडी बनी हुई है ऐसा लिखा है। भरत पुंजके ऊपर वृषभराशि के 'ब' (छोटा

टारी = नाथ B. Tauri) तारे को प्राचीन और सिद्धान्त ग्रंथों में अग्नि के नामसे कहा है (उपर्युक्त को. १ देखिये) इनके भोगों में २२. ६ अंशों का सापेक्षांतर है । इससे विषुव वृत्तिय कृत्तिका के समय में अग्नि की उत्तर क्रांति ९-१० अंश होनेसे इसकी कृत्तिका के साथ जोडी बनती नही है। यानी इसकी केतकरादि के कहे काल में संगति मिलती नहीं है. क्योंकि न तो इस समय में कृत्तिका और अग्नि की समान क्रान्ति होती है और न यह दोनों तारका पुंज एक कालावच्छेद से ठीक पूर्व दिक्सूत्र में आते हैं। किंतु धनिष्ठा से शतभिषक् संपात पर्यन्त में इनकी क्रान्ती; स्वल्पान्तर (१°।२३')से समानता में आती है। और उक्त (१ कोष्टक के) (क) सदर में लिखे इन दोनो के विषुवांशांतर (२७°।१९') के प्रस्तुत अक्षांश ३४।५७ द्वारा निम्नलिखित समीकरणोंक्त गणित करने से:—

$$\text{क्रांति को० स्पर्श रेषा} = \frac{\text{अक्ष को०स्पर्श रेषा}}{\text{नत कालांश कोज्या}} = \text{घा०}\ \frac{\overset{१०.१५५५८०१}{९.९४८६४९५}}{१०.२०६९३०६} = \frac{\text{समानता होने की}}{\text{क्रांति ३१।३०}}$$

ज्ञात होता है कि उस काल में कृत्तिका के खस्वस्तिक में आने के समय में अग्नी का तारा भी पूर्व दिशा में आता था। यह समानता जोभी कृत्तिका की एक योग तारा से एक दो अंशांतर की प्रतीत होती है ।किंतु ग्रंथ में पुंज के उपलक्ष्य की कही होने से पुंज से बराबर मिलती है। और स्थल के विस्तार में एक दो अंशांतर के अक्षांश होने से अग्नि की क्रान्ति (३३°।३४')- प्रस्तुत गणितागत क्रांतिसे (३१।३०) = (२°।४') जो ऐसा स्वल्पांतर आता है सो उपेक्षणी है। इस लिये इस (क) समय में दोनो प्रकार से अग्नी के साथ कृतिका की जोडी फाल्गुन मास में सांयकाल के समय प्रत्यक्ष दिखती थी। इससे तथा उपर्युक्त चारों प्रमाणों की एक वाक्यता से निःसंदेहता पूवक सिद्ध होता है कि 'ज्यो०' केतकर प्रभृति आधुनिक विद्वानों का कहा हुआ (शत पथ के) प्रमाण का अर्थ और (तदनुसार) कहा हुआ काल गलत है तथा (क) सदर में लिखा हुआ शक पूर्व ५४६९८ वर्ष का शतपथ का काल सिद्ध होता है।

विधान ८७

प्रस्तुत ब्राह्मण ग्रंथोक्त ज्योतिः शास्त्रेतिहास को; भारत और पुराण ग्रंथकारों ने भी संग्रहीत किया है। उसमें से कुछ भाग को ज्यो. दीक्षितजी ने भारतीय ज्योतिः शास्त्र (पृष्ठ ११०) में उधृत करके उसके अर्थ के संबंध में निम्न लिखित अपने भाव प्रगट किये हैं सो इस प्रकार है:—

"अभिजित् स्पर्धमानातु रोहिण्या कन्यसी स्वसा ॥ इच्छन्ती ज्येष्ठतां देवी तपस्तप्तुं वनं गता ॥ ८ ॥ तत्र मूढोऽस्मि भद्रंते नक्षत्रं गगनाच्च्युतम् ॥ कालं त्विमं परं

स्कंद ब्रह्मणा सह चिंतय ॥ ९ धनिष्ठा दिस्तदा कालो ब्रह्मणा परि कल्पितः ॥ रोहिणी ह्यभवत्पूर्वमेवं संख्या समाभवत् ॥ १० ॥ एवमुक्ते तु शक्रेण त्रिदिवं कृत्तिकागताः ॥ नक्षत्रं सप्तशीर्षाभं भाति तद्वन्हि दैवतम् ॥ ११ ॥ (भारत वन पर्व अ. २३०) "स्कंदाख्यानांत हीं वाक्यें आहेत. एकंदर वाक्यां चा सर्व भावार्थ नीट समजत नाहीं। अभिजित्, धनिष्ठा, रोहिणी, कृत्तिका त्या नक्षत्रां संबंधें निरनिराळया कथा चालू असलेल्या यांत गोंवलेल्या दिसतात. या मुळें त्यांचा पूर्ण संबंध कळत नाहीं. धनिष्ठादि काल ब्रह्मदेवानें कल्पिला असें ह्मटलें आहे, त्याची उपपत्ति स्पष्टच आहे. त्या पुढेंच 'पूर्वी रोहिणी होती' असें म्हटलें आहे. या वरून रोहिण्यादि गणना कधीं होती तीस अनुसरून तें ह्मटलें आहे कीं काय न कळे. अभिजित् नक्षत्र आकाशांतून पडलें ही यांतील कथा महत्वाची आहे. अभिजित् नक्षत्राचा शर सुमारें ६१ अंश उत्तर आहे. तें ध्रुव स्थानीं आलें म्हणजे फार खालीं आलेंच. त्या संधीस तें कधीं कधीं क्षितिजापर्यन्त ही येऊ शकेल. × × "कृत्तिका आकाशांत गेल्या" असें ह्मटलें आहे. त्याचा संबंध कळत नाहीं." इस तरह अर्थ के संबंध में आपने गोलमाल ही कहा है, अर्थात् मुख्यार्थ नहीं समझने से कोई भी निश्चित बात लिखी नहीं है। लेकिन यह सब श्लोक बडे महत्वार्थ को लिये हुए हैं।

विधान ८८

उक्त श्लोकों के अर्थ को बताने के पहिले अभिजित् को निजगति का संसकार देकर उसके शुद्ध परिमाणों को बताना आवश्यक है। नक्षत्र विज्ञान (पृ. ३२) में प्रो० केतकर ने उ० ध्रुव से दिगंश ३४ पर ०.३६ विकला प्रति वर्ष अभिजित की निजगति लिखी है। उसको कदंब सूत्रीय करके प्रस्तुत काल के संबंध में निम्नलिखित परिमाण निश्चित होते हैं।

कोष्टक १ का परिशिष्ट.

निजगति संस्कृत अभिजित् के शुद्ध परिमाण			अभिजित् और कृत्तिका का क्रांत्यंतर			
उक्त कोष्टक १ का	(ब) धनिष्ठादि काल	(क) शतभिष-काल	परिशिष्ट	(अ)	(ब)	(क)
परिशिष्ट	अं. क.	अं. क.	को १ का परिशिष्ट	अं. क.	अं. क.	अं. क.
नाक्षत्र भोग	२६५ २०	२६५ २५	अभिजित् क्रांति	४१ १७	३८ ५८	३५ ४५
सायन भोग	३३२ ०	३१९ १६	निज गति संस्कार	−१ १६	−२ ५७	−३ ०
उत्तर शर	५६ ५१	५६ ४५	अभिजित्शुद्ध क्रांति	४२ १	३६ १	३२ ४५
विषुवांश	३०६ ३९	२९९ २५	कृत्तिका क्रांति	२८ २	३३ ५६	३४ ५७
उत्तर क्रांति	३६ १	३२ ४५	अभिजित्क्रांत्यंतर	+१२ ५९	+२ १५	−२ १२

विधान ८९

इससे गणित द्वारा निश्चित होता है कि शक पूर्व ५४०९२ वर्ष में अभिजित् और कृत्तिका की ३४°।२२' समान उत्तर क्रांति होगई थी और (ब) तथा (क) काल में करीबन दोनो की क्रांती समान दिखती थी और (अ) काल में १३ अंशातर पर थी। तथा उपर्युक्त श्लोकों का ऐसा अर्थ होता है कि:– " (रोहिण्याः) रोहिणी नक्षत्र की (**कन्यसी-स्वसा**) कन्या के तुल्य कनिष्ठ प्रति के तारका पुंज वाली छोटी बहिन (**देवी**) कृति का नक्षत्र (**ज्येष्ठतां इच्छंति**) सब २७ नक्षत्रों में मैं ही एक ऊंची बडी हो जाऊ ऐसी इच्छा करती हुई (**अभिजित् स्पर्धमाना**) सब नक्षत्रों में उत्तर क्रांति वाले अभिजित् नक्षत्र को भी जीतकर उससे भी मैं बडी हो जाऊं ऐसी स्पर्धा करती हुई (**तपस्तप्तुं**) तपसि= माघ महीने में तपने के लिये यानी सब से बडे दिनमान का रूप धारण कर बहुत देर तक प्रकाशित रहने के लिये (**वनंगता**) " वारिसलिलं कमलं वनं, गजबन्धनभुव्यपि' 'वनंप्रस्त्रवणेगेहे प्रवासाँभसि काननइत्यमरहेमौ'' उत्तर परम क्रांति एवं पर्जन्य नक्षत्र के स्थान पर पहुंच गई। और अभिजित् को भी लांघकर ख स्वस्तिक स्थान में आने लगगई (**तत्र**) वहां (**भद्रंते**) परमापक्रम स्थान के भद्रान्त पर जाने से (**मूढोऽस्मि=मूढाऽऽसीत्**) उसका इरादा ढल गया। (**नक्षत्रं गगनाच्युतम्**) इधर अभिजित नक्षत्र का भी गगन [खस्वस्तिक से पतन हो गया था। [**कालं चिंतय**] इस तरह ब्रह्मा [अभिजित] के च्युति के साथ में कृत्तिका के भी स्कन्दित होने के आरंभ के इस कालको परमस्कंद का काल समझो ॥ ९ ॥ (**धनिष्ठादि तदाकालः × परिकल्पितः** ॥) ब्राह्मण ग्रंथकारों ने इस काल को धनिष्ठादि (संपातका) काल कहा है ॥ (**रोहिणी × समाभवत्** ॥ १० ॥) इसके पूर्वकाल में इसी स्थान (भुज ९० अंश) पर रोहिणी (नक्षत्रविभाग) आई थी। अब उसी संख्या के समान कृत्तिका आई है ॥ १० ॥ (**एवमुक्तेतु × कृत्तिकात्रिदिवंगता**) जब इन्द्र ने कहा तब कृत्तिका त्रिदिव (सम्पात से ९० अंश = तीन राशि] पर चली गई थी। [**नक्षत्रं + वह्निदैदतम्**] और अब भी ' जिसका देवता अग्नि है ' इस प्रकार तारों का ' सप्तशिर ' रूप का [कृत्तिका और उसके उत्तर में स्कंद नामक] तारका पुंज स्वस्तिक व उत्तर ध्रुव प्रदेश में ही दिखाई देते हैं.

ऐसा इन श्लोकों का अर्थ है।

विधान ९०

प्रस्तुत अर्थ की उपपत्ति और गणितागत तारों की क्रांति से इसकी संगति; कैसी व किस कालकी निश्चित होती है, यह परिशिष्ट कोष्टक (नं. १) द्वारा ही स्पष्ट हो

जाती है। प्रस्तुत कोष्टक की (अ) तथा (ब) पंक्ति देखिये; कृत्तिका की क्रांति से १३ तथा २ अंश उत्तर में अभिजित् की क्रांति होनेसे कृत्तिका की अभिजित् के साथ स्पर्धा सिद्ध होती नहीं है। तथा पूर्व पश्चिम दिक्सूत्र एवं ख स्वस्तिक रूप गगन (आकाश) से अभिजित् का भी पतन होता नहीं है। इतना ही नहीं तो सब नक्षत्रों में कृत्तिका का बडा होना यानी सब नक्षत्रों में सिर्फ एक कृत्तिका की ही उत्तर क्रांति अधिक होना तथा अक्षांश ३५ के प्रदेश में ख स्वतिक से पूर्व क्षितिज तक जाने वाले प्राची दिक् सूत्र (सम मंडल) से दक्षिण तर्फ च्युत नहीं होना इन दो मुख्य आधार पर उक्त प्रमाणों में कृत्तिका संबंध का इतिहास कहा गया है. सो (अ) काल में तो कृत्तिका की क्रांति अक्षांश ३५ से ७ अंश कम यानी २८ अंश मात्र होने के कारण अक्षांश २९ के प्रदेश में भी कृत्तिका ही स्वयं च्युत हो जाती है। और अभिजित् च्युत नहीं होता है। ख स्वस्तिक (३५ अँश) से सात अंश उत्तर से ही वह मंडलाकार घूम जाता है। इससे उक्त कथन का (अ) काल यानी शक पूर्व २३१२२ वर्ष का काल नहीं हो सकता। तथा (ब) कालम देखिये इस समयमें जोभी कृत्तिका अभिजित् के कुछ निकट में पहुंच गई है तोभी २ अंश दक्षिण में ही है। इससे उसकी अभिजित से स्पर्धा पूर्ण नहीं कही जा सकती। और इस काल में भी कृत्तिका च्युत होती है तथा अभिजित्, अश्विनी, उत्तराभाद्रपदा, पूर्वा भाद्रपदा व भरणी के तारे च्युत नहीं होते हैं। इससे स्पष्ट रीतिसे ज्ञात हो जाता है कि उक्त कथन का (ब) काल यानी शक पूर्व ५३७४२ वर्षका काल नहीं हो सकता है।

विधान ९१

परिशिष्ट की (क) कालम को देखिये इस (क) काल में इस संबंध की ग्रंथोक्त कुल बातें यथार्थ घटित होती हैं। क्योंकि कृत्तिका की क्रांति +३४।५७ होने से अक्षांश (३४अं.।५७क.) = ३५ अंश के प्रदेश के ख स्वस्तिक से अल्पशर (४ अंश) वाली कृत्तिका का पतन नहीं होते हुए बहुतशर (+३१-८ अंश) वाले अभिजित नक्षत्र का गगन से पतन सिद्ध होता है। अतएव कृत्तिका की अभिजित से स्पर्धा यहीं पूर्ण होती है। क्योंकि अभिजित को लांघकर कृत्तिका २ अंश १२ कला उत्तर में बढ गई है। दूसरे अभिजित समेत २७ नक्षत्रों के - योग - तारे तो पूर्व दिशा (सम मंडल) से च्युत होजाते हैं, सिर्फ एक कृत्तिका नक्षत्र ही च्युत नहीं होता है। इस तरह कृत्तिका की ज्येष्ठता यहीं घटित होती है। तीसरा प्रश्न - (भारत के उक्त श्लोकों में "**धनिष्ठादि तदा कालो ब्रह्मणा परिकल्पितः**") - धनिष्ठादि काल कहा है। सोभी इस समय वसंत संपात की स्थिति धनिष्ठा नक्षत्र के १७ घटी, ४० पल पर होनेसे धनिष्ठादि काल स्वयं सिद्ध होजाता है. और उपर्युक्त शतपथ ब्राह्मणोक्त प्रमाण से इसकी एक वाक्यता निश्चित हो

जाती है । इसलिये सिद्ध होता है कि उक्त घटना अक्षांश ३५ के स्थल से (क) काल में प्रत्यक्ष देखी हुई है । जोकि शतपथादि ब्राह्मण ग्रंथों में लिखे गई है. उसी के आधार पर महाभारत में उक्तश्लोक उधृत किये गए हैं । ज्यो० केतकर एवं ज्यो० दीक्षितजी को उक्त प्रमाणों का यथार्थभाव नहीं समझने से उनका बताया हुआ काल गलत है । और हमारा बताया हुआ अर्थ तथा गणितागत मान शुद्ध व सूक्ष्म है इससे तथा बीसों प्रमाणों की इस के संबंध में गणितागत एक वाक्यता होने से निर्णीत होता है कि इस खगोलीय ऐतिहासिक घटना का काल शक पूर्व ५४६२८ वर्ष का है । जोकि उक्त कोष्टक के (क) कालम में प्रो. लीव्हेरिअर और प्रो. हानसेन प्रोक्त परम क्रांति के आधार से बताया गया हैं ।

विधान ९२

यदि कहें कि; ज्यो. केतकर ने तो केवल शतपथ के एक प्रमाण द्वारा उसके काल को बताने का प्रयत्न किया था। और ज्यो. दीक्षितजी ने भारत के श्लोकों द्वारा अभिजित का पतन व धनिष्ठादि काल बताया है। किंतु यही कोष्टक (नं. १) के तथा परिशिष्ट (क) कालममें बताए क्रांतिकेअंकोंद्वारा दोनों घटनाओंका ५४ हजार वर्षका एकहीकाल बताया गया है। और भारतका काल तो (वेद काल निर्णयमें) १८ हजार वर्षके करीबका निर्णीत किया है। इन दोनों कालों में ३६ हजार वर्षोंका अंतर कुछ थोडा नहीं है। तब इतने कालकी प्राचीन बातें भारत में यथास्थित कैसे आसकती हैं। यदि आई हैं तो; शतपथ आदि ब्राह्मण ग्रंथों में कही हुई " सप्तर्षियों की पत्निका रूप कृत्तिका ने धारण कर लिया था " इत्यादि बातेंभी भारत के प्रस्तुत कथाभाग में विस्तृत रूप से आनी चाहिये। और ज्योतिःशास्त्रीय आधार से उसकी, और अक्षांश ३५ के स्थल की; ऐतिहासिकता सिद्ध होनी चाहिये। अन्यथा इतने हजारों वर्षों का काल; इस शास्त्रीय ज्ञानयुग में सर्वमान्य कैसे हो सकेगा ।

इन प्रश्नों को हल करने के पहले इसकी ऐतिहासिकता को स्पष्ट किया जाता है कि; यद्यपि यह घटना पृथ्वी पर कोई व्यक्ति द्वारा किसी एक (दस बीस वर्ष के) अल्प काल में हुई न होकर आकाश में हुई है। और वह सेकडों हजारों वर्षोंतक संसार में नित्यप्रति दिखती रही है। तब उसपर तत्कालीन सैकडों हजारों विद्वानों का दृष्टिपात होना स्वाभाविक बात है। और उनमें से खगोलीय तत्ववेत्ताओं ने अपने २ समय की प्रत्यक्ष देखी बातों को प्राचीनों की कही बातों से मिलाकर उनको छंदों के एवं गद्यों के रूप में बनाई हैं। वही ब्राह्मणादि ग्रंथों में अंकित (की गई) हैं। वही मंत्र अश्वमेध व राजसूय आदि यज्ञों में बडे गौरव के साथ पढे जाते थे। इसलिये उस समय के कई विद्वान कवियों ने उसे पुराण कथा यानी मनुष्य चरित्र का रूपक देकर जनता में ग्रंथ, नकशा व व्याख्यानोंपदेशादि के अनेक साधनों द्वारा प्रसिद्ध की हैं। भारतकार श्रीमान् व्यासजी ने

अपने ग्रंथ (भारत) में ऐसी बहुतसी कथाएं उधृत कर रक्खी हैं; कि जो वस्तुत: खगोलीय ऐतिहासिक हैं। उसी भारत के वनपर्व के कथाभाग में स्कंद के उपाख्यान में कृत्तिका संबंध के प्रस्तुत श्लोक आए हैं। यदि यह पृथ्वीपर की ऐतिहासिक बातें होती एवं किसी कोई कवियों द्वारा कही गई होती; तो इतने दीर्घ कालतक यह टिक नहीं सकती थी; किंतु यह हजारों वर्ष में धीरे २ घटित हुआ हुआ दिव्य ज्योतियों का खगोलीय इतिहास है। तभी आजभी हम उसे शास्त्रीय कसपर लगाकर उसके सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं। इतनाही नहीं तो इसी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के सिद्धांतों के आधार पर हजारों कथाभागों के भिन्न भिन्न कालों को उसमें कहे हुए सैकडों प्रमाणों की एक वाक्यता द्वारा निश्चित करते हुए आज से ३ लाख ३६ हजार वर्ष तक के [कालानुक्रमवार] इतिहास को बता सकते हैं। यह कुछ साधारण बात नहीं है। अतः इस रिपोर्ट में इस विषय के दो चार उदाहरण बताकर पाठकों को उक्त लंबे कालका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। तथा उसमें भी पहले हम प्रस्तुत कथाभाग को और भी स्पष्ट करते हुए धनिष्ठादि काल को प्रमाणांतरों से पुनः निश्चित करके बताते हैं।

इस के लिये मैने आगे एक कोष्टक दिया है। उस में इस कथा भाग से संबंध रखने वाले कई तारों के भिन्न २ (अ + ब + क) कालीन क्रांति आदि परिमाण लिखदिये हैं। ताकि पूर्वोक्त कोष्टकों से इसका संदर्भ लगाकर प्रस्तुतकथाकेभावार्थको पाठकगण कोष्टकोक्त अंकों से निश्चत करसकेंगे। औरइसके कालको भी साधारण भी पाठक सरलता से समझ सकेंगे क्योंकि ऐसे सिद्धांतों को ही मैने इसमें निश्चत किये हैं।

विधान ९३

यह कथा भारत के वनपर्व में इसप्रकार है। "भरतो भरत स्याग्निः (अध्याय २१९ श्लोक ८), स्वाहा तं दक्ष दुहिता प्रथमं कामयत्तदा ॥ अहं सप्तर्षि पत्नीनां कृत्वा रूपाणि पाव कम् (२२४।४१), दिव्यरूप मरुंधत्या कर्तु न शकितं तया (२२६।१४)." अर्थात् :—"भरत Orion पुंजकेऊपर में जो अग्नि Noth नामक तारा प्रसिद्ध है, उसके साथ दक्ष प्रजापति (रोहिणी Aldebaran नक्षत्र) की स्वाहा Etatauri नामक कन्या = कृत्तिका ने विवाह करने का निश्चय किया किन्तु जब कृत्तिका ने अग्नि की प्रीति सप्तर्षियों की पत्नियों के ऊपर है ऐसा देखा तब कृत्तिका ने उन पत्नियों B, a, tt, s,e, n, ursae majaris का यानी सप्तर्षि पुंजके तारोंके निकटके छोटेतारोंका रूप तो धारण करलिया लेकिन वासिष्ठ ऋषि 51 ursae majoris. mag. 2. 40 की पत्नि अरुंधति No 805, 3m. 96(32)15" 150° के रूप को यह धारण नहीं करसकी थी।" इस प्रकार के कथन से प्रस्तुत ऐतिहासिक घटना का आकाशीय स्थल, कथाभागमें आएहुए व्यक्तियों का स्वरूप = आकृति परिचय और इनका परस्पर संबंध क्याहै सो सब स्पष्ट होजाता है। तथा ज्योतिः शास्त्रीय गणित के कसौटीपर इसको जांचनेसे निम्न लिखितानुसार इसका

भाव प्रकट होजाता है। जैसाकि :—'उक्त अग्निकी क्रांतिका सप्तर्षिपुंजके सातों तारों की क्रांति से दोचार अंशोंके फासले तक (उत्तरमें) पहुंचजाना ही उनकी पत्निओंपर प्रीति हुई कही जासकती है। ऐसी स्थितिमें कृत्तिका के ७ तारों का झूमकाभी सप्तर्षियों के निकट वर्ती तारों के आकृतिका व प्रकाश वर्गका होत हुए उन ७ ऋषियों के क्रांति के निकट में पहुंचगया है। यही कृत्तिका का ऋषिपत्नियोंके रूपको धारण करना है। किन्तु आगे लिखा है कि यह कृत्तिका अरुंधतिके दिव्यरूप को पहुँच न सकीथी यानी वसिष्ठ [अरुंधति] की क्रांति तक यह उत्तरमें पहुंची नहीं थी. इससे ज्ञातहोता है कि सप्तर्षिपुंजके ७ तारों की क्रांति के अंदर उस समयमें कृतिका पहुंचगईथी। सिर्फ वसिष्ठ [अरुंधति] की क्रांति से नीची रह गईथी।

विधान ९४

भारत में आगे कृतिका का विवाह अग्नि के साथ हुआ ऐसा कहा है। अर्थात् '**पत्निनों यज्ञ संयोगे**' अग्नि के साथ कृत्तिका एक कालावच्छेदमें पूर्व पश्चिम दिक्सूत्ररूप = सम मंडलकी वेदीमें आने लग गई थी। सिर्फ ८३ कलाके अन्तरसे दोनोंकी क्रांति समान होगई थी। इसमें ऋषि पत्नियों का अभिलाष अग्नि ने किया व कृतिका ने ऋषि पत्नियों का रूप धारण कर अग्नि की अभिलाषा पूर्ण की है। इस कथन से सप्तर्षि पुंज की क्रांति के अंतर्गत कृत्तिका तो पहुँच गई थी और अग्नि की क्रांति उससे कुछ कम थी। अतः इससे निम्न लिखित बातें निश्चित होती हैं। (१) ऋषियों के सात तारों में से दक्षिण क्रांति के तारों को लांघकर कृत्तिका अरुंधति = वसिष्ठके क्रांतिसे कुछ अंश दक्षिणमें रहनी चाहिये, (२) कृत्तिका से अग्नि की क्रांति कुछ कम होते हुए भी यह दोनों एक कालावच्छेद में सम मंडल में आना चाहिये। और (३) पहिले अग्नि की क्रांति कृतिका से अधिक हो कर बाद में कृत्तिका से कम हो जाना चाहिये। ऐसे यह तीन मुद्दे (प्रश्न) निश्चित होते हैं। सो यह जिस काल में हल होते हों वही इस घटना का काल है। इस का निर्णय करने के लिये कोष्टक (नं १) देखिये उसके (अ) काल में यह बातें बिलकुल ही मिलती नहीं हैं। तथा (ब)काल में भी पूर्ण रूप से मिलती नहीं हैं। सिर्फ एक (क) काल में ही पूर्ण रीति से मिलती हैं। उस विभाग को यहाँ उद्धत करके बताता हूँ।

प्रमेय और तारों के नाम तथा क्रांति के अंश कला और निर्णय के कारण :-

सप्तर्षिपुंजमें (वसिष्ठ) अरुंधतिकी क्रांति = ३९ ३९ सप्तर्षिपुंजके क्रांतिकी उत्तर मर्यादा
सममंडलमें आनेवाली कृत्तिका का = ३४ ५७ ऋषियोंकी क्रांतिके अंतर्गत ऋषिपत्निरूप
सप्तर्षिपुंजमें आरंभिक क्रांतिवाले मरीचिकी= ३४ ९ सप्तर्षि पुंजके क्रांति की दक्षिण मर्यादा
सम मंडल में आने वाले अग्नि तारे की = ३३ ३४ क्रांतिपुंजके बाहिर दक्षिणके तरफ निकट में अतः ऋषिपत्निकी प्राप्ती नहीं हुई केवल अभिलाष निश्चित होता है।

इस तरह उक्त तीनो प्रश्न इसी (क) काल में हल होते हैं। इससे भी यह घटना (क) कालीन ही निश्चित होती है।

विधान ९५.

भारत में आगे इसी कथा भाग को और भी बढा दिया है। जैसा कि :-
" तस्मिन् कुंडे प्रतिपदि कामिन्या स्वाहया तदा " तत्स्कन्नं तेजसातत्र संवृत्तं जनय त्सुतम् " (अ. २२५ श्लो. १६) अथैनमभज लोकः स्कंदं. (२२५।३१) तस्य षष्ठी महा तिथिः [२२९।५३] " अर्थात् " विवाह हुआ तब कृत्तिका ने अग्नि के तेज को प्रतिपदा के दिन धारण करते ही आपने उसे उत्तर के (दूर के आकाश गंगा के) छठे कुंड में फेक दिया। तब उसी तेज का स्कंद नामक पुत्र हुआ। इसका बढाव द्वितीया से ५ तिथि तक बढते हुए षष्ठी को पूर्ण हुआ, अतः छठा कुंड व षष्ठी तिथि के कारण शुक्ल पक्ष की षष्ठी स्कंद की महा तिथि कहाती है. यहां क्रांति वृत्त से उत्तर शर ६ अंश की एक तिथि इस हिसाब से (१५ × ६ = ९०) उत्तर कदंब तक १५ तिथि होती हैं। तब कृत्तिका व अग्निका शर + ४ तथा ५ अंश होनेसे यह प्रतिपदा तिथिमें आते हैं और स्कंदका शर + ३४ अंश होने से वह षष्ठी तिथि में आता है। ज्योतिः शास्त्रिय ग्रंथों में १। ६ तिथि की देवता अग्नि व स्कंद ही माने गये हैं। आगे दिया हुआ कोष्टक नंबर ३ देखिये कृत्तिका भोग ३६·२ अंश के तुल्य ही ययातिका भोग ३६·२ अंश होनेसे तथा इस कथा भागके पूर्वापर संबंध को और तारों के नामोंके अर्थ प्राप्ति को देखने से निश्चित हो जाता है कि नकशे में प्रसिद्ध ययाति पुंज को ही यहां स्कंद नाम से कहा है। क्यों कि आगे लिखे प्रकार स्कंदोपाख्यान के लक्षण, स्वरूप व सान्निध्य आदि सब ययाति पुंज से ही पूर्णतया घटित होते हैं।

जैसाकि :— " (अ) **लोहिताभ्रे सुमहति भाति सूर्यइवोदितः ॥ [२२९।२०], षट्शिरा द्विगुणश्रोत्रोद्वादशाक्षिभुजक्रमः ॥ एकग्रीवैकजठरः कुमारः समपद्यत. [२२७।१७-१८] (आ) रुद्र सूनुंततः प्राहुर्गुहम् (२२९।२९), गंगा सुतंच [२३२।२९], शक्तिमुद्यम्य (२२६।३५), महिषस्य शिरो हरत् (२३१।९७), (इ) कुक्कट श्चाग्निना दत्तस्तस्य केतु रलंकृतः ॥ रथे समुच्छ्रितो भाति कालाग्नि रिव लोहितः (२३०-३३, (ई) सप्तमं मारुत स्कंधं रक्ष नित्य मतंद्रितः (२३१।५५) (उ) समीपे भद्रशाखश्च भवच्छाग मुखस्तदा. [२२८।३] [ऊ] पताका कार्तिकेयस्य विशाखस्य च लोहिता [२३१।१९] [ए] शतक्रतुश्चाभिषिच्य स्कंदं सेनापतिं तदा ॥ सस्मार तां देवसेनां यासातेन विमोक्षिता ॥ अजाते त्वयि निर्दिष्टा तव पत्नी स्वयंभुवा ॥ गृहाण दक्षिणं देव्याः पाणिना पद्मवर्चसा. [२२९।४४-४८] ."**

अर्थात् :— ' [अ] आकाश के इस स्थलमें " लुब्धक * रोहिणी आर्द्रा व ब्रह्महृदय+यह सब लालरंग के तारे हैं। और ययाती पुंज के निकट की आकाश गंगा के

---

* लुब्धक [मृग व्याध] प्राचीनकालमें लाल रंगका था वह अब हरेरंग का होगया है। + ब्रह्म हृदय पहले लाल रंग का था वह अब नीले रंग का होगया है। [नक्षत्र विज्ञान पृष्ठ ३२ देखो] A देवयानी पुंजमें तारोंका जत्था [समूह] दीर्घवर्तुल सेनाके तुल्य झुंड में लंबी लाइन एक दिखजाती है [आकाश सौंदर्य पृ. ११५ चित्र ८४ देखो.]

अंतर्गत बहुत से तारे भी लाल रंगके हैं । इसलिये लाल रंगके अभ्र (बादल) रूप आकाश गंगामें स्कंद बडा देदीप्यमान दिखता है, ऐसा कहा है । इसके सिर में ६ तारे हैं कान आंख भुजा व चरणोंमें १२।१२ तारेहैं। कंठ व पेटमें १।१ तारा है ऐसा होनेसे मनो इसका (ऐसे अवयवों का) स्वरूप ही हो ऐसा यह (अब भी) प्रत्यक्ष दिखता है । नकशे में देखिये ययाति पुंज इसी वर्णन के तुल्य है । (आ) इसकी आकृति रुद्र (भूतप Bootes)के तुल्य होने से इसे 'रुद्र सूनु' (रुद्रका अवतार), आकाश गंगाके अंदर होनेसे 'गुह' (नौका चलाने वाला), व गंगा सुतभी इसे कहते हैं । इसके दाहिने हाथ में शक्ति (आयुध) और बाएं हाथमें महिष का सिर ढालके तुल्य है, एवं इस महिष की दोनों आंखें Rho Persei Bita Persei अलगोल नामक रूप विकारी तारोंकी कम ज्यादह चमकती हुई आंखें कही गई हैं। (इ) अग्नि का दिया हुआ कुक्कुट Camelus (करभयुंज व शर्मिष्ठा पुंज) इसके रथ के उपर ध्वजा में लाल रंग का शोभित दिखता है । (ई) इन्द्र ने इसे वायु (आकाश) के ७ वें (स्तर = विभाग) में स्थापित करके कहा कि (अतंद्रित) सदा दृश्य रहते हुए इस (इंद्र के) स्थान की रक्षा करो । (ऊ) इसने अपने तुल्य रूप वाला एक भद्रशाख नामका पुरुष निर्माण किया कि जिसके गोद में बकरा है । और उसके मुंह में लाल रंग का बडा तारा चमकता है । (ऊ) इस कार्तिकेय (कृतिका का पुत्र) व विशाख के ऊपर पताका रूप बडे तारे ४ चमकते हैं, व विशाख की पताका लाल रंग की है । (ए)इंद्रने स्कंद को देव सेना के पति के स्थान में बैठाकर इसका अभिषेक किया, और देवसेना Andromeda. (देवयानी पुंज) यह पहिले बंधी हुई दिखती थी सो स्कंद के काल में मुक्त दिखने लगी थी; सो इंद्र ने उसका उल्लेख करके कहा कि ब्रह्मा ने आपके प्रदुर्भाव के पहिले ही कह दिया था कि यह आपकी पत्नी होगी । अतः अब आप इस देव सेना का दहिना हाथ ग्रहण करो । यानी स्कंदने देवसेना को वामांग में कर लिया व विवाह किया अब इनकी जोडी आकाशमें बहुत शोभायमान दिखने लगी है ।" इत्यादि कहा है । [सारथीपुंज = भद्रशाख]

विधान ९६

इस लेखको आगे दिये हुये नकशा नंबर ३ से, एवं इस नामके आकाशीय प्रसिद्ध चित्रों से मिलाकर या प्रत्यक्ष देखेंगे तो आपको स्पष्टतापूर्वक माल्रुम होजायगा कि यह कार्तिकेय स्कंदका वर्णन कृत्तिकासे उत्तर में वर्ती रहने वाले ययाति पुंजक ही संबंधका है और देवयानी पुंजमें तारों का लंबा जत्था तारों की सेना के तुल्य होनेसे देवयानी को देव सेना के नामसे कहा है । तथा और भी इस संबंध के तारों के आकाशीय स्थान उस काल में कैसे क्या थे सो [शुद्ध सूक्ष्म गणितागत मान] माल्रुम होने के लिये कोष्टक नंबर ३ द्वारा स्पष्ट करके बताता हूँ ।

कोष्टक नं. ३= 'स्कंद कालीन आकाश की स्थिति दर्शक गणितांक'

माधवी (मिझार) देवसेना (देवयानी) कुक्कुट (शर्मिष्ठा) स्कंद (ययाति) विशाख (सारथी-ब्रह्महृदय) गालब का तारा भूतप पुंज और गरुड पुंज आदि के परिमाण.

तारकापुजों के वेध सिद्ध परिमाण.			शुद्ध नाक्षत्र		अयनांश ३०६१° = −५३।५१ शतभिषक आरंभ काल में						
महाभारत में लिखे हुए तारका पुंजों क.	नक्षत्र विज्ञान में लिखे हुए. तारका पुंजों के.	नाटिकल में लिखे प्रकाश वर्ग.	चित्रा तारे को क्रांति वृत्त के ठीक मध्यमें मानकर कदंब सूत्रीय.		स्कंद कालीन सायन भोग.	प्रो. हर्षल सारणी से श. पू. २३१२२ वर्ष (अ) रवि प. क्रांति २४।०		प्रो. लॉव्हेरिअर प्रोक्त चक्रगति से श. पू. २३१२२ वर्ष (ब) र प क्रां. २६।४५		प्रो. लॉव्हेरिअर प्रोक्त चक्रगति से श. पू ५४६९८ वर्ष (क) र. प. क्रां. ३०।५५	
नाम	नाम.	दीप्तिवर्ग	भोग.	शर.	भोग.	विषुवांश	क्रांति	विषुवांश	क्रांति	विषुवांश	क्रांति
कृत्तिका	ईटाटारी	२·९६	३६° ९'	+४° २'	९०° ०'	९०° ०'	+२८° २'	९०° ०'	+३०° ४७	९०° ०'	+३४° ५७'
माधवी	मिझार	२·३७	६ ०	२६ ३५	५९ २१	४९ २६	४६ २०	४७ २७	४८ २४	४४ ०	५१ २२
देवसेना	देवयानी	२·२५	१७ ४७	३४ ४४	७१ ३८	६३ १३	५६ १४	५९ ३०	५९ १८	५६ ४	६२ ४९
कुक्कुट	शर्मिष्ठा	३·४४	२० ७	४८ ४८	७३ ५८	५६ १६	७० ७४	५१ १५	७३ ६	४० ४४	७६ ७
ययातिकाशिर	[ग] पार्शियम	३·०८	३६ ११	३४ २२	९० २	९० २	५८ २२	९० २	६१ ७	९० २	६५ १७
,, मध्य	(अ) ,,	१·९०	३८ ५५	३० १६	९२ ४६	९५ ५	५४ १४	९४ २२	५६ ५८	९४ ५६	६१ ८
,, चरण	[ड] ,,	३·१०	४० ५९	२७ १७	९४ ४८	९६ ४९	५१ १०	९७ १५	५३ ५४	९८ ५	५८ २
माहिष	अलगोल	रूपांतकारी	३२ २०	२२ २६	८६ ११	....	४६ २६	....	४९ ११	....	५३ २१
विशाख	ब्रह्म हृदय	०·२१	५८ १	२२ ५२	१११ ५२	११८ ५०	४४ ३९	१२० १४	४७ ३	१२२ ४३	५० २८
गालव	(ब) सारथी	२·०७	६६ ५	२१ ३१	११९ ५६	१२९ २०	४१ ३२	१२९ ५६	४३ ४०	१३२ ४०	४६ ४८
इंद्र [मरुत्वान]	भूतप १	३·००	१७३ ४९	४९ ३३	२२७ ४०	२४१ ५३	३३ १०	२४६ ३४	३० ३९	२४७ २८	२६ ४९
,,	२	२·६३	१८० २५	५४ ९	२३४ १६	२३९ ४२	३० ९	२४० २८	२७ ३८	२४१ २६	२३ ५९
,,	३	३·५४	१८९ १८	४८ ५७	२४३ ९	२५० ३६	२६ ४७	२५१ २	२४ ११	२५१ ३५	२० १४
श्रवण	आल्टेर	०·८९	२७७ ५५	२९ १८	३३१ ४६	३२३ ८	१६ ११	३२२ ३२	१४ ३३	३२१ ४६	१२ ०
गरुड	लां. एकिलवर	३·५५	२६३ ३४	१८ १४	३१७ २५	३१४ २३	१ २४	३१४ २२	−० ३५	३१४ २८	−३ ३३

[......] अलगोल तारे की क्रांति कुछ स्थूल है वास्ते उसके विषुवांश लिखे नहीं हैं.

उक्त कोष्टक एवं विधानोक्त क्रांतिद्वारा देखनेवालेके स्थलके अक्षांश और उसका काल ज्ञात होसकता है। और उसके लिये दो प्रश्न खडे होते हैं :— (१) कृत्तिका के उत्तर गगन से स्कंदित होनेके समय में जब कि प्रस्तुत स्कंदकी घटना कहीगई है इसलिये इस समय के कृत्तिका की क्रांति का घटना शुरू होना और खस्वस्तिक से दक्षिण तर्फ उसके च्युत होनेका आरंभ होना चाहिये, तथा [२] स्कंद की आकृति पूर्णतया वायु के सातवें सदा दृश्य स्कंध (ब्रह्म पद स्थान पर यानी) इंद्र पद में पहुँच जाना चाहिये। ऐसे यह दोनों प्रश्न कोष्टक नं. ३ के अ, ब और क पंक्तियों के अंदर लिखी क्रांति द्वारा (निम्नलिखित न्यास के अनुसार) हल होते हैं।

भारत में का स्थल (अक्षांश) और कालदर्शक न्यास.

कोष्टक नं. ३ में लिखे हुए काल मान.	अ		ब		क	
कृत्तिका की तत्कालीन क्रांति........९०- क्रांति=	२८°	२'	३०°	४७'	३४°	५७'
लंबांश=सदा दृश्य इंद्रपद.	६१	५८	५९	१३	५५	३
स्कंद की सदा अदृश्य और सदा दृश्य क्रांति	सदा अदृश्य		सदा अदृश्य		सदा दृश्य	
स्कंदशिर (Gamma Persei ग्यामा पर्शियम)	५८	२२	६७	७	६५	१७
देवसेना (Andromeda देवयानी पुंज)	५६	१४	५९	१८	६२	४९
स्कंद मध्य (Alpha Persei आल्फा पर्शियम)	५४	१४	५६	५८	६१	८
स्कंद चरण (Delta Persei डेल्टा पर्शियम)	५१	१०	५३	५४	५८	२

विधान ९७

उक्त घटना से स्थल और (अ ब क) काल का निर्णय इस प्रकार होता है (१) यदि हम थोडे समय के लिये मान लेवें कि उक्त घटना को देखने वाले ऋषियोंके स्थल के अक्षांश ३४° । ५७'से उत्तर में है या ध्रुव प्रदेश में है; तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि यहां कृत्तिका को खस्वास्तिक से अच्युत कहते हुए आगे वह च्युत (स्कंदित) होगई बताई गई है। सो अक्षांश उत्तर में बढने से कृत्तिका च्युत समझी जायगी और स्कंदके सदा दृश्य के साथ और तारे सदा दृश्य में जाने से प्रमाण कथन की संगति बिगड जायगी। इससे अक्षांश ३४ । ५७ के निकट में ही प्रेक्षक का स्थल होना चाहिये (२) यदि अक्षांश ३४ । ५७ के अंदर अक्षांश २८ । २ का स्थल मानते हैं तो स्कंद का आद्यंत भाग (५१° । १०' से ५८° । २२') सदा दृश्य (६१° । ५८') से कम रह जाता है इससे (अ) कालम का स्थल व काल ग्राह्य नहीं हो सकता, यदि अक्षांश ३० । ४७ मानते हैं तो भी स्कंद का मध्यान्त भाग (५६ । ५८

से ९३ । ५४तक) सदा दृश्य (५९° । १३′) से कम रह जाता है स्कंद पत्नीरूप देवसेना पुंज भी सदा दृश्य में आता नहीं है । इससे [ब] कालम का स्थल व काल भी ग्राह्य नहीं हो सक । किंतु अत्र अक्षांश ३४ । ५७ को लीजिये स्कंद का आद्यंत भाग [६५° । १७' से ५८° । २] सदा दृश्य [५५° । ३'] के ऊपर होते हुए उसकी पत्नी देवसेना पुंज भी स्कंद के तुल्य कृति वाली सदा दृश्य भाग (स्वर्ग)में स्थित है एवं यह दोनों अतंद्रित पदपर आरूढ हो जाते हैं इससे सिद्ध हो जाता है कि स्कंद घटना को देखने वाले ऋषियों का स्थल ३४°।५७' = ३५°अक्षांश क प्रदेश में था। क्यौंकि (क) कालम की क्रांति द्वारा यह सब घटना पूर्णतया मिलती है वास्ते इसका (क) काल जोकि शकपूर्व ५४६९८ वर्ष का था. और यह परम क्रांति प्रो. हानसेन की सारणी के तुल्य चक्र गति साधित होने से प. क्रांति की चक्रगति सिद्ध होती है। और प्रस्तुत घटना के द्रष्टा ऋषियों का स्थल भारतवर्ष के अक्षांश ३४° ५७' के प्रदेश में था । ऐसा निश्चित होता है ।

विधान ९८

इस प्रकार विधान ७३–९७ के अन्दर बताए हुए **खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के** प्रतिपादन से पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि ज्यो० केतकर व ज्यो० दीक्षित का कहा हुआ अर्थ व काल गलत है और सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों में कही हुई रवि परम क्रांति २४ अंश की सदा स्थिर प्राय किंवा प्रो० हर्शल साहब के कथनानुसार २२–२४ अंश में आंदोलन गति की क्रांति न होकर चक्रगति वाली है । क्योंकि उतनी क्रांति माने बिना २७ नक्षत्रों में एक कृत्तिका की अधिक क्रांति, मरीचि सप्तर्षि को लांघ जाना अरुंधति से कम रहना और स्कंदके संबंधकी क्रांतियां आसकती नहीं हैं। न वसंत संपातव फाल्गुन से महीने का मेल मिलता है । तथा अभिजित् की निज गति से भी वही काल व क्रांति निश्चित होती है । हां यह मैं स्वीकार करताहूँ कि **प्रो० हानसेन कृत 'चन्द्रकोष्टक ग्रन्थ'** के आधार से शाके १८०० में (ज्यो० केतकर के ज्योतिर्गणित पृष्ठ ८४ में) कही हुई **(रवि परम क्रांति=२३°।२७'। १८".५–०".४७६ वर्षगति)** के चक्रगति की अपेक्षा–प्रो० हर्शल साहब ने ग्रहों के प्रकृत्यंश, मंदकर्ण, एवं मध्यम गति के आधार पर आकर्षण शास्त्रीय पद्धति से जो क्रांति की आंदोलन गति कही है सो–सूक्ष्म होना चाहिये और अधिक से अधिक २४ या २४॥ से क्रांति ऊपर नहीं होनी चाहिये किंतु प्रो० लीव्हेरीअर सारणी से क्रांति शकपूर्व ५३१५३ वर्ष में २९ अंश १९ कलामित र. प. क्रांति थी ऐसा म. म. ज्यो० पं. सुधाकर द्विवेदी ने दिग्मीमांसा पुस्तक (पृ. ३२) में लिख दिया है । वहां लिखा है कि:– " **अथ यदि युरोपीय विदुषां वेधेन श्रोणायाः कदंब प्रोतीयः शरः सदा स्थिरः प्राक्साधितः** २९°।१९' **उत्तरो गृह्यते तदा एतत्समं परम क्रांतिमानं "लेवरियर" सारणीतः** २९°।१९'=२३।२७।३१.८३+०.४७५९४ **का**–०.०००००१४९ **का**²। **वर्ग समीकरण विधिना, मानं कालस्य सन् १८९० ईसवीतः पूर्व वर्षात्मकं = ९३१५३.५"। अर्थात् 'श्रवण नक्षत्र के शर २९°।१९' के तुल्य रवि परम**

क्रांति बताने के उद्देश्य से प्रो० लवर साहेब के कोष्टक के आधार से शक १८५० में '२३°।२७'।३१".८३--०.४७५९४ वर्षगति व कालांतर संस्कार +०".००००० १४९ वर्ष गति२' द्वारा शकपूर्व ५३१५३.५ वर्षमें २९°।१९' प. क्रांति' साधन करके बताई है। यद्यपि उक्तगति हानसेन की कई गति के तुल्य ही है किंतु इसमें जो कालान्तर संस्कार कहा है उसके द्वारा शकपूर्व-१५७९११.४ वर्ष में र. परम क्रांति ३४°।०'।४५.०" पर्यंत जाकर उधर घटने लगती है। अर्थात् वर्तमान क्रांति से १०°।३३'।२६.५" बढ़ बाद घटने लगने से उधर के काल में पुनः पूर्व स्थिति पर आजाती है। और इससे चाहे इसकी २१।२२ अंश की आंदोलन गति भी मान सकते हैं। तब मेरा बताया हुआ काल भी उक्त वर्षों से करीबन पंधरासौ वर्ष अधिक हैं तथा इस सारणी से ५।७ कला कम कृत्तिका की क्रांति भी पूर्वोक्त क्रांति के तुल्य ही आती है। इसलिये मैं कह सकता हूं कि प्रो० हानसेन के ही क्या प्रो० लीव्हेरियर सारणी से भी वही क्रांति आती है। और कोष्टक में भी इनका ही नाम मैंने लिखा है अतएव मेरा किया हुआ गणित व काल दो आधुनिक विद्वानों के गणिताधार से शुद्ध व ग्राह्य है। इतनाही नहीं तो आज से ५६ हजार वर्ष पूर्व के सूक्ष्म गणितागतमानों को पौराणिक कथा भाग से मिलाकर बताते हुए एक " **खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के सिद्धान्तों को** " निश्चित कर देना और आगे इसी पद्धति से लाखों वर्षों के इतिहास को परिशोधित कर देना इस विषय के ऊपर संसार के विद्वान लोग अवश्यमेव ध्यान देंगे. क्योंकि वह कालावधि गणित के महत्व को जानते हैं।

विधान ९९

तथापि सर्व साधारण विद्वान लोगों को ज्ञात होने के लिये ज्योतिःशास्त्र में कालावधि गणित का कितना महत्व है एवं ग्रहगति के सूक्ष्म मानों को निश्चय करने में उसका कितना उपयोग होते आया है सो मैं बताना चाहता हूं उसमें भी पहले मैं पाश्चात्य देश के ही कुछ उदाहरण देता हूं:-

(१) **टालेमी** [इ. स. १४०] नामक इजिप्त देश के ज्योतिर्विद ने **अलमाजेस्त** ग्रंथ में बाबिलोन शहर के [खाल्डियन लोगों के देखे हुए] तीन चंद्रग्रहणों का उल्लेख *

* " (१) ता. १९ मार्च इ. पू. ७२० वर्ष में स्पर्श सायंकाल के ७।३० मध्य में हुआ. (२) ता. ८ मार्च इ. पू. ७१९ ग्रहण मध्य मध्य रात्री में ग्रास ३ अंगुल. और (३) ता. १ सितंबर इ. पू. ७१९ ग्रहण मध्यरात्री में ८।३० ग्रास ६ अंगुल उत्तर पारिस से बाबिलोन के पूर्व रेखांतर २ घंटा ४२ मिनिट हैं।" इत्यादि एस. व्हिंस आदि के Theary of Astronomy By Rev. R. main, J. Hymers and Rev. S. Vince--ग्रंथों में लिखा है.

किया है। हानसेन आदि पाश्चात्य ज्योतिर्विदों को चंद्र की मध्यम गति निश्चित करने में इन (ग्रहणों) का विशेष उपयोग हुआ है। (२) ग्रीक ज्योतिषी हिपार्कस ने ईसा के पूर्व १२८ वर्ष में वेध लेकर चित्रा का १७४ अंश और मघा का ११९°।५०' सायन भोग निश्चित किया था। उससे सांप्रत के अयनांश और अयनगति के निश्चय करने में इनका विशेष उपयोग हुआ है। वस्तुतः अत्यंत प्राचीन काल से ही वसु = [वसंत संपात] के नापने में " चित्रामघा रायईशे वसूनाम् " [ऋ. सं. ७।७५।५] चित्रा = राजा और मघा प्रधान के तुल्य मानी गई हैं। तथा (३) पिकार्क नामक फ्रेंच ज्योतिषी ने इ. स. १६६९ में सूर्य और प्रश्वा Proeyon तारेका अंतर नाप रखा था; इसके आगे ७६ वर्ष के बाद दूसरे लाकेल नामक ज्योतिषी ने इ. स. १७४५ में सूर्य का प्रश्वा तारे से उक्त समानांतर का नाप किया था; तब इससे नाक्षत्र सौर वर्ष के परिमाण निश्चय करने में विशेष सहायता मिली है। इत्यादि बातों से आपको मालूम हो जायगा कि आज के सूक्ष्म परिमाणों से सेकडों हजारों वर्ष पूर्व में चाहे कुछ स्थूल क्यों न हो दोनों घटनाओं के परिमाणों का अंतर हमें ज्ञात हो जाने से उसमें गत वर्षों का भाग देने पर वह परिमाण अत्यंत सूक्ष्म हो जाते हैं। इसीलिये ज्योतिः शास्त्र में दीर्घ कालावधि प्रोक्त परिमाणों का [बातों का] बहुत ही महत्व है। ऐसी बातें जहां और दो चार सूक्ष्म गतियों द्वारा उसी काल में वे ही निश्चित हो जांय तो उसका विश्वास, मान्यत्व अबाधित सिद्ध हो जाता है।

विधान १००

उपर्युक्त कालावधि प्रोक्त ज्योतिष की घटनाओं को लिखकर रखने के सिर्फ थोडे ही उपयोग को देखकर कई विद्वान इस विषय में भारतियों पर दोष लगाते हैं और आक्षेप करते हैं कि:-" प्राचीन खाल्डियन व ग्रीक लोगों ने जैसे अपने ज्योतिष के वेधों को लिखकर सुरक्षित रखे हैं, और उनकी ज्योतिष व ऐतिहासिक बातें आज भी हमें इष्टका कृति के लेखों में या ग्रंथ व निबंध आदि में उपलब्ध होती हैं; वैसी भारत के ज्योतिर्विदों ने रखी नहीं हैं। भारतीय ज्योतिष ग्रंथ सब जगह सिद्ध (तयार) अंकों से भरे हुए हैं। किंतु वह कौन काल में कितने वर्षों के वेधों पर से कैसे बनाए गए हैं। इन बातों का उल्लेख उनमें नहीं है। केवल प्राचीन अपौरुषेय कहकर मान्यता दी गई है। उनमें सिर्फ शाके ४२१ के अर्वाचीन ग्रंथकारों के ही कहे परिमाण कुछ सूक्ष्म है। और यह लिखे हुए मिलते भी हैं। जैसे कि आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, केशव और गणेश दैवज्ञ आदि ने सूर्य चंद्रग्रहण और गुरु शुक्र के अस्तोदय एवं ग्रहों के क्षेपकादि परिमाण लिख रखे हैं तथा सिद्धान्त सम्राट, सार्वभौम व यंत्रराज आदि ग्रंथों में तत्कालीन तारों के भोगशर, नगरों के अक्षांस व, रेखांश एवं परमक्रांति आदि मान वेधसिद्ध रीति से संग्रहीत कर रखे

हैं। लेकिन इस प्रकार प्राचीनों ने लिखे नहीं हैं। इतना ही नहीं तो कई पाश्चात्य विद्याविशारद विद्वान यहांतक कहते हैं कि नक्षत्रों के नाम चीनियों के पास से और राशियों के नाम ग्रीक [खाल्डियन] लोगों के पास से भारतियों ने सीखे हैं इत्यादि २।" लेकिन ऐसे आक्षेप व्यर्थ हैं। क्योंकि अभीतक भारतियों का तत्वज्ञान वस्तुतः ठीक ठीक बताया ही गया नहीं है। इसलिये ज्योतिःशास्त्रीय लेखों के संबंध में ऐसा संदेह होना स्वाभाविक ही है। परंतु जिस प्रकार इन दो तीन हजार वर्षों में पाश्चात्य देशीय शोधों से जितनी ज्योतिःशास्त्र की उन्नति हुई है। उससे कई गुनी महत्व की व कई वर्षों पूर्व से भारतियों के शोधों द्वारा यथानुक्रम उन्नति होते आई है। और वही तत्वज्ञान संसार में सर्वत्र फैला है। इस विषय का स्पष्टीकरण प्रस्तुत रिपोर्ट (पृ. ७२-९३ कलम ३२-९१, १०६-१३०) में किया गया है। और उसका काल कितना प्राचीन है यह भी बताया गया है।

विधान १०१

वस्तुतः इस देश में ज्योतिष का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से प्रगट हुआ है और आज तक वृद्धिंगत होते आया है। जैसेः—स्थूलमान के ज्ञान से सूक्ष्म परिमाणों को उपयोग में लाना, अल्प कालिक भगणादि के निश्चय से दीर्घ कालिक भगणादिकों को निश्चित करते जाना, कठिन व दीर्घ प्रयत्न साध्य प्रयोग एवं यंत्रों के स्थान में सुगम, स्वल्पांतरिक प्रयोग व यंत्रों को करना तथा उपयोग में लाना, शुद्ध परिमाणों को प्रचार में लाकर उसे चिरस्थायी करने का प्रयत्न करना। इत्यादि तात्विक बातों का जैसे अन्य देशों में इतिहास मिलता है। उससे कई वर्षों पूर्व भारत के कुल प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध होता है। इस विषय का दिग्दर्शन मैंने वेदकाल निर्णय में किया है। (वे. नि. पृष्ठ १२५ देखिये) शक पूर्व ६३४२ वर्ष में यहां उज्जयनी में पुलिशाचार्य ज्योतिषी ने पौलिश सिद्धान्त नामक ग्रंथ बनाया है। (पृ. १४०) उसमें उज्जैन से काशी व यवनपुर के रेखांश लिखे हैं। सूक्ष्ममान से उज्जैन काशी के रेखांश मिलते हैं। तब उस काल का यवनपुर पूर्व कालीन बाईजंटियम् (वैजयंतिम्) किंवा ऐंटि ऑफ नगर के भी पूर्व काल में बसा था अब वहां कान्स्टांडिनोपल शहर बस गया है क्योंकि वहां के रेखांश ठीक ठीक मिलते है। इससे इतने प्राचीन काल में भी वहां से भारत का परिचय बना हुआ था। पुलिशाचार्यने के समय "पुनर्वसु" के (पोलक्स=पौलस्त्य) तारेपर अयनसंपातकीस्थिति थी (पृ. १२०), रोमक सिद्धान्तोक्त सायनमानसे चैत्र शुद्ध १५ को चित्रा नक्षत्र के स्थान में सायन पुनर्वसु नक्षत्र होता है। और चित्रा संपात के काल से आज ६८९५ वर्ष बीत चुके है" ऐसा इस ग्रंथ में (तत्कालीन ऐतिहासिक बातें) स्पष्टता पूर्वक कहा हैं। तथा द्विगुण चरखंडों के उल्लेख से रवि परम क्रांति की स्थिति २४°। ३०' पर बताई है। इनके पहले कर्कोपाध्याय हुए हैं जिन्होंने श्रौतसूत्रभाष्य में चित्रा तारे पर वसंत संपात का उल्लेख किया है। उससे उनका काल शक पूर्व १३२०० वर्ष का निश्चित किया गया

है–(वे. पू. १७-३२), पारस्कर गृह्यसूत्र और महाभारत में अयनसंपातकी स्थिति मार्गशीर्ष मास में बताई है। इत्यादि से उनका काल शक पूर्व १९ हजार वर्ष का सिद्ध किया है (वे. पू. ३३-६३ और चिरंजीव गोपीनाथ चुलेट कृत युगपरिवर्तन पृष्ठ ९१ देखिये), वेदांग ज्योतिष में अयनसंपात की स्थिति धनिष्ठा (एवं माघ महीने) के आरंभ में कही है। उससे उसका काल शक पूर्व २१ हजार वर्ष का है–(वे. पू. १५३-२३५), श्रौत सूत्र ग्रंथ ११३१ हैं। इन सबका निर्माण श. पू. ५४-२१ हजार वर्षों में हुआ है। (वे. पू. २३८-३९) *, ब्राह्मण ग्रंथ करीबन २००० के ऊपर हैं। उनका काल आज से १९०-५४ हजार वर्षोंका है। इनमें से एक शतपथ ब्राह्मण का काल उक्त विधान (७३-९७) में करीबन ५० प्रमाणों की एक वाक्यता करके खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति द्वारा शक पूर्व ९४६९८ वर्ष का सिद्ध किया गया है।

विधान १०२

ब्राह्मण ग्रंथ काल के पूर्व वेद संहिता काल है। वेद मंत्रों में पद्यात्मक को ऋग्वेद, गद्यपद्यात्मक को यजुर्वेद, गानात्मक को सामवेद, अर्थवान् को अथर्वणवेद कहते हैं। इस भेद से अनेक संहिताएं प्रसिद्ध हैं। इनमें हजारों ऋषियों के कहे हुए सूक्त हैं। जोकि तत्कालीन ऋषियों ने ज्योतिः पुंजों के संबंध की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंको कथाका रूप देकर कहीं हैं। और भारत आदि पुराण ग्रंथकारों ने उसे और भी स्पष्ट करके सुसंगतरीति से लिखी हैं। इस संहिता काल की पूर्व मर्यादा उक्त खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति के अन्वेषण के अनुसार अभी ३ लाख वर्ष के पूर्व काल तक पहुंच सकी है। आगे और भी सुदूर पूर्व जासकती है। " इस प्रकार केवल ज्योतिः शास्त्र का ही नहीं; मानवविज्ञान का सूर्योदय भारतवर्ष में ही हुआ है। और आगे मैं सिद्ध करके बताने वाला हूं कि " अन्य सब देशों में यहीं का वैदिक ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता और धर्म फैल गया है। बहुत काल होने से लोग उसके भाव को व वास्तविकता को भूल गए हैं। किंतु अब इस खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से अन्यान्य धर्म ग्रंथों के प्राचीन कथा भाग का अन्वेषण करने पर उसका मूल अर्थ फिर से ज्ञात हो सकता है। और हमें ज्ञात हो जायगा कि सारी मानव जाति (के धर्म) का मूल स्थान भारतवर्ष ही था। मुझे तो यहां तक विश्वास है कि इस ऐतिहासिक पद्धति को समझ कर तत्ववेत्ता लोग जब प्राचीन कथानकों का इतिहास लिखना शुरू करेंगे तब आज जो इतिहास काल की और इतिहास के पूर्व कालकी मर्यादा इस के पहले १-२ हजार और ४-६ हजार वर्षों की मानी जाती है वह ३ लाख तथा ३॥ लाख वर्ष पूर्व की माने जावेगी। इस प्रकार इतिहास में बडी क्रांति होकर लाखों वर्ष का मानवेतिहास तयार हो जायगा।

---

* इन्हीं श्रौत सूत्र ग्रंथों में से 'एक कर्मान्त सूत्र का काल आज से ५३ हजार वर्ष का था ' ऐसा ज्यो. म. म. सुधाकर द्विवेदी ने अपने दिग्मीमांसा ग्रंथ में बताया है।

विधान १०३

अभीतक संसार के विद्वानों के मत से ' सारी मानव जाति का मूलस्थान उत्तर ध्रुव प्रदेश में था ' । ऐसा माना जाता है । डॉ. वारन (पाश्चात्य पंडित) ने 'नंदनवनोपलब्धि' नामक पुस्तक में और लोकमान्य टिळक (भारतीय पंडित) ने ' आर्क्टि होम दि वेदाज ' नामक पुस्तक में इसी बातको पुष्ट किया है । तथापि आगे ' वेदोंका निर्माण कहां हुआ ' इसके संबंध में लोकमान्य टिळक के सन्मुख नीचे लिखे प्रकार के दो प्रश्न खडे हुए थे कि:- (१) यदि उत्तरीय ध्रुव प्रदेश में वेदोंका निर्माण होना कहता हूं तो वेदोंमें:- कुरु, पांचाल, कोसल, विदेहादि देशोंका; गंगा, सिन्धु, सरस्वती व यमुना आदि अनेक नदियोंका, हिमालय, विंध्यादि पर्वतोंका और विनशन, नैमिषारण्य, अंतर्वेदी आदि प्रदेशों का-" अनेक जगह उल्लेख मिलता है। सो सब भारत वर्ष में ही उपलब्ध होता है । सो यह नाम ध्रुव प्रदेश में कैसे आ सकते हैं ! और (२) यदि भारतवर्ष में ही वेदों का निमार्ण होना कहता हूं तो वेदों में:-" तीस ३० दिन के सतत अहोरात्र का, दीर्घकालीन संधि प्रकाश का, और उसी के अनुसार (अतिशीत गिरने के कारण उस काल के उपयोगी) किये जाने वाले अतिरात्र आदि यज्ञों का एवं मंडलाकर घूमने वाले ज्योतियों का " उल्लेख मिलता है सो सब उत्तर ध्रुव प्रदेश में ही उपलब्ध होता है । सो यह ज्योतिः संबंधीय आधिभौतिक वैशिष्ट्य की बातें भारतवर्ष में कैसे कही जा सकती हैं ? । " इस तरह इन दोनों जटिल प्रश्नों को हल नहीं कर सके हैं । किंतु दोनों को मिला देने का प्रयत्न किया गया है, और वह इस तरह से है ।

विधान १०४

लो. टिळक ने उक्त पुस्तक में कहा है कि:-" वैदिक आर्यों का मूल वसतिस्थान ध्रुव प्रदेश के निकट में था । लेकिन आगे वहां हिमपात अधिक होने से वहां का जल वायु खराब हो गया इससे वहां के निवासी आर्यन् लोग ईसा के ९ । ६ हजार वर्ष पूर्व के काल में उस (ध्रुव) स्थान को त्याग कर अन्यान्य देशों में चले आए है । उनमें से कई मध्य एशिया में रहते हुए दो चार सौ वर्षों में भरतखंड में आगए हैं । और यहां बसाहत करके स्थिर रूप से रहने लगे तब उन्होंने यहीं पर ईसा के पूर्व ४५००-४००० वर्षों में वेदों का निर्माण किया है । किंतु उन्हें उत्तर ध्रुव प्रदेश के ज्योतिष की व तदनुसार प्राकृतिक लक्षणों की स्मृति बनी हुई थी इसीलिये वेद में उस स्थिति का व कई महीनों तक किये जाने वाले ' अतिरात्र ' आदि यज्ञों का उल्लेख किया गया है । इसी कथन को पुष्ट करते हुए रा. रा. विष्णु हरि वडेर पंडित ने " स्वर्गलोक व स्वर्गाप्रत सदेह गमन " नामक लेख (विविध ज्ञान विस्तार सितंबर १९२१) में कहा है कि :—

" My attention was however directed more & more to passages containing traces of an Arctic calendar and an Arctic Home and I have been gradually led to infer therefrom that at about 5000 or 6000 B. C. the Vedic Aryans had settled on the plains of Central Asia and that at the time the traditions about the existance of the Arctic Home and its destruction by snow and ice, as well as about the Arctic Origin of the Vedic Deities were definitely known to the bards of these races. " " These quotations are quite sufficient to convince any one that at the time when great Epic was composed Indian writers had a tolerably accurate knowledge of the meteor logical and astronomical characterestics of the North Pole & this knowledge cannot be supposed to have been acquired by mere mathematical calculations. The reference to the lustre of the mountain is specially interesting, in as much as, in all probability it is a description of the Auroira Borealis visible at the North Pole." Arctic Home in the vedas p. p. 69—70. अर्थात् " महाभारत के रचना काल में आर्यन ग्रंथकारों को उत्तर ध्रुव प्रदेश में दिखनेवाला ज्योतिष और वहां के आधिभौतिक वैशिष्य का ज्ञान उत्तम प्रकार का था। और वह ज्ञान ऋषियों ने केवल गणित की सहायता से शोध में लाये ऐसा हम कह नहीं सकते। और पर्वत के अंग के तेज का वर्णन तो विशेष करके अलंकारिक होने के कारण वहां से दिखनेवाले विशिष्ट प्रकाश के संबंध का ही बहुत करके होना चाहिये। इससे भारतीय आर्य लोग उत्तर ध्रुव प्रदेश को ही स्वर्गलोक मानते थे। " (१) ययाति, [२] अर्जुन, (३) पांडु, (४) सगर, (५) खट्वांग, (६) मुचकुंद, (७) त्रिशुंक (८) हरिश्चंद्र [९] रैवत-कंकुद्मी, (१०) पुरंजय, (११) ऋतुध्वज, [१२] नहुष, (१३) लोमश (१४) इला-सुद्युम्न, (१५) उर्वशी-पुरूरवा, [१६] युधिष्ठिर, [१७] दुष्यन्त शकुंतला (१८) नल-दमयन्ती आदि भारतीय लोग सदेह स्वर्ग लोकको गए थे और वापसभी आगएथे ऐसा पौराणिक वर्णन उपलब्ध होताहै. " इसतरह विस्तार पूर्वक लिखाहै।

विधान १०५

परन्तु पूर्वोक्त मुख्य प्रश्नों को हलकिये विना इसतरह मिलाने से कोई अर्थ निकल नहीं सकताहै। क्योंकि इसमें सतत अहोरात्र, दीर्घ संधि प्रकाश, अति शीतातप काल और ज्योतियों के मंडलाकार घूमने की ऐसी बातें हैं कि वह मध्य एशियामें दोचारसौवर्ष रहे बाद यानी १०।२० पीढियां होनेपरभी वह प्रत्यक्ष देखनेके तुल्य यथास्थित कहीं नहीं जा सकती? और अति शीत के प्रतिकारके लिये किये जाने वाले अतिरात्र आदि यज्ञोंका

करना यहां [भारत में] कदाचितभी संभवता नहीं है । यदिकहें कि ध्रुवप्रदेशमें कुछवेद बनें हैं और भारत में वह पूर्ण हुए हैं । इस तरह दोनो जगह मिलकर वेद बनेहैं तौभी जबकि वेदोंमें ऐसे दोनो जगह वेद बनाए गए ऐसा उल्लेख नहीं है । और ऐसा होता तो दो चार सौ वर्ष के मार्ग में भी पूरी स्वस्थता नहींभी होती तोभी इतने वर्षों में जब कभी मिली हो तब वेदोंका कुछतोभी निर्माण होना शुरू रहना चाहिये था । तथा उत्तर ध्रुव प्रदेश के हिमपात का, वहां के तथा मार्ग के अनेक नदी पर्वतादिकों का वर्णन कहीं तो भी थोडा बहुत आना चाहिये था किंतु ऐसा वर्णन कहीं भी आया नहीं है । और यदि ऐसा होता तो लोकमान्यादि को उक्त कोटीक्रम लगाने की भी कोई आवश्यकता नहीं थी । इसलिये जबकि वेदों में ऐसे उल्लेख नहीं है तब दोनों जगह वेद बने हैं यह कथन भी निराधार अतएव अयुक्त निश्चित होजाता है ।

विधान १०६

तथा उत्तर ध्रुव प्रदेश में पहले बस्ती थी बाद में वहां हिम प्रलय शुरू होने के कारण वह उजड होगई यह कथन भी निराधार और असंभवित है क्योंकि " अत्यंत शीतातप का होना " यह प्रश्न ज्योतिः शास्त्र से हल हो सकता है । इसके संबंध में आर्टिक होम दि वेदाज के प्रथम प्रकरण में आकृति देकर लोकमान्य ने उसके कुछ तत्वों को समझाये भी हैं । तथा मराठी वेद काल निर्णय (पृ. ३०) की टिप्पणी में भी उसका दिग्दर्शन कराया गया है । उसका संक्षिप्त वास्तविक अर्थ ये है कि ' सायन मकर व कर्क संक्रमण के समय यदि रवि के उच्च नीच स्थान जिन वर्षों में एक होते हों उन वर्षों में शीत उष्ण काल के समय सूर्य से पृथ्वी अपनी मध्यम कक्षा से करीबन १६ लाख माइल दूर में तथा निकट में होजाती है । इससे नीचोच्चजनित पृथ्वी पर सूर्य की उष्णता के कम ज्यादा के समय ही दक्षिणोत्तर गोल में सूर्य की स्थिती द्वारा उष्णता का कम ज्यादा होना एक होजाने से उस काल में पृथ्वी पर अत्यंत शीतातप का होना स्वाभाविक बात है । क्योंकि इस समय दोनों परिमाणों के अंतरांश शून्य के निकट में होजाने से दोनों परिमाण मिलकर एक ही कार्य करते हैं । तब शीतोष्णमान जोरदार हो जाते हैं । और जब अंतरांश ९० अंश होते हैं तब मध्यम स्थिति एवं १८० अंश पर स्वल्प स्थिति होजाती है । इसकी तुलना वर्तमान स्थिति से कर सकते हैं । शाके १८०० में सायन मकर संक्रांति २४७.९°– रवि उच्च ७८°.७ = अंतरांश १६९°.२ होने से शीतातप की स्वल्प स्थिति है । ऐसा होते हुए भी वर्तमान में ध्रुव प्रदेश इतना ठंडा है कि इस वैमानिक युग में भी वहां कई गएहुए पुरुषोंमेंसे कोई वहां ठहर न सका है । अर्थात् बर्फ से आच्छादित उस प्रदेश में आज भी कोई रह सकता नहीं है । ऐसा वह मनुष्यों के निवास के लिये अयोग्य है । तब शक पूर्व ४२०० वर्ष में तो रव्युच्च ५०.९°— सायन मकर संक्रांति ३३०.५=अंतरांश ८८.५ थे । सो वर्तमान से

उसकी तुलना को देखते आज से उस समय डेढी निकृष्ट स्थिति होनी चाहिये । यदि कहें कि उसके पूर्व काल में अच्छी होगी सो भी नहीं है । क्योंकि शक पूर्व ९५०९ वर्ष में तो दोनों परिमाणों के अंतरांश शून्य होने से वर्तमान से उसकी तुलना को देखते आज से उस समय द्विगुण निकृष्ट स्थिति निश्चित होती है । ऐसी निकृष्ट स्थिति में वहां मनुष्यों का मूलस्थान होना कोई भी शास्त्रीय आधार से सिद्ध होता नहीं है । फिर महाभारत के रचना काल तक भार्यन् ग्रन्थकारों को ध्रुव स्थान से दिखने वाला ज्योतिष तथा ध्रुव स्थान का अधिभौतिक विशिष्ट ज्ञान वह बिना देखे भाले व सुने यहां आर्यों को कैसे हो सकता है । कदापि नहीं । इसलिये उक्त दोनों प्रश्नों को जोड़ने वाला यह कोटि क्रम व्यर्थ है । यानी उक्त दोनों प्रश्न खड़े ही रहते हैं ।

विधान १०७

यदि कहूं कि " फिर सदेह स्वर्ग में जाकर आनेवाले:-ययाति अर्जुन आदिके १८ नाम जो ऊपर बताए गए हैं । व उनके संबंध में भारत आदिके अनेक प्रमाण बताए गए हैं सो वैसी घटनाएं क्या हुई नहीं हैं ? क्या यह कथाएं ऐतिहासिक न होकर कल्पना तरंग मात्र हैं । इन प्रश्नों के उत्तर में मैं कह सकता हूं कि:—उक्त घटनाएं भूमिपर न होकर आकाश में हुई हैं । तत्कालीन ऋषियों ने उनको आकाश में (सेकड़ों वर्षों तक) प्रत्यक्ष देखकर ज्योतिषके हिसाबसे यथास्थित लिख रखी हैं । जोकि आज हमें कविता के रूपमें उपलब्ध होती हैं सो सब खगोलीय ऐतिहासिक हैं । क्योंकि इन कथाओं के संबंध की कुलबातें ज्योतिः शास्त्रीय सूक्ष्म गणित द्वारा कालक्रम बद्ध निश्चित होती हैं । अतएव विश्वसनीय एवं सत्य है । तब यहां पृथ्वीपर के उत्तर ध्रुव प्रदेश वाला ययाति आदि उक्त १८ पुरुषों का सदेह स्वर्ग में गमन न होकर उन २ नाम से प्रसिद्ध तारों के पुंजोंका अकाशके उत्तर ध्रुव प्रदेश रूप स्वर्गका गमन है । और वह सांगोपांगरीतिसे सप्रमाण सिद्ध होजाता है । फिर वहां आकाश में हिमपातके कोटी क्रम लगाने की और शीतोष्ण कम ज्यादा होने के करणोंको ढूंढनेकी; आवश्यकता ही रहती नहीं है । लेकिन उस कथा भागकी प्रत्येक बातको खगोली सूक्ष्मगणितद्वारा निश्चितकर उसकी एक वाक्यता से इस घटनाको देखने वालोंका स्थल और काल आदिका निर्णय करने की आवश्यकता रहती है । अन्यथा विना इस निर्णय के इसका ऐतिहासिकत्वही सिद्ध होता नहीं है । इसलिये इस सिधान्त को निश्चय करने के लिये एक ययाति का उदाहरण ही पर्याप्त समझकर उसे यहां उधृत करताहूं । क्योंकि विधान १०४ में कहे हुए सदेह स्वर्गगमन करने वालों के १८ नामोंमें पहिला ययाति का ही नाम दर्शाया गया है दूसरा कारण ये है कि (विधान ९३-९७ में कहे हुए) स्कंद काल के एक अयन चक्र के पूर्व काल में इसी स्कंद पुंज को ययाति नाम से कहते थे इसलिये इस उदाहरण द्वारा दोनों

कालों की तुलना उत्तम प्रकार से होते हुए अनेक प्रमाणों की एक वाक्यता द्वारा कालानुक्रम बद्ध इसकी ऐतिहासिकता भी सिद्ध होजाती है।

विधान १०८

महाभारत उद्योग पर्व में ययाति के संबंध का निम्नलिखित वर्णन है। इससे यह स्वर्ग में कैसा गया, कितने वर्ष रहा और वहां से लौट आनेपर क्या हुआ इत्यादि तात्विक बातें निश्चित होने से इस कथा भाग का ऐतिहासिकत्व तथा घटना का वास्तविक अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जसा कि:– " **विश्वामित्रस्तु शिष्यस्य गालवस्य तपस्विनः ॥ अनुज्ञातो मया वत्स यथेष्टं गच्छ गालव ॥ × ॥ इत्युक्तः प्रत्युवाचेदं गालवो मुनिसत्तमम्. [अध्याय १०६ श्लोक १९–२०] दक्षिणाः काः प्रयच्छामि भवते गुरु कर्मणि ॥ २१ ॥ असकृद्गच्छ गच्छेति। किं ददानीति बहुशः ॥ २५ ॥ एकतः शामकर्णानां हयानां चंद्र वर्चसां ॥ अष्टौ शतानि मे देहि गच्छ गालव माचिरम् ॥ २७ ॥** " अर्थः– " गालव ऋषि विश्वमित्र का शिष्य होकर कई वर्ष तक रहा है। गमन करते समय, 'गुरु दक्षिणा क्या देऊं,' ऐसा गालाव के पूछने पर 'जबकि तुमारे पास कुछ (दक्षिणा) देने को नहीं है, फिर मैं आपसे दक्षिणा कैसे मांग सकता हूं। इसलिये बिना दक्षिणा दिये ही तुम जासकते हो।' 'नहीं गुरुवर्य मैं किसी से मांग कर दक्षिणा दे सकता हूं।' ऐसे गालव के बहुत आग्रह करने पर विश्वामित्र ने कहा ठीक है। 'देते ही हो तो चंद्र प्रभा वाले एकतः शाम कर्ण ८०० अश्व मुझे दक्षिणा में देने चाहिये।' तथास्तु कह के गालव चले गए। "

भावार्थ :–इस कथन में आएहुएतारका पुजोंका परिचय व भावार्थ मालूम होने के लिये विधान ९६ के कोष्टक नंबर ३ में स्कंद=ययाति का एक रूप होने से इसके तथा इसके संबंध के तारों के पुनः स्वर्गारोहण स्थिति के विषुवांश क्रांति आदि व स्थल के अक्षांश लिख दिये हैं। तथा आगे कोष्टक नंबर ४ में ययाति की स्वर्ग से पतन की स्थिति के तारों के परिमाण लिख दिये हैं। इनसे तथा दिये हुए नक्शों से आप (पाठक वृंद) घटना के तारकापुंजोंसे परिचित हो जांयगे। तथा ययाति Perseus गालव Bita Auriga यह पुंज (तारे) इसी नाम से आकाशीय नकशों में लिखे जाते हैं। (नक्षत्र विज्ञान नकशा नं. ३।४।५ देखो) यद्यपि नकशों में नरतुरंग Cantarus. के स्वास्तिक Bita Crubis भाग के एक तारे का नाम विश्वामित्र B. Crux लिखा है। तथापि इसके नाम के यौगिक अर्थ से=विश्वा=विशाखा और मित्र=अनुराधा नक्षत्रों में जिनकी व्याप्ति हो वह पुंज नरतुरंग Centaurus ही विश्वामित्र का पूर्ण रूप है। इसकी योग तारा मात्र (व स्वस्तिक) को विश्वामित्र लिखा है सो ठीक ही है। विश्वामित्र का तारा दीप्तिमान (प्रति १·५० का) है, और गालव की दीप्ति उससे कुछ कम (प्रति २.०७ की.)

है। दोनों का रूप, तेजसा दृश्य होते हुए यह दोनों तारे आकाश गंगा के दक्षिणोत्तर तर्फ के मोड वाले तट पर स्थित हैं। अक्षांश ३५ के स्थल से देखने वालों ने इनका एक कालावच्छेद में सम मंडल में आने का दृश्य देखने से इनका गुरु शिष्यत्व का नाता बताया गया है। किंतु ऐसी स्थिति किन वर्षों से आरंभ हुई कितने वर्षों तक यह सम मंडल में आते रहे हैं। ऐसा मैंने गणित करके बताया नहीं है। सिर्फ ययाति के स्वर्ग से पतन के समय इन दोनों की क्रांति दक्षिण हो जाने से यह सम मंडल में आते नहीं थे। उस काल की स्थिति मात्र यहां कोष्टक ४ में बताई है।

विधान १०९

"अथाह गालवं दीनं सुपर्णः पततांवरः (११४-१) निर्मितं वह्निना भूमौ वायुना शोधितं तथा ॥ यस्माद्धिरण्यं सर्वहि हिरण्यं तेन चोच्यते ॥ २ ॥ नित्यं प्रोष्ठ-पदाभ्यांच शुक्रे धनपतौतथा ॥ मनुष्येभ्यः समादत्ते शुक्रश्चित्तार्जितं धनम् ॥ ३ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यैरक्षते धनदेनच ॥ ऋतेच धनमश्वानां नावाप्तिर्विद्यते तव ॥ ४ ॥"
अर्थः-जब गालव से गरुड मिले तब उन्होंने गुरु दक्षिणा के संबंध में सलाह दी और कहा कि-"अग्नि ने पृथ्वी में जिसका निर्माण किया और जिसके शुद्ध रूप को वायु ने बनाया इसलिये सब लोग हेमन्तऋतु के वस्तु जात मात्र को हिरण्य (सुवर्ण) कहते हैं। यह नित्य ही दोनों प्रोष्ठपदाओं के (पूर्वा भाद्रपदा के २ और उत्तरा भाद्रपदा के २ ऐसे) चारों तारों से शुक्रे = उच्चैश्रवा पुंज में तथा धनपतौ = धनिष्ठा पुंज में चित्तार्जित (चिति से संग्रह किये) धन को शुक्र = उच्चैश्रवा लेकर मनुष्यों (विशाखा अनुराधा पुंज के विभागों) को देता है। इस समय उक्त धन अजैकपान् (पूर्वा भाद्रपदा) अहिर्बुध्न्य (उ. भाद्रपदा) और धनद = कुबेर के तारों से सुरक्षित हो रहा है। इसलिये धन मिलने के उक्त काल के आए बिना तुम्हें अश्वों का धन मिल नहीं सकता है। अर्थात् इस काल में उच्चैश्रवा व अश्व पुंज के निकट के ४ तारों की क्रांति नरतुंग = अश्वकेनिकट केचारों (तदा क्रांतितुल्य) तारों की क्रान्ति के समान नहीं हो सकती है।"

विधान ११०

"ययातिर्नाम राजर्षिर्नाहुषः ॥ तंप्रत्युपस्थितौ (११४-९) ययातिः सर्वकाशीश इदंवचनमब्रवीत् (११९-२) 'एषा' 'चतुर्णां वंशानां स्थापयित्री सुताम्म ॥ ११ ॥ सभवान् प्रतिगृह्णातु ममैतां मधवीं सुताम् ॥ १४ ॥ प्रतिगृह्यचतां कन्यां गालवः सह पक्षिणा ॥ पुनर्दक्षावइत्युक्त्वा प्रतस्थे सह कन्यया ॥ १५ ॥ ततो (१) हर्यश्वतो वसुमना-दानपतिः, (२) दिवोदासात्प्रतर्दनः- शूरः, (३) औशीनरात्शिबिः- सत्यधर्मरतः,

कोष्टक नं. ४

यथाति के स्वर्ग से पतन कालीन क्रांति आदि परिमाण

तारोंके वेधसिद्ध परिमाण					अयनांश २२८।५५ मघा नक्षत्र (भुक्त ४० घ., ८ पल) काल में						
महाभारत में लिखे हुए तारों के-	नक्षत्र विज्ञान के नकशे में लिखे हुए	प्रकाश परिमाण	शुद्ध नाक्षत्र परिमाण के (निरयण)		तत्कालीन सायन मानसे	प्रो. हर्शल सारणी व अर्वाचीन ग्रंथोक्त क्रांति से. श. पू. ४०२६७ वर्ष (अ) रवि परम क्रांति २४°।०'		प्रो. लौव्हेरिअर टे बुलमें लिखी गति से श. पू. ४०२६७ वर्ष [ब] रवि परम क्रांति २८°।४७'		प्रो. हान से नकों कही गति युक्त श. पू. ७५०९४ वर्ष [क] रवि परम क्रांति ३३°।२३'	
नाम	नाम	दीप्ति	भोग	शर	भोग	विषुवांश	क्रांति	विषुवांश	क्रांति	विषुवांश	क्रांति
ययाति शिर	G. Perseus ग. पर्शिअस	३. ०८	३६ ११	+ ३४ । २२	२६७ १६	२६७ १३	+१०।२३	२६७ ४४	+ ५।३७	२६७ ४५	− १।१
ययाति मध्य	A. Perseus अ. पर्शिअस	१. ९०	३८ ५५	३० । १६	२७० ०	२७० ०	+ ६।१६	२७० ०	+ १।२९	२७० ०	− ३।७
ययाति चरण	D. Perseus डे. पर्शिअस	२. १०	४० ५७	२७ । १७	२७२ २	२७१ ४१	+ ३।१८	२७१ ४८	− १।२९	२७१ ४८	− ६।४
देवयानि (पुंज)	Andromeda	२. २५	१७ ४७	३४ । ४४	२४८ ५२	२५२ २२	+ १।१२	२५२ ३७	+ ७।२९	२५२ ४५	+ ३।५
माधवी पुंज)	मिझार Pegasus	२. ३७	६ ०	२६ । ३५	२३७ ५	२४० ४४	+ ५।५६	२४० ५४	+ १।४६	२४० ५४	− २।१६
गालव नामक तारा	Bita Auriga	२. ० ७	६६ ५	२१ । ३१	२९७ १०	२९५ ८	− ०।५	२९५ १३	− ४।२५	२९५ २६	− ८।३५

(क)	पू. भा.	अ.	२. ५७	३३० ४२	१९ । १४	२०१ ४७	२०७ २३	+ ९।७	२०७ ५९	+ ६।५३	२०८ २४ + ७।४३
[illegible] तारे (ख)	पू. भा.	ब.	२. ६१	३३५ ३४	३१ । ८	२०६ ३९	२१६ १५	+ १८।२६	२१७ २५	+ १५।३०	२१८ २० + ११।४५
(ग)	उ. भा.	अ.	२. १५	३४५ १९	१२ । ३६	२१६ २४	२१८ ११	− २।९	२१७ ५६	− ५।८	२१७ ३२ + ७।५१
(घ)	उत्तरा भा.	ग.	२. ८७	३५० २८	२५ । ४१	२२१ ३३	२२७ १३	+ ६।४५	२२७ ३०	+ ३।१४	२२७ ३५ − ०।९
मरुत्वान् १	भूतप	१	३. ००	१७३ ४९	४९ । ३३	४४ ५४	१३ ४९	+ ६१।५०	४ २१	+ ६२।३४	४ ३२ + ६२।३३
इन्द्र ,, २	भूतप	२	३. ६३	१८० २५	५४ । ९	५१ ३०	१३ ४३	+ ६९।५८	१ ४७	+ ६८।३६	३५० ९ + ६८।१७
,, ,, ३	भूतप	३	३. ५४	१८९ १८	+ ४८ । ५७	६० २३	३३ ३१	+ ६७।६	२२ ५७	+ ६९।२२	१० ४८ + ७०।४३
विश्वामित्र	(ब.) स्वस्तिक		१. ५७	१९७ ४९	− ४८ । ३८	६८ ५४	७४ ४१	− २५।४७	७५ १३	− २१।१०	७५ ३७ − १६।४२
धनिष्ठा	Alpha-Delphini		३. ८६	२९३ ३३	+ ३३ । २२	१६४ ३८	१८१ २०	+ ३६।३	१८४ ४८	+ ३५।४७	१८८ ४ + ३५।१६
कुबेर	Delta Aquarius		२. ९८	२९९ ४८	− ३ । ४८	१७० ५३	१७० ८	+ ०।१३	१७० १०	+ १।२	१७० १८ + १।४९
गरुड	लांब्डा एक्विलक्स		३. ५५	२६३ २४	+ १८ । १४	१३४ ३९	१४३ ४३	+ ३४।६	१४६ ३१	+ ३६।५१	१४९ ३४ + ३९।३७
(	Sota centauri		२. ९१	१८९ १९	− २६ । ०	६० २४	६३ ३३	− ४।४४	६३ ३९	− ०।२८	६३ ३६ + ३।४०
[illegible] तारे (	Mu centauri		३. २	१९७ ३७	− २८ । ५८	६८ ४२	७१ २१	− ६।२२	७१ २७	− १।५०	७१ २७ + २।३२
(	Theta centauri		२. २६	१९८ २९	− २२ । ४	६९ ३४	७१ ७	+ ०।३४	७१ २	+ ५।६	७० ५१ + ९।२६
(	Eta centauri		२. ६५	२०६ २५	− २५ । ३०	७७ ३०	७८ ५७	− २।०	७८ ५६	+ २।४२	७८ ५२ + ७।१३

(४) विश्वामित्राच्च अष्टकः यज्वा । एवं माधव्याश्चत्वारः पुत्रा अजायन्त । " विश्वामित्रः सुतं तंच अश्वैस्तैः (८००) समयोजयत् (११९·१९) कौशिकोऽपि वनंययौ. (१२०१) माधवी×वरं वृतवती वनम् ॥ ९-६ ॥ उपवासैः × आत्मनोलघुतां कृत्वा बभूव मृगचारिणी ॥७॥ श्रवंतीनांच पुण्यानां × पिबंति वारि मुख्यानि शीतानि विमलानिच ॥९॥ चरंती हरिणैः सार्धं मृगीव वनचारिणी ॥ १०-११ ॥ " अर्थः—" गालव को साथ लेकर गरुड प्रतिष्ठान नगर (कुरुक्षेत्र के उत्तर में २५ अक्षांस के प्रदेश) में ययाति के यहां गए और गालव के लिये दक्षिणा की प्रार्थना की; तब ययाति बोले कि मेरे पास अश्व तो नहीं हैं । किंतु चार वंशों को स्थापन करने वाली माधवी Pegasva [की मुख्य तारा मिरा है सो] मेरी लडकी को आप ले जाकर विवाह दो तो इसके चार संतान के बदले में आपको ८०० अश्व मिल जायंगे । सो तुम गुरु को दक्षिणा दे देना ॥ १४ ॥ ठीक है फिर मिलूंगा कहकर माधवी को साथ लेकर गालव और गरुड चले गये ॥ १९ ॥ दौसो दौसो अश्व में एक एक संतान ऐसे चार ठिकाने माधवी को विवाही तब इसको (१) हर्यश्व से वसुमना नामक पुत्र बडा दानी हुआ, (२) काशी के राजा दिवोदास से प्रतर्दन-शूर पुत्र हुआ । (३) औशीनर से शिबि सत्य वचनी हुआ, और (४) विश्वामित्र से अष्टक पुत्र बडा याज्ञिक हुआ। माधवी को इस प्रकार चार पुत्र हुए । इनके बदले में लिये हुए ८०० अश्व विश्वामित्र को दे दिये । इसने अपने माधवी के पुत्र अष्टक के पास उक्त अश्व रखकर आप बन में चले गए। माधवी भी तप करने के लिये बन में चली गई। वहां उपवासों को करने से दुर्बल होगई। और मृगों के साथ विचरने लगी। पवित्र नदी के स्रोतों का ठंडा निर्मल पानी पीती हुई हरिणादिकों के साथ भ्रमण करने लगी। " इस कथा का भावार्थः-आगे दियें हुए ययाति के स्वर्ग से पतन कालीन नकशों में एवं कोष्टक नंबर ४ में ययाति गालव, गरुड विश्वामित्र=नरतुरंग माधवी=मिरा, देवयानी पुंज और विश्वामित्रादि चार तारों की चतुरस्राकृति वालों के पुत्र माधवी के निकट के पूर्वोत्तरा भाद्रपदाके चारों तारों को देखने से तथा सरट Sacerta जंबुक Vulpus पुंजों के हारिण, धनिष्ठा को धन समझने से ग्रंथोक्त का आशय स्पष्ट हो जाता है । इन पुंजों के गणितागत अंकोकी तुलना कोष्टक नं. ४ द्वारा कर सकते हैं ।

विधान १११

" ययातिरपि × बहु वर्ष सहस्रायु र्युयुजे काल धर्मणा (१२० । १२) महर्षि कल्पो नृपतिः × ययातिः स्वर्गमास्थितः ॥ १४ ॥ बहु वर्ष सहस्राख्ये काले बहु गुणे गते ॥ अवमेने नरान्सवान् देवानृषिगणांस्तथा ॥ २२ ॥ पतेयं सत्स्विति वचस्त्रिरुक्त्वा नहुषात्मजः (१२१ । ८) नैमिषे पार्थिवर्षभान् ॥ चतुरोऽपश्यत नृपस्तेषां मध्ये पपातह ॥ प्रतर्दनो वसुमनाः शिबिरौशी नरोऽष्टकः ॥ १० ॥ वाजपेयेन यज्ञेन तर्पयंति सुरेश्वरम् ॥

तेषामध्वरजं धूमं स्वर्गद्वारमुपस्थितम् ॥ ११ ॥ भूमौ स्वर्गेच संबद्धा नदीं धूममयीमिव ॥ गंगा गामिव गच्छन्तीमालंब्य जगती पतिः ॥ १२ ॥ पपात मध्ये राजर्षिर्ययातिः पुण्य संक्षये ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नेव कालेतु मृगचर्याक्रमागताम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धनि तान्पुत्रां-स्तापसी वाक्यमब्रवीत् ॥ दौहित्रास्तव राजेन्द्र ममपुत्रा न तेपर: ॥ २३ ॥ इमे त्वां तारयिष्यंति दृष्टमेतत् पुरातने ॥ २४ ॥ मया ह्युपचितो धर्म स्ततोऽर्ध प्रतिगृह्यताम् ॥ ततस्ते पार्थिवाः सर्वे शिरसा जननीं तदा ॥ २६ ॥ अभिवाद्य नमस्कृत्य मातामहमथा-ब्रुवन् ॥ २७ ॥ अथ तस्मादुपगतो गालवोऽप्याह पार्थिवम् ॥ तपसे मेष्ट भागेन स्वर्गमा-रोहतां भवान् ॥ २८ ॥ समारुरोह नृपतिरस्पृशन् वसुधा तलम् ॥ (१२२ । १) न पृथ्वी-मस्पृशत्पदा ॥ २ ॥ दान, औदार्य, अनृत, यज्ञानुष्ठानफलानि चतुर्भिर्दौहित्रैर्दत्तानि तदा) यथा यथाहि जल्पन्ति दौहित्रास्तं नराधिपम् ॥ तथा तथा वसुमतिं त्यक्त्वा राजा दिवं ययौ ॥ १५ ॥ अभिवृष्टश्च वर्षेण × जज्वाल परयाश्रिया. (१२३ । १—३)

भारत उद्योग पर्व ।

अर्थः—" ययाति की कई हजार वर्ष की आयु होने बाद में वह काल धर्म के योग से स्वर्गको जाते हुए पहले महर्षि लोक में गए व बाद में स्वर्ग लोक में पहुंच गए। वहां बहुत हजारों वर्षोंतक रहे अंतमें जब इनका पुण्यक्षीण होगया तब इन्हें गर्व आगया तो मानव, देवता, व ऋषियोंका (उच्चपदारूढ होनेसे) यह अपमान करने लगे। इस समय इंद्रकी आज्ञासे इनका पतन होना शुरू हुआ। इनकी क्रांति घटने लगी। यह देख ययाति तीन बार बोले कि; 'मेरा पतन सज्जनों में हो' इस लिये नैमिषारण्यमें ययाति (के तीनूं तारों) का पतन हुआ, उस समय माधवी के—प्रतर्दन, वसुमना, शिबि और अष्टक नामके—चारों पुत्र देवेश्वर को प्रसन्न करने के लिये वाजपेय यज्ञ कर रहे थे। इस यज्ञका धूआं स्वर्गद्वार तक पहुंच जानेसे ऐसा दिखता था कि; मानों भूमि से स्वर्ग पर्यंत देदीप्यमान धूएंकी नदी बांधी गई हो। और वह दोनों ओरसे लौटती हुई दिखने से मानों आकाशकी गंगा पृथ्वीपर बहती हुई आ रही है। इसका आश्रय लेकर ययाति राजा (पुण्य क्षीण होनेसे) धीरे धीरे पृथ्वी पर आगए। तब वहां मृग चर्याके क्रमसे माधवी भी आगई है। उसने अपने पुत्रों के मस्तकों का स्पर्श किया। और वह तपस्वी के वेशमें बोली कि:— पिताजी मेरे यह चारों पुत्र आपके दौहित्र हैं सो पुत्रों के ही तुल्य हैं। प्राचीन इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि यह आपको तारेंगे। और मैं भी मेरे संचित पुण्य मेंसे आधा अंश आपको देती हूं। यह सुनकर वहांके राजा लोग अपनी माताको शिर नवाकर प्रणाम किये। और मातामह (नाना) को नमस्कार करके आश्वासन देने लगे। उस काल में गालव ऋषि भी वहीं आगए। और ययाति के किये हुए उपकार से उऋण होने के लिये ययाति से बोले कि मेरी तपश्चर्याके आठ भाग से आप स्वर्ग में पधारिये। उस समय ययाति राजा पृथ्वी छोड देता हुआ ऊपरको चढने लगा है। वह इतना ऊपर आगया कि

उसके चरणभी पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते थे तब चारों दौहित्रोंनें इन्हें दान, औदार्य, अनृत (सत्यवचन) व यज्ञोंका फल दिया। जैसे जैसे दौहित्र आपना २ पुण्य अर्पण करते थे वैसे वैसे ययाति पृथ्वी से ऊपर को चढते जातेथे। अन्तमें ययाति पुनः स्वर्ग लोक में चले गए हैं। सो ययाति प्रसन्न होकर प्रति वर्ष जलकी वर्षा का आरंभ करते हैं। और अत्यंत शोभायुक्त देदीप्यमान हो गए हैं।"

भावार्थः—"तारों की क्रांति का बदलना बहुत धीरे धीरे (हजारों वर्षों में) दृष्टिगोचर होता है। इसलिये ययाति की आयु कई हजार वर्षों की तथा स्वर्ग में स्थिति हजारों वर्ष की कही है। आदिपर्व (अ. ८९ श्लो. १६-१८) में तो इंद्रपुरी, प्रजापति (ध्रुव मंडल) लोक और अंतमें नंदन वनसे हजारों वर्षों में ययाति का लौटना लिखा है। क्रांतिका बढावरूपजानारूप पुण्यक्षीण होनेसे व प्रजापति के लोक तक पहुंच जानेसे ययाति को गर्व आगया कहा है। इसी से ययाति का पतन दर्शाया है। विश्वामित्र (नरतुरंग) के निकट के (कोष्टक नंबर ४ में देखिये) 'का खा गा घा' चार राजाओं [विषुव वृत्तीय तारों] के तुल्य आकृतिरूप वाले पूर्वोत्तराभाद्र पदाके 'क, ख, ग, घ' तारे पुत्ररूप थे। यानी वह एकही रेखा में दिखते थे। यह उच्चश्रवा पुंज के अंतर्गत होनेसे **'वाजपेय यज्ञ कर रहे थे'** कहा है। साथ में दिये हुए नकशों को देखने से ज्ञात होगा कि, यहीं से आकाशगंगा, यज्ञकेधुएं के छतके माफक ऊपर को फैली हुई और पूर्व पश्चिम दोनों बगल से दक्षिण के तर्फ लौटती आती हुई दिखती है। इसके पूर्व के तर्फ की आकाश गंगा में ययाति पुंज है। इस समय भाद्रपदमास के संपातकेकालमें यह पुंज विषुव वृत्त के नीचे आजाने से स्वर्ग से आकाश गंगा के अवलंब से ययाति का भूमिपर पतन हुआ कहा है। आदि पर्व [अ. ८८ श्लो. ९] में ययाति की आकृति व स्वरूप **"शक्रार्क विष्णु प्रतिम प्रभावम्"** इंद्र=ज्येष्ठ, रवि=हस्त, विष्णु=श्रवण पुंज के तीन तीन तारों के तुल्य ही ययाति के तीन तारे कहे हैं। जोकि **"पतेयं सत्सु त्रिरूक्त्वा"** के तीनवार के कथन से कोष्टक में उक्त तीनों तारे ययाति के शिर, मध्य व चरण स्थानीय माने है सो युक्त हैं। और यह तीनों तारे विषुवत्वृत्तके नीचे (दक्षिण क्रांति के) हो जानेसे **'सूर्यपथात्पतंतम्' (आदि पर्व ८८-८)** सूर्यपथ = विषुवत्वृत्तसे पतन कहा गया है। साथ दिये हुए नकशेसे और कोष्टक ४ के (क) कालम में लिखी हुई ययाति आदि की क्रांति को देखने से स्पष्ट तया मालूम होता है कि; पूर्वोत्तराभाद्रपदा के चारोंतारों की क्रांति के अंतर्गत ययाति की क्रांति आगई थी। अतएव इन दोहित्रों के बीच ययाति का पतन बताया है। **'मिझार'** नामक तारे को मुख्य मानकर (बाकी) देवयानीपुंजको यहां माधवी = मधु चैत्रमासीय तारका पुंज वाली तथा आडीआकृति होनेके कारण – मृगके तुल्य शिर और बदनकोझुकाकरचलने वाली = मृगचर्यागत कही गई है। इसी के शिर

के नीचे चारों तारे होने से यह अपने पुत्रों के सिर का स्पर्श कर रही है। और वह चारों अपनी माता को सिर से प्रणाम कर रहे हैं। माधवी पुंज का मध्य विषुव वृत्त से आधा अंश नीचे हो गया है वास्ते माधवी पुण्य का आधा भाग पिता को दे रही है। इधर कृतज्ञता पूर्वक गालव भी आ गए हैं। क्योंकि इनकी क्रांति भी ययाति के तुल्य विषुववृत्त से दक्षिण में हो गई है। वह (द. क्रां.) ८ अंश हो जाने से गालव अपने संचित पुण्य के ८ भाग देकर ययाति को विषुवत् वृत्त पर लाने को कह रहा है। माधवी और भाद्रपदा के चारों तारों के सायन भोग अयन की विलोम गति से २७० अंश के तर्फ बढ रहे हैं। अतएव यह दक्षिण के तर्फ जाते हुए और ययाति उत्तर के तर्फ बढते हुए हैं। वास्ते इन्होंने कहा कि:- " नचे देकैकशोराजंल्लोकान्नः प्रतिनंदसि ॥ सर्वे प्रदाय भवते गंतारो नरके वयम् (आदि पर्व ९३·१०) " हमारा पुण्य आपको देकर हम लोग नरक (दक्षिण गोल) में जाने को तैयार हैं। आप स्वर्ग में जाईये ऐसा स्पष्ट कहा है। इस समय ययाति का सायन भोग २७० अंश से आगे धीरे २ बढने लगा है। इसके ३ तारे विषुवत् वृत्त पर आगए तब पृथ्वी को स्पर्श किये बिना यह स्वर्ग में जाने लगे। आगे इसकी उत्तर क्रांति ३५ अंश के ऊपर बढ गई तब (उक्त ययाति के प्रतिष्ठान नगर) उत्तर ३९ अक्षांस के प्रदेश में यह पूर्व पश्चिम रेखा रूप भूभाग को चरण से स्पर्श किये बिना स्वर्ग में चले गए हैं। धीरे २ सतत दृश्यस्थान में प्रजापति के लोकरूप [सायन भोग ९० अंश] पर आरूढ होगए हैं। इससमय ययाति = कृतिका पुंज पर सूर्य आनेसे जलकी वर्षा को वर्षाने लगे हैं। और उत्तर क्रांति पूर्ण होने से परम शोभा को एवं दीप्ति के काल को प्राप्त हुए हैं। " इत्यादि कहा है।

विधान ११२ (काल निर्णय.)

अब जब इस प्रकार के महा भारत के वर्णन में ययाति की आयु और स्वर्ग में स्थिति हजारों वर्षों की संख्या में कही है। तथा गरुड, गालव, माधवी व उसके चारों पुत्र और उच्चैश्रवा पुंज के निकट के अश्वों (तारों) की सादृश्य स्थिति विश्वामित्र [नर तुरंग] के निकट में कथारूप से बताई है। इसके प्रत्येक कथन से स्पष्ट होता है कि; यह वर्णन कोई मानव देह धारी व्यक्ति के संबंध का न होकर प्रसिद्ध नाम धारी तारका पुंजों के खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति का प्रत्यक्ष निदर्शक है। जोकि कोष्टक ३ और ४ में पृथक-पृथक कालीन व क्रांति सारणी के (अ + ब + क) विभागों में लिखे विषुवांस क्रांति आदि परिमाणों में [क] परिमाण से ठीक ठीक मिलते हैं। [अ] तथा [ब] परिमाणों से मिलते नहीं हैं। इस से स्पष्ट होता है कि यहां सब बातें जब कि ज्योतिर्विद हानसेन प्रोक्त परम क्रांति से मिलती हैं तब उसी के अनुसार निर्णय दिया जाता है कि शक पूर्व ८६ हजार

वर्ष में ययाति का पहिला स्वर्गारूढ का काल था। बाद में शकपूर्व ७५०९४ वर्ष में उसका पतन हो गया था। इस काल में गालव और दौहित्रादिकों के उल्लेख (कोष्टक नं. ४ की कालम के काल) से ऊपर बढते हुए ययाति राजा पुनः (दूसरी बार) शक पूर्व ५४१९८ वर्ष में स्वर्गारूढ हुए हैं। परंतु इस समय इनकी क्रांति स्कंदित [कम] हो जाने से दूसरी बार के पतन को ' स्कंदोपाख्यान ' के नाम से कहा है जोकि उपर्युक्त कोष्टक ३ के (क) भाग की परम क्रांति से बिलकुल ठीक २ निश्चित हो जाता है।

विधान ११३ (सिद्धांत निर्णय)

अब जब इस प्रकार विधान १०८ से ११२ तक के खगोलीय प्रत्यक्ष नकशे व ज्योतिः शास्त्रीय कोष्टक आदि साधनों से सप्रमाण निर्णीत होता है कि, " ययाति का सदेह स्वर्ग गमन का वर्णन कोई मानव देहधारी व्यक्ति के संबंध का न होकर दिव्य देहधारी ययाति नाम से प्रसिद्ध तारका पुंज के उपलक्ष का है। अतएव उसका स्वर्ग भी पृथ्वी पर का उत्तर ध्रुव प्रदेश न होकर सदा दृश्य रहने वाला आकाश का उत्तर ध्रुव प्रदेश है इतना ही नहीं तो इस कथा भाग में जितने व्यक्तियों के नाम आए हैं। वह तारका पुंज आकाश में विद्यमान हैं। और अपने २ नाम से अब भी प्रसिद्ध हैं। चाहे उनके शर कितने भी अल्प या दक्षिणोत्तर में हों तो भी घटना के [कोष्टक ३। ४ की 'क' कालम के] समय में उन सबकी क्रांतियां ययाति के समानता में आकर विषुववृत्त से उनकी दूरी (द. क्रांति) भी पुण्य प्रदान के कथन के तुल्य ही सूक्ष्म गणित से अंश साम्य आती है। इस प्रकार यहां बीसों तारों की गणित स्थिति के संबंध के वर्णन की विषुव क्रांति परिमाणों से एक वाक्यता मिल गई है। और यह कितनी सूक्ष्म बात है कि ' जैसे नर तुरंग के चतुरस्र पुंज मे से एक तारे की दक्षिण क्रांति, बाकी ३ की उत्तर क्रांति है। ठीक उसी तरह का दृश्य माधवी के [प्रोष्ठपदा] चतुरस्र पुंज की है। तथा वह भी [आगे दिया नकशा देखिये] भुज कोटि मानों में से एक कर्णरूप हो गई है। सो पिता के निकट के ' एकतः शामकर्ण की ' तुल्यता माता के निकट के ' एकतः शामकर्ण ' से ठीक २ मिल गई है। व ' चंद्रवर्चस ' कथन से यह देदीप्यमान तुला प्रति के तारे हैं। सारांश दोनों पुंज जो अश्व व तुरंग नाम से प्रसिद्ध हैं। उनमें उत्तर शरके तारों की क्रांति दक्षिण शर वाले तारों से ठीकठीक मिलजाने से " एकतः शाम कर्णानां हयानां चंद्र वर्चसां " यह कथन पूर्ण रीति से बराबर मिल गया है। इस प्रकार के प्रामाणिकता व सूक्ष्मता युक्त कथा भाग को देखने से सिद्ध होताहै कि उस वैदिक काल में तुरीय, यष्टि, धरातल, उदक व स्वयंभ्रम यंत्र ही क्या और भी सूक्ष्म दर्शक साधन उन्हें उपलब्ध होगएथे। कि उनके द्वारा ठीकठीक नापकर सब प्रत्यक्ष देखी हुई बातों को मंत्रों के रूप में

संग्रहीत कर लेते थे। ऐसी सैकडों प्रत्यक्ष देखी हुई बातों के स्वरूप को दर्शाकर सर्व साधारण जनतामें इसकी प्रसिद्धि होजाय इसहेतुसे आगेके ऋषियोंने उसको कथाके रूपमें कही हैं। सो सब सत्य हैं। इसीलिये इसमें लिखे हुए स्थल के अक्षांशों से हरएक घटना के कालका अनुक्रम बिलकुल सुसंगत रीतिसे आजभी हमें उपलब्ध होता है। इसी तरह अर्जुन आदिके कथा भागमें कहे वर्ष, इंद्रप्रस्थ हस्तिनापुर (दिल्ली) कुरुक्षेत्रादि के उल्लेख उन २ अक्षांशोंसे ठीक २ मिलते हैं जोकि ऊपर के कथनमें लिखे गएहैं। अतएव इससे ऊपर विधान १०५ में लिखेहुए [यादी लिष्टकेअनुसार] १८ व्यक्ति की ही क्या; संपूर्ण वैदिक, भारत पुराण आदिमें लिखे हुए हजारों चरित्रोंकी; तदंतर्गत लाखों देखने वालों की, लाखों बातोंकी एक कालानुक्रम से सबकी एक वाक्यता होजाती है। तब इसे ऐतिहासिक नहीं ऐसा कौन कहसकता है। हां इतना अवश्य है कि अभी तो इस शैलीका प्रादुर्भाव ही हुवाहै। इसलिये यह सब खगोलीय इतिहास के रूपमें ही कहागया है। किंतु अभी इन घटनाओंके देखने वालोंका उनके वर्णित नगर व देशों में उनके नाम, ग्राम, जाति सभ्यता, नीति, धर्म, व कर्म व्यवहार आदिका पतालगाना बाकी है। ऐसा जब होजायगा तब किंवा ऐसे औरभी एकदो उदाहरण बताए जाँय तब पाठकोंको ज्ञात होजायगा कि दरअसल में वेद काल निर्णय में और युग परिवर्तन में जो मानवोंका इतिहास तीनसाढे तीन लाख वर्ष तक का बताया है। वह सब सत्य है। उसी के आधारपर मानव जातिमात्रका सूक्ष्म इतिहास कालानुक्रम बद्ध तीनलाख वर्ष तक निःसंदेह जासकताहै क्योंकि वास्तविक अर्थ को बताने वाली यही शैली है। इसी के अधारपर वेद पुराणादि की कथाएं लिखी हुई होनेसे इसके बिना कल्पित किया हुआ अर्थ ही जब कि बराबर नहीं होसका है तब उसके आधारपर कहा हुआ (ज्यो. केतकर ज्यो. दीक्षित, लो० टिळक व श्रीयुत वैद्य आदिका बताया हुआ) कालभी सत्य कैसे होसकता है। अतएव हमने उसे प्रमाण कोटी में लिया नहीं है

विधान ११४ (परम क्रांति निर्णय)

यदि कहें कि उपर्युक्त लेख से तथा कोष्ठकों में (अ, ब, क) काल के प्रतिपादन से केवल शक पूर्व ८६ हजार वर्ष का काल मोटे तौर से और ७५ व ५४ हजार वर्ष का काल सूक्ष्म रीति से निश्चित होता है। तदनुसार परम क्रांति भी ३३ व ३० अंश के करीब की निश्चित हुई है। और अभिजित की निज गति से उक्त कथन को पुष्टि भी मिल गई है। किन्तु इतने पर से परम क्रांति की चक्रगति निश्चित होती नहीं है। क्योंकि इतनी क्रांति तो लीव्हेरियर सारणी के कालान्तर संस्कार देने पर भी [करीबन] आजाती है। तथा और आगे शक पूर्व १५८२०० वर्ष में इनके मान से परम क्रांति ३४ अंश तक जा सकती है। तब इसके भी पूर्व काल की परम क्रांतिमान इससे अधिक बतलाये बिना और उसको

कोष्टक नंबर ५.

आजसे तीन लाख वर्ष तकके दस २ हजार वर्ष के प्राचीन अयनांश और परमक्रांति मान.

अनुक्रमांक.	ज्यो. वि. हान्सेनके ग्रंथानुसार ज्यो. केतकरके ज्योतिर्गणित [पृ. ८६–८७] में लिखे गणित द्वारा साधित.								ज्यो. वि. लीव्हेरिअर टेबुल पृ. १०४ के आधार पर ज्यो. द्विवेदी के दिगंशमीमांसा [पृ. ३२] में लिखे गणित द्वारा.				
	तीन लाख वर्ष से.	अयनांश.		अयनकी वर्ष गति.	अयनके.	स्थिति.	रवि परम क्रान्ति.		रवि परम क्रांति.			पं. क्रांतिकी.	ऐतिहासिक विवरण.
	वर्तमान तक शक वर्ष.	अंश	कला	विकला	महीने	नक्षत्र	अंश	कला	अंश	कला	विकला	वर्ष गति विकला	दक्षिणावर्त अयन गति परम क्रांति काल
	(शकपूर्व)	°	′	″	अमान्तमानके	चित्रतारेसे	°	′	°	′	″	″	
३०	२९८२००	२६१	५६	+ १७·५०	मार्गशीर्ष	पू. षाढा	६३	०७	२५	५२	०५	+ ·४१८०	प्राचीन सामवेदीय
२९	२८८२००	३०७	१३	१५·२४	माघ	शाषभि.	६१	४८	२६	५९	१२·१	·३८८२	मंत्रोंका निर्माण
२८	२७८२००	३४६	३५	१२·९८	फागुन	उ. भाद्रपद	६०	२९	२८	१	२५·७	·३५८४	संहिता ग्रंथोंका आरंभ
२७	२६८२००	१९	३१	१०·७२	चैत्र	भरणी	५९	०९	२८	५८	४१·३	·३२८६	वेद संहिता काल
२६	२५८२००	४६	१०	८·४७	वैशाख	राहिणी	५७	५०	२९	५१	५८·९	·२९८८	
२५	२४८२००	६६	३३	६·२१	वैशाख	मृगशिर्ष	५६	३१	३०	३८	१८·५	·२६९०	
२४	२३८२००	८०	४०	३·९५	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	५५	११	३१	२०	४०·१	·२३९२	आदिति कालका आरंभ
२३	२२८२००	८८	३०	+ १·६९	ज्येष्ठ	पुनवसु	५३	५२	३१	५८	३·७	·२०९४	
२२	२१८२००	९०	४	– *०·५६	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	५२	३३	३२	३०	२९·३	·१७९६	वामावर्त अयन ग-
२१	२०८२००	८५	२२	२·८२	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	५१	१३	३२	५७	५६·[illegible]	·१४९[illegible]	तिका आरंभ काल
२०	१९८२००	७४	२४	५·०८	ज्येष्ठ	आर्द्रा	४९	५४	३३	२०	२६·५	·१२००	अदिति काल समाप्ति
१९	१८८२००	५७	९	७·८२	वैशाख	मृगशीर्ष	४८	३५	३३	३७	५८·१	·०९०२	
१८	१७८२००	३३	३८	९·६०	वैशाख	कृत्तिका	४७	१५	३३	५०	३१·७	·०६०४	उपलब्ध वेद संहिता
१७	१६८२००	३	५१	– ११·८५	चैत्र	अश्विनी	४५	५६	३३	५८	७·३	+ ·०३०६	ग्रंथों का निर्माण

१६	१५८२००	३२७	४७	१४. ११	माघ	पूर्वा भाद्रपदा	४४	३७	३४	०	४४.९	+'०००८	संहिता कालकी समाप्ति
१५	१४८२९०	२८५	२७	१६. ३७	पौष	श्रवण	४३	१७	३३	५८	२४.५	−'०२९०	और आगे ब्रम्हण काला-
१४	१३८२००	२३६	५१	१८. ६३	कार्तिक	ज्येष्ठा	४१	५८	३३	५१	६.१	'०५८८	रंभ षड्विंश ब्रम्हण
१३	१२८२००	१८१	५८	२०. ८८	आश्विन	चित्रा	४०	३९	३३	३८	४९.७	'०८८६	
१२	११८२००	१२०	४३	२३. १४	श्रावण	मघा	३९	१९	३३	२१	३५.३	'११८४	
११	१०८२००	२३	२४	२५. ४०	वैशाख	मृगशिर	३८	०	३२	५९	२२.९	'१४८२	तांड्य गोपथकाल ऐत-
१०	९८२००	३३९	४३	२७. ६६	फाल्गुन	उत्तरा भाद्र	३६	४१	३२	३२	१२.५	'१७८०	रेय ब्राम्हण तैत्तिरीय
९	८८२००	२५९	४५	२९. ९२	मार्गशीर्ष	पूर्वाषाढा	३५	२१	३२	०	४.१	'२०७८	तथा शतपथ ब्राम्हण रंभ
८	७८२००	१७३	३१	३२. १७	भाद्रपद	चित्रा	३४	२	३१	२३	५७.७	'२३७६	तथा उनकी संपूर्णता
७	६८२००	८१	०	३४. ४३	ज्येष्ठ	पुनर्वसु	३२	४३	३०	४०	५३.३	'२६७४	
६	५८२००	३४२	१४	३६. ६९	फाल्गुन	उ.भाद्रपदा	३१	२३	२९	५३	५०.९	'२९७२	श्रौत सूत्र कालारंभ
५	४८२००	२३७	११	३८. ९५	कार्तिक	ज्येष्ठा	३०	४	२९	१	५०.५	'३२७०	लाट्यायन, द्राह्यायण
४	३८२००	१२५	५२	४१. २०	श्रावण	मघा	२८	४५	२८	४	५२.१	'३५६८	ऋक्प्राति शाख्य
३	२८२००	८	१६	४३. ४६	चैत्र	अश्विनी	२७	२५	२७	२	५५.७	'३८६६	बौधायन सूत्र वेदांग
२	−१८२००	२४४	२४	४५. ७२	मार्गशीर्ष	मूल	२६	६	२५	५६	१.३	'४१६४	ज्योतिष पारस्कर गृह्यसूत्र
१	पूर्व−८२००	११४	१६	४७. ९८	आषाढ	आश्लेषा	२४	४७	२४	४४	८.९	'४४६२	भारत, रामायण पुराण,
०	वर्तमान—												सिद्धांत ग्रंथ
	शाके १८००	३३७	५१	−५०. २४	फाल्गुन	उ.भाद्र.	२३	२७	२३	२७	१८.५	'४७६०	वर्तमानकाल

* अयनका वामावर्त कालका आरंभ शक पूर्व २२०६९९ वर्ष में पुनर्वसु (अदिति देवता) पर हुवा है। इससे प्राचीन दक्षिणावर्तकाल और अर्वाचीन वामावर्तकाल है। तथा प्रो० लेव्हरिअर के संस्कार से शकपूर्व १५८००० वर्ष में परम क्रांति ३४°। ०'। ४९ की धनगति पूर्ण होकर इधर के काल में ऋण होगई है।

कोष्टक नंबर ६

परम क्रांति ५२° । ५२' के समय की (सूर्य पथ) क्रांति

(शकपूर्व २२०७०० वर्ष की) उपकरण = सायन ज्योतिः पुंज

उप.	० +	३० +	६० +	९० +	१२० +	१५० +	उप.
०'	०° ००'	२३° ३०'	४३° ४८'	५२° ५२'	४३° ४०'	२३° ३०'	३०
१	० ४८	२४ १५	४४ १२	५२ ५१	४३ ७	२२ ४५	२९
२	१ ३६	२५ ०	४४ ४४	५२ ४९	४२ ३३	२१ ५९	२८
३	२ २४	२५ ४४	४५ १६	५२ ४६	४१ ५८	२१ १३	२७
४	३ १२	२६ २९	४५ ४७	५२ ४०	४१ २२	२० २७	२६
५	४ ०	२७ १३	४६ १७	५२ ३४	४० ४६	१९ ४१	२५
६	४ ४७	२७ ५७	४६ ४५	५२ २७	४० १०	१८ ५५	२४
७	५ ३५	२८ ४०	४७ १३	५२ १९	३९ ३३	१८ ९	२३
८	६ २३	२९ २४	४७ ४०	५२ ९	३८ ५५	१७ २३	२२
९	७ १०	३० ७	४८ ६	५१ ५७	३८ १७	१६ ३६	२१
१०	७ ५८	३० ५०	४८ ३१	५१ ४५	३७ ३८	१५ ५०	२०
११	८ ४६	३१ ३२	४८ ५५	५१ ३१	३६ ५९	१५ ३	१९
१२	९ ३३	३२ १४	४९ १८	५१ १५	३६ २०	१४ ३६	१८
१३	१० २०	३२ ५६	४९ ४०	५० ५८	३५ ४१	१३ २९	१७
१४	११ ०७	३३ ३८	५० १	५० ४२	३५ ०	१२ ४१	१६
१५	११ ५४	३४ १९	५० २२	५० २२	३४ १९	११ ५४	१५
१६	१२ ४१	३५ ०	५० ४२	५० १	३४ ३८	११ ७	१४
१७	१३ २९	३५ ४१	५० ५८	४९ ४०	३२ ५६	१० २०	१३
१८	१४ १६	३६ २०	५१ १५	४९ १८	३२ १४	९ ३३	१२
१९	१५ ३	३६ ५९	५१ ३१	४८ ५५	३१ ३२	८ ४६	११
२०	१५ ५०	३७ ३८	५१ ४५	४८ ३१	३० ५०	७ ५८	१०
२१	१६ ३६	३८ १७	५१ ५७	४८ ६	३० ७	७ १०	९
२२	१७ २३	३८ ५५	५२ ९	४७ ४०	२९ २४	६ २३	८
२३	१८ ९	३९ ३३	५२ १९	४७ १३	२८ ४०	५ ३५	७
२४	१८ ५५	४० १०	५२ २७	४६ ४५	२७ ५७	४ ५७	६
२५	१९ ४१	४० ४६	५२ ३४	४६ १७	२७ १३	४ ०	५
२६	२० २७	४१ २२	५२ ४०	४५ ४१	२६ २९	३ १२	४
२७	२१ १३	४१ ५८	५२ ४६	४५ १६	२५ ४४	२ २४	३
२८	२१ ५९	४२ ३३	५२ ४९	४४ ४४	२५ ०	१ ३६	२
२९	२२ ४५	४३ १७	५२ ५१	४४ १२	२४ १५	० ४८	१
३०	२३ ३०	४३ ४०	५२ ५२	४३ ४०	२३ ३०	० ०	०
	३३०	३००	२७०	२४०	२१०	१८०	उपकरण

कोष्टक नं. ७

शक पूर्व २२०७०० वर्ष में परम क्रांति ५२°।५२' द्वारा तारका पुंजोंकी क्रांति.

तारका पुंजों के. नाम	सायन भोग. अं.	क्रांतिः अं.	तारका पुंजो के. नाम	सायन भोग. अं.	क्रांतिः अं.
पुनर्वसु	०	+ ६	बाष्कल	२१९	— ६०
पुष्य	१६	+ ११	पूर्वा भाद्रपदा	२४१	— २५
आश्लेषा	११	+ २०	उत्तरा भाद्रपदा	२६१	— २६
श्रृंगः	३४	+ ३१	रेवती	२७०	— ५५
मघा	३६	+ २८	अश्विनी	२८०	— ४३
कण्वः	६३	+ ४६	मिहिरः	२८४	— ३३
पूर्वा फाल्गुनी	५०	+ ४७	भरणी	२९४	— ३६
उत्तरा फाल्गुनी	५८	+ ५५	कृत्तिका	३०६	— १६
पाणिनिः	७१	+ ५०	गर्गः	३१९	— ३७
हस्तः	८०	+ ३९	रोहिणी	३१६	— ३९
नलः	७६	+ ५३	ब्रह्म हृदय	३२८	+ २
चित्रा	९०	+ ५३	अग्निः	३२९	— १९
ब्रह्मा	१२०	०	मृगशीर्ष	३३०	— ३७
स्वाती	१०८	+ ८४	कपिः	३३१	— २५
व्यासः	१११	+ ४८	आर्द्रा	३३५	— ३६
विशाखा	१११	+ ४८	मनुः	३४०	— १७
अनुराधा	१२९	+ ३६	पराशर	३४२	— १६
गौतम	१२९	+ ३९	अगस्त्य	३५१	— ८२
जैमिनिः	१३४	+ ३१	कश्यप	३४६	— ९
ज्येष्ठा	१३६	+ ३०	लुब्धक (व्याध)	३५०	— ४७
यमः	१४७	+ २३	शुक्र	३५४	— ५
मूल	१५१	+ ९	प्रश्वा	२	— १३
शिवः	१५९	+ १८	ययाति	३०९	— ८
पूर्वाषाढा	१६१	+ २	देवयानी	२८८	— १४
मृकण्डु	१६३	+ १२	माधवी	२७६	— २६
अभिजित्	१७१	+ ७०	गालव	३३६	+ २
उत्तराषाढा	१६९	+ ५	भूतप	८४ (२६४)	+ ७८
शाकलः	१७२	+ ७	विश्वामित्र	१०८	+ २
श्रवण	१८८	+ २३	स्वस्तिकचतुरस्र १	९९	+ २६
भरद्वाज	१९०	— ४	,, २	१०८	+ २०
धनिष्ठा	२०३	+ १५	,, ३	१०८	+ २७
कुबेर	२१०	— २६	,, ४	११६	+ २०
शतभिषक	२२८	— ३६	गरुड	१७४	+ २३

उदाहरण देकर सिद्ध किये बिना परम क्रांति की चक्रगति कैसे निश्चित हो सकती है। और चक्रगति के निश्चित हुए बिना उत्तर ध्रुव प्रदेश के अतिरिक्त भारतवर्ष में वेदों का निर्माण कहने में लोकमान्य तिलक के कथनानुसार दोनों जटिल प्रश्न भी पूर्णतया हल होते नहीं हैं। और ऐसे बडे चक्रों की गति को निश्चित करने के इतिहास को देखते क्रांति की गति संबंध की यह बात नई नहीं है। क्योंकि अयन गति भी पहले आंदोलन रूप मानी गई थी जोकि पराशर सिद्धांत में २४ व आर्य सिद्धांत में २७ अंश तक की आंदोलन गति किंतु अब तो पुलिशाचार्यादि की कही हुई चक्रगति ही सर्वमान्य होगई है इसी प्रकार परम क्रांति के मानों का उल्लेख अर्वाचीन ग्रंथों में २७°।२४.९–२४ अंश तक का लल्ल संग्रहीत, पुलिशाचार्य व सूर्य सिद्धांत में तथा सिद्धांत सम्राट में २३°।५१', २३°।३०'२३°।२८' तक का किया है सो उनके वर्तमान समय का है। परम क्रांति पीछे को हटती है इतनी ही गति का शोध लगा था और अब पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने इसकी सूक्ष्म गति को तो निश्चित कर लिया है किन्तु उसमें कालांतर संस्कार देना या नहीं यह प्रश्न अभी बाकी है। और वह प्रश्न कालावधि गणित से हल हो सकता है। ऊपर बताए हुए उदाहरण और कोष्ठकों से प्रतिपादन किये हुए अनेक तारों की क्रांति द्वारा **प्रो०हर्शल साहब की** कही क्रांति मर्यादा के ऊपर तो क्रांति चली गई है। अब **प्रो० लवर साहब** की कही मर्यादा के ऊपर कैसी जा सकती है यह साथ दिये हुए कोष्टक नंबर ५।६।७ से मालूम हो जायगी।

कोष्टक ५ में आजसे ३ लाख वर्ष पूर्वसे आरंभ करके शाके १८०० पर्यंत दश दश हजार वर्ष की अवधि के अयनांश और अयनगति व स्थिति बतलाई है और तुलना के लिये प्रो० हानसेन एवं ज्योतिर्गणितोक्त चक्रगति की और **प्रो० लिव्हेरियर** प्रोक्त रविकी परम क्रांति लिखकर वैदिक ग्रंथोंसे आजतक के ग्रंथोंका कालभी संकेत मात्र से बता दिया है। इस कोष्टक से आपको ज्ञात होजायगा कि यद्यपि अयन की विलोम एवं चक्र गति मानी गई है किंतु प्रो० हानसेनप्रोक्तकालान्तरसंस्कार के कारण शक पूर्व २२६९९ वर्ष में उसकी गति शून्य थी व उसके पहले संपात आगे बढताथा इसलिये हमने उस कालका दक्षिणा वर्तकाल नामरखाहै। गतिशून्य होने के समय संपात की पुनर्वसु नक्षत्र पर विलोम गति होने के कारण ही पहले जिसे अदिति कहते थे उसे वैदिक ग्रंथों में वसु=वसंत संपात के पुनः = फिर से लौटने के नक्षत्र को पुनर्वसु कहने लगे। इस नक्षत्र पर करीबन ४५ हजार वर्ष तक संपात की स्थिति रही है वास्ते इस काल का नाम अदिति काल या पुनर्वसु काल और ज्येष्ठ मास में संपात ६० हजार वर्ष तक रहा है। उस समय सायंकाल में ज्येष्ठा रोहिणी इन्द्र नक्षत्रों का उदय होता था इसलिए सब महीनों में बडा महीना ज्येष्ठ मास और नक्षत्रों में बडा व आरंभिक नक्षत्र इंद्र दैवत्या ज्येष्ठा रोहिणी (लोहिनी=लाल तारे वाला) नक्षत्र और पितृ व निर्ऋति दैवत्या मूल

(आरंभिक) नक्षत्र नाम से यह वैदिक ग्रंथो में प्रसिद्ध हुए हैं। पौराणिक ग्रंथो में सगर राजा के ६० हजार पुत्रों से सागर का निर्माण होना, अंत में कपिल देव (ब्रह्म हृदय Capella.) के शाप से यह भस्म होना व भगरिथ द्वारा गंगा का अवतरण होना आदि कथाएं इसी काल की पुष्टि में कही गई हैं। भारत के उत्तर में ज्वालामुखी के अनेक परिस्फोटों के कारण वहां के समुद्र का सूखना आरंभ होकर हिमालय का प्रादुर्भाव हुआ है। वैदिक ग्रंथों में इसे उत्तर गिरि कहते थे। हानसेन की चक्र गति से इस समय परम क्रांति ५३° अंश थी। इससे २७ नक्षत्र व और तारों की क्रांति ज्ञात होने के लिये कोष्टक नं ६ में क्रांति सारणी लिखकर कोष्टक नं. ७ में स्थूल मान से सबकी क्रांति बता दी है।

विधान ११५ (परम क्रांति का निर्णय)

कोष्टक ७ में गालव और विश्वामित्र की क्रांति समान बताई है। इसी से भारत आदि पुराण ग्रंथो में इसका गुरु शिष्य का संबंध बताया है। ऐसे ही एक कालवच्छेदमें सममंडल में आने वाले निवट के तारों का पति पत्नि संबंध बताया है सो इस समय के संपात की स्थिति में हजारों वर्षों में भी विशेष अंतर नहीं पडने से:— " वसिष्ठ-अक्षमाला, च्यवन=सुकन्या, पुलस्त्य—प्रतीची संध्या; अगस्त-वैदर्भी-[लोपामुद्रा] सत्यवान्-सावित्री, भृगु-पुलोमा, कश्यप,-अदिति, जमदग्नि-रेणु का, कौशिक-हेमवती, बृहस्पति-तारा, उर्वशी—पुरूखा, ऋचीक-सत्यवती, मनु-सरस्वती, जरत्कारूजरत्कारी, उर्णायु-मेनका, तुंबरू-रंभा, नारद-सत्यवती, वासुकी-शतपर्वा, दुष्यन्त-शकुंतला, नल-दमयंती, और धर्म-धृति " इतने तारकापुंजों का पति पत्नी संबंध इस कालमें हुआ है। इसके बाद भारत काल तक में "राम-वैदेही व रामायण, धनंजय-कुमारी व पांडव-द्रौपदी व भारत, कृष्ण-रुक्मिणी व कृष्ण [ब्रम्ह हृदय] कपिध्वज=पार्थ (सारिथी पुंज) व श्रीकृष्ण चरित्र " इत्यादि कथाएं सब समान क्रांति आदि के संबंध से कही गईं हैं व उपपत्ति युक्त हैं। इससे निःसंदेह सिद्ध होता है कि परम क्रांति की चक्र गति है। क्योंकि उक्त अदिति काल के भी बहुत पूर्व काल से प्रो० हानसेन की कही गति युक्त परम क्रांति के मान बराबर मिलते आए हैं। और प्रो० लवर साहब की गति के मान की परम क्रांति मिलती नहीं है।

विधान ११६ वेदों के निर्माण स्थल का निर्णय !

वैदिक ग्रंथो में दक्षिण भाग के तारों को भी आकाश के मध्य में कहा है " अमी ये पंचो क्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ॥ २१ ॥ सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ॥ २२ ॥ (ऋ. सं. १. ७)" अर्थात् कारंडव पुंज Towcan को खस्वस्तिक में और सम-

मंडल कहा है। इसी तरह ऋग्वेद में:— ' पारावत [१-६-२४] दाक्षिण बुध्न्य. (१-७-२) भरत पुंज [१-७-३] त्रिकोण (१-५-१८-२५) अगस्त्य (१-८-१५) इल्वला= इन्वका= मृगशीर्ष (४-४-३१) एवं नौका, स्वतिक, नर तुरंग, बृहलुब्धक, निर्मिगिळ, यमुना नदी, बहुशिरा राक्षस, यम, शशक, वृक, शिखावल, जटायु, दक्षिण मत्स्य, मधु मक्षिका इत्यादि" दूर के दक्षिण शर वाले तारों का हमारे ऊंचे दृश्य भाग में आए हुओं का उल्लेख अनेक जगह मिलता है। इससे भी परम क्रांति उस समय अधिक थी। क्योंकि उत्तर क्रांति के समय दक्षिण शर से अधिक क्रांति हुए बिना वह तारे भारत वर्ष में शिर के ऊपर दिख नहीं सकते हैं। इस प्रकार जब कि अनेक प्रमाणों के आधार पर प्रो. हानसेन की कही परम क्रांति निश्चित होती है। तब इसके द्वारा लोकमान्य टिळक के उपस्थित किये हुए दोनों प्रश्न भी हल होजाते हैं। क्योंकि कोष्टक ५ में पुनर्वसु काल के आरंभ होने के पहले के काल में हानसेनोक्त परम क्रांति मान ५५ अंश के ऊपर निश्चित होती है। तब भारत वर्ष में ३५ अक्षांश के उत्तरीय प्रदेश में सतत दिन व सतत रात्रि होती थी। यानी ऐसे दीर्घ दिवस के समय सूर्य सदा दृश्य भाग में मंडलाकार घूमता हुआ दिखता था जैसा कि " उद्वयंतमसस्परिस्वः पश्यंत, उत्तरम् ॥ देवं देवत्रा सूर्य मगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ऋ. सं. ४-१-८, वाजस्सं. २०-२१, सूर्यो ज्योति रुत्तमं(रं), स्वर्ग एवलोके [शत. ब्रा. १२-९-२८]" अर्थात् " अंधःकार वाले इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग को देखते हुए हम वहां स्वर्ग में देवों के रक्षण कर्त्ता उत्तम ज्योति रूप सूर्य को देखते हैं। "—ऐसा कहा गया है। और सतत रात्रि के समय अतिरात्र आदि यज्ञ किये जाते थे। अतएव उत्तर ध्रुव प्रदेश का दृश्य उस समय भारत में दिखता था। इस से वेदों का निर्माण भारत वर्ष में ही हुआ है। यदि उत्तर ध्रुव प्रदेश में होता तो उक्त दाक्षिण भाग के तारों का वर्णन वेद में नहीं आसकता। क्योंकि हम जैसे २ उत्तर की ओर आते हैं वैसे वैसे हमारे शिर के ऊपर दिखने वाले तारे हमें दक्षिण के तर्फ ढलते हुए दिखते हैं। अर्थात् अक्षांश तुल्य ध्रुव ऊंचा आने से उत्तर का उतना ही प्रदेश दृश्य व दक्षिण अदृश्य होता जाता है। ९० अक्षांश ध्रुव स्थान से विषुव-वृत ही क्षितिज रूप हो जाने से दक्षिण क्रांति के तारे क्षितिज के नीचे रह जाने से सदा अदृश्य रहते हैं। तब इन अदृश्य तारों का उल्लेख वेद में कैसे आसकता है। इससे तथा अन्यान्य सब प्रमाणों को देखते निर्णीत होता है वेदों का निर्माण कि, उत्तर ध्रुव प्रदेश में नहीं होकर, भारत वर्ष में ही हुआ है।

विधान ११७.

(संसार के धार्मिक ग्रंथ वैदिक धर्म के संप्रदायिक धर्म ग्रंथ हैं.]

उपर्युक्त विधान (७३-११३) में कहे हुए अनेक प्रमाणों से निश्चित किया गया है कि वैदिक बातें ही पुराण ग्रंथों में लिखी गई है। और वह सब खगोलीय दृश्य स्थिति के

आधार पर रचित होने से, गणित द्वारा उन घटनाओं का कालानुक्रम निश्चित होकर उसके वास्तविक अर्थ की जांच आज भी हम शास्त्रीय रीति से कर सकते हैं। इतना ही नहीं तो इससे आगे यह भी निर्णय हो सकता है कि; संसार के धार्मिक ग्रंथ हैं सो वैदिक धर्म के सांप्रदायिक धर्म ग्रंथ हैं। क्योंकि इनमें का प्राचीन कथा भाग वेदों से ही उधृत किया होने से उनका वास्तविक अर्थ भी इसी प्रकार खगोलीय ऐतहासिक पद्धति परसे निश्चित होजाता है। फरक इतनाही है कि 'झेंदावेस्ता' की बहुतसी बातें वेदसंहितासे पूर्ण तया मिलती हैं। और बायबल की वेद, उपनिषद व पुराण ग्रंथो से, खालिडयन लेखकी ब्राह्मण व श्रौत सूत्र ग्रंथों से, जैन संप्रदाय के और बौद्ध संप्रदाय के ग्रंथों की धर्म सूत्र व पुराणों से तथा कुराण की उपानिषद ग्रंथों से बहुधा मिलती हुई बातें हैं। इसलिये इस (लघु) लेख में एक झेंदावेस्ता का उदाहरण बताकर ओरों का दिग्दर्शन मात्र बताता हूं कि वेद के कौन २ सूक्त इसमें पढे गये हैं। ऋग्वेद [८-३-१८-१९] में:—"यस्ते मन्यो विदधद्व असायकः सहऽओजः पुष्यति विश्वमानुषक्॥ साह्यामदा समार्यं त्वयायुजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥ २॥ ३॥ त्वंहि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भा मोऽ अभिमातिषाहः विश्वचर्षाणिः 'सहुरिः' सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥ अभागः सन्नपरेतोऽ अस्मि तवक्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ॥ ५ ॥ तंत्वा मन्योऽअक्रतु र्जिहीळा (डा) हंस्वातनूर्बल-देयाय मेहि ॥ ५ ॥ ++ प्रियंते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मातमुत्सं यतऽ आबभूथ ॥ २१ ॥ आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूतऽ उत्तरं ॥ क्रत्वानो मन्यो सहमे धेहि महा धनस्य पुरुहूत संसृजि ॥ १३ ॥ संसृष्टं धनं उभयं समाकृत अस्मभ्यंदत्ता वरुणश्चमन्युः भियंदधाना हृदयेषु शत्रवः पराजिता सोऽअपानियंताम्॥ तथा निविदध्यायमें-"अस्यमदे जरित इंद्रः" तथा वाजस सं. (१६।१–१६) में नमस्ते रुद्र मन्यवे "रुद्र सूक्त" इत्यादि मंत्र हैं।

विधान ११८ (सांप्रदायिक एकवाक्यता).

उपर्युक्त सूक्त का ऋषि तापसमन्यु लिखा है। पुराणों में चौथे मनु का नाम तामस मनु कहा है किंतु यह ऋषि अलग है. यह मन्यु सूक्त अंजन वृक्ष की समिधा, एवं वायु देवता वाले स्वाती नक्षत्र विभाग के भूतप पुंज के संबंध में कहा गया है। और यह अंजनी नंदन, वायु पुत्र, रुद्रावतार, मारुती = हनुमान की मूर्ति प्रतिष्ठा प्रयोग में पढा जाता है। साथ दिये हुए नकशों में भूतप Boates को देखिये हनुमान की मूर्ति भी ऐसी ही (दाक्षिणाभिमुख, दहिना पांव ऊपर उठाये सीधे हात में गदा व बाएं ऊंचे हात में शुनः पुंज Canes Ven को द्रोणागिरि का रूप देकर) बनाई जाती है। मन्यु सूक्त में साह्यामदा अमन्यु, उग्रमन्यु, आग्रमन्यु, व आंग्रमन्यु, नाम आए हैं। इस भूततप के पूर्व मेंशौरि

Hercules नाम का तारका पुंज है उसको यहां सहुरि:, सहावान्, सहुरिदत्त, सहुरे विश्वातरमुस ' नाम से कहा है । तथा पार्शी लोगों के धर्म ग्रंथ 'झंदावस्ता' (छंदावस्था) [फर्द ८-८०] में अग्नि संबंध के वर्णन के साथ में ' अहुर ' मज्द व अहुर मज्दा तथा आंग्रमन्यु के नाम हैं । सूक्त में लिखे हुए घटना के वर्णन के नामोंके तुल्य इसमेंभी वर्णनहै । सहुर= अहुर= असुर शब्द मिलते हैं । वेद में अनुराधा को 'मित्र, नमस्य, मनस्, ब्राह्मण तथा अश्विनी विभाग में 'मिहिर' कहा है। अवेस्ताके मिहिर (यश्त ३१-१२८) में मिथ्र, एवं (फर्द १९- २० में) बोहमना=बहमन्, [रुद्र के बाण] मिथ्र, के बाण कहे गये हैं । तथा ''इंद्र देव, सौर्व देव, नाव्ङ धैत्य दैत्य, और दरवी (तोमर) व त्रिशूल को धारण करने वाला अइश्म (असहश्म) आकतश देव, असत्य हिमपुंज समीप का अदृश्ययम (नर तुरंग), वृद्धावस्था देव, (रूप विकारी तारका पुंज) अरुंधति केश बुश्ति देवी (अंबुश्ती = अंबादेवी) दिविश, दैविश, कसविस, एवं देवों में बडा = (महादेव) महोदेव – पवतीशो (पार्वतीशोदेव) (फर्द १९-४३ से ४७) " ऐसे वैदिक देवों के नाम और उनके=चरित्रों का वर्णन दोनों का एकसा ही मिलता है । इससे पार्शि संप्रदाय भी वैदिक धर्म का भेद है ।

ऐसाही सामवेद [ऐंद्रपर्व १-२ तथा ३ पृ. १९६] में " मद इंद्रः ॥ मर्डितेंद्र " इंद्र का नाम ' मद ' ' तथा ' मर्डित और उसका तामस – वृत्र का युद्ध कहा है । वह खाल्डिया के इष्ट का कृति के लेखों में ' मर्डुक- तिआमत के = युद्ध से मिलता हुआ है । इससे खाल्डियन भी संप्रदाय भेद है । तथा शतपथ ब्राह्मण [३·३-२-३ पृ. २०९ में अतिथि व पूजनीय को अर्हन्त और चरण व्यूह परिशिष्ट सूत्र (११) में ऋग्वेद की ८ शाखा में से एक शाखा के पढने वालों का नाम श्रावक व टीका कारने श्रावकोगुरु ऐसा उसका अर्थ कहा है । तथा श्रवण की विष्णु देवता ऋषभ (वेदोक्त) देवता को आद्यतीर्थंकर तथा भरत आदि को उनके पुत्र एवं पूज्य मानते हैं । इनके संस्कार गृह्य सूत्रों से मिलते हुए हैं. और अदालतों में दायभाग हिन्दुधर्मशास्त्रनुसार ही मानते हैं । इसकी व्याप्ति भी भारतवर्ष में ही होने से इनके आचार विचार हिंदुधर्म शास्त्रों से भिन्न नहीं हैं । तथा अंगुत्तर निकाय, ललित विस्तार, चुल्ल वग्ग, महावग्ग, त्रिपिटक, सुत्तनिपात, पवज्जा सुत्त चक्कवत्ति सुत्तादि ऐसे ग्रंथ हैं कि उनमें बौद्ध व जैन सांप्रदायिक बातें और बौद्ध ग्रंथों के प्राचीन कथा भाग की बहुतसी बातें श्रुति स्मृति पुराणादि से मिलती हुई हैं । यद्यपि महाभारत में बौद्धका उल्लेख नहीं है किंतु पुराणों में उसे बुद्धका अवतारमाना है । श्रीमच्छंकराचार्य ने तो इन्हें दार्शनिक संप्रदाय भेद मात्र बताया है । ऐसेही बायबल का जूना करार वैदिक व पौराणिक भाग से व कुराण में की प्राचीन कथाएं उपनिषद भाग से बहुधा मिलती हुई हैं । सारांश संसार के सब धर्म वैदिक धर्म के संप्रदाय भेद हैं । यद्यपि देशान्तर, कालान्तर व प्राचीन इतिहास को संरक्षण करने की धर्म श्रद्धा भेद से उनमें बहुतसा फरक पड गया है ।

तथापि मातृ, पितृ भ्रातृ आदि शब्दों का सादृश्य, व्यवहारोपयोगी कालज्ञान=ज्योतिशास्त्र आयुर्वेद, धनुर्वेद, शिल्प शास्त्र, अर्थ शास्त्र, राज्य, व्यवसाय, न्याय, नीति, सभ्यता, साधारण वैदिक धर्म के मूल तत्व सबके एकसाह मिलते हैं। और जब कि वेदों का प्रादुर्भाव भारत वर्ष में हुआ है इससे सिद्ध होता है कि मानव जाति के प्रादुर्भाव का मूल स्थान भारत वर्ष है। * अतएव मानवों के मूल धर्म ग्रंथ वेद हैं। तब जिस प्रकार खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से वैदिक कथा भाग का इतिहास (काल स्थल आदि) निर्णीत होसकता है ऐसे ही संसारके धर्म ग्रंथोक्त प्राचीन भागके इतिहास काभी निर्णय हो सकता है। क्योंकि मानव ही क्या प्राणिमात्र को जितना नित्य परिचय दिव्य ज्योति रूप आकाश से है उतना और किसी से नहीं है। तब कितने ही कालतक प्राचीन कथा भाग की उन्हें उपस्थिति रहना व उस की अध्यात्म, अभिभूत या आधि दैविक रीति से धर्म रूप मानते रहना स्वाभाविक बात है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि अनादि काल से लाखों वर्ष के इतिहास का पता लगाना है तो इसी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति से ही लग सकता है। क्योंकि सूक्ष्म गणित से इसका सत्यासत्य निर्णय को हम अब भी कर सकते हैं।

विधान ११९.

(मानवेतिहास का आरंभिक काल)

अब जब उक्त ऐतिहासिक पद्धति द्वारा निश्चित होसकता है कि सुदूर द्वीपान्तर निवासियों के प्राचीन कथा भाग की तुलना वैदिक कथा भाग से करने पर इन सबका इतिहास (अधिक से अधिक) अदिति काल के आरंभ तक पहुंच सकता है। क्योंकि ग्रंथोक्त घटना की संगति परम क्रांति ९१-९६ अंश तककी तारों के क्रांति परिमाणोंसे निश्चित होती है तब कोष्टक ९ में कही हानसेन की गति से २। लाख से २॥ लाख वर्ष तक उसकी कालमर्यादा जा सकती है और वह वसंत संपात की स्थिति से एवं तारों की निज गति से पुष्ट (समार्थित) होजाती है। किंतु अब यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि; " यदि हम इतनी अधिक भी परम क्रांति को मान लेवें तो भी इतने परसे परम क्रांति की चक्र गति निश्चित नहीं हो सकती है। क्योंकि प. क्रांति की गति का कालान्तर संस्कार प्रो. लवर की सारणी से बहुत स्वल्प मान लिया जाय तो इतनी क्रांति में दो चार अंश का फरक पडने पर भी स्वल्पान्तर से घटनाओं की बातें मिल सकती हैं। " अतः इस प्रश्न को पूर्ण हल करने के लिये अब मैं उसके भी बहुत पूर्व काल का उदाहरण बतलाता हूं:–" यावेदादित्यः पुरस्ता दुदेतापश्चास्तमेताद्धिस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेति" यह मंत्र छांदोग्य

---

* एतद्देश प्रसूतस्य–सकाशा दग्रजन्मनः ॥ स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ २० ॥ मानव धर्म शास्त्र (अ. २).

आरण्यक व उपनिषद में उधृत किया हुआ है. क्योंकि इसी अर्थ के मंत्र ऋग्वेद (७-८-९-११) में तथा सामवेद (उत्तर पर्व) में आये हैं । और उनके भावार्थ को महाभारत कारने एवं पुराण ग्रंथों में नीचे लिखे प्रकार बलि और इंद्र के संवाद से स्पष्ट कर दिया है कि:-" बलिरुवाच- यावत्पुरस्तात्प्रतपेत्तावद्वै दक्षिणांदिशं ॥ पश्चिमांतावदेवापि तथोदीचीं दिवाकरः ॥ ३० ॥ तथा मध्यं दिने सूर्यो नास्तमेतियदातदा ॥ पुनर्देवासुरं युद्धंभावि जेतास्मि वस्तदा ॥ ३१ ॥ सर्वलोकान्यदादित्य एकस्थस्ता पयिष्यति ॥ तदा देवा सुरेयुद्धे जेताहं त्वां शतक्रतो ॥ ३२ ॥ शक्रउवाच-स्थापितो ह्यस्य समयः पूर्वमेवस्वयं भुवा ॥३५॥ अयनंतस्य षण्मासानुत्तरं दाक्षिणं तथा ॥ येनसंयातिलोकेषुशीतोष्णे विसृजन्रविः ॥३६॥ भीष्मउ०- एवमुक्तस्तु दैत्येंद्रोबलिरिंद्रेण भारत ॥ जगाम दक्षिणामाशामुदीचिं तु पुरंदरः ॥ ३७ ॥ "- (भारत शांति पर्व अ० २२५) " इसका अर्थ टकिाकारने पुराणों के आधार पर लिखा है कि " एकस्थो ब्रह्मलोकस्थः सर्वान् मेरु पृष्टादधस्तनांस्तापयति तदा ब्रह्मणो मध्याह्नावसाने वर्तमान वैवस्वत मनोरधिकार च्युत्यौसत्यां भविष्टे सावर्णिक मनौ बालिरिंद्रो भाविष्यति " ऐसाही भागवत पु. (स्कंद ८ अ. १३ श्लो १२) में तथा अन्यत्र भी अनेक पुराणों में लिखा है ।

विधान १२०.

उपर्युक्त कथन का भावार्थ है कि:-" जितना पूर्व व पश्चिम में सूर्य तपता है । उतना ही दाक्षिण व उत्तर में तपेगा और उस काल में मध्यं दिन के तुल्य सूर्य एक जगह घूमता हुआ सतत [कई दिनों तक] दिखता रहेगा । यानी कई दिनों तक सूर्य का अस्त दिखाई न देगा तब भूत कालीन युद्ध के तुल्य देवासुर संग्राम होगा उसमें मैं (बलि) तुम्हें (इंद्रको) जीतूंगा । जब कि एक जगह स्थित सूर्य पृथ्वी के संपूर्ण लोकों में तपने लगेगा तब उस देवासुर संग्राम (' संक्राम=संक्रमण '- शत. ब्रा. १-४-४-६ पृष्ट ३६२) में इंद्र को मैं जीतूंगा अर्थात् पहले जैसे मैं इंद्र के पद पर आरूढ हुआ था वैसा पदारूढ फिर होउंगा, ऐसा बलि का कहना सुनकर इंद्र ने कहा कि ' इसमें आपकी क्या बहादुरी है यह बात तो कालकृत होने वाली है क्योंकि इस काल चक्र के समय को ब्रह्माने पूर्वही निश्चित कर रखा है । किंतु सूर्य के दाक्षिणायन व उत्तरायण में पृथ्वी के दाक्षिणोत्तर भागों में शीत व उष्णता को कम ज्यादा करता हुआ सूर्य ६-६ महीने तक तो उदयास्त रूप ही रहेगा ' इस संवाद के बादमें बलि दाक्षिण में चला गया और इंद्र उत्तर में आगया' इस विषय को पुराणों के आधार से टीका कारने और भी स्पष्ट कर दिया है कि " ध्रुव प्रदेश में पहुंचा हुआ सूर्य पृथ्वी के दोनों गोलार्धों में ६-६ मास तक तीव्र शीतातप को करता हुआ सतत दिखता रहेगा । जैसा कि पहले इस (सातवें) वैवस्वत मनु के आरंभ में था अब उसके २८ युग बीते हैं आगे ४३

युग बीते बाद ७१ युग होजाने से इस मनु की समाप्ति और आठवें सावर्णिक मनु का आरंभ होगा। तब ऋतु चक्र के तुल्य पूर्व स्थिति फिर से आजाने से बलि नामका तारका पुंज सतत दृश्य (ध्रुव प्रदेश) रूप इंद्र पद में फिरसे आरूढ होगा" ऐसा कहा है। वैदिक ग्रंथों में वज्रधारी पुरुष के आकार के भूतप और भरत दो पुंज हैं दोनों की आकृति भव्य (विशाल) और तेजस्वी तारों की होने से इनको मरुत्वान् इंद्र, तथा भारत इंद्र कहा है। शक पूर्व २९४००० वर्ष के श्रवण [विष्णु] संपात, से श. पू. २८६००० वर्ष के पू. भा. (अजैकपात्) संपात तक हानसेन की सारणी से (कोष्टक ९ देखो) रवि की परम क्रांति ६३° से ६१° तक थी। इससे भूतप का उत्तर शर ९४ अंश तक होते हुए भी उसकी क्रांति +० से २४ अंश तक की और भरत का दाक्षिण शर १३°–२३° होते हुये भी उसकी उत्तर क्रांति २४° से ३८° तक की होगई थी।

विधान १२१.

इस प्रकार उत्तरीय देव विभाग के तारे दक्षिण में व दाक्षिणीय असुर विभाग के तारे उत्तर में आये हुओं को तत्कालीन ऋषियों ने देखकर इस घटना को वेद मंत्रों के सामवेदीयगान में देवासुर संग्राम नाम से व्यक्त की है उसी का उल्लेख भारत कारने बली के कथन रूप से किया है। यद्यपि वैदिक ज्ञान का व मानव सृष्टि का आरंभ वैवस्वत मनु के भुक्त युगों के हिसाब [२८ × १२००० =] से आज ३३६००० वर्ष होते हैं और हानसेन की कही गति से उस समय अयन की स्थिति पुनर्वसु के निकट में व परम क्रांति मान ६७·९ अंश का आसकता है। किंतु अभी तक हमें इस संबंध के पुष्ट प्रमाण मिले नहीं हैं। इसलिये उधर का इतिहास अंधुक (अस्पष्ट) है। तब अभी उपर्युक्त मधु विद्या श्रुति से भारतोक्त बलि के वचन से इतना ही अर्थ ले सकते हैं कि भारत के ३९ अक्षांश के प्रदेश में उस समय सतत दिन व सतत रात्रि होती थी। और ऐसी स्थिति परम क्रांति (६०°-६२°) में स्पष्ट तथा दिख सकती है तथा अभी तो यह शोध ही आरंभिक है। आगे २–४ वर्ष में जब इस विषय के ऊपर संसार के अनेक विद्वानों का दृष्टिपात होगा तब तक के अन्वेषण से यह निर्णय हो सकेगा कि परम क्रांति की चक्र गति है या ६०-६२ अंशतक जाकर वह लौट जाती है। क्योंकि उपर्युक्त विधान ७४·११९ व कोष्टक १-७ में बताये हुए अन्वेषण से यह बात तो सिद्ध हो चुकी है कि "अदिति काल के आरंभ तक तो हानसेन की गति से संपात व परम क्रांति मान ठीक ठीक निश्चित हो जाते हैं। और तारों की निज गति से उसी को पुष्टि मिलती है। तब उसी से साधित क्रांति द्वारा वेद पुराणादि में एवं अन्य धर्म ग्रंथोक्त प्राचीन भाग के वर्णन में कही हुई अनेकानेक बातों की खगोलीय ऐतिहासिकता सिद्धि होती है। इतनाही नहीं तो इतने दीर्घकाल की गणित साध्य बातों

की एकवाक्यता मिलने से परम क्रांति का नया कालान्तर संस्कार निश्चित होते हुए "आज से ३ लाख वर्ष का मानवेतिहास इसी पद्धति से निश्चित हो जाने वाला है। इस तरह संसार के इतिहास का व मानवेतिहास का क्षेत्र विशालरूप का व मानव धर्म विशाल व एक रूप का निश्चित होजाने से सह धार्मिता रूप विश्व बंधुत्व प्रेम बढेगा। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथ ही हमारे इतिहास के द्योतक एवं प्रमाण भूत शास्त्रीय ग्रंथ हैं, ऐसा सब की आस्तिकता बढने से जीवन कलह कम होगा तथा कालावधि गणित साधित ज्योतिष व गणित के एवं आकर्षण के नियमों के कई तत्वों का शोध लगते हुए इनके परिमाण और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म मान के निश्चित होंगे इसलिये संसार के विद्वानों के प्रति मेरी प्रार्थना है कि " इस मानवेतिहास का पूर्ण पता लगाने वाले अद्वितीय, अत्यंत पवित्र एवं परमोपयोगी खगोलीय ऐतिहासिक पद्धति रूप शोध को दत्त चित होकर पूर्णावस्था को पहुंचावें। क्योंकि यह कार्य एक व्यक्ति का नहीं है। अतएव यह कार्य अनेक विद्वानों से पूर्ण होवेगा ऐसी उम्मीद है।

विधान १२२.

उपर्युक्त इंद्र का चित्रा नक्षत्र वही है जोकि कन्या और तुला राशि में विभक्त हुआ माना गया है। उसी के ठीक ठीक मध्य में चित्रा योग तारा है. यह विभागात्मक राशि चक्र के एवं क्रांति वृत्त रूप तुला के मध्य में कांटे के स्थान में है। अतएव इसी की गणना से क्रांति वृत्त की दोनों बाजू १८०-१८० अंश बराबर तौले (नापे) जा सकती हैं। वेद में बहुतसी जगह इस इंद्र (चित्रा) को त्वष्टा देव कहकर इसके द्वारा ही सब नक्षत्रों के विभागों को नापना कहा है:—" **त्वष्टा नक्षत्र मभ्येति चित्रां सुभँससं युवतिं रोचमानाम्॥ निवेशयन्नमृतान्मृत्यँश्च रूपाणि पिंशन् भुवनानिविश्वा॥** " तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-१-१-९) अर्थात् ' क्रांति वृत्त के देव और मनुष्य संज्ञक पूर्वोत्तरार्ध विभागों का तथा संपूर्ण नक्षत्रों की रूप रेषा (१३°-२०' रूप) का निश्चय करता हुआ शोभित उरू वाली रूपवती देदीप्यमान युवती के हात में अत्यंत तेजस्वी प्रकाश को फेकता हुआ (आकृति देखिये) चित्रा तारा रूप त्वष्टा देव अभिमुख्य योग तारा रूप से विद्यमान (सदा स्थिर=खूंटी रूप अचल) होकर सबको रूप देने के लिये उदित होता है। तथा वाजस संहिता (अ. ३७) में भी ' **देव स्यत्वा सवितुः प्रसवेश्विनो र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ॥ आद्दे नारिरसि ॥ १ ॥** अर्थः—(सवितुः) हस्त नक्षत्र के अग्रिमवर्ति [प्रसवे] प्रसव नामक पुंज के निकट में (देवस्य) त्वष्टा देव की [नारिः] स्त्री रूप वाली चित्रा नामक [असि] तुम हो। ऐसी (त्वा) तुम्हारे को (अश्विनोः) अश्विनी नक्षत्र विभाग के (बाहुभ्यां) बाहुस्थानीय [अल्फा व बीटा एरेटिस] दोनों तारों से तथा [पूष्णों] रेवती नक्षत्र—

हाथ के स्थान में है। अर्थात् रेवत्यन्त और अश्विनी मेषारंभ स्थान चित्रा तारे के सन्मुख १८० में है। ऐसाही ऋग्वेद संहिता (८–६–११) में कहा है:— " सचन्त यदुषस: सूर्येण चित्रामस्य केतवो राम विन्दन् ॥ यन्नक्षत्रं ददृशेदिवोनपुनर्यतो न किरद्धानुवेद ॥ " भावार्थ यह है कि चैत्री पौर्णिमान्त में जब चित्रा तारे पर चन्द्र की स्थिति रहती है तब सूर्य की स्थिति राम (ल्याटिन भाषा में मेष राशी को राम कहा है) मेषारंभ पर होती है। इससे सिद्ध होता है कि राशिचक्र के आरंभ स्थान में कोई तारा न होकर दीप्तिमान चित्रा तारे के सन्मुख राशिचक्र का आरंभ स्थान मानने की परम्परा वैदिक काल से प्रचलित है।

उपसंहार १

इस रिपोर्ट के पूर्वार्ध में (१) आर्ष अनार्ष वाद, (२) दृक्प्रत्यय वाद, (३) धर्मशास्त्रीय ' बाण वृद्धि रसक्षय वादों का निर्णय और उत्तरार्ध में अयनांशवाद का निर्णय बताया है। राशि चक्र के आरंभ स्थान में रेवती या अश्विनी का कोई तारा नहीं था। झिटा पिशियम को रेवती कहते हैं सो गलत है। चित्राभिमुख बिन्दु से राशि चक्र की गणना होती है। चित्रा अचल तारा है दो तीन लाख वर्ष पूर्व वैदिक काल में यह क्रांति वृत्त पर था अब सिर्फ २ अंश दक्षिण शर हुआ है। तो भी आरंभ भोग में कुछ अन्तर नहीं पडता है। यही एक ऐसा तारा है कि जिसके द्वारा शुद्ध नाक्षत्र गणना स्थिर प्राय त्रिकालाबाधित समझी जाती है। जैसे घडी के घंटा मिनिट की रेखाएं तख्ती पर अचल अंकित रहते हैं। उनके ऊपर चल सुइयों के परिभ्रमण से जैसे ठीक ठीक कालज्ञान होता है इसी प्रकार क्रांतिवृत्त के ठीक ठीक मध्य में चित्रा को मानकर जो अन्यान्य तारों के भोग शर निश्चित हैं सो सब शुद्ध हैं। उन नक्षत्रों में अयन सम्पात के परिभ्रमण से तथा परम क्रांति जनित क्रांति भेद रूप दो सुइयों से तीन लाख वर्ष तक का किस प्रकार कालज्ञान होता है सो (पृष्ठ २०८–२०९) कोष्टक तथा लेखादि में बताया गया है। भारत वर्ष में ही एक मास के अहोरात्र (सतत दिनरात) कैसे होते थे सो समस्या परम क्रांति की चक्रगति द्वारा किस प्रकार हल होती है इत्यादि नए शोध इस रिपोर्ट में बताए गए हैं। इसके द्वारा पंचाङ्ग वाद तो मिट ही जाता है किन्तु पञ्चाङ्ग गणित का इतना उपयोग है कि बिना ज्योतिष के सहारे लाखों वर्ष तक इतिहास काल की मर्यादा नहीं जासक्ती है। इसलिये इतिहासज्ञ और पुराण वस्तु संशोधकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। कौन ऋषि किस वर्ष में हुआ है उसने ऋग्यजु सामाथर्वण के जो जो मंत्र कहे हैं उनमें कहीं खगोलिक स्थिति कितने वर्ष तक बराबर मिलती है इस प्रकार हजारों ऋषियों का कालानुक्रम एकलाख वेद मंत्रों की एक वाक्यता से लग सकता है। क्योंकि वेद यह प्राचीन कालिक ज्ञान कोषरूप ग्रंथ हैं। वैदिक ऋषियों ने आकाश में दिखाई देनेवाली स्थिति को नक्षत्र राशि देवताओं के रूपक देकर मंत्र कहे हैं। इसलिये वेद, यज्ञ, ज्योतिःशास्त्र, और पुराणादि एकही

खगोलिक ऐतिहासिक पद्धति के विभिन्न पहलू के दर्शक हैं। (टायटल पेज पर लिखे कुंडसम वाजपेय आदि के प्रमाण देखिये) गणित, शिल्पशास्त्रभूमिति, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिःशास्त्र के ज्ञान बिना वेदकालीन सुपर्णचिति आदि पंचांगों की रचना मालूम नहीं होसकती है। इतना वेद कालीन पंचांग का महत्व है।

[illegible]

ऐसे ही जो पंचांगों में युग प्रमाण लिखा जाता है सो भी श्रुति स्मृति सम्मत नहीं है। इस विषय में चिरंजीव गोपीनाथ चुलैटने एक " युग परिवर्तन " नामक पुस्तक लिखी है। उसके द्वारा कुल शंकाओं का समाधान होकर " संवत् १९८१ शाके १८४६ से वैवस्वत मनुका २८ वां कलियुग समाप्त होकर सत युगका आरंभ होगया है " ऐसा सप्रमाण सिद्ध किया है। वस्तुतः " समाज जिस समय अज्ञान की घोर निद्रामें सोता है वह कलियुग, विचार करे सो द्वापारयुग, अपने पैरों खडा होजाय सो त्रेतायुग और काम करने लग जावे सो कृतयुग" इस ऐतरेय ब्राम्हण क कथनानुसार अब यह संसार में ज्ञान क्रांतिकायुग है मनु· स्मृति भागवत आदि में कही युग व्यवस्था (४८०० वर्ष का कृत, ३६०० का त्रेता, २४०० द्वापर, १२०० कलि) के अनुसार उस ग्रंथ में निश्चित की है इससे संकल्प में ' एकोनात्रिंशत्तमे कृत युगे कृत प्रथम चरणे कहा जाना उचित है। ताकि मिथ्या कलियुग की भ्रांति से जो ' कलियुग मेंही दत्तक, तथा औरस नामक दो प्रकार के पुत्र गिने जाते हैं बाकी मिताक्षरा धर्म शास्त्र में लिखे द्वादशविधपुत्र दायभाग में परिगणित नहीं होसकते अतः आगे सतयुग के वर्ष लिखे जानेसे हिन्दू लॉ की तरफ न्यायाधीषोंका ध्यान आकृष्ट होगा और जिस कलिवर्ज्य प्रकरण के कारण गत १२०० वर्ष से भारत गारत होगया है यह सब बातें सतयुग के कारण त्यागी जावेंगी। इससे पंचांगकार भी सतयुग प्रवर्तक की उच्च श्रेणी में प्राप्त होकर बेड देशोपकारी पुण्य के भागी होवेंगे।

शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्षमान आदि २

श्रुतिस्मृति ग्रंथोक्त ज्ञानको प्रत्यक्ष वेध सिद्ध गणितमानसे मिलाकर जिस वर्षमानसे इतिहास का कालानुक्रम निश्चित होता है और ज्योतिः शास्त्र, आकर्षण शास्त्रीय कार्य कारण जनित तर्क शास्त्र से जो पुष्ट होता है। इस प्रकार सब प्रमाणों की एक वाक्यता से शुद्ध नाक्षत्र वर्षमान ३६५ दिन, १५ घटी, २२ पल ५७ विपल मानने से उच्च गति ११".९ युक्त केंद्रीय वर्ष ३६५.२५९७ दिन, अयनगति (५०".२ विषुत साम्पातिक वर्ष ३६५.२४२२ दिन इस प्रकार सब परिमाण निश्चित हो जाते हैं। इस विषय का स्पष्टीकरण (पूर्वार्ध पृ. १००–१०२) किया गया है। बाकी पंचांग साधन का शुद्ध सूक्ष्म दृग्गणितैक्य गणित ग्रह लाघव चालन में बताया गया है। इसलिये पंचांगकारों से प्रार्थना है कि जहांतक प्रभाकर सिद्धान्त, करण, और सारणी ग्रंथ प्रकाशित न होवें वहांतक रिपोर्ट में लिखे

कोष्टकों से या उपलब्ध शुद्ध नाक्षत्र ग्रंथों से पंचांग साधन करें, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है। मैंने पूर्ण विचार कर देखलिया है कि शुद्ध नाक्षत्र पद्धति अत्यंतही उपयोगी है। जिस पद्धति को कायम रखने के लिये श्रुतिस्मृति पुराणादि के बहुधा समस्त प्रमाण एवं मंत्र कहे गये हैं। समस्त धार्मिक कार्य; नक्षत्रों के ही आधार से किये जाते हैं। उसीके रक्षण का लाभ स्वरूप आज हमें तीनलाख वर्षका इतिहास ज्ञात होने लगा है। जिन लोगोंने इस पद्धति को त्याग दिया है तबसे उनका प्राचीन इतिहासही नष्ट होगया है। वास्ते हमारा आद्य कर्तव्य है कि हमारे पूर्वजों की इस पूंजी को कायम रखें। वह किस प्रकार कायम रह सकती है। वह पंचांग गणित के इस रिपोर्ट में बताया गया है। अन्यथा दूसरे गणित के पंचांगों से वह कायमही नहीं रह सकती। वास्ते उसका अंगीकार करना चाहिये, इतनाही नहीं तो हमारे शोधोंको प्रकाश में लाकर संसार में श्रुतिस्मृति सम्मत सर्व सिद्धान्तैक्य पंचांग का प्रचार करें ताकि भारत जैसे पहले संसार का ज्ञानदाता गुरु कहा गया है। वैसे ही अबभी इसका गौरव वेदोंका वास्तविक अर्थ उक्त शुद्ध नाक्षत्रपद्धति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। इसलिये आप शुद्ध पंचांग के प्रचार द्वारा भारत के गौरव को बढावेंगे ऐसी मेरी अन्तिम प्रार्थना है। और श्रीमन्त हुलकर सरकार का सुयश इतिहासपटलपर सुवर्णाक्षरों में हजारों वर्षतक अंकित रहे, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

भारतीय नाक्षत्र मान पद्धति

अर्थात्

वेदोक्त नक्षत्र विज्ञान

मंगलाचरण चित्रानक्षत्र देवता वाक्देवी सरस्वती की प्रार्थना के मूलमंत्र

ॐ अनन्तामन्तादधिनिर्मितां महीम्। यस्यांदेवा अदधु र्भोजनानि ॥ एकाक्षरां द्विपदां षट्पदांच वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे ॥ १ ॥ वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचंगंधर्वाः पशवो मनुष्याः ॥ वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता सानोहवं जुषतामिन्द्रपत्नी ॥ २ ॥ वागक्षरं प्रथम जाऋतस्य वेदानांमाता ऽमृतस्य नाभिः ॥ सा नो जुषाणोपयज्ञमागात् अवन्तीदेवी सुहवा मे अस्तु ॥ ३ ॥ य मृषयोमन्त्रकृतोमनीषिणः अन्वैच्छन्देवास्तपसा श्रमेण ॥ तां देवीं वाचं हविषायजामहे सानो दधातु सुकृतस्यलोके ॥ ४ ॥ चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणाये मनीषिणः ॥ गुहात्रीणि निहतानेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ५ ॥ (तैत्तरीय ब्राम्हण २।८।८।४-५ ऋ. सं. २,३,३२) द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणिनभ्यानि क उतच्चिकेत ॥ तस्मिन्त्साकं त्रिशतानशंकवोर्पिताः षष्ठिर्नचला चलासः ॥ ६ ॥ योरत्नधावसुविद्यः सुदत्रः सरस्वतितमिह धातवे कः ॥ ७ ॥ अतोवयमंतमेभिर्युजानाः स्वनक्षत्रैभिस्तन्वः शुंभमानाः ॥ ८ ॥ मन्मानिचित्राऽअपिवातयन्तऽएषांभूत न वेदामऽऋतानाम् ॥ ९ ॥

एषायासीष्ट तन्वेवयां विद्या मेषं वृजनंजीरदानुम् ॥ १० ॥ (ऋक्संहिता २।३।२२-२६) इह त्वष्टारमाग्रियं विश्वरूपमुपह्वये अस्माकमस्तु केवलः (ऋक्सं. १।१।२५) श्रीश्चते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णान्निषाण मुम्मऽइषाण सर्वलोकंमऽइषाण (वाजस सं. ३१-२२) प्रातर्युजा विबोधयाऽअश्विना वेह गच्छतान् ॥ अस्य सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥ विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ॥ सवितारं नृचक्षसम् ॥ ५ ॥ अग्ने पत्नी रिहावह देवाना सुशती रूपत्वष्टारं सोमपीतये ॥ ६ ॥ (ऋक्संहिता १.२.५) इत्यतो यजुर्वेदोक्त आश्विन्यादिक्रमः स्वीकृतः । दंडकोक्ता यजुर्वेदी या एव मंत्राः अथर्वण संहिता तैत्तिरीय ब्राम्हणोक्तमंत्रेभ्यः राजमार्तंडोक्त श्लोकैश्च सदिताऽत्रालिखिताः स्युरिति जानीते ।

१ आश्विनी नक्षत्र अश्व युजो देवता तारा ३ अश्वमुख वद्रूपम् । अश्विनोरश्वयुजौ ग्रामः परस्तात्सेवनावस्तात्) वृष (वासावृक्ष) समिधा “ आश्विनी ” तुरगो, वाजी, तुरंगश्च तुरंगमः ॥ घोटकोऽश्वोहयोवाहो दस्रोयुग्मं निगद्यते ॥ १ ॥ प्रार्थना मंत्राः (तै. ब्रा. ३-१-२-११) आहुतिश्च ।

ॐ अश्विनातेजसाचक्षुः प्राणेन सरस्वतीव्वीर्यम् ॥ व्वाचेन्द्रोबलेनेन्द्रायदधुरिन्द्रियम् (य. वे. सं. २०-८) ॥ १ ॥ तदश्विना वश्वयुजोपयातां, शुभं गमिष्ठौ सुयमेभिरश्वैः ॥ स्वंनक्षत्र ऽ हविषायजन्तौ, मध्वासम्पृक्तौ यजुषासमक्तौ ॥ यौ देवानांभिषजौ हव्यवाहौ, विश्वस्यदूताव मृतस्यगोपौ ॥ तौ नक्षत्रं जुजुषाणोपयातां, नमोश्विभ्यां कृणुमोऽश्वयुग्भ्यां ॥ १ ॥ (१) अश्विभ्यां ऽ स्वाहा, (२) अश्वयुग्भ्यांस्वाहा । (३) श्रोत्रायस्वाहा (४) श्रुत्यै स्वाहा (तै. ब्रा. ३-१-६)

१ भरणी नक्षत्रं यमोदेवता । तारा ३ योनिवद्रूपम् (यमस्यापभरणीः । अपकर्षन्तः पर स्तात्, अपवहन्तः अवस्तात्) सकल (चंदन) समिधा । “ यमोन्तकः कृतान्तश्च याम्यः प्रेतपतिः स्मृतः ॥ भरणीपलभादेशोग्त्यो दाधिपतिस्तथा ॥ २ ॥

२ यमदेवता । भरणी प्रार्थनामंत्राः यमायत्वाङ्गिरस्वते पितृमतेस्वाहा ॥ स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्म्मऽपित्रे ॥ (य. वे सं. ३८।९ , ॐ अपपाप्मानं भरणीभर्न्तु, तद्यमोराजा भगवा- न्विचष्टाम् ॥ लोकस्यराजा महतोमहान्हि, सुगंनः पन्थामभयंकृणोतु ॥ १ ॥ यस्मिन्नक्षत्रे यम- एतिराजा, यस्मिन्नेनमभ्याषिंचन्तदेवाः ॥ तदस्यचित्रं हविषायजाम, अपपाप्मानं भरणीभर्न्तु ॥२॥ योत्रजुहोति यमायस्वाहा, अपभरणीभ्यःस्वाहा, राज्यायस्वाहाऽभिजित्यस्वाहेति ॥

३ कृत्तिकानक्षत्रं अग्निर्देवता । तारा ६ क्षुराकृतिः । (अग्नेः कृत्तिकाःशुक्रंपुरस्ताज्ज्योतिः रवस्ताम् उदंबरसमिद्) बहुलोदहनोवन्हिः पावकोऽग्निर्हुताशनः । हुतभुगनलाऽर्तिष्मान्रोहि- तश्चैवकृत्तिका ॥ ३ ॥ उदुंबरोजन्तुफलोयज्ञांगो हेमदुग्धकं इतिसमिद्नामानि ॥ ४ ॥

२ अग्नेःकृत्तिकायाः प्रार्थनामंत्राः (तै. ब्रा. ८५७) अयमग्निःसहस्त्रिणोव्वाजस्य- शतिनस्पतिः ॥ मूर्द्धाकवीरयीणाम् ॥ १ ॥ (य. वे. सं. १९-२१) ॐ अग्निनः पातुकृत्तिका

नक्षत्रं देव मिन्द्रियम् ॥ इदमासां विचक्षणं, हविरासंजुहोतन ॥ १ ॥ यस्यभांति रश्मयो यस्यकेतवः यस्येमाविश्वाभुवनानिसर्वा ॥ सकृत्तिकाभिरभिसंवसानः अग्निर्नोदेवः सुवितेदधातु॥२॥ अत्रजुहोति अग्नयेस्वाहा, कृत्तिकाभ्यः, अंबायै, दुलायै, नितत्न्यै, अभ्रयन्त्यै, मेघयन्त्यै, चुपुणीकायै स्वाहेति, (तै. ब्रा. पृ. ८८५)

४ रोहिणी नक्षत्रं प्रजापति देवता ॥ तारा ५ शकटाकारं (प्रजापतेरोहिणी । अ पः परस्तादोषधयोवस्तात्) जंबुक (जामुनसमित्र) " रोहिणी पद्मयोनिश्च ब्रह्मा कमल संभवः ॥ पितामहोऽब्जजोधाता विरञ्चिश्चप्रजापतिः ॥ १ ॥ चतुर्मुखश्चतुर्वक्त्रः स्रष्टापद्मासनतस्था ॥ आत्मभूः परमेष्ठीचसुरज्येष्ठोमराग्रजः ॥ २ ॥ प्रार्थनामंत्राः- ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतऽ सुरुचोव्वेनऽआवःसबुध्न्याउपमाअस्याविष्ठाःसतश्चयोनिमसतश्चविवः[य. वे. सं. १३।३]॥१॥ प्रजापते रोहिणीवेतुपत्नी, विश्वरूपाबृहती चित्रभानुः ॥ सानोयज्ञस्य सुविते दधातु, यथा जीवेम शरदः सवीराः ॥ २ ॥ रोहिणी देव्युदगात्पुरस्तात् । विश्वारूपाणि प्रतिमोदमानाः ॥ प्रजापतिꣳहविषावर्धयन्ती । प्रियादेवानामुपयातु यज्ञम् ॥ ३ ॥ प्रजापतयेस्वाहा । रोहिण्यै-स्वाहा । रोचमानायैस्वाहा । प्रजाभ्यःस्वाहा (प्रियमात्वर्तते प्रियेण गच्छत इतिफलं)

५ मृगशीर्ष नक्षत्रं सोमोदेवता । तारा ३ हरिणमुखाकृतिः (सोमस्येन्वका-इल्वला-वितताानि परस्तात् वयन्तोवस्तात्] खदिर समिधा । " सौम्योमृगशिराः सोमो निशानाथो निशापतिः ॥ मृगांकः शीतरश्मिश्च रात्रीशोरजनीपतिः ॥ १ ॥ इन्दुर्निशाकरश्चन्द्रः शशांच-रोहिणीपतिः ॥ प्रार्थनामंत्राः— सोमोधेनुं सोमोऽअर्वन्तमाशुꣳसोमोवीरंकर्मण्यन्ददाति ॥ सादन्यंविदथ्यꣳसमेयम्पितृश्रवणंयोददाशदस्मै ॥ १ ॥ (य. स. ३४-२१) सोमोराजा मृग-शीर्षेण आगन् । शिवंनक्षत्रं प्रियमस्यधाम । आप्यायमानो बहुधाजनेषु । रेतःप्रजांयजमानेदधातु ॥ २ ॥ यत्ते नक्षत्रं मृगशीर्षमस्तिप्रियंराजन् प्रियतमं प्रियाणाम् ॥ तस्मैतसोमहविशाविधेम । शंनएधिद्विपदशंचतुष्पदे ॥ ३ ॥ सोमायस्वाहा । मृगशीर्षायस्वाहा । इन्वकाभ्यः स्वाहोषधाभ्यः स्वाहा । राज्यायस्वाहाऽभिजित्यै स्वाहेति ॥

६ आर्द्रानक्षत्रंरुद्रो देवता । तारा १ माणिक्याभम् (रुद्रस्यबाहूमृगयवः परस्ता द्विक्षरावस्तात्) कलिवृक्ष (बेहेडेकावृक्ष) " आर्द्रा, रौद्रः शिवः, शूली, शंकरश्चन्द्र शेखरः ॥ सोमभृ त्र्यंबकोभर्गश्चंडीशोगिरिजापतिः ॥ १ ॥ महेश्वरो महादेवःपार्वती पतिरीश्वरः ॥ श्रीकंठो नीलकंठश्चगोपतिर्वृषवाहनः ॥ २ ॥ विभीतकः कर्षफले । भूतावासः कलिःस्मृतः ॥ ३ ॥ प्रार्थनामत्राः—ॐनमस्तेरुद्रमन्यवऽउतोतऽइषवेनमः ॥ बाहुभ्यामुततेनमः ॥ १ ॥ [य. स. १६-१] ॐआर्द्रयारुद्रःप्रथमानएति । श्रेष्ठो देवानांपतिरघ्नियानाम् ॥ नक्षत्र मस्य हविषा विधेम । मानःप्रजाꣳरीरिषन्मोत वीरान् ॥ २ ॥ हेतीरुद्रस्य परिणोवृणक्तु आर्द्रानक्षत्रंजुषताꣳ हविर्नः ॥ प्रमुञ्चमानौदुरितानि विश्वा । अपाघशꣳसंनुदतामरातिम् ॥ ३ ॥ रुद्रायस्वाहा । आर्द्रायैस्वाहा । पिन्वमानायैस्वाहा । पशुभ्यस्वाहेति ॥

७ पुनर्वसू नक्षत्रं अदितिर्देवता । तारा ४ गृहसदृशम् (अदित्यैपुनर्वसूवात: परस्ता दार्द्रमवस्तात्) वंशवृक्षसमिधा । " अदितिर्देवमाता च स्मृतापुनर्वसुर्बुधैः ॥ प्रार्थनामंत्राः— ॐ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदिति र्माता सपिता सपुत्रः ॥ विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदिति र्जनित्वम् ॥ १ ॥ (य स १६-१) ॐ पुनर्नो देव्यदितिः स्पृणोतु । पुनर्वसून: पुनरेतां यज्ञम् । पुनर्नो देवा अभियन्तु सर्वे । पुनःपुनर्वोहविषायजामः ॥ १ ॥ एवान देव्य दितिरनर्वा । विश्वस्यभर्त्री जगतः प्रतिष्ठा । पुनर्वसूहविषावर्धयन्ती प्रियं देवाना मप्येतुपाथः ॥२॥ अदित्यैस्वाहा पुनर्वसुभ्यःस्वाहा । भूत्यैस्वाहा । प्रजायैस्वाहा

८ पुष्यनक्षत्रं बृहस्पति र्देवता । तारा ३ बाणसदृश (बृहस्पतेस्तिष्यः जुह्वन्तः परस्ता द्यजमानावस्तात्) पिप्पल समिधा । " गुरुःपुष्यःसुरज्येष्ठो देवमंत्री कविः स्मृतः ॥ बृहस्पति सुराचार्यो वागीशश्च सुरार्चितः ॥ वाचस्पतिः सुरपूज्योऽपि सुरेज्य स्त्रिदशार्चितः । २ प्रार्थना मंत्राः । ॐ वाचस्पतये परिस्त्रवृष्णोअंशुभ्यां गभस्ति पूतः ॥ देवोदेवेभ्य पवस्व येषाम्भा- गोसि ॥ ८ ॥ (य. सं. ७ । १ ॐ बृहस्पतिः प्रथमंजायमानः तिष्यंनक्षत्र मभिसंबभूव श्रेष्ठो देवानां पृतनासुजिष्णुः दिशो न सर्वा अभयं नोअस्तु ॥ १ ॥ तिष्यःपुरस्ता दुतमध्यतोनःबृहस्प- तिर्नः परिपातुपश्चात् ॥ बाधेतां द्वेषो अभयंकृणुतां. सुवीर्यस्य पतयःस्याम ॥२॥ बृहस्पतयेस्वाहा । तिष्यायस्वाहा ॥ ब्रह्मवर्चसायस्वाहेति ॥

९ आश्लेषा नक्षत्रं सर्पोदेवता । तारा ५ चक्राकारं । (सर्पाणामाश्रेषाः । अभ्यागच्छन्तः परस्तात् । अभ्यानृत्यन्तोवस्तात्) नागवृक्ष (पडोल) आश्लेषाभुजगः सर्पोदंदशूकोभुजंगमः ॥ चक्षुःश्रवाफणीनागो भुजंगफणभृत्तथा ॥ उरगोऽहिर्विषाग्निश्च विषधारोऽथ पन्नगः ''प्रार्थनामंत्राः ॐ नमोस्तु सर्पेभ्यो येकेचपृथिवीमनु ॥ येऽअन्तरिक्षेयेदेवितेभ्यः सर्पेभ्योनमः ॥ ९ ॥ (य. सं. १३ । ६) ॐ इदं सर्पेभ्यो हविरस्तुजुष्टं । आश्लेषा येषा मनुयंति चेतः ॥ येअंतरिक्षं पृथिवीं क्षियन्ति । तेनः सर्पासोहवमागमिष्ठाः । येरोचने सूर्यस्यापि सर्पाः । येदिवंदेवीमनु संचरंति । येषामाश्लेषा अनुयंति कामं । तेभ्यः सर्पेभ्यो मधुमज्जुहोमि ॥ २ ॥ सर्पेभ्यःस्वाहा, । आश्रेषाभ्यः स्वाहा । दंदसूकेभ्यःस्वाहा ॥

१० मघानक्षत्रं पितरोदेवता । तारा ५ गृहसदृशं (पितॄणां मघाः रुदन्त परस्तादपभ्रं- शोवस्तात्) वटन्यग्रोध समिधा । " पितृदेवो मघा नित्यंतातस्तुजनकः पिता ॥ १ ॥

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्य स्वधानमः ॥ अक्षन्नपितरो मीमदन्तपितरोततृपन्त पितरः पितरःशुन्धद्ध्वम् ॥ १० ॥ (य. सं. १९।३६)

ॐ उपहूताः पितरोयेमघासु । मनोजवसः सुकृतः सुकृत्याः ॥ तेनोहवमागमिष्ठाः स्वधा- भिर्यज्ञं प्रयतंजुषताम् ॥ १ ॥ ये अग्निदग्धायेऽनग्निदग्धाःयेऽमुंलोकं पितरःक्षियन्ति ॥ यांश्च विद्मया ँउचनप्रविद्म मघासुयज्ञ ँ सुकृतंजुषन्ताम् ॥ २ ॥ पितृभ्यः स्वाहा । मघाभ्यःस्वाहा । अनघाभ्यःस्वाहा । गदाभ्यःस्वाहा । अरुन्धतीभ्यःस्वाहेति ॥

११ पूर्वा फाल्गुनीनक्षत्रं अर्यमा देवता। तारा २ शय्याकारं समिधा। "अर्यमातु पूमान्सूर्ये पितृदेवान्तरेऽपि च। ज्ञात्वैवमन्यदप्यूह्य मर्यमोत्तर फल्गुनी।" प्रार्थना मन्त्राः

ॐ दैव्यावध्वर्यूऽआगत ँरथेनसूर्यत्वचा॥ मध्वायज्ञ ँसमञ्जाथे। तंप्रत्नथायंवेन श्चित्रन्देवानाम् ११ (य. सं. ३३।७३)

ॐ गवांपतिः फल्गुनीनामसित्वं, तदर्यमन्वरुणस्यामित्रचारु, तंत्वावयं सनितारं सनीनां जीवाजीवन्तमुपसंविशेम॥ १॥ येनेमाविश्वाभुवनानि सजिता, यस्य देवाअनुसंयंति चेतः॥ अर्यमाराजाऽजरस्तुविष्मान्, फल्गुनीनामृषभोरोरवीति॥२॥ अर्यम्णस्वाहा। फल्गुनीभ्यांस्वाहा। पशुभ्यः स्वाहेति

१२ उत्तरा फल्गुनीनक्षत्रं भगो देवता। तारा २ मंचकाभं (भगस्योत्तरे वहतयः पुरस्ताद्वहमानाअवस्तात्) प्लक्ष (पाकर) समिधा" भगाख्यः पूर्वफल्गुनी॥ उपस्थोपे सस्थानेयोनिः शेफः सुखप्रदः॥ १॥ गर्भनिर्गमनद्वारंगर्भः पंथास्मृतोबुधैः॥

ॐ भगप्रणेता भग सत्यराधो भगेमान्धिय मुदवाददन्नः॥ भगप्रणोजनयगोभिरश्वै- र्भगप्रनृभिर्न्नृवन्तः स्याम १३ (य. सं. ३४।३६)

ॐ श्रेष्ठोदेवानां भगवोभगासि। तत्वाविदुः फल्गुनीस्तस्यवितात्। अस्मभ्यंक्षत्रमजरँ- सुवीर्यम् गोमदश्ववदुपसन्नुदेह॥ १॥ भगोहदाता भगइत्प्रदाता भगोदेवी फल्गुनीराविवेश॥ भगस्येत्तंप्रसवं गमेम यत्रदेवैः सधमादंमदेम॥ २॥ भगाय स्वाहा। फल्गुनीभ्यां स्वाहा। श्रैष्ठ्याय स्वाहेति॥ किंच भगोअर्यमासवितापुरंधिः [पारस्कर गृह्यसूत्रं] [वर्तमान ज्योति ग्रंथोंमें पूर्वोत्तरा फा. भग. अर्यमा देवता लिखे हैं।

१२ हस्तनक्षत्रं सविता देवता। तारा संख्या ५ हस्ताकारम्। देवस्यसवितुर्हस्तः। प्रसव परस्तात्सनिरवस्तात। अरिष्ट वैकंकतसमिधा। "हस्तोर्कः सवितासूर्यः प्रचण्ड रुचिरुष्णगुः तरणिस्तपनोभनुर्दिननाथस्तिथीश्वरः॥ दिवाकरः सहस्रांशु र्मार्तण्डोमिहिरोरविः॥ १॥ सप्तः सप्तिः स्मृतोभास्वानादित्योब्रह्मरवच॥ निशान्तकोनिशारिः स्यादिनेशोध्वान्तनाशनः॥ २॥

ओं धिष्ण्याड्बृहत्पिबतु सोम्यम्मद्धव युर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्॥ व्वातजूतायाऽआभरक्ष- तिस्मनाप्रजाः पुपोषपुरुधाविराजति॥ १३॥ (य. सं. ३३।३०)

ॐ आयातुदेवः सवितोपयातु हिरण्ययेन सुवृतारथेन॥ वहन्हस्तं सुभगं विद्मनापसम् प्रयच्छंतंपपुरिंपुण्यमच्छ॥ १॥ हस्तः प्रयच्छत्वमृतंवसीलः दक्षिणेन प्रतिगृभ्णीमएनत्॥ दातार मद्यसविता विदेय योनो हस्ताय प्रसुवातियज्ञम्॥ २॥ सवित्रेस्वाहा। हस्ताय, ददते, पृणते, प्रयच्छते, प्रतिगृभ्णते स्वाहेति॥

१४ चित्रा नक्षत्रंत्वष्टादेवता। तारा १ इंद्रनीलमणि मौक्तिकाकारम् (इंद्रस्यचित्रा) ऋतंपरस्तात्। सत्यमवस्तात्। श्रीवृक्ष (बेलफलकावृक्ष) समिधा। प्रार्थना मंत्राः

ॐत्वष्टातुरीयोऽअद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना॥ द्विपदा च्छन्दऽइन्द्रिय मुक्षागौर्नवयोदधुः (य. सं. २१। २०

ॐ त्वष्टानक्षत्रमभ्येति चित्रां सुभ ऽ संसंयुवतिंरोचमानां ॥ निवेशयन्नमृतान्मर्त्या ऽ श्चरूपाणि पिंशन् भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥ तन्नस्त्वष्टा तदु चित्रा विचष्टां, तन्नक्षत्रं भूरिदा अस्तुमह्यम् ॥ तन्नप्रजांवीरवतीं सनोतु गोभिर्नोअश्वैः समनक्तुयज्ञम् ॥ २ ॥ त्वष्ट्रे स्वाहा । चैत्राय स्वाहा । प्रजायैस्वाहेति ॥

१५ स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता । तारा १ प्रवालोपमम् (वायोनिष्टया । व्रततिः परस्ता दसिद्धिरवस्तात् । अर्जुन समिधा त्वाष्ट्रीश्चित्रा थ वाताख्या स्वाती परम दैवतम् ॥ समीरः श्वसनोवायुमारुतोऽथ समीरणः ॥ प्रार्थना मंत्राः

ॐ पीवोऽअन्नारयिवृधः समेधाःश्वेतः सिषाक्ति नियुता मभिश्रीः ॥ तेन्वायवे समनसो वितस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्या निचक्रुः ॥ १५ ॥ (य. सं. २७ । २३

ॐ वायुर्नक्षत्र मभ्येति निष्टयां तिग्मशृंगो वृषभो रोरुवाणः । समीरयन्भुवना मातरिश्वा अपद्वेषांसि नुदता मरातीः । ॥ १ ॥ तन्नो वायुस्तदु निष्टयायै शृणोतु तन्नक्षत्रं भूरिदं अस्तु मह्यम् ॥ तन्नो देवासो अनुजानंतु कामं यथा तरेम दुरितानिविश्वा ॥ २ ॥ वायवस्वाहा । निष्टयायै स्वाहा । कामचाराय स्वाहा । अभिजित्यैस्वाहेति ।

१६ विशाखा नक्षत्रं इंद्राग्नी देवता । तारा ४ तोरणाभं (इन्द्राग्निंयोर्विशाखे । युगानिपरस्ता त्कृषमाणा अवस्तात्) आहिक (अगस्त) समिधा " इन्द्राग्निश्च विशाखाग्नी विशाखश्च निगद्यते ॥ प्रार्थना मंत्राः

ॐ इन्द्राग्नीऽआगत ऽ सुतंगीर्भिर्नभोवरेण्यम् ॥ अस्यपातन्धियेषिता ॥ १६ ॥ (य. सं. ७ । ३९

ॐ दूरमस्मच्छत्रवोयंतुभीताः तदिंद्राग्नीकृणुतांत द्विशाख ॥ तन्नोदेवा अनुमदन्तु यज्ञं पश्चात्पुरस्तादभयंनोअस्तु ॥ १ ॥ नक्षत्राणामधिपत्नीविशाखे श्रेष्ठा विन्द्राग्नीभुवनस्यगोपौ ॥ विषूचः शत्रूनपबाधमानौ अपक्षुधंनुदतामरातिम् ॥ २ ॥ पूर्णापश्चादुत पूर्णापुरस्तात् ॥ उन्मध्यतः पौर्णमासीजिगाय ॥ तस्यांदेवाअधिसंवसंत उत्तमेनाकइहमादयन्ताम् ॥ ३ ॥ पृथ्वी-सुवर्चायुवतिः सजोषाः पौर्णमास्यु दगाच्छोभमाना ॥ आप्यायन्ती दुरितानि विश्वाउरूंदुहां यजमानाययज्ञम् ॥ ४ ॥ इन्द्राग्निभ्यांस्वाहा । विशाखाभ्यांस्वाहा । श्रेष्ठयायस्वाहा । अभिजित्यै-स्वाहा । पौर्णमास्यैस्वाहा । कामायस्वाहा । गत्यैस्वाहेति ।

१७ अनुराधानक्षत्रं मित्रोदेवता । तारा ४ बलिसदृशं [मित्रस्यानूराधाः । अभ्यारोह त्परस्तात् । अभ्यारूढमवस्तात्] बकुल [मोलसिरि] समिधा " अनुराधा स्मृतो मैत्रो वैसाख-स्यानुजःस्मृतः ॥ ध्यान मंत्राः

ॐ नमो मित्रस्यवरुणस्य चक्षसे महोदेवायतदृतंसपर्यत ॥ दूरेदृशेदेवजातायकेतवेदिवस्पुत्रायसूर्या यश ऽ सत १७ [य. सं. ४।३५]

ॐ ऋध्यास्महव्यैर्नमसोपसद्य । मित्रंदेवंमित्रधेयंनोअस्तु ॥ अनुराधान्हविषावर्धयन्तः शतं-जीवेमशरदः सवीराः ॥ १ ॥ चित्रंनक्षत्र मुदगात् पुरस्तात् ॥ अनुराधास इति यद्वदन्ति ॥

ॐ सद्युहस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशीस\`\`स्रष्टासयुधऽइन्द्रोगणेन । स\`\`सृष्टजित्सोमपाबाहुवीर्यो । शर्ध्युग्रधन्वाप्रतिहिताभिरस्ता ॥ १८ ॥ (य. सं. १७।३५

ॐ इन्द्रोज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति । यस्मिन्वृत्रंवृत्रतूर्येततार । तस्मिन्वयममृतत्वंदुहना : क्षुधंतरेमदुरितिंदुरिष्टिम् ॥ १ ॥ पुरंदराय वृषभायधृष्णवे । अषाढायसहमानाय मीढुषे ॥ इन्द्रायज्येष्ठामधुमद्दुहाना । उरुंकृणोतुयजमानाय लोकम् ॥ २ ॥ इन्द्रायस्वाहा । ज्येष्ठायैस्वाहा । ज्यैष्ठ्यायस्वाहा अभिजित्यैस्वाहेति ।

१९ मूलंनक्षत्रं निऋतिर्देवता । तारा ११ सिंहपुच्छाकारं (निऋत्यैमूलवर्हिणी । प्रतिभंजंत: परस्तात् । प्रतिसृणन्तोऽवस्तात् । सर्ज (शर) समिधा ॥ राक्षसोनिऋतिर्मूलम् स्यादलक्ष्मीस्तु निर्ऋतिः ॥ राक्षसः कौणपः क्रव्यात्क्रव्यादोस्रपआशरः ॥ १ ॥ रात्रिंचरोरात्रिंचरः कर्बुरोनिकषात्मजः ॥ यातुधानः पुण्यजनोनिऋतौयातुराक्षसी " ध्यानमंत्राः

ॐ मातेवपुत्रम्पृथिवी पुरुष्यमग्नि\`\` स्वेयोनावभारुखा ॥ तांविश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ॥ (य. सं. १२।६१)

ॐ मूलंप्रजांवीरवतीं विदेय पराच्येतुनिर्ऋतिः पराचाः । गोभिर्नक्षत्रंपशुभिः समक्तं, अहर्भूयात्यजमानायमह्यम् ॥ १ ॥ अहर्नोअद्यसुवितेदधातु मूलंनक्षत्रमितियद्वदन्ति ॥ पराचींवाचानिऋतिंनुदामि शिवंप्रजायै शिवमस्तुमह्यम् ॥ २ ॥ प्रजायैस्वाहा । मूलाय स्वाहेति

२० पूर्वाषाढा नक्षत्रंआपोदेवता । तारा २ गजदंतसदृशं (अपांपूर्वाषाढाः । वर्चःपरस्तात्समितिरवस्तात्) वंजुल (जलवेतस) समिधा " पूर्वाषाढाजलाह्वयः । " आपःस्त्रीभूम्निवार्वारि सलिलंकमलंजलं ॥ पयःकीलालममृतं जीवनंभुवनंवनम् ॥ १ ॥ कबन्धमुदकंपाथः पुष्करंसर्वतोमुखं अम्भोर्णस्तोय पानीयनीरक्षीरांबुशंबरम् ॥ २ ॥ प्रार्थनामंत्राः

ॐअपाघमपकिल्विषमपकृत्यामपोरपः अपाम्मार्गत्वमस्मदप दुःस्वप्न्य\`\`सुव॥ २०॥[य.सं. ३५।११] यादिव्याआपः पयसासंबभूवुः । याअन्तरिक्षउतपार्थिवीर्याः । यासामषाढाअनुयन्तिकामं । तानआपःश\`\`स्योनाभवन्तु ॥ १ ॥ याश्च कूप्या याश्च नद्याः समुद्रियाः । याश्च वैशन्ती रुत पासचीर्याः । यासामषाढा मधुभक्षयन्ति । ता न आपः श\`\`स्यो ना भवन्तु ॥ २ ॥ अद्भ्यःस्वाहा । आषाढाभ्यः स्वाहा । समुद्रायस्वाहा । कामायस्वाहा । अभिजित्यैस्वाहेति ।

२१ उत्तराषाढा नक्षत्रं विश्वेदेवादेवता । तारा २ मंचक सदृषं [विश्वेषां देवानामुत्तरा अभिजयत्परस्तादभिजितमवस्तात्] पनस [कटहर] समिधा " विश्वेचाप्युत्तराषाढा वैश्वदेवश्चकथ्यते " ध्यानमंत्राः

ॐविश्वेऽअद्यमरुतोविश्वऽऊतीविश्वेभवन्त्वग्नयः समिद्धाः । विश्वेनोदेवाऽअवसागमन्तु विश्वमस्तुद्रविणंवाजोऽअस्मे ॥ २१ ॥ [य. सं. १८।३१ ॥ ३३।५२]

ॐतन्नोविश्वेउपशृण्वन्तुदेवाः । तदषाढाअभिसंयन्तुयज्ञम् । तन्नक्षत्रंप्रथतांपशुभ्यः । कृषिर्वृष्टिर्यजमानायकल्पताम् ॥ १ ॥ शुभ्राःकन्यायुवतयःसुपेशसःकर्मकृतः सुकृतोवीर्यावतीः । विश्वान्देवान्हविषावर्धयन्तीः । अषाढाः काममुपयान्तुयज्ञम् ॥ २ ॥ विश्वेभ्यो देवेभ्यःस्वाहा । अषाढाभ्यःस्वाहा । अनपजय्यायस्वाहा । जित्यैस्वाहेति ॥

२२ अभिजिन्नक्षत्रंब्रह्मादेवता । तारा ३ त्रिकोणसदृशम् [अभिजिन्नामनक्षत्रं । उपरिष्टादशाढानाम्अवस्तात् श्रोणायै । तै. ब्रा. १-५-२] " ब्रम्हात्मभूः सुरज्येष्ठ परमेष्ठी पितामहः ॥ हिरण्यगर्भोलोकेशःस्वयंभूश्चतुराननः ॥ १ ॥ ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्यधीमहि ॥धियोयोनः प्रचोदयात् ॥ २२ ॥ [य. सं. ३।३५ ॥ २२।९] ॐ यस्मिन्ब्रम्हाऽभ्यजयत्सर्वमेतत् । अमुंचलोकमिदमूचसर्वम् । तन्नोनक्षत्रमाभिजिद्विजित्य श्रियंदधात्वहृणीयमानम् ॥ १ ॥ उभा लोकौ ब्रम्हणा संजितेमौ । तन्नोनक्षत्रमभि जिद्विचष्ठाम् ॥ तस्मिन्वयं पृतनाः संजयेम । तन्नोदेवासोअनुजानन्तुकामम् ॥ २ ॥ ब्रह्मणेस्वाहा । अभिजितेस्वाहा ब्रह्मलोकायस्वाहा । अभिजित्येस्वाहेति ।

२३ श्रवण नक्षत्रं विष्णुर्देवता । तारा ३ त्रिचरण सदृशं (विष्णोः श्रोणा । पृच्छमाना परस्तात्पन्था अवस्तात्.) " श्रवणो माधवो विष्णुरच्युतः केशवो हरिः ॥ श्रीधरो दानवारिश्च शार्ङ्गपाणिश्च वामनः ॥ श्रोणस्त्रिविक्रमस्ताक्षेपक्षाच्छादित बालकः ॥ " अर्क (आक) समिधा । ध्यान मंत्राः ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समूढमस्य पा ँसुरेस्वाहा (वा. सं. ५'१५) श्रण्वन्ति श्रोणाममृतस्य गोपां । पुण्यामस्या उपशृणोमिवाचम् ॥ महीं देवीं विष्णुपत्नीमजूर्याम् । प्रतीचीमेना ँहविषायजामः ॥ १ ॥ त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे । महीं दिवं पृथिवीमन्तरिक्षम् । तच्छ्रोणेति श्रव इच्छमाना । पुण्य ँश्लोकं यजमानाय कृण्वती ॥ २ ॥ विष्णवेस्वाहा । श्रोणायै स्वाहा । श्लोकाय स्वाहा । श्रुतायस्वाहेति ।

२४ धनिष्ठा नक्षत्रं वसवो देवताः । तारा ४ मर्दलाकारं [वसूनां श्रविष्ठाः । भूतं पुरस्ताभ्दूतिरवस्तात्.] शमी [जांडी] समिधा । " धनिष्ठाचधनंवसुः ॥ विनायको विघ्नराज द्वैमातुरगणाधिपाः ॥ अप्येकदन्तो हेरंबः शुंडाकृति गजाननः ॥ " ध्यान मंत्राः ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम् ॥ देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ [वा. सं. १'३] अष्टौ देवावसवः सोम्यासः । चतस्रो देवी रजराः श्रविष्ठाः ते यज्ञं पान्तु रजसः परस्तात् । संवत्सरीणममृत ँस्वस्ति ॥ १ ॥ यज्ञं नः पान्तु वसवः पुरस्तात् । दक्षिणतोऽभियन्तु श्रविष्ठाः ॥ पुण्यं नक्षत्रमभिसंविशाम । मानो अरातिरघश ँसा गन् ॥ २ ॥ [अग्रंहवै समानानां पर्येति] वसुभ्यः स्वाहा । श्रविष्ठाभ्यः स्वाहा । अग्राय स्वाहा । परीत्यैस्वाहेति ।

२५ शततारका नक्षत्रं वरुणो देवता । तारा १०० वर्तलाकारं [इन्द्रस्य शतभिषक् । विश्वव्यचाः परस्ताद्विश्वक्षिति रवस्तात्] कदंब समिधा वैकंकती वा । " वरुणो वारुणश्चात: शतभिषात्वंबुराट् भवेत् ॥ ध्यानमंत्रऽः ॐ वरुणस्योत्तंभवमसि वरुणस्यस्कंभसर्जनीस्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥ [वा. सं. ४'३६] क्षत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः । नक्षत्राणा ँशतभिषग्वसिष्ठः ॥ तौ देवेभ्यः कृणुतो दीर्घमायुः । शतं सहस्रा भेषजानि धत्तः ॥ १ ॥ यज्ञं नो राजा वरुण उपयातु । तन्नो विश्वे अभिसंयंतु देवाः ॥ तन्नो नक्षत्र ँशतभिषग्जुषाणम् । दीर्घमायुः प्रतिरद्भेषजानि ॥ २ ॥ वरुणायस्वाहा । शतभिषजेस्वाहा । भेषजेभ्यःस्वाहेति ।

२६ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रं अजैकपात् देवता । तारा २ मंचक सदृशं । (अजस्यैकपदः पूर्वेप्रोष्ठपदाः । वैश्वानरं परस्ताद्वैश्वावसवमवस्तात्) आम्र (चूतवृक्ष) समिधा । " अजैकपात्स्मृतोनित्यं पूर्वाभाद्रपदा बुधैः । " ध्यानमंत्राः– ॐ उतनोहि बुंध्न्यःशृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ॥ विश्वेदेवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुतामंत्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ (वा. सं. ३४.५३) अजएकदुद्रगात्पुरस्तात् । विश्वा भूतानि प्रतिमोदमानः ॥ तस्य देवाः प्रसवंयंति सर्वे । प्रोष्ठपदासो अमृतस्य गोपाः ॥ १ ॥ विभ्राजमानः समिधान उग्रः । आन्तरिक्षमरुहदगं द्याम् ॥ तं सूर्यं देवमजमेकपादं । प्रोष्ठपदासो अनुयन्ति सर्वे ॥ २ ॥ अजायैकपदे स्वाहा । प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा । तेजसेस्वाहा । ब्रम्हवर्चसायस्वाहेति ।

२७ उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्रं अहिर्बुध्निय देवता । तारा २ यमलाकारं [अहेर्बुध्नियस्योत्तरे अभिषिंचन्तः परस्तादभिशृण्वन्तोऽवस्तात्.] पिचुमंद [नीम] समिधा । " स्यादुत्तराभाद्रपद स्त्वहिर्बुध्न्यश्च कथ्यते. " ॐ शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मामाहिꣳसीः ॥ निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायष्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ (वा. सं. ३.६३) अहिर्बुध्नियः प्रथमान एति । श्रेष्ठो देवानामुत मानुषाणाम् ॥ तं ब्राम्हणाः सोमपाः सोम्यासः प्रोष्ठपदासो अभिरक्षन्ति सर्वे ॥ १ ॥ चत्वार एकमभिकर्मदेवाः । प्रोष्ठपदास इतियान्वदन्ति ॥ ते बुध्नियं परिषद्यꣳ स्तुवन्तः । अहिꣳरक्षन्ति नमसोपसद्य ॥ २ ॥ अहयेबुध्नियायस्वाहा । प्रोष्ठपदेभ्यः स्वाहा । प्रतिष्ठायैस्वाहेति ।

२८ रेवती नक्षत्रं पूषा देवता । तारा ३२ मृदंगाकारं । (पूष्णो रेवती गावःपरस्तात् । वत्सा अवस्तात् । मधुवृक्ष (मुलहटी) समिधा । " अन्त्यभं रेवती पौष्णं पूषाचेतीवनामतः ॥ एतान्नाक्षत्रनाः संज्ञा यत्ने नोक्ता मया स्फुटम् " (राजमार्तंडोक्ताः) । ध्यानमंत्राः ॐ पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ॥ स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ [वा. सं. ३४.४१] पूषा रेवत्यन्वेति पन्थाम् । पुष्टिपती पशुपा वाजवस्त्यौ ॥ इमानिहव्या प्रयता जुषाणा । सुगैर्नोयानै रुपयातांयज्ञं ॥ १ ॥ क्षुद्रान्पशून्रक्षतु रेवतीनः । गावो नो अश्वाꣳ अन्वेतु पूषा ॥ अन्नꣳ रक्षन्तौ बहुधा विरूपं । वाजꣳ सनुतां यजमानाययज्ञम् ॥ २ ॥ पूष्णेस्वाहा । रेवत्यैस्वाहा । पशुभ्यःस्वाहेति । इति नक्षत्र कल्पः ।

भारतीय राशिमान अर्थात्–

वेदोक्त राशिविज्ञान

अथ राशि कल्पः । तत्रादौ [१] मेषराशिः । तारा ४२ पुंज तारा ९ । ल्याटिन अरिस । इंग्रजी ऱ्याम [राम] संस्कृत क्रिय, ओज, अज, मेढ्र, उरभ्र, उरण, ऊर्णायुः वृष्णिः प्रथम राशिः । ॐ नेमिं नमन्ति चक्षसा " मेषं " विप्रा अभिस्वराः ॥ सुदीतयो वो अद्रुहोपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १ ॥ (अथर्व सं. २०.५४.३ पृ. ७३९)

(२) वृषभराशिः । तारा २०७ पुंज तारा २९ । ल्या. टारस, इं. बुल, धुरंधर, वृष, उक्षा गौ, गोपति, तावुरि, द्वितीय राशिः । ॐ अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयं स्वस्तये ॥ सन इन्द्र इव देवेभ्यो वह्निः सन्तारणोभव ॥ (वा. सं. ३५-१३ ककुभ ँ रूपं वृषभस्य रोचते, बृहच्छुक्रः शुक्रस्यपुरोगाः ॥ यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि, तस्मैत्वागृह्णामि तस्मै ते सोमसोमायस्वाहा ॥ (वा. सं. ८.४९)

(३) मिथुनराशिः । तारा ८३ पुंजतारा १९ ल्या. जेमीनाय । इं. ट्विनस । सं. नृयुग्म, नृयुग, वीणा, यमल, जितुम मन्मथ, तृतीय राशिः ॐ लोहितेन (आर्द्रया) स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ॥ अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजयाबहु ॥ [अ. सं. ६.१४१.२] अवत्मना भरते केतवोदा, अवत्मना, भरते फेनमूदन् । क्षीरेणस्नातः कुयवस्ययोषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ युयोपनाभिरुपतस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ॥ अंजशी कुलशी वीरपत्नी पयोहिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ (ऋ. सं.१.७.१८) (नृमिथुनं सगदं सवीणम्), वराहः ॥

(४) कर्क राशिः । तारा ८५ पुंजतारा ६ ल्या. क्यानसर, इं. क्राब । सं. कुलीर, कर्कट, कर्की, अब्ज, आयुः, कारुः, जीवः चतुर्थ राशिः ॐ अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्षवाजिन् ॥ इमे ते स्तोका ब ला एहि-अर्वाङ् इयंते कर्की इहते मनः अस्तु ॥ (अ. सं. ४.३८.६)

(५) सिंह राशिः । तारा ९३ पुंजतारा १७ । ल्या. लीओ । इं. लायन । सं. हरि, मृगेन्द्र, पंचास्य, हर्यक्ष, केसरी, लेय, लेप, पंचम राशिः । ॐ रक्षो अग्निपशुपं तूर्वयाणं सिंहोनदमेऽअपांसि वस्तोः ॥ (ऋ. सं. २.४.१६) एना व्याघ्रं परिषस्वजानाः सिंहं हिन्वतिमहते सौभगाय ॥ समुद्रंन: सुभुवास्तस्थिवांसं मर्मृज्यन्ते द्वीपिनमप्स्वन्तः ॥ (अ. सं. ४.८.७) उभेत्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रतिजोषयेते (ऋ. सं. १०७।१)

(६) कन्याराशिः । तारा ११७ पुंजतारा १५ । ल्या. वर्गो । इं. वर्जिन् । सं. कन्यका, युवति, योषित्, षष्ठी, तरणी, नौका, तरुणी, कुमारी पंथा वहा–प्रवहा षष्ठीराशिः । ॐ पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ॥ ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥ + ॥ प्रथम भाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सगभस्ति मृभ्वम् ॥ होतायक्ष द्यजतं पस्त्याना मग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥ (ऋ. सं. ४.८.६) उताग्नाव्यंतु देव पत्नी रिन्द्राण्यग्नाय्याश्विनीराट् ॥ २३ ॥ अग्नएति युवति रह्वयाणा प्राचिकत्सूर्यं यज्ञमग्निम् । अश्वावती गोमतिर्नऽउषासीः वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ॥ २७ ॥ (ऋ. सं. ५-५-२३,२७) एताऽउत्याऽउषसः केतुमक्रत, पूर्वेऽअर्धे रजसो भानुमंजते ॥ × ॥ अर्बन्ति नारीरपसो नविष्टिभिः समानेन योजने नापरावतः ॥ पशुन्नाचित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्नक्षोदऽउर्विया व्यश्वैत् ॥ [ऋ. सं. १.६.२४.२६]

(७) तुल राशिः। तारा ६१ पुंज तारा ७ ल्या० लैब्रा। इ० ब्यालेनस। संस्कृत- तुला, वणिक्, पथ, तौली। जूक, घट, मूक, वणिजाख्य, तुलाधर। तौलपात्र। सप्तमराशि। ॐ आज्यस्य परमेष्ठिन्। जातवेदस्तन्नूवशिन्॥ अग्ने तोलस्य प्राशान यातुधानान्विलापय (अ. सं. १-७-२) इडेरन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते दिति, सरस्वती, महि, विश्रुति॥ एताते अघ्येनामानि देवेभ्यो मासुकंब्रूयात् (वा. सं. ८'४३) एषस्य वाजीक्षिपणिं तुरण्यतिग्रीवायांबद्धो अपि कक्ष आसनि॥ क्रतुं दधिक्राअनु संसानिष्यदत्। पथांअंकांसिअन्वापनीफणत्॥ (वा. सं. ९'१४)

(८) वृश्चिक राशिः। तारा ६० पुंज तारा १७। ल्या० स्कार्पिओ। इं. स्कार्पियन्। सं. आलि,द्रुण, कौर्प्य, कीट, क्रिमि पृदाकुः। ॐ यस्ते सर्पो वृश्चिक स्तृष्टदश्मा हेमन्तजब्धो भृमलो गुहाशये॥ कृमिर्जिन्वत् पृथिवियद्यदेजति प्रावृषेतन्नः सर्पन्मोपसृपद्यच्छिवं तननोमृड॥ (अ. सं. १०१'४६)

(९) धन राशिः। पुंजतारा १४। ल्या० साजिटेरिअस्। इं० आर्चर। सं अस्त्रं, धनुश्च कोदंड धरश्चापश्चतौक्षिकः। अश्वीनरोश्वजघनः धनं धन्वन्तरिः। नवमराशिः। ॐ दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्॥ परिमां परिमेप्रजां परिणः पाहियद्धनम्॥ उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके॥ विक्षेत्रियस्य मुंचतामधमं पाशमुत्तमम्॥ (अ. सं. २। ७-८। ३,१) यौ श्याव-अश्वं अवथः वध्रि अश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढं आत्रिम्॥ यौ विमदं अवथः सप्तऽवध्रिंतौनः मुञ्चतं-अंहसः (अ. सं. ४।२९।४)

(१०) मकरराशिः ता. सं. ६४ पुंजतारा ७। ल्या. क्याप्रिकार्नस्। इं. गोट। सं. मृग। नक्र। दशमराशिः। ' आकः केरो मृगश्चापि मृगास्यो मकरस्तथा॥ हरिणश्च॥ ॐ यद् क्रंदः प्रथमंजायमान उद्यंत्समुद्रादुतवापुरीषात्॥ स्येनस्यपक्षा हरिणस्यबाहू उपस्तुत्य महिजातंतेअर्वन्॥

(११) कुंभराशिः। तारा ११७ पुंजतारा १५। ल्या. अक्वेरिअस। इं. वाटर। सं. कुंभ॥ ॐ एमां कुमारस्तरण आवत्सो जगतासह॥ एमां परिस्तुतः कुंभ आदध्नः कलशैरगुः॥ [अ. सं. ३।१२।७] पूर्णः कुंभोधिकाल आहितः × प्रत्यङ् कालंतमाहुः परमेव्योमन्॥ (अ सं. १९।५३।३)

(१२) मीनराशिः। तारा ११६ पुंजतारा ११। ल्या. पिसेस इं. फिश्। सं मीन, मत्स्य, अंत्यभं ॐ आण्डवभित्वा शकुनस्य गर्भे मुदुस्रियाः पर्वतस्यत्मनाजत्॥ अश्नापिनद्धं मधुपर्यपश्यन्मत्स्यं नदीने उदनिक्षियन्तम्॥ [अ. सं. २०।१६।७-८] इति राशि कल्पः समाप्तः॥

समर्पण और अंतिम निवेदन।

भारतवर्ष के समस्त पञ्चाङ्गों का एकीकरण होतेहुए; हमारे पूर्वजों की परिशोधित शुद्ध नाक्षत्र पद्धति का प्रचार संसार व्यापी हो और हमारे सब धार्मिक और व्यावहारिक कार्य एकही सूत्रसे चलें; इस सद्हेतु से प्रेरित होकर श्रीमन्त हिज हायनेस महाराजाधिराज राज राजेश्वर सवाई श्री यशवन्तराव होलकर बहादुर जी. सी. आय. ई. के उदार आश्रय से, श्रीमान् वजीर-उद्दौला राय बहादुर सरहमलजी बापना सी. आय. ई., बी. ए., बी. एस. सी., एल्. एल्. बी. प्राइम मिनिस्टर साहब के करकमलों से संस्थापित, श्रीमन्त वजीर उद्दौला सरदार माधवराव विनायकराव किबे साहब रावबहादुर एम. ए, एम. आर. ए. एस., एफ. आर. एस. ए. एवं श्रीमान् दिवान-इ-खास बहादुर मोतीलालजी बिजावर्गी एम ए., एल्. एल्. बी., फायनेन्स मिनिस्टर साहब द्वारा अनुवर्द्धित तथा श्रीमन्त सरदार रामचंद्रराव खंडेराव झनाने बी. ए. होम मिनिस्टर साहेब महोदय के [ता. १८-३-३५ के] प्रस्तावानुसार श्री होलकर गव्हर्नमेन्ट की आज्ञा से प्रकाशित यह " रिपोर्ट " ज्योतिःशास्त्र की उन्नति चाहने वालों को अत्यन्त आदर और नम्रता पूर्वक समर्पित की गई है। इसे ज्योतिर्विद्या विशारद, गणितज्ञ, धर्मशास्त्री, वेदार्थकर्ता, याज्ञिक, धर्माचार्य और विद्यानुरागी राजामहाराजा, धनीदार, वैज्ञानिक, इतिहासक शोधप्रिय महानुभावों ने स्वीकृत करके पंचांगों के एकीकरणका प्रयत्न करना चाहिये। इसी से हमारे ज्योतिषशास्त्र की उन्नति होगी। भारत में एक भाषा एक लिपि के प्रचार से जो उन्नति समझी गई है उससे कई दर्जे अधिक दिव्य चमत्कार को बताने वाले सूक्ष्म गणित को शुद्ध नाक्षत्र पद्धतीके पंचांगोंके प्रचार से होसकती है। आज कल के पंचांगकार अपनी कमजोरी को छिपाने के लिये न तो अयनांश, ताराग्रहयुति क्रांतिसाम्य महापात आदि लिखते हैं; न वेध द्वारा पचांग का दृग्गणितैक्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। इससे अष्टमी के निकट भद्रा व्यतिपात आदि में १०-१९ घटी का अंतर होना फलित ज्योतिष के दृष्टिसे भी बहुत खराब बात है। इस प्रकार पंचांगोंकी अशुद्धि से बहुत नुकसान हो रहा है ग्रहण आदि की टाइम नाटिकल आल्मनाक (इंग्रेजी पंचांग) से लेते हैं। और धोखे बाजी से बचने के लिये प्राचीन ग्रंथों के धार्मिक भावको प्रगट करते हुए प्रस्तावना में असत्य प्रमाणो के बलपर दृष्यादृष्य गणित का कोटी क्रम लगा देते हैं। पूना कमेटी के पंचांग में तो अयनांश भेद से चारदिन का अन्तर पडता है। लेकिन ऐसे से हमारे शास्त्र की उन्नति न होते हुए दिनोदिन अवनति होती है। इसलिये संपूर्ण पंचांगकारों से मेरी प्रार्थना है कि असत्य कोटीक्रम एवं दुराग्रह को त्याग कर श्रुतिस्मृति सर्व सिद्धान्तैक्य प्रतिपादित शुद्ध नाक्षत्र पद्धति के पंचांग का स्वीकार करके पंचांगों के एकीकरण का श्रेय प्राप्त करें। और इस संबंध में हमारे से जो कुछ सेवा लेना चाहें। तो मैं और मेरा मंडल सेवा करने के लिये तयार हैं। कृपया रिपोर्ट के संबंध में निजका अभिप्राय देकर हमें कृतार्थ एवं आगे कार्य करने के लिये उत्साहित करेंगे।

निवेदक,

दीनानाथशास्त्री चुलैट,

सम्वत् १९९२. अध्यक्ष पंचांग शोधन कमेटी इन्दौर.

चित्रों का विवरण.

१ सारथी किंवा गालव. Auriga.

ययाति के दाहिनी ओर (पूर्व के तर्फ) मिथुन राशि के आरंभ में " सारथी " नामक तारका पुंज है। इसमें पांच मुख्य तारे आडे तेडे पंचकोणा कृति के हैं। यह सब मिलकर मनुष्य की आकृति बनी है। इसने बांए हात से पकडे हुए बकरी को गोद में लेरखा है। यह पृथ्वी पर घुटना टेके वीरासन से बैठा हुआ दिखता है। इसके दाहिने हात में लगाम की रस्सी है। जो कि घोडों की लगाम हो ऐसी दिखती है। विधान ९५ (स्कंदोपाख्यान) में इसे विशाख के नाम से तथा विधान [१०९-११३] ययाति कथा में ' गालव ' नाम से इसका उल्लेख किया गया है। कोष्टक ३-४ में इसके व अंतर्गत ब्रह्म हृदय के भोग शरादि अंक लिखे गये हैं।

---

२ देव यानी किंवा देवसेना व माधवी. Andromada.

ययाति के बाएं तर्फ (पश्चिम में देवयानी पुंज है। यह पूर्वोत्तरा भाद्रपदा के उत्तर में होने से पूर्वा भाद्रपदा के २ तारे व उत्तरा भाद्रपदा का एक दक्षिण का तारा ऐसे ३ तारे उच्चैश्रवा पुंज में व उ. भाद्रपदा का उत्तरीय तारा देवयानी के मस्तक (सिर) में है। ऐसे भाद्रपदा के चतुष्कोणाकृति के चार तारे देवयानी के नीचे (दक्षिण में) हैं। बाकी और बडे तीन तारे देवयानी के पीठ, कमर व पांव पर हैं। यह आकृति स्त्री की होकर शिरसे कमर तक खुली (वस्त्र रहित) है। इसके दोनों हात फैले हुए हैं। और वह जंजीर से जकडे हुए व पत्थर से बंधे हुए हैं। विधान ९५ [स्कंद चरित्र] में " इसको देवसेना के नामसे एवं स्कंद ने इसे बंध मुक्त किया " ऐसा लिखा है। इसी के साथ स्कंद का विवाह हुआ है तथा विधान १०९-११३ [ययाति चरित्र] में इसको मित्र तारे से युक्त मान कर ययाति की कन्या माधवी के नामसे (चार पुत्रों की माता ऐसा) उल्लिखित किया है.

देवयानी में तारों का जत्था (शुनःपुंज). Canes Venatice.

शौरी और मृग के बडे तीन जत्थों में से देवयानी का जत्था दूसरी प्रति का है। इसमें असंख्य तारे निकटवर्ति होने से यह लंबी सेना के आकार का होने से विधान ९५-९७ [स्कंद चरित्र] में देवयानी का नाम ही देव सेना कहा है। वेद में शुनःपुंज का जो उल्लेख है सो इन तीनों जत्थों के संबंध में हैं।

---

४ ययाति किंवा स्कंद. Perseus.

देवयानी के मुख्य तीन तारों में से पंद्रह अंश की लंबी रेषा खींचने पर वह ययाति के मस्तक के ऊपर ठहरती है! इसके बाएं हाथ में मुंडाकृति की ढाल व दहिने हात में तरवार है। सिरपे शिरस्त्राण का टोप और पावों में पाद त्राण होते हुए बीर पुरुष के तुल्य इसकी विशाल तेजस्वी आकृति है। इसके उत्तर में करीब १० अंश पर एक बडा तारा है। वह मेडस (करभ) नामक तारका पुंज इस के सिर के ऊपर है। विधान ९५-९९ में इन दोनों को स्कंद व कुक्कुट व स्कंद को इंद्र पदारूढ लिखा है। तथा विधान १०९-११३ में इसे ययाति नाम से कहा है। कोष्टक ३, ४ व ६ में इसके परिमाणांक लिखे हैं।

---

५ शर्मिष्ठा Cassiopeia

यह पुंज ययाति के बाएं तर्फ कुछ उत्तर की ओर उंचे स्थान में है। इसकी आकृति स्त्री की होकर वह खुर्चों पर बैठी हुई बिलकुल झीणा वस्त्र पहरी हुई है। हात ऊपर की हुई है। एक हात में नारियल की वनस्पति और दूसरा हात मस्तक पर रखो हुई दिखती है। विधान ९५-९७ (स्कंद चरित्र) में इसे स्कंद के कुक्कुट की उपमा दी है। तथा विधान १०९-११३ (ययाति चरित्र) में इसे ययाति की स्त्री एवं देवयानी को भी पुराणों में स्त्री कहा है कोष्टक ३ में इसके परिमाण लिख दिये हैं।

---

६ उच्चैश्रवा Pegasus

यह पुंज देवयानी के शिर के (पश्चिम में) ऊपर है। इस चित्रके अगाडी के भाग की आकृति घोडे की है। इसके कंधे पर पंख हैं। इसका गला व मुख घोडे के तुल्य है साथ में दूसरा अश्व पुंज के घोडे का मुख भी इसके साथ दिखता है। विधान १०९-११३ ययाति चरित्र में इस अश्वपुंज के चतुरस्र आदि तारों की क्रांति की समानता व रूपकी तुल्यता नरतुरंग (विश्वामित्र) के निकट के अश्वपुंज में बताई है। (कोष्टक ३ देखिये)

---

७ धनिष्ठा, गरुड और शार्ङ्गपाणी (विष्णु) Delphini and Aquila

इन तीनों के पुंज निकट में होने से एक शार्ङ्गपाणी पुंज में ही इन्हें बता दिये हैं। श्रवण नक्षत्र के मध्य का नीले रंग का तारा विष्णु के मध्य में है। विधान १०९-११० में गरुड का उल्लेख गालव के साथ आया है। कोष्टक ४ में गरुड (लांब्डा एकिलक्स) के परिमाण लिख दिये हैं।

---

८ कन्याराशि Virgo

यह आकृति उत्तरा फाल्गुनी से चित्रा नक्षत्र तक के विभाग में स्त्री के आकार की है इसके कंधों पर पंख लगे हुए, दहिने हात में लाजा (धान का थोम) बाएं हात में अग्निस्थाली (उषा=कलश) है कि जिसमें देदीप्यमान श्यामवर्ण का अचल चित्रा तारा है। ज्योतिष संहिता ग्रंथों में इसे नौका में बैठी हुई कही है। और चित्रा तारे के अर्धभाग से ही मनुष्य रूपधारी तुलाराशि का आरंभ बताया है। वेद पुराणों में कन्या के संबंध में " इला, उर्वशी, शकुंतला, दमयंती, गौरी, सती, सरस्वती, शची, श्री, सीता, रुक्मिणी द्रौपदी आदि की कथा और चित्रा तारे के नाम इंद्र, वसु, त्वष्टा, विश्वकर्मा, सवितादेव आदि कहे गए हैं।

---

९ भूतप Bootes

यह पुंज कन्याराशि के उत्तर में है। इसकी आकृति मनुष्य के आकार की है। यह सप्तर्षि (बृहदृक्ष) के तर्फ जाता दिखता है। इसके दहिने हात में गदा व बाएं हात में सिकारी शाम शबल नामक दो कुत्ते हैं। यह हात बृहत्‌ऋक्ष के पुच्छ के निकट में रखा हुआ है। वेद पुराणों में इसका उल्लेख भूतेश, रुद्र पुरूरवा, मरुत्, हनूमान, महावीर, मन्यु, मनु, जनक, शुनाशीर विश्वावसु आदि नामों से किया है।

---

१० शौरी Hercules

यह तारका पुंज भूतप के पूर्व तर्फ उत्तर गोलार्ध में है। इसकी लंबाई ५० अंश चौडाई ४५ अंश है। इसमें एक या दो प्रति के तारे न होकर तीसरे प्रति के हैं। चौथी प्रति के २० तारे हैं और छोटे छोटे तारे बहुत हैं। इसके दहिने हात में गदा है और यह वीर वेश में खडा है। भूतप के तर्फ इसके निकट के मुकुट में (केरोना) नाम का कपालाकृति का पुंज है। कई ग्रंथकार इसे अग्नि कुंड भी कहते हैं।

---

११ शौरी में तारों का गुच्छ (जत्था १)

तारों के तीन गुच्छों में यह सब से बडा है। इसका आकार सप्तकोणाकृति व विशाल रूप का है। वेद में इसे शुनः पुंज व ब्रह्मस्थान कहा है। इसमें असंख्य तारे हैं जोकि एक छोटे विश्व रूप में दिखाई देते हैं।

---

१२ भरत अथवा मृग Orion

यह पुंज सब से बडा होकर इसके तारे भी तेजस्वी हैं। यह वृषभ के सिर के पूर्व में व थोडा दक्षिण के तर्फ है। यह साधारण समांतर दीर्घ चतुष्कोणाकृतिका दिखाई देता।

है । इसके वर्ण रेषाओं में आर्द्रा व रिगेल नामक दो बडे तारे हैं । इनमें से आर्द्रा का लाल तारा कंधे पर रिगेल का नीला तारा बांएं पांव पर है । यह युद्ध के आवेश में खडा हुआ दिखता है । इसके कमर पट्टे में तीन बडे तारे हैं, वहां से छोटे छोटे तारों की पंक्ति आरंभ होती है । वह इसके कमर में बंधी हुई तरवारसी दिखती है । इसके सीधे हात में वज्र (सोटा) व बांएं हात में सिंह चर्म या मृगचर्म की ढाल दिखती है । इसके नीचे एक शशक पुंज है इसलिये इसे शशी, सोम, इन्दु कहते हैं । आगे इसे मृग पुंज कहने लगे अतः इसके भारतमास को अब मार्गशीर्ष कहते हैं । तथा इसके शोध करने वाले देश को भरतखंड व इन्दु, हिन्दुस्थान कहने लगे हैं ।

---

१३ भरत में तारों का गुच्छा (जत्था २)

यह गुच्छ भी विशाल एवं तेजस्वी है । इसके तारे नेत्रों से भी दिख सकते हैं । ऐतरेय ब्रा. (३-३-३३ पृष्ठ ४०१२) में इसको प्रजापति के रेत का सरोवर व मानुष जाति के उत्पत्ति का स्थान कहा है । Centaurus Lepus, crux and Musca.

---

१४ नरतुरंग, वृक, स्वस्तिक और दक्षिण मक्षिका.

उक्त चारों आकृति इतनी छोटी २ हैं कि एक नरतुरंग में ही आगई है । यह तुला वृश्चिक राशि विभाग में है । नरतुरंग का अर्ध भाग मनुष्य व आधा घोडे का है । यह भाला हात में लिये वृक को मार रहा है । वृक का मस्तक वृश्चिक के डंक (नांगी) के नीचे में है । घोडे के बांएं पांव में स्वस्तिक व उसके नीचे दक्षिण मक्षिका है ।

---

१५ यम, शिखावल, बक, कारंडव.

Indus, Pavo, Grus and Toucan.

यह दक्षिण गोलार्ध में पुंज है । परस्पर में यह इतने मिले हुए हैं कि एक पुंज के स्थान में ही चारों पुंज आ गए हैं । यह पुंज धनराशि के पांव के नीचे हैं । यम के हात में बाण है वह भील के तुल्य खडा है शिखावल (मोर) उसके पावों को अपने पंखों से ढके हुए खडा है । यम के पीछे बडी आकृति वाला बक और छोटा कारंडव है । इन दोनों की चोंच यम तथा मोर के तर्फ है ।

---

१६ नौका Argo.

दक्षिण ध्रुव से श्रृगाश्वतक नौका पुंज है । (साथ दिये हुए इनके चित्र देखिये)
